मूल्य
प्रति खण्ड रु० 75 00
सम्पूर्ण सेट रु० 600 00

रामकृष्ण त्रिपाठी

द्वितीय सस्करण
माच, 1983

प्रकाशक
राजकमल प्रकाशन प्रा लि
8 नेताजी सुभाष माग,
नयी दिल्ली - 110 002

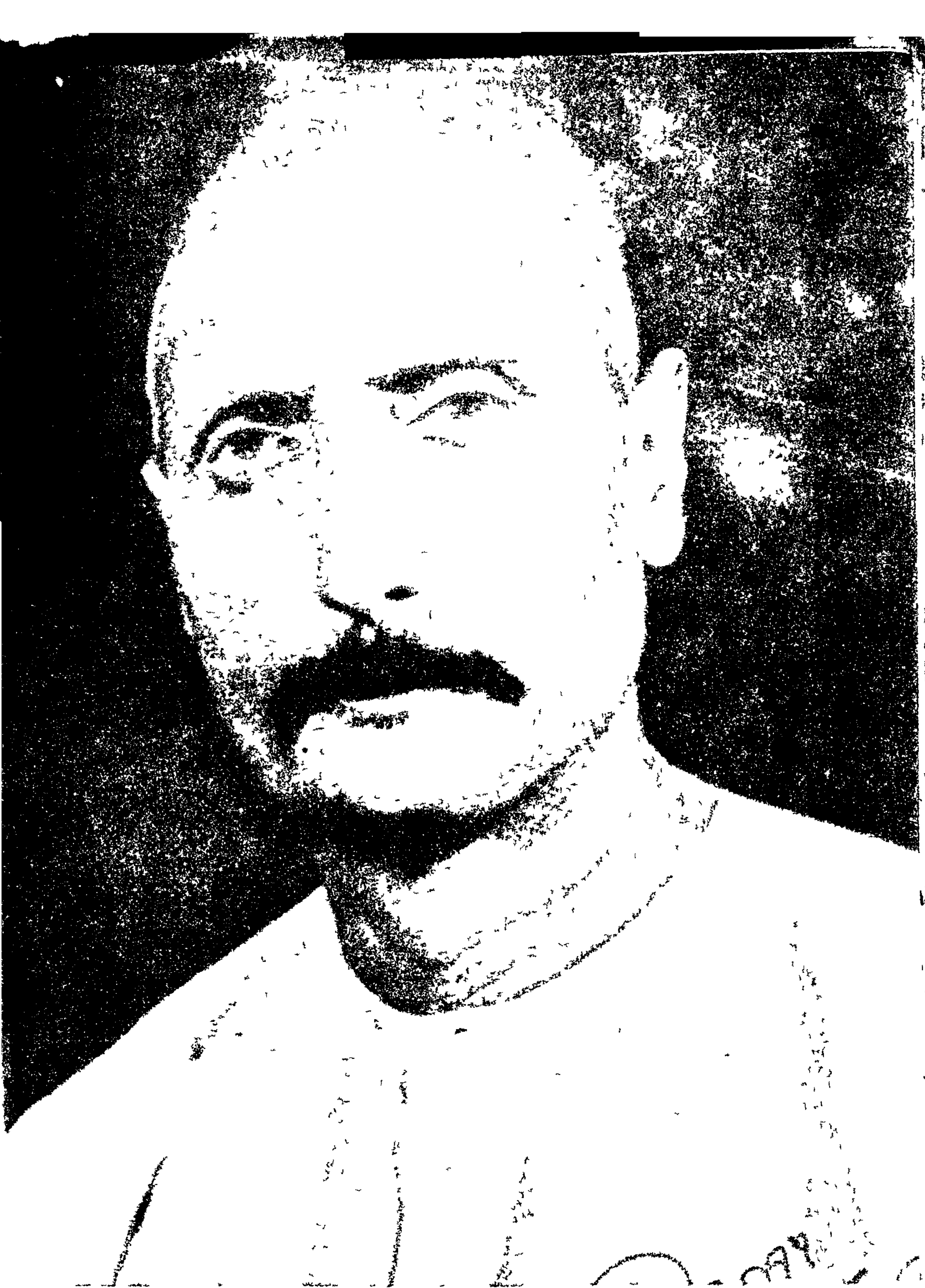
मुद्रक
रुचिका प्रिन्टस
नवीन शाहदरा
दिल्ली - 110 032

आवरण तथा
प्रारम्भिक पृष्ठ
प्रभात आफसेट प्रेस,
दरियागज, नयी दिल्ली

कला-पक्ष
आवरण के लिए
निराला का रेखाकन
हरिपाल त्यागी

कला - सयोजना
चाँद चौधरी

NIRALA
RACHANAVALI
Collected Works of
Suryakant Tripathi 'Nirala



29 मार्च 1949

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के साथ



हिन्दी परिषद मेरठ
निराला, इन्दुमती, होमवती देवी अज्ञेय, जैनेन्द्र, डॉ रामविलास शर्मा

1946



1934

आभार

निराला रचनावली प्रकाशित हो रही है, यह राजकमल के लिए गौरव की बात है। जिस प्रकार महाकवि की जीवन-यात्रा सघर्षपूर्ण रही, उसी प्रकार इस **रचनावली** के प्रकाशन मे तरह-तरह की कठिनाइयाँ और बाधाएँ सामने आयी। किन्तु बडे धैर्य के साथ हमने सभी कठिनाइयो को हल किया और इसके प्रकाशन मे सभी निराला-प्रेमियो का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष महयोग हमे मिला।

रचनावली मे भारती भण्डार, इलाहाबाद, की आठ पुस्तकें [गीतिका, अनामिका, तुलसीदास, आराधना, सुकुल की बीवी, प्रबन्ध-प्रतिमा, निरुपमा और अपरा], निराला प्रकाशन, दारागज, इलाहाबाद, की चार पुस्तकें [प्रभावती, बिल्लेसुर बकरिहा, चोटी की पकड और चतुरी चमार] तथा लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, की आठ पुस्तकें [अर्चना, बेला, नये पत्ते, कुकुरमुत्ता, अणिमा, देवी, काले कारनामे और रवीन्द्र-कविता-कानन] सकलित की गयी है और इन सस्थाओ ने अपनी पुस्तकें **रचनावली** मे सकलित करने की सहर्ष अनुमति दी है। यह स्वस्थ परम्परा हिन्दी-प्रकाशन के लिए स्वागत-योग्य है।

रचनावली मे जिन चित्रो का उपयोग किया गया है वे हमे सर्वश्री अमृतलाल नागर, ओकार शरद, अजितकुमार, नेमिचन्द्र जैन, रामकृष्ण त्रिपाठी तथा इण्डियन आर्ट स्टूडियो देहरादून के श्री नवीन नौटियाल मे प्राप्त हुए है। इसके अतिरिक्त श्री बरुआ द्वारा सम्पादित 'महाकवि निराला अभिनन्दन ग्रन्थ' से भी कई चित्र लिये गये हैं।

रचनावली के पत्रोवाले खण्ड मे आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री की पुस्तक 'निराला के पत्र' से महाकवि द्वारा शास्त्रीजी को लिखे गये पत्र सकलित हुए हैं। श्री सोहनलाल भार्गव, लखनऊ, ने स्वर्गीय श्री दुलारेलाल भार्गव के नाम लिखे गये पत्र, और श्री रामकृष्ण त्रिपाठी, इलाहाबाद, ने अपने नाम लिखे गये पत्र, जो 'निराला की साहित्य साधना' के तीसरे खण्ड मे सकलित है, **रचनावली** मे सकलित करने की सहर्ष अनुमति दी।

उपरोक्त सभी सस्थाओ और महानुभावो तथा परोक्ष रूप से सहायक होनेवाले अन्य व्यक्तियो के हम आभारी हैं। उनके सहयोग से ही यह स्वप्न साकार हुआ है।

19 जनवरी, '83 — **शीला सन्धू**

तीसरा खण्ड

निराला ने उपन्यास-लेखन भी दो चरणो मे किया है। पहले चरण मे उन्होने **अप्सरा, अलका, प्रभावती** और **निरुपमा** नामक उपन्यास लिखे और दूसरे चरण मे **कुल्लीभाट, बिल्लेसुर बकरिहा, चोटी की पकड़** और **काले कारनामे** नामक उपन्यास। **रचनावली** के खण्ड तीन मे उनके पहले चरण के उपन्यास सकलित किये गये हैं।

अप्सरा 'सुधा' (मासिक, लखनऊ) के छ अंको (अगस्त, 1930 से जनवरी, 1931 तक) मे धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुई थी। पुस्तक-रूप मे उसका प्रकाशन सवत् 1988 वि. (1931 ई.) मे गगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ से हुआ। इस उपन्यास की भूमिका के नीचे निराला ने 1 जनवरी, 1931 की तिथि दी है। इससे अनुमान होता है कि यह 1931 ई के आरम्भ मे ही निकल गया था। **अलका** का प्रकाशन-वर्ष सवत् 1990 वि. (1933 ई.) है। अक्तूबर, 1933 को 'सुधा' मे 'नये फूल' शीर्षक स्तम्भ के अन्तर्गत जो सूचना दी गयी है, उसके अनुसार यह 1933 के सितम्बर मे छपकर बाहर आयी। यह भी गगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ से ही प्रकाशित हुई थी।

प्रभावती 1936 ई. मे सरस्वती पुस्तक भण्डार, लखनऊ से निकली। इसके प्रथम सस्करण मे श्री रूपनारायण पाण्डेय लिखित जो भूमिका है, उसके नीचे 17 फरवरी, 1936 की तिथि दी गयी है। निराला ने पुस्तक के समर्पण के नीचे 1 मार्च, 1936 की तिथि दी है। इससे यह समझा जा सकता है कि यह उपन्यास 1936 ई. के पूर्वार्ध मे प्रकाशित हुआ था। 17 अप्रैल, 1936 को निराला आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री को पत्र मे लिखते हैं : "**सखी** और **प्रभावती** मेरे पास रखी है पर मैं भेज नही सकता।" (**निराला के पत्र**)। इससे उक्त अनुमान की पुष्टि होती है। **निरुपमा** का प्रकाशन-वर्ष भी 1936 ई. ही है। यह भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद से निकली थी। इसमे समर्पण के नीचे निराला ने 21 मार्च, 1936 की तिथि दी है। इसमे यह प्रतीत होता है कि यह उपन्यास भी 1936 ई के पूर्वार्ध मे ही बाहर आया था, लेकिन ऐसी बात है नही। यह 1936 ई. के नवम्बर के आरम्भ मे बाहर आया। ऐसा सोचने का आधार भी निराला के पत्र ही है। 19 जून, 1936 को उन्होने शास्त्रीजी को लिखा "**गीतिका** छप रही है सरस्वती प्रेस मे भारती भण्डार द्वारा, **निरुपमा** भी लीडर प्रेस मे।" (उपर्युक्त)।

फिर 7 नवम्बर, 1936 के पत्र मे वे उन्हे सूचना देते है कि "**गीतिका** कल तैयार हो जायगी, **निरुपमा** हो चुकी है ।" (उपर्युक्त) ।

निरुपमा के आरम्भिक दो परिच्छेद 16 जनवरी, 1934 की 'सुधा' मे प्रकाशित हुए थे । इसका मतलब यह है कि इस उपन्यास को लिखने मे निराला ने 1933 ई. के अन्त मे ही हाथ लगा दिया था, पर यह पूरा सम्भवत 1935 ई. के अन्त मे हुआ । 14 अगस्त, 1935 के पत्र मे उन्होने शास्त्रीजी को लिखा था कि '**प्रभावती** कुछ बाकी है ।" (उपर्युक्त)। इससे यह अर्थ निकाला जा सकता है कि निराला ने **प्रभावती** की रचना **निरुपमा** के बाद शुरू की और उसे उससे पहले पूरा कर लिया । इस तरह उनका तीसरा पूरा उपन्यास **प्रभावती** ही ठहरता है, **निरुपमा** नही । उन्होने **निरुपमा** की भूमिका मे स्पष्ट शब्दो मे लिखा भी है "हिन्दी के उपन्यास-साहित्य को **निरुपमा** मेरी चौथी भेंट है ।"

निराला के पहले चरण के प्राय चारो उपन्यासो का कथानक घटना-प्रधान है । उनमे लेखक का ध्यान जैसे परिवेश के चित्रण पर नही, बल्कि एक रोचक कथा गढने पर है । पात्र यथार्थजगत् से नही उठाये गये हैं, उन्हे कल्पना से अपने आदर्शो के अनुरूप गढा गया है। भाषा जैसे जीवन-सग्राम मे काम आनेवाला अस्त्र न होकर अलकरण की वस्तु है । स्थान-स्थान पर निराला लम्बे-लम्बे वाक्योवाली ऐसी चित्रात्मक भाषा का प्रयोग करते हैं कि थोडी देर के लिए कविता और गद्य का अन्तर मिटता हुआ दिखलायी पडता है । लेकिन यह उनके इन उपन्यासो का एक पहलू है ।

उपन्यासकार के रूप मे निराला के पास महिषादल, कलकत्ता, गढाकोला, डलमऊ और लखनऊ के अनुभव थे । उन्होने इन्ही को आधार बनाकर अपने उपन्यास लिखे । इन उपन्यासो की रचना का काल भारतीय स्वाधीनता-आन्दोलन का काल है । स्वाधीनता-आन्दोलन एक ओर उपनिवेश-विरोधी था और दूसरी ओर सामन्त-विरोधी । निराला के इन उपन्यासो मे जनवादी चेतना से ओत-प्रोत नवशिक्षित तरुण और तरुणियां है, जो सामन्ती रूढियो को तोडकर समाज के सम्मुख एक आदर्श रखते है। उनके मार्ग मे बाधाएँ आती है, पर वे उनसे विचलित नही होते और सघर्ष करते हुए अपने लक्ष्य तक पहुँचते हैं । निराला नवशिक्षित तरुणियो को खासतौर से अपने इन उपन्यासो मे प्रस्तुत करते है । नारी-जाति की मुक्ति पर उनका विशेष आग्रह रहा है । अपनी 'मुक्ति' शीर्षक एक कविता मे उन्होने सामन्ती बन्धनो मे जकडी हुई नारी को सम्बोधित कर रहा है "तोडो, तोडो, तोडो कारा/पत्थर की, निकलो फिर,/गगा-जल-धारा ।" (द्वितीय **अनामिका**)। उनकी नारी-मुक्ति की इस आकाक्षा का ठीक से प्रत्यक्षीकरण उनके उपन्यासो मे होता है, कविता मे नही ।

लेकिन ऐसी बात नही है कि निराला के इन उपन्यासो मे केवल उनकी मुक्ति की आकाक्षा अभिव्यक्त हुई है । इन उपन्यासो मे यथार्थ जीवन का चित्रण भी है । **अप्सरा** मे कल्पना की प्रधानता है (बावजूद इसके कि उसमे किसानो का सगठन करने के अपराध मे लखनऊ-षड्यन्त्र केस मे गिरफ्तार होनेवाले चन्दन नामक तरुण का भी वर्णन है), लेकिन **अलका** कल्पना और यथार्थ के सम्मिश्रण मे बना

हुआ उपन्यास है। इन दोनो उपन्यासो मे क्रमश किसान-आन्दोलन और ग्राम-जीवन का जैसा यथार्थ चित्रण हुआ है, वैसा प्रेमचन्द के उपन्यासो के अलावा उस युग के किसी अन्य उपन्यास मे नही हुआ। इन दो उपन्यासो मे स्वभावत निराला की भाषा के भी दो स्तर देखने को मिलते हैं। एक भाषा वह है, जिसमे कल्पना-प्रसूत चित्रकारी है और दूसरी भाषा वह है, जिसमे यथार्थचित्रण से आनेवाली नयी शक्ति और धार है।

प्रभावती निराला का ऐतिहासिक उपन्यास है। यह पृथ्वीराज-जयचन्दकालीन उत्तर भारत के राजाओ के आपसी सघर्ष को लेकर लिखा गया है, जिसका कारण प्राय विवाह और कन्यादान हुआ करता था। उसमे एक पक्ष वीर नारियो का भी था, यह दिखलाना निराला का उद्देश्य है। उन्होने इस उपन्यास मे यमुना, प्रभावती, विद्या, रत्नावली आदि ऐसी तरुणियो का वर्णन किया है, जो नैतिकता के लिए जान पर खेलती रही। ये भारत की वीर नारियाँ है। ऐसे चरित्रो के निर्माण के पीछे भारतीय परम्परा का गहरा ज्ञान तो है ही, आधुनिकता की—नारी-उत्थान के आन्दोलन की—गहरी चेतना भी है।

निराला के साहित्य मे कल्पना और यथार्थ का अन्तर्विरोध शुरू से रहा है। यह कविता से पहले उनके कथा-साहित्य मे अधिक तीखे रूप मे प्रकट हुआ था। इस दृष्टि से उनके पहले चरण के इन उपन्यासो का महत्त्व असन्दिग्ध है।

रानीघाट लेन, महेन्द्रू, **नन्दकिशोर नवल**
पटना-800006
19 जून, 1982

उपन्यास

अप्सरा

अप्सरा को साहित्य मे सबसे पहले मन्द गति से सुन्दर-सुकुमार कवि-मित्र सुमित्रानन्दन पन्त की ओर बढते हुए देखा, पन्त की ओर नही। मैने देखा, पन्तजी की तरफ एक स्नेह-कटाक्ष कर, सहज फिरकर उसने मुझसे कहा, इन्ही के पास बैठकर इन्ही से मै अपना जीवन-रहस्य कहूँगी, फिर चली गयी।

—'निराला'

वक्तव्य

अन्यान्य भाषाओ के मुकाबले हिन्दी मे उपन्यासो की सख्या थोडी है। साहित्य तथा समाज के गले पर मुक्ताओ की माला की तरह इने-गिने उपन्यास ही है। मैं श्री प्रेमचन्दजी के उपन्यासो के उद्देश्य पर कह रहा हूँ। इनके अलावा और भी कई ऐसी रचनाएँ हैं, जो स्नेह तथा आदर-सम्मान प्राप्त कर चुकी है। इन बडी-बडी तोदवाले औपन्यासिक सेठो की महफिल मे मेरी दर्शिताधरा अप्सरा उतरते हुए बिलकुल सकुचित नही हो रही—उसे विश्वास है, वह एक ही दृष्टि से इन्हे अपना अनन्य भक्त कर लेगी। किसी दूसरी रूपवाली अनिद्य सुन्दरी से भी आँखें मिलाते हुए वह नही घबराती, क्योकि वह स्पर्द्धा की एक ही सृष्टि, अपनी ही विद्युत् मे चमकती हुई चिर-सौन्दर्य के आकाश-तत्त्व मे छिप गयी है।

मैंने किसी विचार से अप्सरा नही लिखी, किसी उद्देश्य की पुष्टि भी इसमे नही। अप्सरा स्वय मुझे जिस-जिस ओर ले गयी, दीपक-पतग की तरह मैं उसके साथ रहा। अपनी ही इच्छा से अपने मुक्त जीवन-प्रराग का प्रागण छोड प्रेम की सीमित, पर दृढ बाँहो मे सुरक्षित, बँध रहना उसने पसन्द किया।

इच्छा न रहने पर भी प्रासगिक काव्य, दर्शन, समाज, राजनीति आदि की कुछ बातें चरित्रो के साथ व्यावहारिक जीवन की समस्या की तरह आ पडी हैं, वे अप्सरा के ही रूप-रुचि के अनुकूल हैं। उनसे पाठको को शिक्षा के तौर पर कुछ मिलता हो, अच्छी बात है, न मिलता हो, रहने दें, मैं अपनी तरफ से केवल अप्सरा उनकी भेंट कर रहा हूँ।

लखनऊ
1। 1। 31

—'निराला'

एक

इडेन-गार्डेन मे, कृत्रिम सरोवर के तट पर, एक कुज के बीच, शाम सात बजे के करीव, जलते हुए एक प्रकाश-स्तम्भ के नीचे पडी हुई एक कुर्सी पर सत्रह साल की चम्पे की कली-सी एक किशोरी बैठी सरोवर की लहरो पर चमकती चाँद की किरणे और जल पर खुले हुए, काँपते, बिजली की वत्तियो के कमल के फूल एक-चित्त से देख रही थी। और दिनो मे आज उसे कुछ देर हो गयी थी, पर इसका उसे खयाल न था।

युवती एकाएक चौककर काँप उठी। उसी बेंच पर एक गोरा विलकुल सटकर बैठ गया। युवती एक वगल हट गयी। फिर कुछ सोचकर, इधर-उधर देख, घवरायी हुई, उठकर खड़ी हो गयी। गोरे ने हाथ पकडकर जवरन बेंच पर बैठा लिया। युवती चीख उठी।

वाग मे उस समय इक्के-दुक्के आदमी रह गये थे। युवती ने इधर-उधर देखा, पर कोई नजर न आया। भय से उसका कण्ठ भी रुक गया। अपने आदमियो को पुकारना चाहा, पर आवाज़ न निकली। गोरे ने उसे कसकर पकड लिया।

गोरा कुछ निश्छल प्रेम की वात कह रहा था कि पीछे से किसी ने उसके कालर मे उँगलियाँ घुसेड दी, और गर्दन के पास कोट के साथ पकडकर साहव को एक वित्ता वेंच से ऊपर उठा लिया, जैसे चूहे को विल्ली। साहव के कब्जे से युवती छूट गयी। साहव ने सिर घुमाया। आगन्तुक ने दूसरे हाथ से युवती की तरफ सिर फेर दिया, "अव कैसी लगती है ?"

साहव झपटकर खड़ा हो गया। युवक ने कालर छोडते हुए जोर से सामने रेल दिया। एक पेड के सहारे साहव सँभल गया, फिरकर उसने देखा, एक युवक अकेला खड़ा है। साहव को अपनी वीरता का खयाल आया। "ट्रम पीछे से हमको पकड़ा।" कहते-कहते वह युवक की ओर लपका। "तो अभी दिल की मुराद पूरी नही हुई ?" युवक तैयार हो गया। साहव को बॉक्सिग (घूसेवाजी) का अभिमान था, युवक को कुश्ती का। साहव के वार करते ही युवक ने कलाई पकड ली, और वही से वाँधकर वहल्ले मे दे मारा, और छाती पर वैठ कई रद्दे कस दिये। साहव वेहोश हो गया। युवती खडी सविनय ताकती रही। युवक ने रूमाल भिगोकर साहव का मुँह पोछ दिया। फिर उसी को सिर पर रख दिया। जेव से कागज निकाल वेच के सहारे एक चिट्ठी लिखी, और साहव की जेव मे रख दी। फिर

युवती से पूछा, "आपको कहाँ जाना है ?"

"मेरी मोटर सड़क पर खड़ी है। उस पर मेरा ड्राइवर और बूढ़ा अर्दली बैठा होगा। मैं हवाखोरी के लिए आयी थी। आपने मेरी रक्षा की, मैं सदैव-सदैव आपकी कृतज्ञ रहूँगी।"

युवक ने सिर झुका लिया।

"आपका शुभ नाम ?" युवती ने पूछा।

"नाम बतलाना अनावश्यक समझता हूँ। आप जल्द यहाँ से चली जायें।"

युवक को कृतज्ञता की सजल दृष्टि से देखती हुई युवती चल दी। रुककर कुछ कहना चाहा, पर कह न सकी। युवती फील्ड के फाटक की ओर चली, युवक हाई-कोर्ट की तरफ। कुछ दूर जाने के बाद युवती फिर लौटी। युवक नजर से बाहर हो गया था। वह गयी, और साहब की जेब से चिट्ठी निकालकर चुपचाप चली आयी।

दो

कनक धीरे-धीरे अठाहरवें वर्ष के पहले चरण में आ पड़ी। अपार अलौकिक सौन्दर्य, एकान्त में, कभी-कभी अपनी मनोहर रागिनी सुना जाता। वह कान लगा उसके अमृत-स्वर को सुनती पान किया करती। अज्ञात एक अपूर्व आनन्द का प्रवाह अंगों को आपाद-मस्तक नहला जाता। स्नेह की विद्युल्लता काँप उठती। उस अपरिचित कारण की तलाश में विस्मय से आकाश की ओर ताककर रह जाती। कभी-कभी खिले हुए अंगों के स्नेह-भार में एक स्पर्श मिलता, जैसे अशरीर कोई उसकी आत्मा में प्रवेश कर रहा हो। उस गुदगुदी में उसके तमाम अंग काँपकर खिल उठते। अपनी देह के वृन्त अपलक खिली हुई ज्योत्स्ना के चन्द्र-पुष्प की तरह, सौन्दर्योज्ज्वल पारिजात की तरह एक अज्ञात प्रणय की वायु डोल उठती। आँखों में प्रश्न फूट पड़ता, संसार के रहस्यों के प्रति विस्मय।

कनक गन्धर्व-कुमारिका थी। उसकी माता सर्वेश्वरी बनारस की रहनेवाली थी। नृत्य-संगीत में वह भारत-प्रसिद्ध हो चुकी थी। बड़े-बड़े राजे-महाराजे जल्से में उसे बुलाते, उसकी बड़ी आवभगत करते। इस तरह सर्वेश्वरी ने अपार सम्पत्ति एकत्र कर ली थी। उसने कलकत्ता-बहूबाजार में आलीशान अपना एक खास मकान बनवा लिया था, और व्यवसाय की वृद्धि के लिए, उपार्जन की सुविधा के विचार से, प्रायः वहीं रहती भी थी। सिर्फ बुढ़वा-मंगल के दिनों, तवायफों तथा रईसों पर अपने नाम की मुहर मार्जित कर लेने के विचार से, काशी आवास करती थी। वहाँ भी उसकी एक कोठी थी।

सर्वेश्वरी की इस अथाह सम्पत्ति की नाव पर एकमात्र उसकी कन्या कन।

ही कर्णधार थी, इसलिए कनक मे सब तरफ से ज्ञान का थोडा-थोडा प्रकाश भर देना—भविष्य के सुख-पूर्वक निर्वाह के लिए, अपनी नाव खेने की सुविधा के लिए, उसने आवश्यक समझ लिया था। वह जानती थी, कनक अब कली नही, उसके अगो के कुल दल खुल गये है। उसके हृदय के चक्र मे चारो ओर के सौन्दर्य का मधु भर गया है। पर उसका लक्ष्य उसकी शिक्षा की तरफ था। अभी तक उसने उसका जातीय शिक्षा का भार अपने हाथो नही दिया। अभी दृष्टि से ही वह कनक को प्यार कर लेती, उपदेश दे देती थी। कार्यत उसकी तरफ से अलग थी। कभी-कभी जब व्यवसाय और व्यवसायियो से फुर्सत मिलती, वह कुछ देर के लिए कनक को बुला लिया करती। और, हर तरफ से उसने कन्या के लिए स्वतन्त्र प्रबन्ध कर रखा था। उसके पढने का घर ही मे इन्तजाम कर दिया था। एक अँगरेज-महिला, श्रीमती कैथरीन, तीन घण्टे उसे पढा जाया करती थी। दो घण्टे के लिए एक अध्यापक आया करते थे।

इस तरह वह शुभ्र-स्वच्छ निर्झरिणी विद्या के ज्योत्स्ना-लोक के भीतर से मुखर शब्द-कलरव करती हुई ज्ञान के समुद्र की ओर अबाध बह चली। हिन्दी के अध्यापक उसे पढाते हुए अपनी अर्थ-प्राप्ति की कलुषित कामना पर पश्चात्ताप करते, कुशाग्रबुद्धि शिष्या के भविष्य का पकिल चित्र खीचते हुए मन-ही-मन सोचते, इसकी पढाई ऊसर वर्षा है—तलवार मे ज्ञान, नागिन का दूध पीना। इसका काटा हुआ एक कदम भी नही चल सकता। पर नौकरी छोडने की चिन्ता-मात्र से व्याकुल हो उठते थे। उसकी अँगरेजी की आचार्या उसे बाइबिल पढाती हुई बड़ी एकाग्रता से उसे देखती, और मन-ही-मन निश्चय करती थी कि किसी दिन उसे प्रभु ईसा की शरण मे लाकर कृतार्थ कर देगी। कनक भी अँगरेजी मे जैसी तेज थी, उसे अपनी सफलता पर ज़रा भी द्विधा न थी। उसकी माता सोचती, इसके हृदय को जिन तारो से बाँधकर मैं इसे सजाऊँगी, उनके स्वर-झकार से एक दिन ससार के लोग चकित हो जायेंगे, इसके द्वारा अप्सरा-लोक मे एक नया ही परिवर्तन कर दूँगी, और वह केवल एक ही अग मे नही, चारो तरफ, मकान के सभी शून्य छिद्रो को, जैसे प्रकाश और वायु भरते रहते है, आत्मा का एक ही समुद्र जैसे सभी प्रवाहो का चरम परिणाम है।

इस समय कनक अपनी सुगन्ध से आप ही आश्चर्यचकित हो रही थी। अपने बालपन की बालिका तन्वी कवयित्री को चारो ओर केवल कल्पना का आलोक देख पडता था, उसने अभी उसकी किरण-तन्तुओ से जाल बुनना नही सीखा था। काव्य था, पर शब्द रचना नही—जैसे उस प्रकाश मे उसकी तमाम प्रगतियाँ फँस गयी हो, जैसे इस अवरोध से बाहर निकलने की वह राह न जानती हो। वही उसका सबसे बडा सौन्दर्य उसमे एक अतुल नैसर्गिक विभूति थी। ससार के कुल मनुष्य और वस्तुएँ उसकी दृष्टि मे मरीचिका के ज्योति-चित्रो की तरह आती, अपने यथार्थ स्वरूप मे नही।

कनक की दिनचर्या बहुत साधारण थी। दो दासियाँ उसकी देख-रेख के लिए थी, पर उन्हे प्रतिदिन दो बार उसे नहला देने और तीन-चार बार वस्त्र बदलवा देने के इन्तजाम मे ही जो कुछ थोडा-सा काम था, बाकी समय यो ही कटता था।

कुछ समय साड़ियाँ चुनने मे लग जाता था। कनक प्रतिदिन शाम को मोटर पर किले के मैदान की तरफ निकलती थी। ड्राइवर की वगल मे एक अर्दली वैठता था। पीछे की सीट पर अकेली कनक। कनक प्राय. आभरण नही पहनती थी। कभी-कभी हाथो मे सोने की चूडियाँ डाल लेती थी। गले मे एक हीरे की कनी का जडाऊ हार। कानो मे हीरे के दो चम्पे पडे रहते। सन्ध्या-समय, सात वजे के वाद से दस तक और दिन मे भी इसी तरह सात से दस तक पढती थी। भोजन-पान मे विलकुल सादगी, पर पुष्टिकारक भोजन उसे दिया जाता था।

तीन

धीरे-धीरे, ऋतुओ के सोने के पख फडका, एक साल और उड गया। मन के खिलते हुए प्रकाश के अनेक झरने उसकी कमल-सी आँखो से होकर वह गये। पर अव उसके मुख से आश्चर्य की जग-ज्ञान की मुद्रा चित्रित हो जाती। वह स्वय अव अपने भविष्य के तट पर तूलिका चला लेती है। साल-भर से माता के पास उसे नृत्य और सगीत की शिक्षा मिल रही है। इधर उसकी उन्नति के चपल क्रम को देख सर्वेश्वरी पहले की कल्पना की अपेक्षा शिक्षा के पथ पर उसे और दूर तक ले चलने का विचार करने लगी, और गन्धर्व-जाति के छूटे हुए पूर्व गौरव को स्पर्द्धा से प्राप्त करने के लिए उसे उत्साह भी दिया करती थी। कनक अपलक ताकती हुई माता के वाक्यो को सप्रमाण सिद्ध करने का मन-ही-मन निश्चय करती, प्रतिज्ञाएँ करती। माता ने उसे सिखलाया, "किसी को प्यार मत करना। हमारे लिए प्यार करना आत्मा की कमजोरी है, यह हमारा धर्म नही।"

कनक ने अस्फुट वाणी मे मन-ही-मन प्रतिज्ञा की, "किसी को प्यार नही करूँगी। यह हमारे लिए आत्मा की कमजोरी है, धर्म नही।"

माता ने कहा, "ससार के और लोग भीतर से प्यार करते हैं, हम लोग वाहर से।"

कनक ने निश्चय किया, "और लोग भीतर से प्यार करते है, मैं वाहर से करूँगी।"

माता ने कहा "हमारी जैसी स्थिति है, इस पर ठहरकर भी हम लोक मे वैसी ही विभूति, वैसा ही ऐश्वर्य, वैसा ही सम्मान अपनी कला के प्रदर्शन से प्राप्त कर सकती है, साथ ही, जिस आत्मा को और लोग अपने सर्वस्व का त्याग कर प्राप्त करते हैं, उसे भी हम लोग अपनी कला के उत्कर्ष के द्वारा, उसी मे, प्राप्त करती हैं—उसी मे लीन होना हमारी मुक्ति है। जो आत्मा सभी सृष्टियो की सूक्ष्मतम तन्तु की तरह उनके प्राणो के प्रियतम सगीत को झकृत करती, जिसे लोग वाहर के कुल सम्बन्धो को छोड, ध्वनि के द्वारा तन्मय हो प्राप्त करते, उसे हम अपने वाह्य

यन्त्र के तारो से झकृत कर, मूर्ति मे जगा लेती, फिर अपने जलते हुए प्राणों का गरल, उसी शिव को. मिलकर पिला देती है। हमारी मुक्ति इस साधना द्वारा होती है, इसीलिए ऐश्वर्य पर हमारा सदा ही अधिकार रहता है। हम वाहर से जितनी सुन्दर, भीतर से उतनी ही कठोर इसीलिए है। और-और लोग वाहर से कठोर, पर भीतर से कोमल हुआ करते है इसीलिए वे हमे पहचान नही पाते और अपने सर्वस्व तक का दान कर हमे पराजित करना चाहते है। हमारे प्रेम को प्राप्त कर, जिस पर केवल हमारे कौशल के शिव का ही एकाधिकार है, जव हम लोग अपने इस धर्म के गर्त से, मौखरिये की रागिनी सुन मुग्ध हुई नागिन की तरह, निकल पडती हैं, तव हमारे महत्त्व के प्रति भी हमे कलकित अहल्या की तरह शाप से वाँध, पतित कर चले जाते हैं। हम अपनी स्वतन्त्रता के सुखमय विहार को छोड मौखरिये की सकीर्ण टोकरी मे वन्द हो जाती हैं, फिर वही हमे इच्छानुसार नचाता, अपनी स्वतन्त्र इच्छा के वश मे हमे गुलाम वना लेता है। अपनी वुनियाद पर इमारत की तरह तुम्हे अटल रहना होगा, नही तो फिर अपनी स्थिति से ढह जाओगी, वह जाओगी।"

कनक के मन मे होठ काँपकर रह गये, "अपनी वुनियाद मे इमारत की तरह अटल रहूँगी!"

चार

अखवारो मे वडे-वडे अक्षरो मे सूचना निकली—

'कोहनूर-थियेटर मे'

शकुन्तला! शकुन्तला!! शकुन्तला!!!

शकुन्तला—मिस कनक

दुष्यन्त—राजकुमार वर्मा, एम. ए

प्रशसा मे और भी वडे-वडे आकर्षक शब्द लिखे हुए थे। थिएटर-शौकीनो को हाथ वढाकर स्वर्ग मिला। वे लोग थिएटरो का तमाम इतिहास कण्ठाग्र रखते थे। जितने भी ऐक्टर (अभिनेता) और वडी-छोटी जितनी भी मशहूर एक्ट्रेस (अभिनेत्रियाँ) थी, उन्हे सवके नाम मालूम थे, मवकी सूरतें पहचानते थे, पर यह मिस कनक अपरिचित थी। विज्ञापन के नीचे कनक की तारीफ भी खूव की गयी थी। लोग टिकट खरीदने के लिए उतावले हो गये। टिकट-घर के सामने अपार भीड लग गयी, जैसे आदमियो का सागर तरगित हो रहा हो। एक एक झोके से वाढ के पानी की तरह वह जन-समुद्र इधर-से-उधर डोल उठता था। वॉक्स, आर्केस्ट्रा, फर्स्ट क्लास मे भी और-और दिनो से ज्यादा भीड थी।

विजयपुर के कुँवर साहव भी उन दिनो कलकत्ते की सैर कर रहे थे। इन्हे

स्टेट से छ हजार मासिक जेब-खर्च के लिए मिलता था। वह सब नयी रोशनी, नये फैशन मे फूँककर ताप लेते थे। आपने भी एक बॉक्स किराये पर लिया। थिएटर की मिमो की प्राय आपकी कोठी मे दावत होती थी, और तरह-तरह के तोहफे आप उनके मकान पहुँचा दिया करते थे। सगीत का आपको अजहद शौक था। खुद भी गाते थे, पर आवाज जैसे ब्रह्मभोज के पश्चात् कडाह रगडने की। लोग इस पर भी कहते थे, क्या मंजी हुई आवाज है! आपको भी मिस कनक का पता मालूम न था। इससे और उतावले हो रहे थे। जैसे ससुराल जा रहे हो, और स्टेशन के पास गाडी पहुँच गयी हो।

देखते-देखते सन्ध्या के छह का समय हुआ। थिएटर गेट के सामने पान खाते, सिगरेट पीते, हँसी-मजाक करते हुए बडी-बडी तोदवाले सेठ छडियाँ चमकाते, सुनहली डण्डी का चश्मा लगाये हुए कॉलिज के छोकरे, अँगरेजी अखबारो की एक-एक प्रति लिये हुए हिन्दी के सम्पादक सहकारियो पर अपने अपार ज्ञान का बुखार उतारते हुए, पहले ही से कला की कसौटी पर अभिनय की परीक्षा करने की प्रतिज्ञा करते हुए टहल रहे थे। इन सब बाहरी दिखलावो के अन्दर सबके मन की आँखें मिसो के आगमन की प्रतीक्षा कर रही थी, उनके चकित-दर्शन, चचल चलन को देखकर चरितार्थ होना चाहती थी। जहाँ बडे-बडे आदमियो का यह हाल था, वहाँ थर्ड क्लास तिमजिले पर फटी-हालत, नगे-बदन, रूखी-सूरत, बैठे हुए बीडी-सिगरेट के धुएँ से छत भर देनेवाले, मौके-बेमौके तालियाँ पीटते हुए 'इनकोर-इनकोर' के अप्रतिहत शब्द से कानो के पर्दे पार कर देनेवाले, अशिष्ट, मुँहफट, कुली-क्लास के लोगो का बयान ही क्या? वही इन धन कुबेरो और सवाद-पत्रो के सर्वज्ञो, वकीलो, डॉक्टरो, प्रोफेसरो और विद्यार्थियो के साथ ये लोग भी कला के प्रेम मे साम्यवाद के अधिकारी हो रहे थे।

देखते-देखते एक लारी आयी। लोगो की निगाह तमाम बाधाओ को चीरती हुई, हवा की गोली की तरह, निशाने पर जा बैठी। पर, उस समय, गाडी से उतरने पर, वे जितनी—मिस डली, मिस कुन्दन, मिस हीरा, पन्ना, मोती, पुखराज, रमा, क्षमा, शान्ति, शोभा, किसमिस और अगूर-बालाएँ— थी जिनमे किसी ने हिरन की चाल दिखायी, किसी ने मोर की, किसी ने नागिन-जैसी—सब की-सब जैसे डामर से पुती, अफ्रीका से हाल ही आयी, प्रोफेसर डीवर या मिस्टर चटर्जी की सिद्ध की हुई, हिन्दुस्तान की आदिम जाति की ही कन्याएँ और बहनें थी, और ये सब इतने बडे-बडे लोग इन्हे ही कला की दृष्टि से देख रहे थे। कोई छ फीट ऊँची, तिस पर नाक नदारद। कोई डेढ ही हाथ की छटकी, पर होठ आँखो की उपमा लिये हुए आकर्ण-विस्तृत। किसी की साढे तीन हाथ की लम्बाई चौडाई मे बदली हुई —एक-एक कदम पर पृथ्वी काँप उठती। किसी की आँखे मक्खियो-सी छोटी और गालो मे तबले मढे हुए। किसी की उम्र का पता नही, शायद सन् 57 के गदर मे मिस्टर हडसन को गोद खिलाया हो। इस पर ऐसी दुलकी चाल सबने दिखायी, जैसे भुलभुल मे पैर पड रहे हो। गेट के भीतर चले जाने के कुछ सेकेण्ड तक जनता तृष्णा की विस्तृत अपार आँखो से कला के उस अप्राप्य अमृत का पान करती रही।

कुछ देर बाद एक प्राइवेट मोटर आयी। बिना किसी इंगित के ही जनता की क्षुब्ध तरंग शान्त हो गयी। सब लोगों के अंग रूप की तडित् से प्रहत निश्चेष्ट रह गये। सर्वेश्वरी का हाथ पकड़े हुए कनक मोटर से उतर रही थी। सबकी आँखो के सन्ध्याकाश मे जैसे सुन्दर इन्द्र-धनुष अंकित हो गया हो। सबने देखा, मूर्तिमती प्रभात की किरण है।

उस दिन घर से अपने मन के अनुसार सर्वेश्वरी उसे सजा लायी थी। धानी रग की रेशमी साडी पहने हुए, हाथो मे सोने की, रोशनी से चमकती हुई चूड़ियाँ, गले मे हीरे का हार, कानो मे चम्पा, रेशमी फीते से बँधे तरंगित, खुले, लम्बे बाल, स्वस्थ, सुन्दर देह, कान तक खिंची, किसी की खोज-सी करती हुई बडी-बडी आँखे, काले रग से कुछ स्याह कर तिरछायी हुई भौहे। लोग स्टेज की अभिनेत्री शकुन्तला को मिस कनक के रूप मे अपलक नेत्रो से देख रहे थे।

लोगो के मनोभावो को समझकर सर्वेश्वरी देर कर रही थी। मोटर मे सामान उतरवाने, ड्राइवर को मोटर लाने का वक्त बतलाने, नौकर को कुछ भूला हुआ सामान मकान से ले आने की आज्ञा देने मे लगी रही। फिर धीरे-धीरे कनक का हाथ पकडे हुए, अपने अर्दली के साथ, ग्रीन-रूम की तरफ चली गयी।

लोग जैसे स्वप्न देखकर जागे। फिर चहल-पहल मच गयी। लोग मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करने लगे। धन-कुबेर सेठ दूसरे परिचितो से आँखो के इशारे करने लगे। इन्ही लोगो मे विजयपुर के कुँवर साहब भी थे। और, न जाने कौन-कौन से राजे-महाराजे सौन्दर्य के समुद्र से अतद्र अम्लान निकली हुई इस अप्सरा की कृपा-दृष्टि के भिक्षुक हो रहे थे।

जिस समय कनक खडी थी, कुँवर साहब अपनी आँखो से नही, खुर्दबीन की आँखो से उसके वृहत् रूप के अंश मे अपने को सबसे बडा हकदार साबित कर रहे थे, और इस कार्य मे उन्हे जरा भी संकोच नही हो रहा था। कनक उस समय मुस्किरा रही थी।

भीड तितर-बितर होने लगी। खेल आरम्भ होने मे पौन घण्टा और रह गया। लोग पानी, पान, सोडा-लेमनेड आदि खाने-पीने मे लग गये। कुछ लोग बीडियाँ फूँकते हुए खुली, असभ्य भाषा मे कनक की आलोचना कर रहे थे।

ग्रीन-रूम मे अभिनेत्रियाँ सज रही थी। कनक नौकर नही थी, उसकी मा भी नौकर नही थी। उसकी मा उसे स्टेज पर पूर्णिमा के चाँद की तरह एक ही रात मे लोगो की दृष्टि मे खोलकर प्रसिद्ध कर देना चाहती थी। थिएटर के मालिक पर उसका काफी प्रभाव था। साल मे कई बार उसी स्टेज पर, टिकट ज्यादा बिकने के लोभ से, थिएटर के मालिक उसे गाने तथा अभिनय करने के लिए बुलाते थे। वह जिस रोज स्टेज पर उतरती, रगशाला दर्शक-मण्डली से भर जाती। कनक रिहर्सल मे कभी नही गयी, यह भार उसकी माता ने ले लिया था।

कनक को शकुन्तला का वेश पहनाया जाने लगा। उसके कपडे उतार दिये गये। एक साधारण-सा वस्त्र, वल्कल की जगह, पहना दिया गया। गले मे फूलो का हार। बाल अच्छी तरह खोल दिये गये। उसकी सखियाँ अनुसूइया और प्रियवदा भी सज गयी। उधर राजकुमार को दुष्यन्त का वेश पहनाया जाने लगा। और-

और पात्र भी सजाकर तैयार कर दिये गये।

राजकुमार भी कम्पनी मे नौकर नही था। वह शौकिया बडी-बडी कम्पनियों मे उतरकर प्रधान पार्ट किया करता था। इसका कारण खुद मित्रो से बयान किया करता। कहा करता था, हिन्दी के स्टेज पर लोग ठीक-ठीक हिन्दी उच्चारण नही करते, वे उर्दू के उच्चारण की नकल करते हैं, इससे हिन्दी का उच्चारण बिगड जाता है। हिन्दी के उच्चारण मे जीभ की स्वतन्त्र गति होती है। यह हिन्दी ही की शिक्षा के द्वारा दुरुस्त होगी। कभी-कभी हिन्दी मे वह स्वय भी नाटक लिखा करता। यह शकुन्तला-नाटक उसी का लिखा हुआ था। हिन्दी की शुभकामना से प्रेरित हो उसने विवाह भी नही किया। इसमे उसके घरवाले कुपित भी हुए थे, पर उसने परवा नही की। कलकत्ता-सिटी-कॉलेज मे वह हिन्दी का प्रोफेसर है। शरीर जैसा हृष्ट-पुष्ट, वैसा ही वह सुन्दर और वलिष्ठ भी है। कलकत्ता की साहित्य-समितियाँ उसे अच्छी तरह पहचानती है।

तीसरी घण्टी वजी। लोगो की उत्सुक आँखें स्टेज की ओर लगी। पहले वालिकाओ ने स्वागत-गीत गाया, पश्चात् नाटक शुरू हुआ। पहले-ही-पहल कण्व के तपोवन मे शकुन्तला के दर्शन कर दर्शको की आँखें तृप्ति से खुल गयी। आश्रम के उपवन की वह खिली हुई कली अपने अगो की सुरभि से कम्पित दर्शको के हृदय को, सगीत की मधुर मीड की तरह काँपकर उठती देह की दिव्य द्युति से, प्रसन्न-पुलकित कर रही थी। जिधर-जिधर चपल तरग की तरह वह डोलती-फिरती, लोगो की अचचल, अपलक दृष्टि उधर-ही-उधर उस छवि-स्वर्ण-किरण मे लगी रहती। एक ही प्रत्यग-सचालन से उसने लोगो पर जादू डाल दिया। सभी उसकी भूरि-भूरि प्रशसा करने लगे। उसे गौरवपूर्ण आश्चर्य से देखने लगे।

महाराजा दुष्यन्त का प्रवेश हुआ। देखते ही कनक चौंक उठी। दुष्यन्त भी, अपनी तमाम एकाग्रता से, उसे अविस्मय देखते रहे। यह मौन अभिनय लोगो के मन मे वास्तविक दुष्यन्त और शकुन्तला की झलक भर गया। कनक मुस्किरायी। दोनो ने दोनो को पहचान लिया था।

उनके अभ्यन्तर भावो की प्रसन्नता की छाया दर्शको पर भी पडी। लोगो ने कहा, "कितना स्वाभाविक अभिनय हो रहा है!"

क्रमश आलाप-परिचय, राग-रस-प्रियता आदि अभिनीत होते रहे। रगशाला मे सन्नाटा छाया हुआ था, मानो सब लोग निर्वाक् कोई मनोहर स्वप्न देख रहे हो। गान्धर्व रीति से विवाह होने लगा। लोग तालियाँ पीटते, सीटियाँ बजाते रहे। शकुन्तला ने अपनी माला दुष्यन्त को पहना दी, दुष्यन्त ने अपनी शकुन्तला को। स्टेज खिल गया।

ठीक इसी समय, वाहर से भीड को ठेलते, चेकरो की भी परवा न करते हुए, कुछ कास्टेविलो को साथ ले, पुलिस के दारोगाजी वडी गम्भीरता से स्टेज के सामने आ धमके। लोग विस्मय की दृष्टि से एक दूसरा नाटक देखने लगे। दारोगाजी ने मैनेजर को पुकारकर कहा, "यहाँ इस नाटक-मण्डली मे, राजकुमार वर्मा कौन है? उसके नाम वारण्ट है, हम उसे गिरफ्तार करेंगे।"

तमाम स्टेज थर्रा गया। उसी समय लोगो ने देखा, राजकुमार वर्मा, दुष्यन्त

की ही सम्राट्-चाल से निश्शक, वन्य दृश्य-पट के किनारे से, स्टेज के बिल्कुल सामने आकर खडा हो गया, और वीर-दृष्टि से दारोगा को देखने लगा। वह दृष्टि कह रही थी— हमे गिरफ्तार होने का बिलकुल खौफ नही। कनक भी शकुन्तला के अभिनय को सार्थक करती हुई, किनारे से चलकर अपने प्रिय पति के पास आ, उसका हाथ पकड दारोगा को निस्सकोच दृप्त दृष्टि से देखने लगी। कनक को देखते ही शहद की मक्खियो की तरह दारोगा की आँखें उससे लिपट गयी। दर्शक नाटक देखने के लिए चचल हो उठे।

"हमने रुपये खर्च किये है। हमारे मनोरजन का टैक्स लेकर फिर उसमे बाधा डालने का सरकार को कोई अधिकार नही। यह दारोगा की मूर्खता है, जो अभियुक्त को यहाँ कैद करने आया। निकाल दो उसे।" कॉलेज के एक विद्यार्थी ने जोर से पुकारकर कहा।

"निकालो, निकालो, निकाल बाहर करो।" हजारो कण्ठ एक साथ कह उठे।

ड्राप गिरा दिया गया।

"निकल जाओ, निकल जाओ।" पटापट तालियो के वाद्य से स्टेज गूँज उठा। सीटियाँ बजने लगी। "अहा हा हा ! कुर्बान जाऊँ साफा ! कुर्बान जाऊँ डण्डा ! छछूँदर-जैसी मूँछे ! यह कद्दू-जैसा मुँह !"

दारोगाजी का सिर लटक पडा। "भागो, भागो, भागो" के बीच उन्हे भागना ही पडा। मैनेजर ने कहा, "नाटक हो जाने के बाद आप उन्हे गिरफ्तार कर लीजिएगा। मै उनके पास गया था। उन्होने आपके लिए यह सवाद भेजा है।"

दारोगा को मैनेजर गेट पर ले जाने लगे। पर उन्होने स्टेज के भीतर रहकर नाटक देखने की इच्छा प्रकट की। मैनेजर ने टिकट खरीदने के लिए कहा। दारोगाजी एक बार घूरकर रह गये। फिर अपने लिए एक आर्केस्ट्रा का टिकट खरीद लिया। कास्टेबिलो को मैनेजर ने थर्ड क्लास मे ले जाकर भर दिया। वहाँ के लोगो को मनोरजन की दूसरी सामग्री मिल गयी।

थिएटर होता रहा। मिस कनक द्वारा किया हुआ शकुन्तला का पार्ट लोगो को बहुत पसन्द आया। एक ही रात मे वह शहर-भर मे प्रसिद्ध हो गयी।

नाटक समाप्त हुआ। राजकुमार को ग्रीन-रूम से निकलते ही गिरफ्तार कर लिया गया।

पाँच

एक बडी-सी, अनेक प्रकार के देश-देश की अप्सराओ, बादशाहजादियो, नर्तकियो के सत्य तथा काल्पनिक चित्रो तथा बेलबूटो से सजी हुई, दालान। झाड-फानूस टँगे हुए, फर्श पर कीमती गलीचा-कारपेट बिछा हुआ। मखमल की गद्दीदार कुर्सियाँ।

कोच और सोफे तरह-तरह की मेजो के चारो ओर कायदे मे रखे हुए। बीच-बीच मे बडे-बडे आदमी के आकार मे इयोटे शीशे। एक तरफ टेवल-हारमोनियम और एक तरफ पियानो रक्खा हुआ। और-और यन्त्र भी—सितार, सुर-बहार, एसराज, वीणा, सरोद, बैंजो, बेला, क्लारियोनेट, कारनेट, मँजीरे, तवले, पखावज, सारगी आदि यथास्थान सुरक्षित रक्खे हुए।

छोटी-छोटी मेजो पर चीनी-मिट्टी के कीमती शो-पीस रखे हुए। किसी-किसी मे फूलो के तोडे। रगीन शीशे-जडे तथा झँझरियोदार डवल दरवाजे लगे हुए। दोनो किनारो पर मखमल की सुनहरी जालीदार झूल चौथ के चाँद के आकार मे पडी हुई। बीच मे छ. हाथ की चौकोर करीब डेढ हाथ की ऊँची गद्दी, तकिये लगे हुए। उस पर अकेली बैठी हुई, रात आठ बजे के लगभग, कनक सुरवहार बजा रही है। मुख पर चिन्ता की एक रेखा स्पष्ट खिची हुई उसके बाहरी सामान से चित्त बहलाने का हाल बयान कर रही है। नीचे लोगो की भीड जमा है। सब कान लगाये सुरवहार सुन रहे हैं।

एक दूसरे कमरे से एक नौकर ने आकर कहा, "माजी कहती है, कुछ गाने के लिए कहो।" कनक ने सुना। नौकर चलने लगा, कनक ने उससे हारमोनियम दे जाने के लिए कहा। हारमोनियम आने पर उसने सुरवहार बढा दिया। नौकर उस पर गिलाफ चढाने लगा। कनक दूसरे सप्तक के 'मी' स्वर पर उँगली रखकर वेली करने लगी। गाने से जी उचट रहा था, पर माता की आज्ञा थी, उसने गाया—

"प्यार करती हूँ, अलि, इसलिए मुझे भी करते हैं वे प्यार,
वह गयी हूँ अजान की ओर, इसलिए वह जाता ससार।
रुके नही धनि-चरण घाट पर,
देखा मैंने मरन-बाट पर
टूट गये सब आट-ठाठ, घर,
टूट गया परिवार--
तभी सखि, करते हैं वे प्यार।
आप वही या वहा दिया था,
खिची स्वय या खीच लिया था,
नही याद कुछ कि क्या किया था,
हुई जीत या हार—
तभी री, करते हैं वे प्यार।
खुले नयन, जब रही सदा तिर—
स्नेह-तरगो पर उठ-उठ गिर,
सुखद पालने पर मैं फिर-फिर
करती थी शृगार—
मुझे तब करते हैं वे प्यार।
कर्म-कुसुम अपने सब-चुन-चुन,
निर्जन मे प्रिय के गिन-गिन गुन,
गूँथ निपुण कर से उनको सुन,

पहनाया था हार—
इसलिए करते है वे प्यार।"

कनक ने कल्याण मे भरकर इमन गाया। नीचे कई सौ आदमी मन्त्रमुग्ध-से खडे हुए सुन रहे थे। गाने से प्रसन्न हो, सर्वेश्वरी भी अपने कमरे से उठकर, कनक के पास आकर बैठ गयी। गाना समाप्त हुआ। सर्वेश्वरी ने प्यार से कन्या का चिन्तित मुख चूम लिया।

तभी नीचे से एक नौकर ने आकर कहा, "विजयपुर के कुँवर साहब के यहाँ से एक बाबू आये हैं। कुछ बातचीत करना चाहते है।"

सर्वेश्वरी नीचे अपने दो-मंजिलवाले कमरे मे उतर गयी। यह कनक का कमरा था। अभी कुछ दिन हुए कनक के लिए, सर्वेश्वरी ने सजाया था। कुछ देर बाद सर्वेश्वरी लौटकर ऊपर आयी। कनक से कहा, "कुँवर साहब विजयपुर तुम्हारा गाना सुनना चाहते है।"

"मेरा गाना सुनना चाहते है!" कनक सोचने लगी। "अम्मा!" कनक ने कहा, "मैं रईसों की महफिल मे गाना नही गाऊँगी।"

"नही, वह यही आयेंगे। बस, दो-चार चीजें सुना दो। तबियत अच्छी न हो, तो कहो, कह दें, फिर कभी आयेगे।"

"अच्छा अम्मा, किसी कीमती, खूबसूरत पत्ते पर गिरी हुई ओस की बूँद अगर हवा के झोंके से जमीन पर गिर जाय तो अच्छा या प्रभात के सूर्य से चमकती हुई उसकी किरणो मे खेलकर फिर अपने निवास-स्थान— आकाश को चली जाय?"

"दोनो अच्छे है उसके लिए। हवा के झूले का आनन्द किरणो से हँसने मे नही, वैसे ही किरणो से हँसने का आनन्द हवा के झूले मे नही। और, अन्तत. वास-स्थान तो पहुँच ही जाती है, गिरे या डाल पर सूख जाय!"

"और अगर हवा मे झूलने से पहले ही सूखकर उड गयी हो?"

"तब तो बात ही और है।"

"मैं उसे यथार्थ रंगीन पंखोवाली परी मानती हूँ।"

"क्या तू खुद भी ऐसी ही परी बनना चाहती है!"

"हाँ, अम्मा! मैं कला को कला की दृष्टि से देखती हूँ। क्या उससे अर्थ-प्राप्ति करना उसके महत्त्व को घटा देना नही?"

"ठीक है। पर यह एक प्रकार का समझौता है। अर्थवाले अर्थ देते है, और कला के जानकार उसका आनन्द। संसार मे एक-दूसरे से ऐसा ही सम्बन्ध है।"

"कला के ज्ञान के साथ-ही-साथ कुछ ऐसी गन्दगी भी हम लोगो के चरित्र मे रहती है, जिसमे मुझे सख्त नफरत है।"

माता चुप रही। कन्या के विशद अभिप्राय को ताडकर कहा, "तुम इसमे बच रहकर भी अपने ही जीने से छत पर जा सकती हो, जहाँ सबकी तरह तुम्हे भी आकाश तथा प्रकाश का बराबर अंश मिल सकता है।"

"मैं इतना सब नही समझती। समझती भी हूँ, तो भी मुझे कला को एक सीमा मे परिणत रखना अच्छा लगता है। ज्यादा विस्तार से वह कलुषित हो जाती है, जैसे बहाव का पानी। उसमे गन्दगी डालकर भी लोग उसे पवित्र मानते हैं, पर

कुएँ के लिए यह बात सार्थक नही। स्वास्थ्य के विचार ने कुएँ का पानी बहते हुए पानी से बुरा नही। विस्तृत व्याख्या तथा अधिक बढाव के कारण अच्छे-से-अच्छे कृत्य बुरे धब्बों से रँगे रहते है।"

"प्रवृत्ति के वशीभूत हो लोग अनर्थ करने लगते हैं। वही अत्याचार धार्मिक अनुष्ठानो मे प्रत्यक्ष हो रहा है, पर वृहत् अपनी महत्ता मे वृहत् ही है। बहाव और कुएँवाली बात जँचकर भी फीकी रही।"

"सुनो, अम्मा! तुम्हारी कनक अब तुम्हारी नही रही। उसके हार मे ईश्वर ने एक नीलम जड दिया है।"

सर्वेश्वरी ने तअज्जुब की निगाह से कन्या को देखा। कुछ-कुछ उसका मतलब वह समझ गयी, पर उसने कन्या से पूछा, "तुम्हारे कहने का मतलब?"

"यह।" कनक ने हाथ की चूडी, कलाई उठाकर, दिखायी।

सर्वेश्वरी हँसने लगी, "तमाशा कर रही है? यह कौन-सा खेल?"

"नही अम्मा!" कनक गम्भीर हो गयी। चेहरे पर एक स्थिर प्रौढता झलकने लगी, 'मैं ठीक कहती हूँ, मैं व्याही हुई हूँ। अब मैं महफिल मे गाना नही गाऊँगी। अगर कही गाऊँगी भी, तो खूब सोच-समझकर, जिससे मुझे सन्तोष रहे।"

सर्वेश्वरी अपलक दृष्टि से कनक को देखती रही।

"यह विवाह कब हुआ, और किससे हुआ? किया किसने?"

"यह विवाह आपने किया, ईश्वर की इच्छा से, कोहनूर-कम्पनी के स्टेज पर कल हुआ, दुष्यन्त का पार्ट करनेवाले राजकुमार के साथ, शकुन्तला के रूप मे सजी हुई तुम्हारी कनक का। ये चूडियाँ, एक-एक दोनो हाथो मे, इस प्रमाण की रक्षा के लिए मैंने पहन ली हैं। और देखो" कनक ने जरा-सी सेंदुर की बिन्दी सिर पर लगा ली थी, "अम्मा, यह एक रहस्य हो गया। राजकुमार को··"

माता ने बीच मे ही हँसकर कहा, "सुहागिनें अपने पति का नाम नही लिया करती!"

"पर मैं लिया करूँगी। मैं कोई घूंघट काढनेवाली सुहागिन तो हूँ नही। कुछ पैदायशी स्वतन्त्र हक मैं अपने साथ रखूँगी, नही तो कुछ दिक्कत पड सकती है। गाने-बजाने पर भी मेरा ऐसा ही विचार रहेगा। हाँ, राजकुमार को तुम नही जानती। उन्होने ही मुझे इडेन-गार्डेन मे बचाया था।"

कन्या की भावना पर, ईश्वर की विचित्र घटनाओ को भीतर से इस प्रकार मिलाने पर, कुछ देर तक सर्वेश्वरी सोचती रही। देखा, उसके हृदय के कमल पर कनक की इस उक्ति की किरण सूर्य की किरण की तरह पड रही थी, जिससे आप-ही-आप उसके सब दल प्रकाश की ओर खुलते जा रहे थे। तरगो से उसका स्नेह-समुद्र कनक के रेखा-तट को छूने लगा। एकाएक स्वाभाविक परिवर्तन को प्रत्यक्ष लक्ष्य कर सर्वेश्वरी ने अप्रिय, विरोधी प्रसग छोड दिया। हवा का रुख जिस तरफ हो उसी तरफ नाव को बहा ले जाना उचित है, जबकि लक्ष्य केवल सैर है, कोई गम्य स्थान नही।

हँसकर सर्वेश्वरी ने पूछा, "तुम्हारा इस प्रकार स्वयवरा होना उन्हे भी मजूर

है न, या अन्त तक शकुन्तला की ही दशा भोगनी होगी ? और, वह तो कैद भी हो गये है।"

कनक सकुचित लज्जा से द्विगुणित हो गयी। कहा, "मैंने उनसे तो इसकी चर्चा नही की। करना भी व्यर्थ है। इसे मैं अपनी हद तक रखूँगी। किसके कैसे खयालात हैं, मुझे क्या मालूम ! अगर वह मुझे, मेरे कुल का विचार कर, ग्रहण न करे, तो इस तरह का अपमान बरदाश्त कर जाना मेरी शक्ति से बाहर है। वह कैद शायद उसी मामले मे हुए है।"

"उनके बारे मे और भी कुछ तुम्हारा समझा हुआ है ?"

"मैं और कुछ भी नही जानती, अम्मा ! पर कल तक···सोचती हूँ, थानेदार को बुलाकर कुछ पूछूँ, और पता लगाकर भी देखूँ कि क्या कर सकती हूँ।"

सर्वेश्वरी ने कुँवर साहब के आदमियो के पास कहला भेजा कि कनक की तबियत अच्छी नही, इसलिए किसी दूसरे दिन गाना सुनने की कृपा करें।

छह

कनक का जमादार एक पत्र लेकर, बडा बाजार थाने मे, दारोगाजी के पास गया।

दारोगाजी बैठे हुए एक मारवाडी को किसी काम मे शहादत के लिए, समझा रहे थे कि उनके लिए, और खासतौर से सरकार के लिए, इतना-सा काम कर देने पर वह मारवाडी महाशय को कहाँ तक पुरस्कृत कर सकते है, सरकार की दृष्टि मे उनकी कितनी इज्जत होगी और उन्हे कितने बडे आर्थिक लाभ की सम्भावना है। मारवाडी महाशय बडे नम्र शब्दो मे, डरे हुए, पहले तो इनकार करते रहे, पर दारोगाजी की वक्तृता के प्रभाव से, अपने भविष्य के चमकते हुए भाग्य का काल्पनिक चित्र देख-देख, पीछे से हाँ-न के बीच खडे हुए मन-ही-मन हिल रहे थे —कभी इधर कभी उधर। उसी समय कनक के जमादार ने खत लिये हुए उन्हे घुटनो तक झुककर सलाम किया।

दारोगा साहब ने 'आज तख्त बैठो दिल्लीपति नर' की नजर से क्षुद्र जमादार को देखा। बढकर उसने चिट्ठी दे दी।

दारोगाजी तुरन्त चिट्ठी खोलकर पढने लगे। पढते जाते और मुस्किराते जाते थे। पढकर जेब मे हाथ डाला। एक नोट था पाँच रुपये का। जमादार को दे दिया। कहा, "तुम चलो। कह देना, हम अभी आये।" अँगरेजी मे पत्र यों था—

3, बहूबाजार-स्ट्रीट,
कलकत्ता
3. 4.'18

प्रिय दारोगा साहब,

आपसे मिलना चाहती हूँ। जब से स्टेज पर से आपको देखा—आहा! कैसी गजब की है आपकी आँखें। दुबारा जब तक नहीं देखती, मुझे चैन नहीं। क्या आप कल नहीं मिलेंगे?

आप ही की—
कनक

थानेदार साहब खूबसूरत न थे, पर उन्हें उस समय अपने सामने शाहजादे सलीम का रंग फीका और किसी परीजाद की आँख भी छोटी जान पड़ी। तुरन्त उन्होंने मारवाड़ी महाशय को विदा कर दिया। तहकीकात करने के लिए मछुवा बाजार जाना था, यह काम छोटे थानेदार के सिपुर्द कर दिया, यद्यपि वहाँ बहुत-से रुपये गुण्डों से मिलनेवाले थे।

उठकर कपड़े बदले, और सादी, सफेद पोशाक में वह बाजार की सैर करने चल पड़े। पत्र जेब में रखने लगे, तो फिर उन्हें अपनी आँखों की बात याद आयी। तुरन्त शीशे के सामने जाकर खड़े हो गये, और तरह-तरह से मुँह बना-बनाकर आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगे। उनके मन को, उस सूरत में, उन आँखों से तृप्ति न थी, पर जबरन मन को समझा रहे थे। दस मिनट तक इसी तरह अपनी सूरत देखते रहे। शीशे के सामने वैसलीन ज्यादा-सी पोत ली। मुँह धोया। पाउडर लगाया। सेण्ट छिड़का। फिर आईने के सामने खड़े हो गये। मन को फिर भी न अच्छा लगा, पर जोर दे-देकर अपने को अच्छा साबित करते रहे।

कनक के मन्त्र ने स्टेज पर ही इन्हें वशीभूत कर लिया था। अब पत्र भी आया, और वह भी प्रणय-पत्र के साथ-साथ प्रशंसा-पत्र। इनकी विजय का इससे बड़ा और कौन-सा प्रमाण होता! कहाँ उन्हें ही उसके पास प्रणय-भिक्षा के लिए जाना था, कहाँ वही उनके प्रेम के लिए उनकी जादू-भरी निगाह के लिए पागल है। इस पर भी उनका मन उन्हें सुन्दर नहीं मानता, यह उनके लिए सहन कर जानेवाली बात थी!

एक कान्स्टेबिल को टैक्सी ले आने के लिए भेज दिया था। बड़ी देर से खड़ी हुई टैक्सी हॉर्न दे रही थी, पर वह अपने बिगड़े हुए मन से लड़ रहे थे।

कान्स्टेबिल ने आकर कहा, "दारोगाजी, बड़ी देर से टैक्सी खड़ी है।"

तब आपने छड़ी उठायी और थाने से बाहर हो गये। सड़क पर टैक्सी खड़ी थी, बैठ गये। कहा, "बहूबाजार।"

ड्राइवर बहूबाजार चल दिया। जकरिया-स्ट्रीट के बराबर टैक्सी पहुँची, तब आपको याद आया कि टोपी भूल आये हैं। कहा, "अरे ड्राइवर, भाई, जरा फिर थाने चलो।"

गाड़ी फिर थाने आयी। आप अपने कमरे से टोपी लेकर फिर टैक्सी पर पहुँचे। टैक्सी पुनः बहूबाजार चली।

तीन नम्बर के आलीशान मकान के नीचे टैक्सी खड़ी हो गयी। पुरस्कृत जमादार ने लौटकर अपने पुरस्कार का हाल कनक से कह दिया था। कनक ने उसे ही द्वार पर दारोगा साहब के स्वागत के लिए रक्खा था, और समझा दिया था

कि बड़े अदब से, दो-मजिलेवाले कमरे मे, जिसमे मैं पढती थी, बैठाना, और तब मुझे खबर देना।

जमादार ने सलाम कर थानेदार साहब को उसी कमरे मे ले जाकर एक कोच पर बैठाया, और फिर ऊपर कनक को खबर देने के लिए गया।

कमरे मे, शीशेदार आलमारियो मे, कनक की किताबे रखी थी। उनकी जिल्दो पर सुनहरे अक्षरो से किताबो के नाम लिखे हुए थे। दारोगाजी विद्या की तौल मे कनक को अपने से छोटा एव अमान्य समझ रहे थे, परन्तु उन किताबो की तरफ देखकर उसके प्रति उनके दिल मे कुछ इज्जत पैदा हो गयी। उसकी विद्या की मन-ही-मन बैठे हुए वह थाह ले रहे थे।

कनक ऊपर से उतरी। साधारणतया जैसी उसकी सज्जा मकान मे रहती थी, वैसी ही—सभ्य तरीके से एक जरी की किनारीदार देसी साडी, मोजे और ऊँची एडी के जूते पहने हुए।

कनक को आते देख थानेदार साहब खडे हो गये। कनक ने हँसकर कहा, "गुड मार्निग !"

थानेदार कुछ झेप गये। डरे कि कही बातचीत का सिलसिला अँगरेजी मे इसने चलाया, तो नाक कट जायेगी। इस व्याधि से बचने के लिए उन्होने स्वय ही हिन्दी मे बातचीत छेड दी, "आपका नाटक कल देखा, मैं सच कहता हूँ, ईश्वर जाने, ऐसा नाटक जिन्दगी-भर मैने नही देखा।"

"आपको पसन्द आया, मेरे भाग्य ! मा तो उसमे तरह-तरह की त्रुटियाँ निकालती है। कहती है, अभी बहुत कुछ सीखना है—तारीफवाली अभी कोई बात नही हुई।"

कनक ने बातचीत का रुख बदला। सोचा, इस तरह व्यर्थ ही समय नष्ट करना होगा। बोली, "आप हम लोगो के यहाँ जलपान करने मे शायद सकोच करे ?"

मोटी हँसी हँसकर दारोगा ने कहा, "सकोच ? सकोच का तो यहाँ नाम नही, और फिर तु·· आ···आपके यहाँ !"

कनक ने दारोगाजी का आन्तरिक भाव समझ लिया था। नौकर को आवाज दी। नौकर आया। उसने खाना लाने के लिए कहकर आलमारी से खुद उठकर एक रेड-लेबल और दो बोतले सोडे की निकाली।

शीशे के एक ग्लास मे एक बडा पेग ढालते हुए कनक ने कहा, "आप मुझे 'तुम' ही कहे। कितना मधुर शब्द है—तुम ! 'तुम' मिलानेवाला है, 'आप' शिष्टता की तलवार से दो जुडे हुओ को काटकर जुदा कर देनेवाला।"

दारोगाजी बाग-बाग हो गये। बादल-से काले मुँह की हँसी मे सफेद दाँतो की कतार बिजली की तरह चमक उठी। कनक ने बडे जोर से सिर गडाकर हँसी रोकी।

थानेदार साहब की तरफ अपने जीवन का पहला ही कटाक्ष कर कनक ने देखा, तीर अचूक बैठा है, पर उसके कलेजे मे बिच्छू डक मार रहे थे।

कनक ने ग्लास मे कुछ सोडा डालकर थानेदार साहब को दिया। वह बिना

हाँ-न किये ही लेकर पी गये।

कनक ने दूसरा पेग ढाला, उसे भी पी गये। तीसरा ढाला, उसे भी पी लिया।

तव तक नौकर खाना लेकर आ गया। कनक ने सहूलियत से मेज पर रखवा दिया।

थानेदार साहव ने कहा, "अब मैं तुम्हे पिलाऊँ?"

कनक ने भौंहे चढा ली, "आज शाम को नवाव साहव मुर्शिदावाद के यहाँ मेरा मुजरा है, माफ कीजिएगा, किसी दूसरे दिन आइएगा, तव पिऊँगी। पर मैं शराव नही पीती, 'पोर्ट वाईन' पीती हूँ। आप मेरे लिए एक लेते आइएगा।"

थानेदार साहव ने कहा, "अच्छा, खाना तो साथ खाओ।"

कनक ने एक टुकडा उठाकर खाया। थानेदार भी खाने लगे। कनक ने कहा, "मैं नाश्ता कर चुकी हूँ, माफ फरमाइएगा, बस।"

उसने वही, नीचे रक्खे हुए, ताँबे के एक बडे-से वर्तन मे हाथ-मुँह धोकर डिब्बे से निकालकर पान खाया। दारोगाजी खाते रहे। कनक ने डरते हुए चौथा पेग तैयार कर सामने रख दिया। खाते-खाते थानेदार साहव उसे भी पी गये। कनक उनकी आँखो मे चढता सरूर देख रही थी।

धीरे-धीरे थानेदार साहव का प्रेम प्रवल रूप धारण करने लगा। शराव की जैसी वृष्टि हुई थी, उनकी नदी मे वैसी ही वाढ भी आ गयी। कनक ने पाँचवाँ पेग तैयार किया। थानेदार साहव भी प्रेम की इस परीक्षा मे फेल हो जानेवाले आदमी न थे। इनकार नही किया। खाना खा चुकने के वाद नौकर ने उनके हाथ धुला दिये।

धीरे-धीरे उनके शब्दो मे प्रेम का तूफान उठ चला। कनक डर रही थी कि वह इतना सब सहन कर सकेगी या नही। वह उन्हें माता की बैठक मे ले गयी। सर्वेश्वरी दूसरे कमरे मे चली गयी थी।

गद्दे पर पडते ही थानेदार साहव लम्वे हो गये। कनक ने हारमोनियम उठाया। वजाते हुए पूछा, "वह जो कल दुष्यन्त वना था, उसे गिरफ्तार क्यो किया आपने, कुछ समझ मे नही आया।"

"उससे हैमिल्टन साहव नाराज हैं। उस पर वदमाशी का चार्ज लगाया गया है।" करवट वदलकर दारोगाजी ने कहा।

"ये हैमिल्टन साहव कौन है?"

"अपने सुपरिंटेण्डेण्ट पुलिस है।"

"कहाँ रहते हैं?" कनक ने एक गत का एक चरण वजाकर पूछा।

' रौडन-स्ट्रीट, न 5 उन्ही का वँगला है।"

"क्या राजकुमार को सजा हो गयी?"

"नही, कल पेशी है। पुलिस की शहादत गुजर जाने पर सजा हो जायेगी।"

"मैं तो वहुत डरी, जव आपको वहाँ देखा।"

आँखें मूँदे हुए दारोगाजी मूछो पर ताव देने लगे।

कनक ने कहा, "पर मैं कहूँगी, आप-जैसा खूवसूरत जवान वना-चुना मुझे

दूसरा नही नजर आया।"

दारोगाजी उठकर बैठ गये। इसी सिलसिले मे प्रासगिक-अप्रासगिक, सुनने-लायक, न सुनने-लायक, बहुत-सी बातें कह गये। धीरे-धीरे लडकर आये हुए भैसे की आँखो की तरह आँखें खूनी हो चलीं। भले-बुरे की लगाम मन के हाथ से छूट गयी। इस अनर्गल शब्द-प्रवाह को बेहोश होने की घडी तक रोक रखने के अभिप्राय से कनक गाने लगी।

गाना सुनते-ही-सुनते मन विस्मृति के मार्ग से अन्धकार मे बेहोश हो गया।

कनक ने गाना बन्द कर दिया। उठकर दारोगाजी के पॉकेट की तलाशी ली। कुछ नोट थे, और उसकी चिट्ठी। नोटों को उसने रहने दिया, चिट्ठी निकाल ली।

कमरे मे तमाम दरवाजे बन्द कर ताली लगा दी।

सात

कनक घबरा उठी। क्या करे, कुछ समझ मे नही आ रहा था। राजकुमार के बारे मे जितना ही सोचती, चिन्ताओ की छोटी-बडी अनेक तरगो, आवर्तो से मन मथ जाता, पर उन चिन्ताओ के भीतर से उपाय की कोई मणि नही मिल रही थी, जिसकी प्रभा उसके मार्ग को प्रकाशित करती। राजकुमार के प्रति उसके प्रेम का यह प्रखर प्रवाह, बँधी हुई जल-राशि से छूटकर अनुकूल पथ पर वह चलने की तरह, स्वाभाविक और सार्थक था। पहले ही दिन उसने राजकुमार के शौर्य का जैसा दृश्य देखा था, उसके सबसे एकान्त स्थान पर, जहाँ तमाम जीवन मे मुश्किल से किसी का प्रवेश होता है, पत्थर के अक्षरो की तरह उसका पौरुष चित्रित हो गया था। सबसे बडी बात जो रह-रहकर उसे याद आती थी, वह राजकुमार की उसके प्रति श्रद्धा थी।

कनक ने ऐसा चित्र अब तक नही देखा था, इसलिए उस पर राजकुमार का स्थायी प्रभाव पड गया। माता की समस्त मौखिक शिक्षा इस प्रत्यक्ष उदाहरण के सामने पराजित हो गयी। और, वह जिस तरह की शिक्षा के भीतर आ रही थी, परिचय के पहले ही प्रभात मे किसी मनोहर दृश्य पर उसकी दृष्टि का बँध जाना, अटक जाना उसके उस जीवन की स्वच्छ, अबाध प्रगति का उचित परिणाम ही हुआ। उसकी माता शिक्षित तथा समझदार थी, इसलिए उसने कन्या के सबसे प्रिय जीवनोन्मेष को बाहरी आवरण द्वारा ढक देना उसकी बाढ के साथ ही जीवन की प्रगति को भी रोक देना समझा था।

सोचते-सोचते कनक को याद आया, उसने साहब की जेब से एक चिट्ठी निकाली थी, फिर उसे अपनी फाइल मे रख दिया था। वह तुरन्त उठकर फाइल की तलाशी लेने लगी। चिट्ठी मिल गयी।

सर्वेश्वरी कन्या को सजाने लगी। पैर, कमर, कलाई, बाजू, वक्ष, गला और मस्तक अलकारो से चमक उठे। हरी साडी के ऊपर तथा भीतर मे रत्नो के प्रकाश की छटा, छुरियो-सी निकलती हुई किरणो के बीच उसका सुन्दर, सुडौल चित्र-सा खिंचा हुआ मुख, एक नजर आपाद-मस्तक देखकर माता ने तृप्ति की साँस ली।

कनक एक बडे-से आईने के सामने जाकर खडी हो गयी। देखा, राजकुमार की याद आयी, कल्पना मे दोनो की आत्माएँ मिल गयी, देखा, आईने मे वह हँस रही थी।

नीचे से आकर नौकर ने खबर दी, मेम साहब के साथ एक साहब आये हुए हैं।

कनक ने उन्हे ऊपर ले आने के लिए कहा।

कैथरिन ने हैमिल्टन साहब से कहा था कि उन्हे ऐसी एक सुन्दरी भारतीय पढी-लिखी युवती दिखाएँगी, जैसी उन्होने शायद ही कही देखी हो। वह गाती भी लाजवाब है, और अँगरेजो की तरह उसी लहजे मे अँगरेजी भी बोलती है।

हैमिल्टन साहब, कुछ दिल से और कुछ पुलिस मे रहने के कारण, सौन्दर्योपासक बन गये थे। इतनी खूबसूरत, पढी-लिखी भारतीय युवती से, बिना परिश्रम के ही, कैथरिन उन्हे मिला सकती है, ऐसा शुभ अवसर छोड देना उन्होने किसी सुन्दरी के स्वयवर मे बुलाये जाने पर भी लौट आना समझा। कैथरिन ने यह भी कहा था कि आज अवकाश है, दूसरे दिन इतनी सुगमता से भेंट भी नही हो सकती। साहब तत्काल कैथरिन के साथ चल दिये थे। रास्ते मे कैथरिन ने समझा दिया था कि किसी अशिष्ट व्यवहार से वह अँगरेज-जाति को कलकित नही करेंगे, और यदि उसे अपने प्रेम-जाल मे फँसा सकें, तो यह जाति के लिए गौरव की बात होगी। साहब दिल-ही-दिल प्रेम-परीक्षा मे कैसे उत्तीर्ण होगे, इसका प्रश्न-पत्र हल कर रहे थे, तब तक ऊपर से कनक ने बुला भेजा।

कैथरिन आगे-आगे, साहब पीछे-पीछे चले। साहब ने चलते समय चमडे के कलाईबन्द मे बँधी हुई घडी देखी। बारह बज रहे थे।

नौकर दोनो को तिमजिले पर ले गया। मकान देखकर साहब के दिल मे अदेख सुन्दरी के प्रति इज्जत पैदा हुई थी। कमरे की सजावट देखकर साहब आश्चर्य मे पड गये। सुन्दरी को देखकर तो साहब के होश ही उड गये! दिल मे कुछ घबराहट हुई, पर कैथरिन कनक से बातचीत करने लगी, तो कुछ सँभल गये। सामने दो कुर्सियाँ पडी थी। कैथरिन और साहब बैठ गये। यो अन्य दिन उठकर कनक कैथरिन से मिलती, पर आज वह बैठी ही रही। कैथरिन इसका कारण समझ गयी। साहब ने इसे हिन्दोस्तानी कुमारियो का ढग समझा। कनक ने सूरत देखते ही साहब को पहचान लिया, पर साहब उसे नही पहचान सके। तब से इस सूरत मे साज के कारण बडा फर्क था।

साहब अनिमेष आँखो से उस रूप की सुधा को पीते रहे। मन-ही-मन उन्होने उसकी बडी प्रशसा की। उसके लिए, यदि वह कहे तो, साहब सर्वस्व देने को तैयार थे। कैथरिन ने साहब को समझा दिया था कि उसके कई अँगरेज प्रेमी हैं, पर अभी उसका किसी से प्यार नही हुआ, यदि वह उसे प्राप्त कर सकें, तो राजकन्या के साथ ही राज्य भी उन्हे मिल जायेगा, कारण उसकी माँ की जाय-

दाद पर उसी का अधिकार है।

कैथरिन ने साहब का परिचय देते हुए कहा, "मिस कनक, इनसे मिलो। यह है मिस्टर हैमिल्टन, पुलिस-सुपरिन्टेण्डेण्ट, 24 परगना। तुमसे मिलने के लिए आये है। इन्हे अपना गाना सुनाओ।"

कनक ने उठकर हाथ मिलाया। साहब उसकी सभ्यता से बहुत प्रसन्न हुए।

कनक ने कहा, "हम लोग पृथक्-पृथक् आसन से वार्तालाप करेगे, इससे आलाप का सुख नही मिल सकता। साहब अगर पतलून उतार डालें, मैं इन्हे धोती दे सकती हूँ, तो सगसुख़ की प्राप्ति पूरी मात्रा मे हो। कुर्सी पर बैठकर पियानो, टेबल-हारमोनियम बजाये जा सकते हैं, पर आप लोग तो यहाँ हिन्दोस्तानी गीत ही सुनने के लिए आये हैं जो सितार और सुरबहार से अच्छी तरह अदा होंगे, और उनका बजाना बराबर जमीन पर बैठकर ही हो सकता है।"

कनक ने अँगरेजी मे कहा। कैथरिन ने साहब की तरफ देखा।

नायिका के प्रस्ताव के अनुसार ही उसे खुश करना चाहिए, साहब ने अपने साहबी ढर्रे से समझा, और उन्हे वहाँ दूसरे प्रेमियो से बढकर अपने प्रेम की परीक्षा भी देनी थी। उधर कैथरिन की मौन चितवन का मतलब भी उन्होने यही समझा। साहब तैयार हो गये। कनक ने एक धुली 48 इच की बढिया धोती मँगा दी। कैथरिन ने साहब को धोती पहनना बतला दिया। दूसरे कमरे से साहब धोती पहन आये, और कनक के बराबर गद्दी पर बैठ गये, एक तकिये का सहारा कर लिया।

कनक ने सुरबहार मँगवाया। तार स्वर से मिलाकर पहले एक गत बजायी। स्वर की मधुरता के साथ-साथ साहब के मन मे उस परी को प्राप्त करने की प्रतिज्ञा भी दृढ होती गयी।

कैथरिन ने बडे स्नेह से पूछा, "यह किससे सीखा ? अपनी मा से ?"

"जी हाँ।" कनक ने सिर झुका लिया।

"अब एक गाना सुनाओ, हिन्दोस्तानी गाना; फिर हम चलेंगे, हमे देर हो रही है।"

कनक ने एक बार स्वरो पर हाथ फेरा। और फिर गाने लगी—

गाना (सारग)

याद रखना इतनी ही बात।
नही चाहते, मत चाहो तुम,
मेरे अर्घ्य, सुमन-दल-नाथ!

मेरे वन मे भ्रमण करोगे जब तुम,
अपना पथ-श्रम आप हरोगे जब तुम,
ढक लूँगी मैं अपने दृग-मुख,
छिपा रहूँगी गात—
याद रखना इतनी ही बात।

सरिता के उस नीरव-निर्जन तट पर
आओगे जब मन्द चरण तुम चलकर—
मेरे शून्य घाट के प्रति करुणाकर,

हेरोगे नित प्रात—
याद रखना इतनी ही बात।
मेरे पथ की हरित लताएँ, तृण-दल
मेरे श्रम-सिंचित, देखोगे अचपल,
पलक-हीन नयनों से तुमको प्रतिपल
हेरेंगे अज्ञान—
याद रखना इतनी ही बात।
मैं न रहूँगी जब, सूना होगा जग,
समझोगे तब यह मंगल-कलरव सब—
था मेरे ही स्वर से सुन्दर जगमग,
चला गया सब साथ—
याद रखना इतनी ही बात।

साहब एकटक मन की आँखों से देखते और हृदय के कानों से सुनते रहे। उस स्वर की सरिता अनेक तरंग-भंगों से बहती हुई जिस समुद्र से मिली थी, वहाँ तक सभी यात्राएँ पर्यवसित हो जाती थीं।

कैथरिन ने पूछा, "कुछ आपकी समझ में आया?"

साहब ने अनजान की तरह सिर हिलाया। कहा, "इनका स्वरों से खेलना मुझे बहुत पसन्द आया, पर गीत का अर्थ मैं नहीं समझ सका।"

कैथरिन ने थोड़े शब्दों में अर्थ समझा दिया।

"हिन्दोस्तानी भाषा में ऐसे भी गीत हैं?" साहब तअज्जुब करने लगे।

कनक को साहब देख रहा था। उसकी मुद्राएँ, भंगिमाएँ गाते समय इस तरह अपने मनोभावों को व्यंजित कर रही थीं, जैसे वह स्वर के स्रोत में बहती हुई प्रकाश के द्वार पर गयी हो, और अपने प्रियतम से कुछ कह रही हो, जैसे अपने प्रियतम को अपना सर्वस्व पुरस्कार दे रही हो।

संगीत के लिए कैथरिन ने कनक को धन्यवाद दिया, और साहब को अपने चलने का संवाद। साथ ही उन्हें समझा दिया कि उनकी इच्छा हो, तो कुछ वक्त वहाँ ठहर सकते हैं। कनक ने सुरबहार एक बगल रख दिया।

एकान्त की प्रिय कल्पना से, अभीप्सित की प्राप्ति के लोभ से, साहब ने कहा, "अच्छा आप चलें, मैं कुछ देर बाद आ जाऊँगा।"

कैथरिन चली गयी। साहब को एकान्त मिला। कनक बातचीत करने लगी।

साहब कनक पर कुछ अपना भी प्रभाव जतलाना चाहते थे, और दैवात् कनक ने प्रसंग भी वैसा ही छेड़ दिया, "देखिए, हम हिन्दोस्तानी हैं, प्रेम की बातें हिन्दी में कीजिए। आप 24 परगने के पुलिस-सुपरिन्टेण्डेण्ट हैं?"

"हाँ।' ठोड़ी ऊँची कर साहब ने सगर्व कहा, और जहाँ तक तनते बना, तन गये।

"आपकी शादी तो हो गयी होगी?"

साहब की शादी हो गयी थी, पर मेम साहब को कुछ दिन बाद आप पसन्द

नहीं आये, इसलिए इनके भारत आने से पहले ही वह इन्हें तलाक दे चुकी थी—एक साधारण से कारण को बहुत बढ़ाकर। पर यह साहब साफ इनकार कर गये, और इसे ही उन्होंने प्रेम बढ़ाने का उपाय समझा।

"अच्छा, अब तक आप अविवाहित हैं ? आपसे किसी का प्रेम नहीं हुआ ?"

"हमको अभी टक कोई पसण्ड नई आया। हम टुमको पसण्ट करटा।" साहब कुछ नजदीक खिसक आये।

कनक डरी। उपाय एक ही उसने आजमाया था, और उसी का उपयोग वह साहब के लिए भी कर बैठी। बोली, "शराब पीजिएगा ? हमारे यहाँ शराब पिलाने की चाल है।"

साहब पीछे कदम धरनेवाले न थे। उन्होंने स्वीकार कर लिया। कनक ने ईश्वर को धन्यवाद दिया।

नौकर से शराब और सोडा मँगवाया।

"तो अब तक किसी से प्यार नहीं किया ? सच कहिएगा।"

"आम शच बोलटा, किशी को वी नई।"

साहब को पेग तैयार कर एक ग्लास में दिया। साहब बड़े अदब से पी गये। दूसरा, तीसरा, चौथा" पाँचवें पर इनकार कर गये। अधिक शराब जल्दी-जल्दी पी जाने में नशा तेज होता है, यह कनक जानती थी, इसीलिए वह फुर्ती कर रही थी। साहब को भी अपनी शराब-पाचन-शक्ति का परिचय देना था, साथ ही अपने अकृत्रिम प्रेम की परीक्षा।

कनक ने सोचा, भूत-सिद्धि की तरह हमेशा भूत को एक काम देते रहना चाहिए। नहीं तो, कहा गया है, वह अपने साधक पर ही सवारी कस बैठता है।

कनक ने तुरन्त फरमाइश की, "कुछ गाओ और नाचो। मैं तुम्हारा विदेशी नाच देखना चाहती हूँ।"

"टब टुम वी आओ, हियाँ डांसिंग-स्टेज कहाँ ?"

"यहीं नाचो। पर मुझे नाचना नहीं आता, मैं तो सिर्फ गाती हूँ।"

"अच्छा, टुम बोलटा, टो हम नाच सकटा।"

साहब अपनी भोंपू-आवाज में गाने और नाचने लगे। कनक देख-देखकर हँस रही थी। कभी-कभी साहब का उत्साह बढ़ाती, "बहुत अच्छा, बहुत सुन्दर।"

साहब की नजर पियानो पर पड़ी। कहा, "डेखो, आबी हम पियानो बजाटा, फिर टुम कहेगा, टो हम नाचेगा।"

"अच्छा, बजाओ।"

साहब पियानो बजाने लगे। कनक ने तब तक अँगरेजी गीतों का अभ्यास नहीं किया था, पर कविता के यति-भंग की तरह सब स्वरों का सम्मिलित विद्रोह उसे असह्य हो गया। उसने कहा, "साहब, हमें तुम्हारा नाचना गाने से ज्यादा पसन्द है।"

साहब अब तक औचित्य की रेखा पार कर चुके थे। आँखें लाल हो रही थीं। प्रेमिका को नाच पसन्द है, सुनकर बहुत ही खुश हुए, और शीघ्र ही उसे प्रसन्न कर वर प्राप्त कर लेने की लालसा से नाचने लगे।

नौकर ने बाहर से संकेत किया। कनक उठ गयी। नौकर को इशारे से आदेश दे लौट आयी।

घट-घट-घट कई आदमी जीने पर चढ़ रहे थे। आगन्तुक बिलकुल कमरे के सामने आ गये। हैमिल्टन को नाचते हुए देखा। हैमिल्टन ने भी उन्हें देखा, पर उनकी परवा न कर नाचते ही रहे।

"ओ! टुम डूसरे ही रॉबिसन।" हैमिल्टन ने पुकारकर कहा।

"नहीं, मैं चौथा हूँ।" रॉबिसन ने बढ़ते हुए जवाब दिया।

तितलियों-सी मूछें, लम्बे-तगड़े रॉबिसन साहब मैजिस्ट्रेट थे। कैथरिन के पीछे-पीछे कमरे के भीतर गये। कई और आदमी भी साथ थे। कुर्सियाँ खाली थीं। बैठ गये। कैथरिन ने कनक से रॉबिसन साहब से हाथ मिलाने के लिए कहा, "यह मजिस्ट्रेट हैं तुम अपना कुल किस्सा इनसे बयान कर दो।"

हैमिल्टन को धोती पहने नाचता हुआ देख रॉबिसन बारूद हो गये थे। कनक ने हैमिल्टन की जेब में निकाली हुई चिट्ठी साहब को दे दी। पढ़ते ही आग में पेट्रोल पड़ गया।

कनक कहने लगी, "एक दिन मैं इडेन-गार्डेन में, तालाब के किनारेवाली बेंच पर अकेली बैठी थी। हैमिल्टन ने मुझे पकड़ लिया, और मुझे जैसे अशिष्ट शब्द कहे, मैं कह नहीं सकती। उसी समय एक युवक वहाँ पहुँच गया, उसने मुझे बचाया। हैमिल्टन उससे बिगड़ गया, और उसे मारने के लिए तैयार हो गया। दोनों में कुछ देर हाथापाई होती रही। उस युवक ने हैमिल्टन को गिरा दिया। और कुछ रद्दे जमाये, जिससे हैमिल्टन बेहोश हो गया। तब उस युवक ने अपने रूमाल से हैमिल्टन का मुँह धो दिया, और सिर पर उसी की पट्टी लपेट दी। फिर उसने एक चिट्ठी लिखी, और उसकी जेब में डाल दी। मुझसे जाने के लिए कहा। मैंने उससे पता पूछा, पर उसने नहीं बताया। वह हाईकोर्ट की राह चला गया। अपने बचानेवाले का पता मालूम कर लेना मैंने अपना फर्ज समझा, इसलिए वहीं फिर लौट गयी। चिट्ठी निकालने के लिए जेब में हाथ डाला, पर भ्रम से युवक की चिट्ठी की जगह यह चिट्ठी मिली। एकाएक कोहनूर-स्टेज पर मैं शकुन्तला का अभिनय करने गयी। देखा, वही युवक दुष्यन्त बना था। थोड़ी ही देर में दारोगा सुन्दरसिंह उसे गिरफ्तार करने गया, पर दर्शक बिगड़ गये थे, इसलिए अभिनय समाप्त हो जाने पर गिरफ्तार किया। राजकुमार का कुसूर कुछ भी नहीं, अगर है, तो सिर्फ यही कि उसने मुझे बचाया था।"

अक्षर-अक्षर साहब पर चोट कर रहे थे। कनक ने कहा, "और देखिए, यह हैमिल्टन के चरित्र का दूसरा पत्र।"

कनक ने दारोगा की जेब से निकाला हुआ पत्र भी साहब को दिखाया। इसमें हैमिल्टन के मित्र सुपरिन्टेण्डेण्ट मिस्टर मूर ने दारोगा को बिला वजह राजकुमार को गिरफ्तार कर, बदमाशी के सबूत दिलाकर सजा करा देने के लिए लिखा था। उसमें यह भी लिखा था कि इस काम से तुम्हारे ऊपर हम और हैमिल्टन साहब बहुत खुश होंगे।

मैजिस्ट्रेट रॉबिन्सन ने उस पत्र को भी ले लिया। पढ़कर दोनों की तिथियाँ

मिलायी। सोचा। कनक की बातें बिल्कुल सच जान पड़ी। रॉबिन्सन कनक से बहुत खुश हुए।

कनक ने भडककर कहा, "वह दारोगा साहब भी तो यही तशरीफ रखते है। आपको तकलीफ होगी, चलकर उनके भी उत्तम चरित्र का प्रमाण ले सकते है।"

रॉबिन्सन तैयार हो गये। हैमिल्टन को साथ चलने के लिए कहा। कनक आगे-आगे नीचे उतरने लगी।

सुन्दरसिंह के कमरे की ताली नौकर को दे दी, और कुछ दरवाजे खोल देने के लिए कहा। सब दरवाजे खोल दिये गये। भीतर सब लोग एक साथ घुस गये। दारोगा साहब करवट बदल रहे थे। रॉबिन्सन ने एक छडी लेकर खोद दिया। तब तक नशे मे कुछ उतार आ गया था, पर फिर भी वह सँभलने लायक न थे। रॉबिन्सन ने डाँटकर पुकारा। साहबी आवाज से वह घबराकर उठ बैठे। कई आदमियो और अँगरेजो को सामने खडा देख चौंककर खडे हो गये। पर सँभलने की ताब न थी, कटे हुए पेड की तरह वही ढेर हो गये। होश दुरुस्त थे, पर शक्ति न थी। दारोगा साहब फूट-फूटकर रोने लगे।

"साहब खडे है और आप लेटे रहिएगा?" कनक के नौकर खोद-खोदकर दारोगा साहब को उठाने लगे। एक ने बाँह पकडकर उन्हे खडा कर दिया।

उन्हे विवश देख रॉबिन्सन दूसरे कमरे की तरफ चल दिये। कहा, "इशे पडा रहने डो, हम शब शमझ गया।"

यह कनक का अध्ययन-कक्ष था। सजी हुई पुस्तको पर नजर गयी। रॉबिन्सन उन्हे खोलकर देखने के लिए उत्सुक हो उठे। नौकर ने आलमारियाँ खोल दी। साहब ने कई पुस्तकें निकाली, उलट-पलटकर देखते रहे। इज्जत की निगाह से कनक की ओर देखकर अँगरेजी मे कहा, "अच्छा, मिस कनक, तुम क्या चाहती हो?"

"सिर्फ इन्साफ।" कनक ने मँजे स्वर से कहा।

साहब सोचते रहे। निगाह उठाकर पूछा, "क्या तुम इन लोगो पर मुकद्दमा चलाना चाहती हो?"

"नही।"

साहब कनक को देखते रहे। आँखो मे तअज्जुब था, और सम्मान। पूछा, "फिर कैसा इन्साफ?"

"राजकुमार को बिला वजह तकलीफ दी जा रही है। वह छोड दिये जाये।" कनक की पलकें झुक गयी।

साहब कैथरिन को देख हँसने लगे। फिर हिन्दी मे बोले, "अम कल ही छोड डेगा। टुमशे अम बहुट खुश हुआ।"

कनक चुपचाप खडी रही।

"टुमारी पटलून क्या हुआ मिस्टर हैमिल्टन?" हैमिल्टन को घृणा से देखकर साहब ने पूछा।

अब तक हैमिल्टन को होश ही न था कि वह धोती पहने हुए है। नशा इस समय भी पूरी मात्रा मे था। जब एकाएक यह मुकद्दमा पेश हो गया, तब उनके

दिल से प्रेम का मनोहर स्वप्न सूर्य के प्रकाश से कटते हुए अन्धकार की तरह दूर हो गया। एकाएक चोट खाकर, नशे मे होते हुए भी, वह होश मे आ गये थे। कोई उपाय न था, इसलिए मन-ही-मन पश्चात्ताप करते हुए यन्त्रवत् रॉबिन्सन के पीछे-पीछे चल रहे थे। मुकद्दमे के चक्कर से बचने के अनेक उपायो का आविष्कार करते हुए वह अपनी हालत को भूल ही गये थे। पतलून की जगह धोती और वह भी एक दूसरे अँगरेज के सामने! उन्हे कनक पर बडा क्रोध आया। मन मे बहुत ही क्षुब्ध हुए। अब तक वीर की तरह सजा के लिए तैयार थे, पर अब लज्जा से आँखें झुक गयी।

एक नौकर ने पतलून लाकर दिया। बगल के एक दूसरे कमरे मे साहब ने उसे पहन लिया।

कनक को धैर्य देकर रॉबिन्सन चलने लगे। चलते समय हैमिल्टन और दारोगा को शीघ्र निकाल देने के लिए एक नौकर से कहा। कनक ने कहा, "ये लोग शायद अकेले घर तक न जा सकेंगे। आप कहे, तो मै ड्राइवर से कह दूं, इन्हे छोड आवे।"

रॉबिन्सन ने सिर झुका लिया, मानो अपना अदब जाहिर कर रहे हो। फिर धीरे-धीरे नीचे उतरने लगे। कैथरिन से उन्होने धीमे शब्दो मे कुछ कहा, नीचे उसे अलग बुलाकर। फिर अपनी मोटर मे बैठ गये।

कनक ने अपनी मोटर से हैमिल्टन और दारोगा को उनके स्थान पर पहुँचवा दिया।

आठ

अदालत लगी हुई थी। एक हिस्सा रेलिंग मे घिरा था। बीच मे बडे तख्त पर मेज और कुर्सी रक्खी थी। मैजिस्ट्रेट मिस्टर रॉबिन्सन बैठे थे। एक ओर कटघरे के अन्दर बन्दी राजकुमार खडा हुआ, एक दृष्टि से बेंच पर बैठी हुई कनक को देख रहा था, और देख रहा था उन वकीलो, बैरिस्टरो और कर्मचारियो को, जो उसे देख-देखकर आपस मे एक-दूसरे को खोद-खोदकर मुस्करा रहे थे, जिनके चेहरे पर, झूठ, फरेब, जाल, दगाबाजी, कठहुज्जती, दम्भ, दास्य और तोताचश्मी — सिनेमा के बदलते हुए दृश्यो की तरह—आ-जा रहे थे, और जिनके पर्दे मे छिपे हुए वे सुख-वैभव और शान्ति की साँस ले रहे थे। वहाँ के अधिकाश लोगो की दृष्टि निस्तेज, सूरत बेईमान, और स्वर कर्कश था। राजकुमार ने देखा, एक तरफ पत्रो के सवाददाता भी बैठे हुए थे, एक तरफ वकील-बैरिस्टर तथा दर्शक।

वहाँ कनक उसके लिए सबसे बढकर रहस्यमयी थी। बहुत कुछ मानसिक प्रयत्न करने पर भी उसके आने का कारण वह न समझ सका। स्टेज पर कनक

को देखकर उसके प्रति दिल मे अश्रद्धा, अविश्वास तथा घृणा पैदा हो गयी थी। जिस युवती का इडेन-गार्डेन मे एक गोरे के हाथो से उसने बचाया, जिसके प्रति, सभ्य, सम्भ्रान्त महिला के रूप मे देखकर, वह सर्भक्ति खिंच गया था, वह स्टेज की नायिका है, यह उसके लिए बरदाश्त से बाहर की बात थी। कनक का समस्त सौन्दर्य उसके दिल मे पैदा हुए इस घृणा-भाव को प्रशमित तथा पराजित न कर सका। उस दिन स्टेज पर राजकुमार दो पार्ट कर रहा था—एक मन से, दूसरा जबान से, इसीलिए कनक की अपेक्षा वह कुछ उतरा हुआ समझा गया था। उसके सिर्फ दो-एक स्थल अच्छे हुए थे।

इजलास मे कनक को बैठी देखकर उसने अनुमान लगाया, शायद पुलिस की गवाह या ऐसी ही कुछ होकर आयी है। क्रोध और घृणा से हृदय ऊपर तक भर आया। उसने सोचा, इडेन-गार्डेन मे उससे गलती हो गयी। मुमकिन है, वह साहब की प्रेमिका रही हो, और व्यर्थ ही उसने साहब को दण्ड दिया। राजकुमार के हृदय-प्राचीर पर जो अस्पष्ट रेखा कनक की थी, बिलकुल मिट गयी। 'मनुष्य के लिए स्त्री कितनी बडी समस्या है। इसकी सोने-सी देह के भीतर कितना तीव्र जहर!' राजकुमार सोच रहा था, 'मैंने भी कितना बडा धोखा खाया! इसका दण्ड ही से प्रायश्चित्त करना ठीक है।'

राजकुमार को देखकर कनक की आँखो मे आँसू आ गये। राजकुमार तथा दूसरो की आँखें बचा रूमाल से चुपचाप उसने आँसू पोछ लिये। उस रोज लोगो की निगाह मे कनक ही कमरे की रोशनी थी। उसे देखते हुए सभी की आँखें औरो की आँखो को धोखा दे रही थी। सबकी आँखो की चाल तिरछी हो रही थी।

एक तरफ दारोगा साहब खडे थे। चेहरा उतरा हुआ था। राजकुमार ने सोचा, शायद मुझे अकारण गिरफ्तार करने के विचार से यह उदास है। राजकुमार बिलकुल निश्चिन्त था।

दारोगा साहब ने रविवार के दिन रॉबिन्सन का जैसा रुख देखा था, उसके अनुसार शहादत के लिए दौड-धूप करना अनावश्यक समझ अपने बरखास्त होने, सजा पाने और न जाने किस-किस तरह की कल्पनाएँ लडा रहे थे। इसी समय मैजिस्ट्रेट ने दारोगा साहब को तलब किया। पर यहाँ कोई तैयारी थी ही नही। बडे करुण भाव से, दृष्टि मे कृपा चाहते हुए, दारोगा साहब मैजिस्ट्रेट को देखने लगे।

अभियुक्त को छोड देना ही मैजिस्ट्रेट का अभिप्राय था, इसलिए उन्होने, उसी रोज, उसके पैरवीकार सॉलिस्टर जयनारायण से उसकी भलमसाहत के सबूत लेना आरम्भ किया। कनक एकाग्रचित्त हो मुकद्दमे की कार्रवाई देख रही थी।

राजकुमार के मन का एकाएक परिवर्तन हो गया। वह अपने पक्ष मे प्रमाण पेश होते हुए देख चकित हो गया। कुछ समझ मे न आया उसकी। उस समय कनक का उत्साह देखकर वह अनुमान करने लगा कि शायद यह सब व्यवस्था इसी की की हुई है। कनक के प्रति उसकी भावनाएँ बदल गयी—आँखो मे श्रद्धा आ गयी, पर दूसरे ही क्षण, उपकृत द्वारा मुक्ति पाने की कल्पना कर, वह बेचैन हो उठा। उस-जैसे निर्भीक वीर के लिए, जिसने स्वयं ही यह सब आफत बुला ली थी, कितनी लज्जा की बात है कि वह एक साधारण बाजारू स्त्री की कृपा से मुक्त

हो। क्षोभ और घृणा से उसका सर्वांग मुर्झा गया। जोश मे आ वह अपने कठघरे से पुकारकर बोला, "मैंने कुसूर किया है।"

मैजिस्ट्रेट लिख रहे थे। नजर उठाकर एक बार उसे देखा, फिर कनक को। कनक घबरा गयी। राजकुमार को देखा, वह निश्चिन्त दृष्टि से मैजिस्ट्रेट की ओर देख रहा था। कनक ने वकील को देखा। राजकुमार की तरफ फिरकर वकील ने कहा, "तुमसे कुछ पूछा नही जा रहा, अत तुम्हे कुछ कहने का अधिकार नही।"

फैसला लेकर हंसते हुए वकील ने कहा, "राजकुमार छोड दिये गये।"

वकील को पुरस्कृत कर, राजकुमार का हाथ पकडकर कनक अदालत से बाहर निकल चली। साथ-साथ कैथरिन भी चली। पीछे-पीछे हँसती हुई कुछ जनना।

रास्ते पर एक किनारे कनक की मोटर खडी थी। राजकुमार और कैथरिन के साथ कनक भी पीछे की सीट पर बैठ गयी, ड्राइवर गाडी ले चला।

एक अज्ञात मनोहर प्रदेश मे राजकन्या की तलाश मे विचरण करते हुए पूर्व-श्रुत राजपुत्र की कथा याद आयी। राजकुमार निर्लिप्त द्रष्टा की तरह वह स्वर्णिम स्वप्न देख रहा था।

मकान के सामने गाडी खडी हो गयी। कनक ने हाथ पकडकर राजकुमार से उतरने के लिए कहा।

कैथरिन बैठी रही। दूसरे रोज आने का कनक ने उससे आग्रह किया। ड्राइवर उसे पार्क-स्ट्रीट ले चला।

ऊपर सीधे कनक माता के कमरे मे गयी। बराबर राजकुमार का हाथ पकडे रही। राजकुमार भावावेश मे यन्त्रवत् उसके साथ-साथ चल रहा था।

"यह मेरी मा है।" राजकुमार से कहकर कनक ने माता को प्रणाम किया। आवेश मे, स्वत प्रेरित की तरह, अपनी दशा तथा परिस्थिति के ज्ञान से रहित, राजकुमार ने भी हाथ जोड दिये।

प्रणाम कर प्रसन्न कनक राजकुमार से सटकर खडी हो गयी। माता ने दोनो के मस्तक पर स्नेह-स्पर्श कर आशीर्वाद दिया, और नौकरो को बुलाकर, उन्हे हर्ष से एक-एक महीने की तनख्वाह देकर पुरस्कृत किया।

कनक राजकुमार को अपने कमरे मे ले गयी। मकान देखते ही कनक के प्रति राजकुमार के भीतर सम्भ्रम का भाव पैदा हो गया था। कमरा देखकर उस ऐश्वर्य से वह और भी नत हो गया।

कनक ने उसे गद्दी पर आराम करने के लिए बैठाया। खुद भी एक बगल बैठ गयी।

"दो रोज से आँख नही लगी, सोऊँगा।"

"सोइए।" कनक ने आग्रह से कहा। फिर उठकर हाथ की बुनी, बेल-बूटेदार एक पखी ले आयी, और बैठकर झलने लगी।

"नही, इसकी जरूरत नही, बिजली का पखा तो है ही, खुलवा दीजिए।" राजकुमार ने सहज स्वर से कहा।

जैसे किसी ने कनक का कलेजा मसल दिया हो, 'खुलवा दीजिए।' ओह! कितना दुराव! आँखे छलछला आयी। राजकुमार आँखे मूँदे पडा था। सँभलकर

कनक ने कहा, "पखे की हवा गर्म होगी।"

वह उसी तरह पखा झलती रही। हाथ थोडी ही देर मे दुखने लगे, कलाइयाँ भर आयीं, पर वह झलती रहीं। उत्तर मे राजकुमार ने कुछ भी न कहा। उसे नीद लग रही थी। धीरे-धीरे सो गया।

नौ

राजकुमार के स्नान आदि का कुल प्रवन्ध कनक ने उसके जागने से पहले ही नौकरो से करा रखखा था। राजकुमार के सोते समय सर्वेश्वरी कन्या के कमरे मे एक वार गयी, और उसे पखा झलते देख, हँसकर लौट आयी। कनक माता को देखकर उठी नही। लज्जा से आँखे झुका उसी तरह वैठी पखा झलती रही।

दो घण्टे वाद राजकुमार की आँखे खुली। देखा, कनक पखा झल रही है। वडा सकोच हुआ। उससे सेवा लेने के कारण लज्जा भी हुई। उसने कनक की कलाई पकड ली। कहा, "वस, आपको वडा कष्ट हुआ।"

एक तीर पुन कनक के हृदय-लक्ष्य को पार कर गया। चोट खा, काँपकर सँभल गयी। कहा, "आप नहाइएगा नही ?"

"हाँ, स्नान तो जरूर करूँगा, पर धोती ?"

कनक हँस पड़ी, "मेरी धोती पहन लीजिएगा।"

"मुझे इसमे कोई लज्जा नही।"

"तो ठीक है। थोडी देर मे आपकी धोती सूख जायेगी।"

कनक के यहाँ मर्दानी धोतियाँ भी थी, पर स्वाभाविक हास्य-प्रियता के कारण नहाने के पश्चात् राजकुमार को उसने अपनी ही एक धुली हुई साडी दी। राजकुमार ने भी अम्लान, अविचल भाव से वह साडी मर्दो की तरह पहन ली। नौकर मुस्किराता हुआ उसे कनक के कमरे मे ले गया।

"हमारे यहाँ भोजन करने मे आपको कोई एतराज तो न होगा ?"

"कुछ भी नही। मैं तो प्रायः होटलो मे खाया करता हूँ।" राजकुमार ने असकुचित स्वर से कहा।

"क्या आप मास भी खाते है ?"

"हाँ, मैं सक्रिय जीवन के समय मास को एक उत्तम खाद्य मानता हूँ, इसलिए खाता हूँ।"

"इस वक्त तो आपके लिए वाजार से भोजन मँगवाती हूँ, शाम को पकाऊँगी।" कनक ने विश्वस्त स्वर से कहा।

राजकुमार ने देखा, जैसे अज्ञात, अव तक अपरिचित शक्ति से उसका अग-अग कनक की ओर खिचा जा रहा था, जैसे चुम्वक की तरफ लोहे की सुइयाँ।

केवल हृदय के केन्द्र मे द्रष्टा की तरह बैठा हुआ वह उस नवीन प्रगति मे परिचित हो रहा था।

वही बैठी हुई थाली मे एक-एक खाद्य पदार्थ चुन-चुनकर कनक ने रक्खा। एक तश्तरी पर ढक्कनदार ग्लास मे बन्द वासित जल रख दिया। राजकुमार भोजन करने लगा। कनक वही एक बगल बैठकर पान लगाने लगी। भोजन हो जाने पर नौकर ने हाथ धुला दिये।

पान की रकाबी कनक ने बढ़ा दी। पान खाते हुए राजकुमार ने कहा, "आपका शकुन्तला का पार्ट उस रोज बहुत अच्छा हुआ था। हाँ, धोती तो अब सूख गयी होगी?"

"इसे ही पहने रहिए! समझ लीजिए, अब आप ही शकुन्तला हैं। निस्सन्देह आपका पार्ट बहुत अच्छा हुआ था। आप कहे, तो मैं दुष्यन्त का पार्ट करने के लिए तैयार हूँ।"

मुखर कनक को राजकुमार कोई उत्तर न दे सका।

कनक उठकर दूसरे कमरे मे गयी, और धुली हुई मर्दानी धोती ले आयी।

"इसे पहन लीजिए, यह मैली हो गयी है।" सहज आँखो ने मुस्किराकर कहा कनक ने।

राजकुमार ने धोती पहन ली। कनक फिर चली गयी। अपनी एक रेशमी चादर ले आयी।

"इसे ओढ लीजिए।"

राजकुमार ने ओढ लिया।

एक नौकर ने आकर कनक से कहा, "माजी याद कर रही हैं।"

"अभी आयी।" कहकर कनक माता के पास चली गयी।

हृदय के एकान्त प्रदेश मे जीवन का एक नया ही रहस्य खुल रहा है। वर्षा की प्रकृति की तरह जीवन की धात्री देवी नये साज से सज रही है। एक श्रेष्ठ पुरस्कार प्राप्त करने के लिए कभी-कभी, बिना उसके जाने हुए ही, लालसा के हाथ फैल जाते हैं। आज तक जिस एक ही स्रोत से बहता हुआ वह चला आ रहा था, अब एक दूसरा रुख बदलना चाहता है। एक अप्सरा-कुमारी, सम्पूर्ण ऐश्वर्य के रहते हुए भी, आँखो मे प्रार्थना की रेखा लिये, रूप की ज्योति से जगमग, मानो उसी के लिए तपस्या करती आ रही है। राजकुमार चित्त को स्थिर कर विचार कर रहा था, यह सब क्या··है? क्या इस ज्योति मे मिल जाऊँ··? न, जल जाऊँ तो? इसे निराश कर दूँ··? बुझा दूँ? न, मैं इतना कर्कश, तीव्र, निर्दय न हूँगा फिर? आह! यह चित्र कितना सुन्दर, कितना स्नेहमय है?·· इसे प्यार करूँ? न, मुझे अधिकार क्या? मैं तो प्रतिश्रुत हूँ कि इस जीवन मे भोग-विलास को स्पर्श भी न करूँ, प्रतिज्ञा·! की हुई प्रतिज्ञा से टल जाना महापाप है! और यह· स्नेह का निरादर?

कनक के भावो से राजकुमार को अब तक मालूम हो चुका था कि वह पुष्प उसी की पूजा मे चढ गया है। उसके द्वारा रक्षित होकर उसने अपनी चिर रक्षा का भार उसे सौप दिया है। उसके आकार, इंगित और गति इसकी साक्षी हैं।

राजकुमार धीर, शिक्षित युवक था। उसे कनक के मनोभावो को समझने मे देर नही लगी। जिस तरह उसके उपकार का कनक ने प्रतिदान दिया, उसकी याद कर कनक के गुणो के साथ उस कोमल स्वभाव की ओर वह आकर्षित हो चुका था। केवल लगाम अभी तक उसके हाथ मे थी। उसकी रस-प्रियता के अन्तर्लक्ष्य को ताडकर मन-ही-मन वह सुखानुभव कर रहा था, पर दूसरे ही क्षण इस अनुभव को वह अपनी कमजोरी भी समझता था। कारण, इसके पहले ही वह अपने जीवन की गति निश्चित कर चुका था—साहित्य तथा देश की सेवा के लिए वह आत्मार्पण कर चुका था। इधर कनक का इतना अधिक एहसान उस पर चढ गया था, जिसके प्रति उसकी मनुष्यता स्वत. नत-मस्तक हो रही थी। उसकी आज्ञा के प्रतिकूल आचरण की जैसे उसमे शक्ति ही न रह गयी हो। वह अनुकूल-प्रतिकूल अनेक प्रकार की ऐसी ही कल्पनाएँ कर रहा था।

सर्वेश्वरी ने कनक को सस्नेह पास बैठाकर कहा, "ईश्वर ने तुम्हे अच्छा वरदान दिया है। वह तुम्हे सुखी और प्रसन्न करे। आज एक नयी बात सुनाऊँगी। आज तक तुम्हे अपनी माता के सिवा पिता का नाम नही मालूम था। अब तुम्हारे पिता का नाम तुम्हे बता देना मेरा धर्म है। कारण, तुम्हारे कार्यो से मैं देखती हूँ, तुम्हारे स्वभाव मे पिता-पक्ष ही प्रबल है। बेटी, तुम रणजीतसिंह की कन्या हो। तुम्हारे पिता जयनगर के महाराज थे। उन दिनो मैं वही थी। उनका शरीर नही रहा। होते, तो वह तुम्हे अपनी ही देख-रेख मे रखते। आज देखती हूँ, तुम्हारे कुल के सस्कार ही तुममे प्रबल हैं। इससे मुझे प्रसन्नता है। अब तुम अपनी अनमोल, अलभ वस्तु सँभालकर रक्खो, उसे अपने अधिकार मे करो। आगे तुम्हारा धर्म तुम्हारे साथ है।"

माता की सहृदय बातो से कनक को बडा सुख हुआ। स्नेह-जल से सिक्त होकर वह बोली, "अम्मा, यह सब तो वे कुछ जानते ही नही। मैं कह भी नही सकती। किसी तरह इशारा करती हूँ, तो कोई जैसे मुझे पकडकर दबा देता है। कुछ बोलना चाहती हूँ, तो कण्ठ से आवाज ही नही निकलती।"

"तुम उन्हे कुछ दिन बहला रक्खो। समय आने पर सब बाते आप खुल जायेंगी। मैं अपनी तरफ से कोई कार्रवाई करूँगी, तो इसका उन पर बुरा असर पडेगा।"

नौकर से जेवर का बॉक्स बढा देने के लिए सर्वेश्वरी ने कहा।

आज कनक के लिए सबसे बडी परीक्षा का दिन है। आज की विजय उसकी सदा की विजय है। इस विचार से सर्वेश्वरी बडे विचार से सोने और हीरे के अनेक प्रकार के आभरणो से उसे सजाने लगी। बालो मे सुगन्धित तेल लगा, किनारे से तिरछाई माँग काढ, चोटी गूँथकर चक्राकार जूडा बाँध दिया। हीरे की कनी-जडे सोने के फूलदार काँटे जूडे मे पिरो दिये। कनक ने अच्छी तरह सिन्दूर माँग मे भर लिया। उसकी ललाई उस सिर का किसी के द्वारा कलम किया जाना सूचित कर रही थी। सर्वेश्वरी ने बसन्ती रग की साडी पसन्द की। सिर से पैर तक कनक को सजा दिया उसने।

"अम्मा, मुझे तो यह सब भार लग रहा है। मैं चल न सकूँगी।"

सर्वेश्वरी ने कोई उत्तर नही दिया। कनक राजकुमार के कमरे की ओर चली। जीने पर उतरते समय आभरणो की झकार से राजकुमार का ध्यान आकर्षित हुआ। अलकारो की मजीर-ध्वनि धीरे-धीरे निकट होती गयी। अनुमान से उसने कनक के आने का निश्चय कर लिया। दरवाजे के पास आते ही कनक के पाँव ठिठक गये। सर्वांग सकोच से शिथिल पड गया। कृत्रिमता पर बडी लज्जित हुई। मन को किसी प्रकार दृढ कर होठ काटती, मुस्किराती, वायु को केशो की सुरभि से सुगन्धित करती हुई, धीरे-धीरे चलकर गद्दी के एक प्रान्त मे, राजकुमार के बिलकुल निकट बैठ गयी।

राजकुमार ने केवल एक नजर कनक को देख लिया। हृदय ने प्रशसा की। मन ने एकटक यह छवि खीच ली। तत्काल प्रतिज्ञा के अदम्य झटके से हृदय की प्रतिमा शून्य मे परमाणुओ की तरह विलीन हो गयी। राजकुमार चुपचाप बैठा रहा। हृदय पर जैसे पत्थर रख दिया गया हो।

कनक के मन मे राजकुमार के बहलाने की बात उठी। उठकर वह पास ही रक्खा सुरबहार उठा लायी। स्वर मिलाकर राजकुमार से कहा, "कुछ गाइए।"

"मैं गाता नही, आप गाइए। बडा सुन्दर गाती है आप।" 'आप' फिर कनक के प्राणो मे चुभ गया। तिलमिला गयी। इस चोट से हृदय के तार और दर्द से भर गये। वह गाने लगी—

हमे जाना इस जग के पार।
जहाँ नयनो से नयन मिले,
ज्योति के रूप सहस्र खिले,
सदा ही बहती रे रस-धार—
वही जाना इस जग के पार।
कामना के कुसुमो को कीट
काट करता छिद्रो की छीट,
यहाँ रे सदा प्रेम की ईंट
परस्पर खुलती सौ-सौ बार।
डोल सहसा सशय मे प्राण,
रोक लेते है अपना गान,
यहाँ रे सदा प्रेम मे मान,
ज्ञान मे बैठा मोह असार।
दूसरे को कस, अन्तर तोल,
नही होता प्राणो का मोल,
वहाँ के बल केवल वे लोल
नयन दिखलाने निश्छल प्यार।

अपने मुक्त पखो से स्वर के आकाश मे उडती हुई भावना की परी को अपलक नेत्रो से राजकुमार देख रहा था। स्वर के स्रोत मे उसने भी हाथ-पैर ढीले कर दिये। अलक्ष्य अज्ञान मे बहते हुए उसे अपार आनन्द मिल रहा था। आँखो मे प्रेम का बसन्त फूट आया, सगीत मे प्रेमिका कोकिला कूक रही थी। एक साथ प्रेम की

लीला मे मिलन और विरह-प्रणय के स्नेह-स्पर्श से स्वप्न की तरह जाग उठे। सोती हुई स्मृति की विद्युत् शिखाएँ हृदय से लिपटकर लपटो मे जलने-जलाने लगी। तृष्णा की सूखी हुई भूमि पर वर्षा की धारा वह चली। दूर की किसी भूली हुई वात को याद करने के लिए, मधुर अस्फुट ध्वनि से श्रवण-सुख प्राप्त करने के लिए, दोनो कान एकाग्र हो चले। मन्त्र-मुग्ध मन मे माया का अभिराम सुख-प्रवाह भर रहा था।

वह अकम्पित-अचचल पलको मे प्रेम की पूर्णिमा मे ज्योत्स्नामृत पान कर रहा था। देह की कैसी नवीन कान्ति! कैसे भरे हुए सहज-सुन्दर अग। कैसी कटी-छटी शोभा! इसके साथ मँजा हुआ अपनी प्रगति का कैसा अवोध स्वर! जिसके स्पर्श ने जीवन अमर, मधुर कल्पनाओ का केन्द्र वन रहा है। रागिनी की तरगो से काँपते हुए उच्छ्वास, तान-मूर्च्छनाएँ उसी के हृदय-सागर की ओर अनर्गल विविध भगिमाओ से वढती चली आ रही हैं। कैसा कुशल छल! उसका सर्वस्व उससे छीन लिया, और इस दान मे प्राप्ति भी कितनी अधिक, जैसे इसके तमाम अग उसके हुए जा रहे है, और उसके इसके।

राजकुमार एकाग्रचित्त से रूप और स्वर पान कर रहा था। एक-एक शब्द से कनक उसके मर्म तक स्पर्श कर रही थी। सगीत के नशे मे, रूप के लावण्य मे, अलकारो की प्रभा से चमकती हुई कनक मरीचिका के उस पथिक को पथ से भुलाकर वहुत दूर—वहुत दूर ले गयी। वह सोचने लगा, 'यह सुख क्या व्यर्थ है ? यह प्रत्यक्ष ऐश्वर्य आकाश-पुष्प की तरह केवल काल्पनिक कहा जायेगा ? यदि इस जीवन की कान्ति हृदय के मधु और सुरभि के साथ वृक्ष पर ही सूख गयी, तो क्या फल ?'

"कनक, तुम मुझे प्यार करती हो ?" सहसा वह कह उठा।

कनक को इष्ट मन्त्र के लक्ष जप के पश्चात् सिद्धि मिली। उसके हृदय-सागर को पूर्णिमा का चन्द्र दीख पडा। उसके यौवन का प्रथम स्वप्न, सत्य के रूप मे मूर्तिमान् हो, आँखो के सामने आ गया। चाहा की जवाव दे, पर लज्जा से समस्त अग जकड-से गये। हृदय मे एक अननुभूत विद्युत् प्रवेश कर गुदगुदा रही थी। ऐसी दशा आज तक कभी न हुई थी। मुक्त आकाश मे उडती हुई रगीन परो की विहग-परी राजकुमार के मन की डाल पर वैठी थी, पर किसी जजीर से नही वँधी, किसी पिजडे मे नही आयी, पर इस समय उसी की प्रकृति उसके प्रतिकूल हो रही है। वह चाहती है, कहूँ, पर प्रकृति उसे कहने नही देती। क्या यह प्यार वह प्रदीप है, जो एक ही एकान्त गृह का अन्धकार दूर कर सकता है ? क्या वे सूर्य और चन्द्र नही, जो प्रति गृह को प्रकाशित करें ?

इस एकाएक आये हुए लाज-पाश को काटने की कनक ने वड़ी कोशिश की, पर निष्फल हुई। उसके प्रयत्न की शक्ति से आकस्मिक लज्जा के आक्रमण मे ज्यादा शक्ति थी। कनक हाथ मे सुरवहार लिये, रत्नो की प्रभा मे चमकती हुई, सिर झुकाये, चुपचाप वैठी रही। इस समय राजकुमार की तरफ निगाह भी नही उठ रही थी। मानो एक 'तुम' द्वारा जिसने उसे इतना दे दिया, जिसके भार से आप-ही-आप उसके अग दाता की दृष्टि मे नत हो गये, उस स्नेह-सुख का भाव

हटाकर आँखें उठाना उसे स्वीकार नहीं।

बडी मुश्किल से एक बार सजल, अनिमेष दृगों से, सिर झुकाये हुए ही उसने राजकुमार की ओर देखा। वह दृष्टि कह रही थी, "क्या अब भी तुम्हे अविश्वास है ?—क्या अभी और प्रमाण देने की आवश्यकता होगी ?"

उन आँखो की वाणी पढकर राजकुमार एक दूसरी परिस्थिति मे पहुँच गया। जहाँ प्रचण्ड कान्ति विवेक को पराजित कर लेती है, किसी स्नेह अथवा स्वार्थ के विचार मे दूसरी शृंखला तोड दी जाती है, अनावश्यक परिणाम को एक भूल समझकर।

सन्ध्या हो रही थी। सूर्य की किरणो का तमाम सोना कनक के सोने के रग मे, पीत सोने-सी साडी और सोने के रत्नाभूषणो मे, मिलकर अपनी सुन्दरता एव अपना प्रकाश देखना चाहता था, और कनक चाहती थी, सन्ध्या के स्वर्ण-लोक मे अपने सफल जीवन की प्रथम स्मृति को हृदय मे सोने के अक्षरो से लिख ले।

इगित से एक नौकर को बुला कनक ने पढने के कमरे से कागज, कलम और दावात ले आने के लिए कहा। सुरवहार वहीं, गद्दी पर, एक बगल रख दिया। नौकर कुल सामान ले आया।

कनक ने कुछ लिखा, और गाडी तैयार करने की आज्ञा दी। कागज नौकर को देते हुए कहा, "यह सामान नीचे की दूकान मे जल्द ले आओ।"

राजकुमार को कनक की शिक्षा के बारे मे अधिक ज्ञान न था। वह उसे साधारण पढी-लिखी स्त्री मे शुमार कर रहा था।

कनक जब लिख रही थी, तब लिपि देखकर उसे मालूम हो गया कि कनक अँगरेजी जानती है। लिखावट सुन्दर, सधी हुई दूर से मालूम दे रही थी।

"अब हवाखोरी का समय है।" कनक एक भार-सा अनुभव कर रही थी, जो बोलते समय उसके शब्दो पर भी अपना गुरुत्व रख रहा था। राजकुमार के सकोच की अर्गला, कनक के आदर, शिष्टता और स्वभाव के अकृत्रिम प्रदर्शन से आप-ही-आप खुल गयी। यो भी वह एक बहुत ही स्पष्ट, स्वतन्त्र प्रकृति का युवक था। अनावश्यक सभ्यता का प्रदर्शन उसमे नाम-मात्र को न था। जब तक वह कनक को समझ न सका, उसने शिष्टाचार बरता। फिर घनिष्ठ परिचय के पश्चात्, अभिनय से सत्य की कल्पना लेकर, दोनो ने एक-दूसरे के प्रति कार्यत जैसा प्रेम सूचित किया था, राजकुमार उससे कनक के प्रसग की बिलकुल खुले हुए प्रवाह की तरह, हवा की तरह स्पर्श कर, बहने लगा। वह देखता था, उससे कनक प्रसन्न होती है, यद्यपि उसकी प्रसन्नता बाढ के जल की तरह उसके हृदय के कूलो को छापकर नही छलकने पाती। केवल अपने सुख की पूर्णता, अपनी अन्तस्तरगो की टलमल, प्रसन्नता अपनी सुखद स्थिति का ज्ञान-मात्र करा देती है।

"तुम अँगरेजी जानती हो, मुझे नही मालूम था।"

कनक मुस्किरायी, "हाँ, मुझे कैथरिन घर पर पढा जाया करती थी। थोडे ही दिन हुए, मैंने पढना बन्द किया है। हम लोगो के साथ, अदालत से आते समय कैथरिन ही थी।"

राजकुमार के मानसिक सम्मान मे कनक का दर्जा बढ गया। उसने उस ग्रन्थ

को पूर्णतया नही पढा, इस अज्ञान-मिश्रित दृष्टि मे कनक को देख रहा था। उसी समय नौकर एक कागज मे बँधा हुआ कुछ सामान लाकर कनक के सामने रख गया।

कनक ने उसे खोलकर देखा। फिर राजकुमार से कहा, "लीजिए, पहन लीजिए। शाम हो रही है, टहल आवें प्रिंस-ऑफ-वेल्स घाट की तरफ।"

राजकुमार को बडा सकोच मालूम हुआ। पर कनक के आग्रह को टाल न सका वह। चुपचाप नये वस्त्र और जूते पहन लिये।

कनक ने कपडे नही बदले। उन्ही वस्त्रो मे वह उठकर खडी हो गयी। राजकुमार के सामने ही एक बडा शीशा दीवार पर लगा था। कनक इस तरह खडी हुई कि उसकी साडी और कुछ दाहने अग राजकुमार के आधे अगो से छू गये। वह उसी तरह खडी हुई हृदय की आँखो से राजकुमार की दर्पण की आँखे देख रही थी। वहाँ उसे जैसे लज्जा न थी। राजकुमार ने भी छाया की कनक को देखा। दर्पण मे चार असकुचित नेत्र, जिनमे एक ही मर्म, एक ही स्नेह का प्रकाश था, मुस्किरा उठे।

अलकारो के भार से कनक की सरल गति कुछ मन्द पड गयी थी। राजकुमार को बुलाकर वह नीचे उतरने लगी। कुछ देर तक खडा वह उसे देखता रहा। कनक नीचे उतर गयी। राजकुमार भी चला।

कार तैयार खडी थी। अर्दली ने पीछे की सीट का द्वार खोल दिया। कनक ने राजकुमार को बैठने के लिए कहा। राजकुमार बैठ गया। लोगो की भीड लग रही थी। अवाक् नेत्रो से आला-अदना सभी कनक को देख रहे थे। राजकुमार के बैठ जाने पर कनक भी वही एक बगल बैठ गयी। आगे की सीट पर, ड्राइवर की बायी तरफ, अर्दली भी बैठ गया। गाडी चल दी। राजकुमार ने पीछे किसी को कहते हुए सुना, "वाह रे तेरे भाग!"

गाडी वेलिंगटन-स्ट्रीट मे होकर धरमतल्ले की तरफ दौडने लगी।

सूर्य की अन्तिम किरणें दोनो के मुख पर सीधी पड रही थी, जिससे कनक पर लोगो की निगाह नही ठहरती थी। सामने खडे लोग उसे एकटक देखते रहते। इस प्रकार आभूषणो से सजी हुई महिला को अनवगुण्ठित, निस्त्रस्त, चितवन, स्वतन्त्र रूप से, खुली मोटर पर विहार करते प्रायः किसी ने नही देखा था। इस अकाट्य युक्ति को कटी हुई प्रमाण के रूप मे प्रत्यक्ष कर लोगो को बडा आश्चर्य हो रहा था। कनक के वेश मे उसके मातृपक्ष की तरफ जरा भी इशारा न था। कारण, उसके मस्तक का सिन्दूर ऐसे समस्त सन्देह की जड काट रहा था। कलकत्ता की अपार जनता की मानस प्रतिमा बनी हुई, अपने नवीन नयनो की स्निग्ध किरणो से दर्शको को प्रसन्न करती, कनक किले की तरफ जा रही थी।

कितने ही, छिपकर आँखो से रूप पीनेवाले, मुँहचोर, हवाखोर, उसकी मोटर के पीछे अपनी गाडी लगाये हुए, अनर्गल शब्दो मे उसकी समालोचना करते हुए, उच्च स्वर से कभी-कभी सुनाते हुए भी चले जा रहे थे। गाडी इडेन-गार्डेन के पास से गुजर रही थी।

"अभी वह स्थान—देखिए—नही देख पडता।" कनक ने राजकुमार का

हाथ पकड़कर कहा।

"हाँ, पेड़ों की आड है। यह क्रिकेट ग्राउण्ड है। वह क्लब है, जो पत्तियों में हरा-हरा दिखायी दे रहा है। एक बार फर्स्ट बटानियन से यहीं हम लोगों का फाइनल कूचविहार-शील्ड-मैच हुआ था।" भूली बात के आकस्मिक स्मरण से राजकुमार का स्वर कुछ मन्द पड रहा था।

"आप किस टीम मे थे ?"

"विद्या-सागर-कॉलेज की टीम मे। तब मैं चौथे वर्ष मे था।"

"स्कोर क्या रहा ?"

"356—130 मे हम लोग जीते थे।"

"बडा डिफरेंस रहा।"

"हाँ।"

"किसी ने सेंचुरी भी की थी ?"

"हाँ, इसी मे तो इतना अन्तर आ गया था। हमारे प्रो बनर्जी बॉलिंग बहुत अच्छी करते थे।"

"सेंचुरी किसने की थी ?"

राजकुमार कुछ देर चुप रहा। फिर धीमे, सहज कण्ठ से कहा, "मैंने।"

गाडी अब प्रिंस-ऑफ्-वेल्स-घाट के सामने थी।

कनक ने ड्राइवर को आदेश दिया, "इडेन-गार्डेन लौट चलो।"

ड्राइवर ने मोटर घुमा दी।

राजकुमार किले के बेतार-के-तारवाले ऊँचे खम्भे को देख रहा था। कनक की ओर देखकर कहा, "इसकी कल्पना पहले हमारे जगदीशचन्द्र वसु के मस्तिष्क में आयी थी।"

मोटर बढाकर ड्राइवर ने गेट के पास रोक दी। राजकुमार उतरकर कलकत्ता ग्राउण्ड का हो-हल्ला सुनने लगा।

कनक ने कहा, "क्या आज कोई विशेष मैच था ?"

"मालूम नही। लगता है, मोहनबागान तथा कलकत्तालीग मे मैच हो रहा है, और शायद मोहनबागान ने गोल किया है। जीतने पर अँगरेज इतना हल्ला नही करते।"

दोनो धीरे-धीरे सामने बढने लगे। मैदान बीच से पार करने लगे। किनारे की कुर्सियो पर बहुत-से लोग बैठे थे। कोई-कोई टहल रहे थे। पश्चिम की ओर योरपियन उनकी महिलाएँ और बालक थे, पूर्व की कतार मे बंगाली, हिन्दोस्तानी, गुजराती, मराठी, मदरासी, पंजाबी, मारवाडी, सिन्धी आदि मुक्त कण्ठ से अपनी-अपनी मातृभाषा का महत्त्व प्रकट कर रहे थे। सहसा इन सबकी दृष्टि के आकर्षण का मुख्य केन्द्र उस समय कनक हो गयी। श्रुत-अश्रुत, स्फुट-अस्फुट अनेक प्रकार की, समीचीन-अर्वाचीन आलोचना-प्रत्यालोचनाएँ सुनती हुई, निस्संकोच, अम्लान, निर्भय, वीतराग, धीरे-धीरे, राजकुमार का हाथ पकडे हुए, कनक फव्वारे की तरफ बढ रही थी। युवक राजकुमार की आँखो मे वीर्य, प्रतिभा, उच्छृंखलता और तेज झलक रहा था।

"उधर चलिए।" कनक ने एक कुज की ओर इशारा किया। दोनो उधर ही वढ चले।

दूसरा छोटा मैदान पार कर दोनो उसी पूर्व-परिचित कुंज की ओर वढे। बेंच खाली पडी थी। दोनो वैठ गये। सूर्यास्त हो चुका था। वत्तियाँ जल चुकी थी। कनक मजवूती से राजकुमार का हाथ पकडे हुए पुल के नीचे से डाँड वन्द कर आते हुए नाव पर कुछ नवयुवको को देख रही थी। वे नाव घाट की तरफ ले गये। राजकुमार एक दूसरी वेच पर वैठे हुए एक नवीन योरपीय जोडे को देख रहा था। वह वेच पुल के उस तरफ, खुली जमीन पर, खाई के किनारे थी।

"आपने यही मेरी रक्षा की थी।" कुछ भरे हुए सहज स्वर मे कनक ने कहा।

"दैव-योग मे मैंने देख लिया था, अन्यथा· ·"

"अव आपको सदा मेरी रक्षा करनी होगी।" कनक ने राजकुमार के हाथ को मुट्ठी मे जोर से दवाया।

राजकुमार कुछ न वोला, सिर्फ कनक के स्वर से कुछ सजग होकर उसकी तरफ निहारा। उसके मुख पर बिजली का प्रकाश पड रहा था। आँखें एक दूसरी ही ज्योति से चमक रही थी, जैसे वह एक प्रतिज्ञा की मूर्ति देख रहा हो।

"तुमने भी मुझे वचाया है।"

"मैंने तो अपने स्वार्थ के लिए आपको वचाया।"

"तुम्हारा कौन-सा स्वार्थ ?"

कनक ने सिर झुका लिया। कहा, "मैंने अपना धर्म-पालन किया।"

"हाँ, तुमने उस दिन के उपकार का पूरे अशो मे वदला चुका दिया।"

कनक काँप उठी। 'कितने कठोर होते है पुरुष! इन्हे सँभलकर वार्तालाप करना नही आता। क्या यही यथार्थ उत्तर है?' कनक सोचती रही। फिर तमक-कर कहा, "हाँ, मैंने ठीक वदला चुकाया, मैं भी स्त्री हूँ।" उसने राजकुमार का हाथ छोड दिया।

राजकुमार को कनक के कर्कश स्वर से सख्त चोट लगी। चोट खाने की आदत न थी। आँखें चमक उठी। हृदय-दर्शी की तरह मन ने कहा, 'इसने ठीक उत्तर दिया, वदले की वात तुम्ही ने तो उठायी थी।' राजकुमार के अग शिथिल पड गये।

कनक को अपने उत्तेजित उत्तर के लिए कष्ट हुआ। उसने पुन राजकुमार का हाथ पकड स्नेह-सिक्त, कोमल स्वर मे कहा, "वदला क्या! क्या मेरी रक्षा किसी आकाक्षा के विचार से तुमने की थी ?"

'तुमने!' राजकुमार का सम्पूर्ण तेज पिघलकर 'तुमने' मे वह गया। हाथ आप-ही-आप उठकर कनक के कन्धे पर ठहर गया। विवश कण्ठ ने आप-ही-आप कहा, "क्षमा करो, गलती मेरी थी।"

सामने से विजली की रोशनी और पत्तो के वीच मे हँसती हुई चन्द्रज्योत्स्ना दोनो के मुख पर पड रही थी। पत्रो के मर्मर से मुखर वहती हुई अदृश्य हवा डालियो, पुष्प-पल्लवो और दोनो के वँधे हुए हृदयो को सुख की लालसा से स्नेह के झूले मे हिलाकर चली गयी। दोनो कुछ देर चुपचाप वैठे रहे।

दोनो स्नेह-दीप के प्रकाश मे, एकान्त हृदय के कक्ष मे, परिचित हो गये। कनक पति की पावन मूर्ति देख रही थी, और राजकुमार प्रेमिका की नरम, लावण्यमयी, अपराजित आँखें—ससार के प्रलय से बचने के लिए उसके हृदय मे लिपटी हुई एक कृशांगी सुन्दरी।

"एक बात पूछूँ ?" कनक ने राजकुमार के कन्धे पर ठोढी रखते हुए पूछा।

"पूछो।"

"तुम मुझे क्या समझते हो ?"

"मेरी सुबह की पलको पर उषा की किरण।" राजकुमार कहता गया, "मेरे साहित्यिक जीवन-सग्राम की विजय।"

कनक के सूखे कण्ठ की तृष्णा को केवल तृप्त हो रहने को जल था; पूरी तृप्ति का भरा हुआ तडाग अभी दूर था।

राजकुमार कहता गया, "मेरी आँखो की ज्योति, कण्ठ की वाणी, शरीर की आत्मा, कार्य की सिद्धि, कल्पना की तस्वीर, रूप की रेखा, डाल की कली, गले की माला, स्नेह की परी, जल की तरग, रात की चाँदनी, दिन की छाँह···।"

"बस-बस ! इतनी कविता एक ही साथ कि मैं याद भी न कर सकूँ। कवि लोग, सुनती हूँ, दो-ही-चार दिन मे अपनी ही लिखी हुई पक्तियाँ भूल जाते हैं।"

"पर कविता तो नही भूलते ?"

"तब काव्य की प्रतिमा उनके सामने दूसरे ही रूप मे खडी होती है।"

"कवि एक ही सरस्वती मे समस्त मूर्तियो का समावेश देख लेते हैं।"

"और यदि मानसिक विद्रोह के कारण सरस्वती के अस्तित्व पर भी सन्देह ने सिर उठाया ?"

"तो पक्की लिखा-पढी भी बेकार है। कारण, किसी अदालत का अस्तित्व मानने-न-मानने पर ही स्थिर है।"

कनक चुप हो गयी। एक घण्टा रात बीत चुकी थी। उसे अपनी प्रतिज्ञा याद आयी। कहा, "आज मैंने कहा था, तुम्हे खुद पकाकर खिलाऊँगी। अब चलना चाहिए।"

राजकुमार उठकर खडा हो गया। कनक भी खडी हुई। राजकुमार का बायाँ हाथ अपने दाहने हाथ मे लपेट, चाँदनी मे चमकती, लावण्य की नयी लता-सी हिलती-डोलती सडक की तरफ चली।

"मै अब भी तुम्हे नही समझ सका, कनक !"

"मैं कोई गूढ समस्या बिल्कुल नही हूँ। तुम मुझी से मुझे समझ सकते हो, उसी तरह, जैसे अपने को आईने से, और तुम्हारे-जैसे आदमी के लिए, जिसने मेरे जीवन के कुछ अक पढे हो, मुझे न समझ सकना मेरे लिए भी वैसे ही रहस्य की सृष्टि करना है। और, यह जानकर तुम्हे कुछ लज्जा होगी कि तुम मुझे नही समझ सके, पर अब मेरे लिए तुम्हे समझने की कोई दुरूहता नही रही।"

"तुमने मुझे क्या समझा ?"

"यह मैं नही बतलाना चाहती। तुम्हे मैंने···न, नही बतलाऊँगी।"

"क्यो, क्यो नही बतलाइएगा ? मैं भी आज सुनकर ही छोडूँगा।"

राजकुमार, कनक को पकडकर, फव्वारे के पास खडा हो गया। उस समय वहाँ दूसरा कोई न था।

"चलो भी—सच, वडी देर हो रही है—मुझे अभी बडा काम है।"

"नही, अव वतलाना होगा।"

"क्या ?"

"यही, आप मुझे क्या समझी ?"

"क्या समझी ?"

"हाँ, क्या समझी ?"

"लो, कुछ नही समझे, यही समझे।"

"अच्छा, अव गायरी होगी ?"

"तभी तो आपके सव रूपो मे कविता वनकर रहा जायेगा। नही, अव ठहरना ठीक नही। चलो। अच्छा-अच्छा, नाराजगी ठीक नही, मैंने तुम्हे दुष्यन्त समझा! कहो, वात अव भी साफ नही हुई ?"

"कहाँ हुई ?"

"और समझाना मेरी शक्ति से वाहर है। समय आया, तो समझा दिया जायेगा।"

राजकुमार मन-ही-मन मे सोचता रहा, 'दुष्यन्त का पार्ट जो मैने किया था, इसने उसका मजाक तो नही उडाया ? अभिनय कही-कही विगड जो गया था। और ? और क्या वात होगी ?' राजकुमार जितना ही वुनता, कल्पना-जाल उतना ही जटिल होता जा रहा था। दोनो गाडी के पास आ गये। अर्दली ने दरवाजा खोल दिया। दोनो बैठ गये। मोटर चल दी।

दस

घर आकर कनक ने राजकुमार को अपने पढनेवाले कमरे मे छोड दिया। स्वय माता के पास चली गयी। नौकर ने आलमारियाँ खोल दी। राजकुमार किताबें निकालकर देखने लगा। अँगरेजी-साहित्य के वडे-वडे कवि, नाटककार और उपन्यासकारो की कृतियाँ थी। दूसरे देशो के वडे-वडे साहित्यिको के अँगरेजी अनुवाद भी रक्खे थे। राजकुमार आग्रहपूर्वक किताबो के नाम देखता रहा।

कनक माता के पास गयी। सर्वेश्वरी ने सस्नेह कन्या को पास बैठा लिया।

"कोई तकरार तो नही की ?" माता ने पूछा।

"तकरार कैसी, अम्मा! पर उडता हुआ स्वभाव है, यह पीजडेवाले नही हो सकते!" कनक ने लज्जा से रुकते हुए स्वर मे कहा।

कन्या के भविष्य-सुख की कल्याण-कल्पना से माँ की आँखो मे चिन्ता की

रेखा अंकित हो गयी। "तुम्हें प्यार तो करते हैं न ?" पुन प्रश्न किया उसने।

कनक का सौन्दर्य-दीप्त मस्तक आप-ही-आप झुक गया, "हाँ, बड़े सहृदय हैं, पर दिल मे एक आग है, जिसे मैं बुझा नही सकती। और, मेरे विचार से उस आग को बुझाने की कोशिश मे मुझे अपनी मर्यादा से गिर जाना होगा। मैं ऐसा नही कर सकूँगी। चाहती भी नही। बल्कि देखती हूँ, मैं स्वभाव के कारण कभी-कभी उसमे हवा का काम कर जाती हूँ।"

"इसीलिए तो मैंने तुम्हे पहले समझाया था, पर तुम्हे अब अपनी तरफ से कोई शिक्षा मैं नही दे सकती।"

"आज अपने हाथो पकाया भोजन खिलाने का वादा किया है, अम्मा!" कनक उठकर खडी हो गयी। कपड़े बदलकर नहाने के कमरे मे चली गयी। नौकर को तिमजिलेवाले खाली कमरे मे भोजन का कुछ सामान तैयार रखने को कहा।

राजकुमार एक कुर्सी पर बैठा सवाद-पत्र पढ रहा था। हिन्दी और अँगरेजी के कई पत्र कायदे मे टेबिल पर रक्खे थे। एक पत्र मे बड़े-बड़े अक्षरो मे लिखा था —

"चन्दनसिंह गिरफ्तार!"

आग्रह-स्फारित नेत्रो से एक साँस मे राजकुमार कुछ इबारत पढ गया। लखनऊ-षड्यन्त्र के मामले मे चन्दन गिरफ्तार किया गया था। दोनो एक ही साथ कॉलेज मे पढते थे। दोनो एक ही दिन अपने-अपने लक्ष्य पर पहुँचने के लिए मदान मे आये थे। चन्दन राजनीति की तरफ गया था, राजकुमार साहित्य की तरफ। चन्दन का स्वभाव कोमल था, हृदय उग्र। व्यवहार मे उसने कभी किसी को नीचा नही दिखाया। राजकुमार को स्मरण आया, वह जब उससे मिलता, झरने की तरह शुभ्र, स्वच्छ बहती हुई अपने स्वभाव की जल-राशि मे नहला वह उसे शीतल कर देता था। वह सदा ही उसके साहित्यिक कार्यो की प्रशसा करता रहता है। उसे वसन्त की शीतल हवा मे सुगन्धित पुष्पो के प्रसन्न कौतुक-हास्य के भीतर के कोयलो, पपीहो तथा अन्यान्य वन्य विहगो के स्वागत-गीत मे मुखर डालो की छाया मे होकर गुजरनेवाला देव-लोक का यात्री ही कहता रहा है, और अपने को ग्रीष्म के तपे हुए मार्ग का पथिक, सम्पत्तिवालो की क्रूर हास्य-कुंचित दृष्टि मे फटा निस्सम्मान भिक्षुक, गली-गली की ठोकरें खाता हुआ, मारा-मारा फिरनेवाला, रसलेशरहित ककाल बतलाया करता था। वही मित्र, दुख के दिनो का वही साथी, सुख के समय का वही सयमी आज निस्सहाय की तरह पकड लिया गया!

राजकुमार क्षुब्ध हो उठा। अपनी स्थिति से उसे घृणा हो गयी। एक तरफ उसका वह मित्र था, और दूसरी तरफ माया के परिमल वसन्त मे कनक के साथ वह? छि-छि, वह और चन्दन ?

राजकुमार की वृत्तियाँ एक ही अकुश से सतर्क हो गयी। उसकी प्रतिज्ञा घृणा की दृष्टि से उसे देख रही थी, 'साहित्यिक! तुम कहाँ हो? तुम्हे केवल रस-प्रदान करने का अधिकार है, रस-ग्रहण करने का नही।'

उसकी प्रकृति उसका तिरस्कार करने लगी, 'आज आँसुओ मे अपनी शृगार-छवि देखने के लिए आये हो? कल्पना के प्रासाद-शिखर पर एक दिन एकाकी देवी

के रूप से तुमने पूजा की, आज दूसरी को प्रेयसी के रूप से हृदय से लगाना चाहते हो ! छि-छि, ससार मे सहस्रो प्राणो के पावन सगीत तुम्हारी कल्पना से निकलने चाहिए। कारण, वहाँ साहित्य की देवी—सरस्वती ने अपना अधिष्ठान किया, जिनका सभी के हृदयो मे सूक्ष्म रूप से वास है। आज तुम इतने सकुचित हो गये कि उस समस्त प्रसार को सीमित कर रहे हो ? श्रेष्ठ को इस प्रकार बन्दी करना असम्भव है, शीघ्र ही तुम्हे उस स्वर्गीय शक्ति से रहित होना होगा। जिस मेघ ने वर्षा की जलद राशि वाष्प के आकार से सचित कर रक्खी थी, आज यह एक ही हवा चिरकाल के लिए उसे तृष्णार्थ भूमि के ऊपर से उडा देगी।'

राजकुमार त्रस्त हो उठा। हृदय ने कहा, गलती की। निश्चय ने सलाह दी, प्रायश्चित्त करो। बन्दी की हँसती हुई आँखो ने कहा, 'साहित्य की सेवा करते हो न मित्र ? मेरी मा थी जन्मभूमि, और तुम्हारी मा भाषा। देखो, आज माता ने एकान्त मे मुझे अपनी गोद मे, अन्धकार की गोद मे छिपा रक्खा है, तुम अपनी माता के स्नेह की गोद मे प्रसन्न हो न ?'

व्यग्य के सहस्रो शूल एक साथ चुभ गये। जिस माता को वह राजराजेश्वरी के रूप मे ज्ञान की सर्वोच्च भूमि पर अलकृत बैठी हुई देख रहा था, आज उसी के नयनो मे पुत्र की दशा पर करुणाश्रु वरस रहे थे। एक ओर चन्दन की समादृत मूर्ति देखी, दूसरी ओर अपनी तिरस्कृत।

राजकुमार अधीर हो गया। देखा, सहस्रो दृष्टियाँ उसकी ओर इगित कर रही है—यही है, यही है—इसी ने प्रतिज्ञा की थी, देखा, इसके कुल अग गल गये हैं। लोग उसे देखकर घृणा से मुँह फेर लेते हैं। मस्तिष्क पर जोर देकर, आँखें फाडकर देखा, साक्षात् देवी एक हाथ मे पूजार्घ्य की तरह थाली लिये हुए, दूसरे मे वासित जल, कुल रहस्यो की एक ही मूर्ति मे निस्सशय उत्तर की तरह धीरे-धीरे, प्रशान्त हेरती हुई, अपने अपार सौन्दर्य की आप ही उपमा, कनक आ रही थी। जितनी दूर—जितनी दूर भी निगाह गयी, कनक साथ-ही-साथ, अपने परमाणुओ मे फैलती हुई, दृष्टि की शान्ति की तरह, चलती गयी। चन्दन, भाषा-भूमि, कही भी उसकी प्रगति प्रतिहत नही। सबने उसे बडे आदर तथा स्नेह की स्निग्धदृष्टि से देखा, पर राजकुमार के लिए सर्वत्र एक ही-सा व्यग्य, कौतुक और हास्य !

कनक ने टेबिल पर तश्तरी रख दी। एक ओर लोटा रख दिया। नौकर ने ग्लास दिया, भरकर ग्लास भी रख दिया।

"भोजन कीजिए।" शान्त दृष्टि से राजकुमार को देख रही थी वह।

राजकुमार उद्विग्न था। उसके हाथ, उसकी आँखें, उसकी इन्द्रिय-तन्त्रियाँ उसके वश मे न थी। विद्रोह के कारण सब विशृंखल हो गयी थी। उनका सम्राट् ही उस समय दुर्बल हो रहा था। भर्रायी आवाज से कहा, "नही खाऊँगा।"

कनक तड़प उठी।

"क्यो ?"

"इच्छा नही।"

"आखिर कोई वजह ?"

"कोई वजह नही।"

कनक सहम गयी। क्या जिसे होटल मे खाते हुए कोई सकोच नही, वह विना किसी कारण उसका पकाया भोजन नही खा रहा ?

"कोई वजह नही ?" कनक कुछ कर्कश स्वर से बोली।

राजकुमार के सिर पर जैसे किसी ने लाठी मार दी। उसने कनक की तरफ देखा, आँखो मे दोपहर की लपटे निकल रही थी।

कनक डर गयी। खोजकर भी उसने अपना कोई कसूर नही पाया। आप-ही-आप साहस ने उमडकर कहा, खायेगे कैसे नही !

"मेरा पकाया हुआ है।"

"किसी का हो।"

"किसी का हो ! यह कैसा उत्तर ?" कनक कुछ सकुचित हो गयी। अपने जीवन पर सोचने लगी। खिन्न हो गयी। माता की वात याद आयी, वह महाराज-कुमारी है। आँखो मे साहस चमक उठा।

राजकुमार तमककर खडा हो गया। दरवाजे की तरफ वढा। कनक वही मूर्तिवत्, निर्वाक्, अनिमेष नेत्रो से राजकुमार के आकस्मिक परिवर्तन को पढ रही थी। चलते देख स्वभावत वढकर उसे पकड लिया।

"कहाँ जा रहे हो ?"

"छोड दो।"

"क्यो ?"

"छोड दो।"

राजकुमार ने झटका दिया, कनक का हाथ छूट गया। कलाई दरवाजे से लगी। चूडी फूट गयी। हवा मे पीपल के पत्ते की तरह शका से हृदय काँप उठा। चूडी कलाई मे गड गयी थी, खून वह निकला।

राजकुमार का किसी भी तरफ ध्यान न था। वह वरावर वढता गया। कलाई का खून झटकते हुए कनक ने वढकर वाँहो मे वाँध लिया उसे।

"कहाँ जाते हो ?"

"छोड दो।"

कनक फूट पडी। आँसुओ का तार वँध गया। नि शब्द कपोलो से वहते हुए कई वूँद आँसू राजकुमार की दाहिनी भुजा पर गिरे। राजकुमार की जलती आग पर आकाश के शिशिरकणो का कुछ भी असर न पडा।

"नही खाओगे ?"

"नही।"

"आज यही रहो। वहुत-सी वातें है, सुन लो, फिर कभी न आना। मैं हमेशा तुम्हारी राह छोड दिया करूँगी।"

"नही।"

"नही ?"

"नही।"

"क्यो ?"

"तवियत।"

"तवियत ?"

"हाँ।"

"जाओ।"

कनक ने छोड दिया। उसी जगह, तस्वीर की तरह खडी आँसुओ के धुन्ध से, एकटक देखती रही। राजकुमार सीधा नीचे उतर आया। दरवाजे से कुछ ही दूर तीन-चार आदमी खडे आपस मे बातें कर रहे थे—

"उस रोज गाना नही सुनाया।"

दूसरे ने कहा, 'घर मे कोई रहा होगा, इसीलिए वहाना कर दिया कि तवियत अच्छी नही।"

तीसरा वोला, "लो, एक यह जा रहे हैं!"

"अजी, यह कहाँ जायेंगे ? वेटा निकाल दिये गये होगे। देखो न, सूरत क्या कहती है।"

राजकुमार सुनता जा रहा था। पास ही एक मोटर खडी थी। फुटपाथ पर खडे ये चारो वातें कर रहे थे। घृणा से राजकुमार का अग-अग जल उठा। इन वातो से क्या उसके चरित्र पर कही सन्देह करने की जगह रह गयी ? इससे भी वडा प्रमाण और क्या होगा···? छि इतना पतन भी राजकुमार-जैसा दृढ-प्रतिज्ञ सह सकता है ? उसे लगा कि किसी अन्ध-कारागार से मुक्ति मिली, उसका उतनी देर के लिए रौरवभोग था, समाप्त हो गया।

वह सीधे कार्नवालिस स्ट्रीट की तरफ चला। चोरवागान, अपने डेरे, पर पहुँच ससकोच कपडे उतार दिये, धोती वदल डाली। नये कपडे लपेटकर नीचे, एक वगल, जमीन पर रर दिये। हाथ-पैर धो अपनी चारपाई पर लेट रहा। विजली की वत्ती जल रही थी।

चन्दन की याद आयी। विजली से खिंची हुई-सी कनक यहाँ अपने प्रकाश मे चमक उठी। राजकुमार जितनी ही घृणा, जितनी ही उपेक्षा कर रहा था, वह उतनी ही चमक रही थी। आँखो से चन्दन का चित्र उस प्रकाश मे छाया की तरह विलीन हो जाता, केवल कनक रह जाती थी। कान वरावर उस मधुर स्वर को सुनना चाहते थे। हृदय मे निरन्तर प्रतिध्वनि होने लगी, 'आज यही रहो। वहुत-सी वाते है, सुन लो, फिर कभी न आना मैं हमेशा ही तुम्हारी राह छोड दिया करूँगी।'

राजकुमार ने नीचे देखा, अखवारवाला झरोखे से उसका अखवार डाल गया था। उठाकर पढने लगा। अक्षर लकीर-से मालूम पडने लगे। जोर से पलके दवा ली। हृदय मे उदास खडी कनक कह रही थी, "आज रहो ··।" राजकुमार उठकर वैठ गया। एक कुर्ता निकालकर पहनते हुए घडी की तरफ देखा, ठीक दस का समय था। वॉक्स खोलकर कुछ रुपये निकाले। स्लीपर पहनकर वत्ती वुझा दी। दरवाजा वन्द कर दिया। वाहर सडक पर आ खडा देखता रहा।

'टैक्सी!"

टैक्सी खडी हो गयी. राजकुमार वैठ गया।

"कहाँ चलियेगा ?"

"भवानीपुर।"

टैक्सी एक दुमजिले मकान के गेट के सामने, फुटपाथ पर, खडी हुई। राजकुमार ने भाडा चुका दिया। दरवान के पास जा खवर देने के लिए कहा।

"अरे भैया, यहाँ वडी आफत रही, अव आपको मालूम हो जायेगा। माताजी को साथ लेकर बडे भैया लखनऊ चले गये हैं। घर मे वहूरानी अकेली है।" एक साँस मे दरवान सुना गया।

फिर दौडता हुआ मकान के नीचे से पुकारने लगा, "महरी, ओ महरी! सो गयी क्या?"

महरी नीचे आयी।

"क्या है? इतनी रात को महरी, ओ महरी।"

"अरे भई, खफा न हो, जरा वहूरानी को खबर कर दे, रज्जू वावू खडे है।"

"यह बात नीचे से नही कह सकते थे?" तीन जगह से लोच खाती हुई, खासतौर से दरवान को अपनी नजाकत दिखाने के उद्देश्य से, महरी चली गयी। इस दरबान से उसका कुछ प्रेम था, पर ध्वनि-तत्त्व के जानकारो को इस दरवान के प्रति वढते हुए अपने प्रेम का पता लगाने का मौका अपने ही गले की आवाज से वह किसी तरह भी न देती थी।

ऊपर से उतरकर दासी राजकुमार को साथ ले गयी। साफ, अल्पसज्जित एक वडे-से कमरे मे 21-22 साल की एक सुन्दरी युवती पलँग पर, सन्ध्या की सकुचित सरोजनी की तरह, उदास वैठी हुई थी। पलको के पत्र आँसुओ के शिशिर से भारी हो रहे थे। एक ओर एक विशृंखल अँगरेजी सवाद-पत्र पडा हुआ था।

"कई रोज बाद आये रज्जू वावू! अच्छे तो हो न?" युवती ने सहज धीमे स्वर से पूछा।

"जी।" राजकुमार ने पलँग के पास जा, हाथ जोड सिर झुका दिया।

"वैठो।" कन्धे पर हाथ रख युवती ने प्रति-नमस्कार किया। पास की एक कुर्सी, पलँग के विलकुल नजदीक खीचकर राजकुमार वैठ गया।

"रज्जू वावू, तुम वडे मुरझाये हुए हो। चार ही रोज मे आधे रह गये, क्या वात है?"

"तवियत अच्छी नही थी।" इच्छा रहते हुए भी राजकुमार को अपनी विपत्ति सुनाना अनुचित जान पडा।

"कुछ खाया तो क्यो होगा?" युवती ने सस्नेह पूछा।

"नही, इस वक्त नही खाया।" राजकुमार ने चिन्ता से सिर झुका लिया।

"महरी!"

महरी सुखासन मे वैठी हुई कुछ बीडो मे चूना और कत्था छोड चिट्ट-चिट्ट सुपारी कतर रही थी। आवाज पा, सरौता रखकर दौडी।

"जी।" महरी पलँग के वगल मे खडी हो गयी।

"मिठाई, नमकीन और कुछ फल तश्तरी मे ले आ।"

महरी चली गयी।

"हम लोग तो वडी विपत्ति मे फँस गये है, रज्जू वावू! अखवार मे तुमने

पढा होगा।"

"हाँ, अभी ही पढा है, पर विशेष बातें कुछ समझ नही सका।"

'मुझे भी नहीं मालूम। छोटे बाबू ने तुम्हारे भैया को लिखा था कि वहाँ किसानो का सगठन कर रहे है। इसके बाद ही सुना, लखनऊ-षड्यन्त्र मे गिरफ्तार हो गये।" कहते-कहते युवती की आँखे भर आयी।

राजकुमार ने एक लम्बी साँस ली। कुछ देर कमरा प्रार्थना-मन्दिर की तरह निस्तब्ध रहा।

"बात यह है कि राजकर्मचारी बहुत जगह, अकारण ही लांछन लगाकर, दूसरे विभाग के कार्यकर्त्ताओ को भी पकड लिया करते है।"

"अभी तो ऐसा ही जान पडता है।"

"ऐसी ही बात होगी, बहूजी! और, जो लोग छिपकर बागी हो जाते है, उन्हे बागी बनाने की जिम्मेदारी भी उन्ही अधिकारियो पर है। उनके साथ इनका कुछ ऐसा तीखा बर्ताव होता है, ये जैसी नीची निगाह से उन्हे देखते है, वे बरदाश्त नहीं कर पाते, और उनकी मनुष्यता, जिस तरह भी सम्भव हुआ, इनके अधिकारो के विरुद्ध विद्रोह की घोषणा कर बैठती है।"

'मुमकिन है, ऐसा ही कुछ छोटे बाबू के साथ भी हुआ हो।"

"बहूजी, चलते समय भैया और कुछ भी तुमसे नही कह गये?" तेज निगाह से राजकुमार ने युवती को देखकर कहा।

"ना।" युवती सरल नेत्रो से इसका आशय पूछ रही थी।

"यहाँ चन्दन की किसी दूसरी तरह की चिट्ठियाँ तो नही है?"

युवती घबरायी, "मुझे नही मालूम!"

"उनकी विप्लवात्मक किताबे होगी ही, अगर ले नही गये?"

"मैंने उनकी आलमारी नही देखी।" युवती का कलेजा धक्-धक् करने लगा।

"तअज्जुब क्या, अगर कल पुलिस यहाँ सर्च करे।"

युवती त्रस्त चितवन से सहायता-प्रार्थना कर रही थी। "अच्छा हुआ, तुम आ गये, रज्जू बाबू! मुझे इन बातो से बडा डर लग रहा है।"

"बहूजी!" राजकुमार ने चिन्ता की नजर से, कल्पना द्वारा दूर परिणाम तक पहुँचकर, पुकारा।

"क्या?" स्वर के तार मे शका थी।

"ताली तो आलमारियो की होगी तुम्हारे पास? चन्दन की पुस्तके और चिट्ठियाँ जितनी हो, सब एक बार देखना चाहता हूँ।"

युवती घबरायी हुई उठकर द्वार की ओर चली। खोजकर तालियो का एक गुच्छा निकाला। राजकुमार के आगे-आगे जीने से नीचे उतरने लगी, पीछे राजकुमार अवश्यम्भावी विपत्ति पर अनेक प्रकार की कल्पनाएँ करता हुआ। नीचे एक बडे-से हाल के एक ओर एक कमरा था। यही चन्दन का कमरा था। वह जब यहाँ रहता था, प्राय. इस कमरे मे बन्द रहा करता था। ऐसा ही उसे पढने का व्यसन था। कमरे मे कई आलमारियाँ थी। आलमारियो की अद्भुत किताब राजकुमार की स्मृति मे अपनी करुणा की कथाएँ कहती हुई सहानुभूति की प्रतीक्षा

मे मौन ताक रही थी। कारागार उन्हे असह्य हो रहा था। वे शीघ्र अपने प्रिय के पाणिग्रहण की आशा कर रही थी।

"वहूजी, गुच्छा मुझे दे दो।"

राजकुमार ने एक आलमारी खोली। वह एक, दो, तीन, चार, पाँच, छ, सात, आठ किताबे निकालता हुआ फटाफट फर्श पर फेंक रहा था।

युवती यन्त्र की तरह एक टेविल के सहारे खडी अपलक दृष्टि से उन किताबो को देख रही थी।

दूसरी, तीसरी, चौथी, पाँचवी, छठी, कुल आलमारियो की राजकुमार ने अच्छी तरह तलाशी ली। जमीन पर करीव-करीव डेढ-दो सौ किताबो का ढेर लग गया।

फ्रास, रूस, चीन, अमेरिका, भारत, इजिप्ट, इगलैण्ड, सव देशो की, सजीव स्वर मे वोलती हुई, स्वतन्त्रता के अभिषेक मे दृप्त-मुख, मनुष्य को मनुष्यता की शिक्षा देनेवाली किताबे थी। राजकुमार दो मिनट तक दोनो हाथ कमर मे लगाये उन किताबो को देखता रहा। युवती राजकुमार को देख रही थी। टप-टप कई वूंद आँसू राजकुमार की आँखो से गिर गये। उसने एक ठण्डी साँस ली।

मुकुलित आँखो से युवती भविष्य की शका की ओर देख रही थी।

"ये कुल किताबे अव चन्दन के राजनीतिक चरित्र के लिए आपत्तिकर हो सकती हैं।"

"जैसा जान पडे, करो।"

"भैयाजी शायद इन्हे जला देते।"

"और तुम ?"

"मैं जला नही सकूंगा।"

"तव ?"

'भाई चन्दन, तुम जीते। मेरी सौन्दर्य की कल्पना एक दूसरी जगह छिन गयी, मेरी दृढता पर तुम्हारी विजय हुई।' राजकुमार सोच रहा था। युवती राजकुमार की ओर एकटक देख रही थी।

"इन्हे मैं अपने यहाँ ले जाऊँगा।"

"अगर तुम भी पकड लिये गये ? न, रज्जू वावू ! इन्हे फूंक दो।"

"क्या ?"

राजकुमार की आँखें देख युवती डर गयी।

राजकुमार ने किताबो को एकत्र कर वाँधा। फिर कहा, "और जहाँ-जहाँ आप जानती हो, जल्द देख लीजिए। अव तो दो वज रहे होगे ?"

युवती कर्तव्य-रहित-सी, निर्वाक् खडी राजकुमार की कार्रवाई देख रही थी। सचेत हो, ऊपर जाकर कोठरियो के कागज-पत्र देखने चली। कमरे के वाहर महरी खडी मिली। एकाएक इस परिवर्तन को देखकर भीतर आने की उसकी हिम्मत न हुई। दहशत खायी हुई वोली, "जलपान वडी देर से रक्खा है।"

युवती लौट आयी। राजकुमार से कहा, "रज्जू वावू, पहले कुछ जलपान कर लो।"

"आप जल्द जाइए, मैं खा लूंगा। वही टेबिल पर रखवा दीजिए।"

युवती चली गयी। महरी ने वही, चन्दन की टेबिल पर, तश्तरी रख दी। जल-भरा ढक्कनदार लोटा और गिलास रख दिया।

राजकुमार शीघ्र ही दुबारा कुल आलमारियो की जाँच कर ऊपर चला गया। दो-एक घरेलू पत्र ही मिले।

"एक बात कहूँ ?"

"कहो।"

"भैयाजी कब तक लखनऊ रहेगे ?"

"कुछ कह नही गये।"

"शायद जब तक चन्दन का फैसला न हो जाय, तब तक रहे।"

"सम्भव है।"

"आप एक काम करें।"

"क्या ?"

"चलिए, आपको आपके मायके छोड दूं।"

युवती सोचती रही।

"सोचने का समय नही। जल्द हाँ-ना कीजिए।"

"चलो।"

"यहाँ पुलिस के लोग रहेगे। आवश्यक चीजे—अपने गहने और नकद रुपये जो कुछ हो—ले लीजिए। शीघ्र ही सब ठीक कर लीजिए, ताकि चार बजे के पहले हम लोग यहाँ से निकल जायें।"

"मुझे बडा डर लग रहा है, रज्जू बाबू !"

"मैं हूँ ही अभी, कोई इन्सान आपका क्या बिगाड सकेगा ? मैं लौटकर आपको तैयार देखूं।"

राजकुमार गैरेज से मोटर निकाल लाया। किताबो का लम्बा-सा बँधा हुआ बण्डल उठाकर, सीट के बीच मे रख बैठ गया। फिर कलकत्ते की तरफ उड चला।

अपने घर पहुँचा। जिस तरह फाटक का छोटा दरवाजा वह खोलकर चिपका गया था, वैसा ही था, धक्के से खुल गया। चौकीदार को फाटक बन्द करते समय छोटे दरवाजे का खयाल नही आया। राजकुमार किताबो का बण्डल लेकर अपने कमरे मे गया। बक्स का सामान निकाल किताबें भर दी। ताला लगा दिया। जल्दी मे जो कुछ सूझा, बाँधकर बत्ती बुझा दी। दरवाजा बन्द कर दिया। फिर मोटर पर अपना सामान रख भवानीपुर चल दिया। जब भवानीपुर से लौटा, तो तीन बजकर पन्द्रह मिनट हुए थे।

"क्या-क्या लिया, देखूं।"

युवती अपना सामान दिखलाने लगी। एक बॉक्स मे कुछ कपडे, 8-10 हजार के गहने और 20 हजार नम्बरी नोट थे। यह सब उसका अपना सामान था। महरी को मकान की झाड-पोछ करने के लिए वही रहने दिया। रक्षा के लिए चार दरवान थे। युवती ने सबको ऊपर बुलाया। अच्छी तरह मकान की रक्षा करते हुए सुखपूर्वक समय पार करने के कुछ उपदेश दिये। दरबानो को विपत्ति की

सूचना हो चुकी थी, कुछ न बोले।

महरी बाहर से दुखी थी, पर भीतर एकान्त की चिन्ता मे खुश भी। बहू का बॉक्स उठाकर एक दरवान ने गाडी पर रख दिया। वह राजकुमार के साथ-साथ नीचे उतरी। गेट की बगल मे शिव-मन्दिर था। मन्दिर मे जा, भगवान विश्वनाथ को भूमिष्ठ हो प्रणाम किया।

राजकुमार ने ड्राइवर को बुलाया। गाडी गेट के सामने लगाये हुए चारो तरफ देख रहा था। अपनी रिस्टवाच मे देखा, साढे चार हो गया था। ड्राइवर आया, राजकुमार उतर पडा।

"जल्दी कीजिए।"

वह प्रणाम कर लौट आयी।

महरी ने पीछे की सीट का दरवाजा खोल दिया। बहू बैठकर कालीजी को प्रणाम करने लगी। बगल मे राजकुमार बैठ गया। सामने सीट पर एक दरवान।

"अगर कोई पुलिस की तरफ से यहाँ आये, तो कह देना, मकान मे कोई नही है। अगर इस पर भी वे मकान की तलाशी लें, तो घबराना मत, और हरएक की पहले अच्छी तरह से तलाशी ले लेना। रोज मकान देख लिया करना। अपनी तरफ से कोई सख्ती न करना। डरने की कोई बात नही।"

"अच्छा हुजूर।"

"चलो," राजकुमार ने ड्राइवर से कहा, "सियालदह।"

गाडी चल दी। सीधे चौरगी होकर जा रही थी। अब तक अँधेरा दूर हो गया था। उषा उगते हुए सूर्य के प्रकाश से अरुण हो चली थी, जैसे भविष्य की क्रान्ति का कोई पूर्व लक्षण हो। राजकुमार की चिन्ताग्रस्त, असुप्त आँखें भी इसी तरह लाल हो रही थी। बगल मे अनवगुण्ठित बैठी हुई सुन्दरी की आँखें भी विषाद तथा निद्रा के भार से छलछलायी हुई लाल हो रही थीं।

गाडी सेन्ट्रल एवेन्यू पार कर अब बहूबाजार-स्ट्रीट से गुजर रही थी। गर्मियो के दिन थे। सूर्य का कुछ-कुछ प्रकाश फैल चुका था। मोटर पूर्व की ओर जा रही थी। दोनो के मुख पर सुबह की किरणे पड रही थी। दोनो के मुखो की क्लान्ति प्रकाश मे प्रत्यक्ष हो रही थी। एकाएक राजकुमार की दृष्टि स्वत प्रेरित-सी एक तिमजिले, विशाल भवन की तरफ उठ गयी। युवती भी आकर्षक मकान देखकर उधर ताकने लगी—बरामदे पर कनक रेलिंग पकडे हुए एक दृष्टि से मोटर की तरफ देख रही थी। उसकी अनिंद्य-सुन्दर आँखो मे भी उषा की लालिमा थी। उसने राजकुमार को पहचान लिया था। दोनो की आँखें एक ही लक्ष्य मे बिंध गयी। कनक स्थिर खडी ताकती रही। राजकुमार ने आँखें झुका ली। उसे कल के लोगो की बातें याद आयी—घृणा से सर्वांग जर्जर हो गया।

"बहूजी देखा ?"

"हाँ, उस खूबसूरत लडकी को न ?"

"हाँ, यही ऐक्ट्रेस कनक है।"

मोटर मकान को पीछे छोड चुकी थी। राजकुमार बैठा रहा। युवती ने फिरकर देखा। कनक वैसे ही खडी ताक रही थी।

"अभी भी देख रही है। तुमको पहचान लिया है शायद।"

राजकुमार कुछ न बोला।

जब तक मोटर अदृश्य न हो गयी, कनक खडी हुई ताकती रही।

ग्यारह

पीडित हृदय पर पुन चोट लगी। कनक हृदय थामकर रह गयी, 'वज्र की तरह ऐसे ही लोग कठोर हुआ करते हैं!"

पहले जीवन मे एकान्त की कल्पना ने जिन शब्दो का हार गूँथा था, उसकी लडी मे यति-भग हो गया। तमाम रात प्रणय-देवता के चरणो मे पडी रोकर भोर कर दिया। प्रात काल ही उनके सत्य आसीस का कितना बडा प्रमाण! अब यह समय की सरिता सागर की ओर नही, सूखे की ओर बढ रही थी। जितना ही आँसुओ का प्रवाह बढ रहा था, हृदय उतना ही सूख रहा था।

बरामदे से आकर वह फिर पलँग पर पड रही। हृदय पर साँप लोट रहा था, "कितना अपमान! यह वही राजकुमार था, जिसने एक सच्चे वीर की तरह मेरी रक्षा की थी। छि! उसी दृढ-प्रतिज्ञ मनुष्य की जबान थी—तुम मेरे शरीर की आत्मा, मेरी कल्पना की तस्वीर, रूप की रेखा, डाल की कली, गले की माला, स्नेह की परी, जल की तरग, रात की चाँदनी, दिन की छाँह हो!"

कनक ने उठकर पखा खोल दिया। पसीना सूख गया, किन्तु हृदय का ताप और बढ गया। इच्छा हुई, राजकुमार को खूब खरी-खोटी सुनाये, "तुम आदमी हो! एक बात कहकर फिर भूल जानेवाले तुम इन्सान हो! तुम होटलो मे खाने-वाले मेरे हाथ का पकाया भोजन नही खा सकते!"

"वह कौन थी? होगी कोई!—मुझसे जरूरत! न, इधर ही गयी है। पता लगाना चाहिए, वह थी कौन। मयना?"

मयना आकर सामने खडी हो गयी।

"गाडी जल्द तैयार कराओ।"

उसी रात, राजकुमार के चले जाने के बाद, कनक ने अपने समस्त गहने उतार डाले थे। जिन वस्त्रो मे थी, उन्ही मे जूते पहन खटाखट नीचे उतर गयी। इतना उत्साह था, मानो तबियत खराब हुई ही नही।

"खोजने जाऊँ? न।"

नीचे मोटर तैयार थी, बैठ गयी।

"किस तरफ चलूँ?" ड्राइवर ने पूछा।

राजकुमार की मोटर सियालदह की ओर गयी थी। उसी ओर देखते हुए कहा, "इस तरफ।" फिर दूसरी तरफ—वेलेस्ली-स्क्वायर की ओर—चलने के

लिए कहा।

मोटर चल दी। मोटर धर्मतल्ला पहुँची, तो वायें हाथ चलने के लिए कहा। वह राह भी सियालदह के करीब समाप्त हुई है। नुक्कड पर पहुँची, तो स्टेशन की तरफ चलने के लिए कहा।

कनक ने राजकुमार की मोटर का नम्बर देख लिया था। सियालदह-स्टेशन पर कई मोटरें खडी थी। उतरकर देखा, उस मोटर का नम्बर न मिला। कलेजे मे फिर नयी लपटें उठने लगी। स्टेशन पर पूछा, "क्या अभी कोई गाडी गयी है?"

"सिक्स अप एक्सप्रेस गया है।"

"कितनी देर हुई?"

"सात पाँच पर छूटता है।"

स्तब्ध खडी रह गयी वह।

"कैसी इन्सानियत है! देखा, पर मिलना भी उचित न समझा। और मैं! मैं पीछे-पीछे फिर रही हूँ। वस, अब पैरो भी पडे, तो मैं उधर न देखूँ।" कनक चिन्ता मे डूव रही थी। भीतर-वाहर, पृथ्वी-अन्तरिक्ष, सव जगह जैसे आग लग गयी हो। ससार आँखो के सामने रेगिस्तान-सा तप रहा था। शक्ति का, सौन्दर्य का एक भी चित्र नहीं देख पडता था। पहले की जितनी सुकुमार मूर्तियाँ कल्पना के जाल मे आप ही फँस जाया करती थीं, अव वे सव जैसे जकड ली गयी हो—मानो किसी ने उन्हे इस प्रलय के समय अन्यत्र कही विचरण करने के लिए छोड दिया हो।

लौटकर कनक मोटर मे वैठ गयी। "घर चलो।" कहा उसने।

ड्राइवर मोटर ले चला।

कनक उतरी कि एक दरवान ने कहा, "मेम साहव वैठी हैं।" वह सीधे अपने पढनेवाले कमरे मे चली गयी।

सर्वेश्वरी मिसेज कैथरिन के पास वैठी वातें कर रही थी। राजकुमार के जाने के वाद से सर्वेश्वरी के मन मे एक आकस्मिक परिवर्तन हो गया था। वह अव कनक पर नियन्त्रण करना चाहती थी। उसे मानव-स्वभाव की वडी गहरी पहचान थी। कुछ दिन अभी कुछ न वोलना ही वह उचित समझती थी। कैथरिन की इस सम्वन्ध मे उसने सलाह माँगी। वहुत कुछ वार्तालाप के वाद उसने कैथरिन को कनक के गार्जियन के तौर पर, कुछ दिनो के लिए, नियुक्त कर लेना उचित समझा, कैथरिन ने भी छ महीने तक के लिए आपत्ति न की। फिर उसे योरप जाना था। उसने कहा, "अच्छा हो, अगर उस समय आप कनक को पश्चिमी आर्ट, नृत्य, गीत और अभिनय की शिक्षा के लिए योरप भेज दें।"

कनक मे जैसा एकाएक परिवर्तन हो गया था, उसका खयाल कर सर्वेश्वरी इस शिक्षा पर उसके प्रवृत्त होने की शका कर रही थी। अतएव कैथरिन को मोट-फेर देने के लिए नियुक्त कर लिया। कनक के आने की खवर मिलते ही सर्वेश्वरी ने उसे वुलवाया।

"माजी वुलाती है।" मयना ने आकर कहा।

कनक माता के पास गयी।

"मेम साहव से अभी तुम्हारे ही विषय मे वातें हो रही थी।"

कनक की भौंहो मे बल पड गये। कैथरिन ताड गयी। बोली, "यही कि अगर कुछ दिन और पढ लेती, तो अच्छा होता।"

कनक खडी रही।

"तुम्हारी तबियत कैसी है ?"

"अच्छी है।" कनक ने तीव्र दृष्टि मे कैथरिन को देखा।

"योरप चलने का विचार है ?"

"हाँ, सेप्टेम्बर मे तय रहा।"

"अच्छी बात है।"

सर्वेश्वरी कनक की बेफाँस आवाज से प्रसन्न हो गयी। माता की बगल मे ही बैठ गयी कनक।

"विजयपुर के राजकुमार का राजतिलक है।"

कनक कांप उठी, जैसे जल की तरग। मन मे बहती हुई सोचने लगी, 'राजकुमार का राजतिलक !'

"हमने बयाना भी ले लिया है—दो सौ रुपये रोज, खर्च अलग।"

"कब है ?"

"हमे परसो पहुँच जाना चाहिए।"

"मै चलूँगी।"

"तुम्हे बुलाया था, पर हमने इन्कार कर दिया।"

कनक माता की ओर प्रश्न-सूचक दृष्टि से देखने लगी।

"क्या करते ! हमने सोचा, शायद तुम्हारा जाना न हो।"

"नही, मैं चलूँगी।"

"तुम्हारे लिए तो विशेष आग्रह था उनका। मेम साहब, क्या साथ चलने के लिए आपको फुर्सत होगी ?"

"फुर्सत कर ली जायेगी।" कैथरिन की आँखें रुपयो की चर्चा से चमक उठी थी।

"तुम्हे 501 रुपये रोज देंगे, अगर तुम महफिल मे जाओ।"

कनक के हृदय मे मानो एक साथ किसी ने हजार सुइयाँ चुभो दी। दर्द को दबाकर बोली, "सोचूँगी।"

सर्वेश्वरी की मुर्झाई हुई लता पर आपाढ की शीतल वर्षा हो गयी। "यह बात है, अपने को सँभाल लो, तमाम उम्र बर्बाद करने मे फायदा क्या ?"

हृदय की खान मे बारूद का धडाका हुआ।

करुण अधखुली चितवन से कनक राजकुमार का चित्र देख रही थी, जो किसी तरह भी हृदय-पट से नही मिट रहा था। मन मे कह रही थी, 'सुनते हो पुरुष ! यह सब मुझे किसकी गलती से सुनना पड रहा है—चुपचाप दर्द को थामकर ?'

"तो तय रहा ?"

"हाँ।"

"तार कर दिया जाय ?"

"कर दीजिए।"

"तुम खुद लिखो अपने नाम से।"

कनक झपटकर उठी। अपने पढनेवाले कमरे से एक तार लिखकर ले आयी, "राजा साहब, तार मिला। अपनी माता के साथ महफिल करने आ रही हूँ।"

सर्वेश्वरी तार सुनकर बडी प्रसन्न हुई।

"सुनो।" कैथरिन कनक को अलग बुला ले गयी। उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड रही थी। कनक के स्वभाव का ऐसा चित्र उसने आज ही देखा था। वह उसे ऊपर उसके कमरे मे ले गयी। वहाँ अँगरेजी मे कहा, "तुम्हारा जाना अच्छा नही।"

"बुरा क्या है ? मैं इसीलिए पैदा हुई हूँ।"

"राजा लोग, मैंने सुना है, बहुत बुरी तरह पेश आते हैं।"

"हम रुपये पाने पर सब तरह का अपमान सह लेती हैं।"

"तुम्हारा स्वभाव पहले ऐसा नही था।"

"पहले बयाना भी न आता था।"

"तुम योरप चलो। यहाँ के आदमी तुम्हारी क्या कद्र करेंगे ? मैं वहाँ तुम्हे किसी लार्ड से मिला दूँगी।"

कनक की नसो मे मानो किसी ने तेज झटका दिया। वह कैथरिन को घूरकर रह गयी।

"तुम क्रिश्चियन हो जाओ। राजकुमार तुम्हारे लायक नही। वह क्या तुम्हारी कद्र करेगा! वह तुमसे दबता है, रद्दी आदमी।"

"मैडम!" कडी निगाह से कनक ने कैथरिन को देखा। आँखो की बिजली से कैथरिन काँप उठी। कुछ समझ न सकी।

"मैं तुम्हारे भले के लिए कहती हूँ, तुम्हे ठीक राह पर ले चलने का मुझे अधिकार है।"

कनक सँभल गयी, "मेरी तबियत अच्छी नही, माफ कीजियेगा, इस वक्त मुझे अकेली छोड दीजिए।"

कनक को एक तीव्र दृष्टि से देखती हुई कैथरिन खडी हो गयी। कनक पूर्ववत् बैठी रही। कैथरिन तेजी से पीछे उतर गयी। "इसका दिमाग इस वक्त कुछ खराब हो रहा है। आप डॉक्टर की सलाह लें।" सर्वेश्वरी से कहकर कैथरिन चली गयी।

बारह

कनक की आँखो के झरोखे से, प्रथम यौवन के प्रभातकाल मे, तमाम स्वप्नो की सफलता के रूप मे राजकुमार ने ही झाँका था, और सदा के लिए उसमे एक शून्य

रखकर तिरोहित हो गया। आज कनक के लिए समार मे ऐसा कोई नही, जितने है, टूटे हुए यन्त्र को वार-वार छेडकर उसके वेसुरेपन का मजाक उडानेवाले! इसीलिए अपने आपमे चुपचाप पडे रहने के सिवा उसके पास दूसरा उपाय न रह गया था।

जो प्रेम कभी थोडे समय के लिए उसके अन्धकारमय हृदय को मणि की तरह प्रकाशित कर रहा था, वही अव दूसरो की परिचित आँखो के प्रकाश मे जीवन के कलक की तरह स्याह पड गया है। अन्धकार-पथ पर जिस एक ही प्रदीप को हृदय के अचल मे छिपा वह अपने जीवन के तमाम मार्ग को आलोकमय कर लेना चाहती थी, हवा के अकारण झोके से ही गुल हो गया। उस हवा के आने की पहले ही उसने कल्पना क्यो नही की। 'अव? अभी तो पूरा पथ ही पडा हुआ है। अव उसका कोई लक्ष्य नही। वह दिग्यन्त्र ही अचल हो गया है, अव वह केवल प्रवाह की अनुगामिनी है।

और राजकुमार? प्रतिश्रुत युवक के हृदय की आग रह-रहकर आँखो से निकल पडती है। उसने जाति, देश, साहित्य और आत्मा के कल्याण के लिए अपने समस्त सुखो का वलिदान कर देने की प्रतिज्ञा की थी, पर प्रथम पदक्षेप मे ही इस तरह आँखो मे आँखें विध गयी कि पथ का ज्ञान ही जाता रहा। अब वह वारम्वार अपनी भूल के लिए पश्चात्ताप करता है, पर अभी उसकी दृष्टि पूर्ववत् साफ न हुई।

कनक की कल्पना-मूर्ति उसकी तमाम प्रगतियो को रोककर खडी हो जाती और प्रत्येक समर मे राजकुमार की वास्तव-शक्ति उस छाया-शक्ति से परास्त हो जाती है। तमाम वाहरी कार्यो के भीतर राजकुमार का यह मानसिक द्वन्द्व चलता जा रहा है।

आज दो दिन से वह युवती के साथ उसके मायके मे है। वही से उसने यह खवर तार द्वारा लखनऊ भेज दी। चन्दन के वडे भाई नन्दनसिंह ने तार से सूचित किया कि कोई चिन्ता न करें। मुमकिन है, चन्दन को मुक्ति मिल जाय। इस खवर से घर के सभी लोग प्रसन्न हैं। राजकुमार भी कुछ निश्चिन्त हो गया। गर्मियो की छुट्टी थी। कलकत्ते के लिए विशेष चिन्ता न थी। युवती को उसके पिता-माता, वडे भाई और भावजे तारा कहकर पुकारती थी तभी राजकुमार को भी उसका नाम ज्ञात हुआ। राजकुमार को नाम मालूम हो गया है, जानकर युवती कुछ लज्जित हुई।

राजकुमार का अस्त-व्यस्त सामान युवती के सुपुर्द था। पहले दो-एक रोज तक सँभालकर रखने की उसे फुर्सत न मिली। अव एक दिन अवकाश पा, राजकुमार के कपडे झाड-झाड, तह कर रखने लगी। कनक के मकानवाले कपडे एक ओर लिपटे, अछूत की तरह, एक वाल्टी की डण्डी मे वँधे हुए थे। युवती ने पहले वही गठरी खोली, भीतर एक जोडी जूते भी थे। सभी कपडे कीमती थे। युवती उनकी दशा देख राजकुमार के गार्हस्थ्य-ज्ञान पर खूब हँसी। जूते, धोती, कमीज, कोट अलग कर लिये। कमीज और कोट से सेण्ट की महक आ रही थी। झाड-झाडकर कपडो की चमक देखने लगी वह। कोट की दाहनी वाँह पर एक लाल धब्बा

था। देखा, गौर से फिर देखा, सन्देह जाता रहा। वह सिन्दूर ही का धब्बा था। अव राजकुमार पर उसका सन्देह हुआ।

रज्जू वावू को वह महावीर तथा भीष्म ही की तरह चरितवान् समझती थी। उसके पति भी रज्जू वावू की इज्जत करते थे। उसकी सास उन्हे चन्दन मे वढकर समझती थी, पर यह क्या ? यह मिन्दूर, सूँघा, ठीक, मिन्दूर ही था।

युवती ने सन्देह को सप्रमाण सत्य कर लेने के निश्चय से राजकुमार को वुलाया। एकान्त था। युवती के हाथ मे कोट देखते ही राजकुमार की दृष्टि मे अपराध की छाप पड गयी। युवती हँसने लगी, "मैं समझ गयी।"

राजकुमार ने सिर झुका लिया।

"यह क्या है ?" युवती ने पूछा।

"कोट।"

"अजी, यह देखो, यह।" धब्बा दिखाती हुई वह बोली।

"मैं नही जानता।"

"नही जानते ?"

"नही।"

"यह किसी की माँग का सेंदुर है जनाव।"

सुनते ही राजकुमार चौंक पडा, "सेंदुर।"

"हाँ-हाँ, सेंदुर—सेंदुर। देखो।"

राजकुमार की नजरो से वास्तव जगत् गायव हो रहा था। क्या यह कनक की माँग का सेंदुर है ? तो क्या कनक व्याहता है ? हृदय को वडी लज्जा हुई। कहा, "वहूजी, इसका इतिहास वहुत वडा है। अभी तक मैं चन्दन की चिन्ता मे फँसा था, इसलिए नही वता सका।"

"अव वताओ।"

"हाँ, मुझे कुछ छिपाना थोडे ही है। लेकिन वडी देर होगी।"

"अच्छा, ऊपर चलो।"

युवती राजकुमार को ऊपर एक कमरे मे ले गयी।

युवती चित्त को एकाग्र कर कुल कहानी सुनती रही।

"कही-कही छूट रही है। जान पडता है, सव घटनाएँ तुम्हे नही मालूम। जैसे—उसे तुम्हारी पेशी की वात कैसे मालूम हुई, उसने कौन-कौन-सी तदवीर की ?" युवती ने कहा।

"हाँ, मुमकिन है। जव मैं चलने लगा, तव उसने कहा भी था कि वस, आज के लिए रह जाओ तुमसे वहुत कुछ कहना है।"

"आह। सव तुम्हारा कुसूर है। तुम इतने पर भी उस पर कलक की कल्पना करते हो ?"

राजकुमार को एक हूक-सी लगी। घवराया हुआ युवती की ओर देखने लगा।

"जिसने तुम्हारी सवसे नजदीक की वनने के लिए इतना किया, तुम्हे उसे इसी तरह का पुरस्कार देना था ! प्रतिज्ञा तो तुमने पहले की थी, कनक क्या तुम्हे पीछे नही मिली ?"

राजकुमार की छाती धडक रही थी।

"लोग पहले किसी सुन्दर वस्तु को उत्सुक आँखो से देखते है, पर जब किसी दूसरे स्वार्थ की याद आती है, आँखे फेरकर चल देते हैं। क्या तुमने उसके साथ ऐसा ही नही किया?" युवती ने प्रश्न किया।

राजकुमार के हृदय ने कहा, 'हाँ, ऐसा ही किया।' जवान से उसने कहा, "नीचे कुछ लोगो को उसके चरित्र की अश्रव्य आलोचना करते हुए मैंने सुना है।"

"झूठ बात। मुझे विश्वास नही। तुम्हारे कानो ने धोखा दिया होगा। और, किसी के कहने ही पर तुम क्यो गये? इसलिए कि तुम खुद उस तरह की कुछ बातें उसके सम्बन्ध मे सुनना चाहते थे।"

राजकुमार का मन युवती की तरफ हो गया।

युवती मुस्किरायी, "तो यह चलते समय की धर-पकड का दाग है—क्यो?"

राजकुमार ने गर्दन झुका ली।

"अब भी नही समझे, रज्जू बाबू? यह आप ही के नाम का सेंदुर है।" राजकुमार को असकुचित देखती हुई युवतो हँस रही थी, "आपसे प्रेम की भी कुछ बातें हुई?"

"मैंने कहा था, तुम मेरी कविता हो!"

युवती खिलखिलाकर हँसी, "कैसा चोर पकडा! फिर आपकी कविता ने क्या जवाब दिया?"

"कवि लोग अपनी ही लिखी पक्तियाँ भूल जाते है।"

'कितना सही उत्तर दिया। क्या अब भी आपको सन्देह है?"

राजकुमार के मस्तक पर एक भार-सा आ पडा।

"रज्जू बाबू, तुम गलत राह पर हो!"

राजकुमार की आँखे छलछला आयी।

"मैं बहुत शीघ्र उससे मिलना चाहती हूँ। छि', रज्जू बाबू, किसी की जिन्दगी बरबाद कर दोगे? और उसकी जबान से जिसके हो चुके?"

"हम भी जायँगे दीदी!" एक आठ साल का बालक दौडता हुआ ऊपर चढ गया, और दोनो हाथो मे अपनी बैठी हुई बहन का गला भर लिया, "दीदी, आज राजा साहब के यहाँ गाना होगा। बडे दादा जायँगे, मुन्नी जायँगी, हम भी जायँगे।" बालक उसी तरह अपनी बहन के गले मे बाँहे डाले थिरक रहा था।

"किसका गाना है?" युवती ने बच्चे से पूछा।

"कनक, कनक, कनक का।" बालक आनन्द से थिरक रहा था।

युवती और राजकुमार गम्भीर हो गये। बच्चे ने गला छोड दिया। बहन की मुद्रा देखी, फिर फुर्ती से जीनेसे उतर, दौडता हुआ ही, मकान से बाहर निकल गया।

युवराज का अभिषेक है, यह दोनो जानते थे। विजयपुर वहाँ से मील-भर है। युवती के पिता स्टेट के कर्मचारी थे। बालक की बात पर अविश्वास करने का कोई कारण न था।

"देखा, बहूजी!" राजकुजार ने अपने अनुभव-सत्य की दृढता से कहा।

"अभी कुछ कहा नही जा सकता। रज्जू बाबू, किसके मन मे कौन-सी भावना

है, इसका दूसरा अनुमान लगाये, तो गलती का होना ही अधिक सम्भव है।"

"अनुमान कभी-कभी सत्य भी होता है।"

"पर तुम्हारी तरह का अनुमान नही।"

अब तक कई लडके आँगन मे खडे हुए, तालियाँ पीटते-थिरकते हुए, 'हम भी जायँगे हम भी जायँगे' सम-स्वर मे घोर सगीत छेडे हुए थे।

युवती ने झरोखे मे लडको को एक बार देखा। फिर राजकुमार की तरफ मुँह करके कहा, "अच्छा हो, अगर आज स्टेशन पर कनक से मिला जाय। पूरब मे एक ही गाडी चार बजे आती है'।"

"नही, यह उचित न होगा। आपको तो मैं मकान से बाहर निकलने की राय दे ही नही सकता, और इस तरह के मामले मे।"

"किसी बहाने मिल लेंगे।" युवती उत्सुक हो रही थी।

"किसी बहाने भी नही, बहूजी! स्टेट की बातें आपको नही मालूम।"

राजकुमार गम्भीर हो गया। युवती त्रस्त हो सकुचित हो गयी।

"पर मुझे एक दफा जरूर दिखा दो।" करुणाश्रित सहानुभूति की दृष्टि से देखती हुई युवती ने राजकुमार का हाथ पकडकर कहा।

"अच्छा।"

तेरह

दो रोज और बीत गये। अगो के ताप से कनक का स्वर्ण-रग और चमक उठा। आँखो मे भावना मूर्तिमती हो गयी। उसके जीवन के प्रखर स्रोत पर मध्याह्न का तपन तप रहा था, जिसके वाष्प के वाह्यावरण के भीतर प्रवाह पर भावनाओ के सूर्य के सहस्रो ज्योतिर्मय पुष्प खुले हुए थे, पर उसे इसका ज्ञान न था। वह केवल अपने बाहरी आवरण को देखकर दैन्य से मुरझा रही थी। जिस स्नेह की डोर से उसके प्रणय के हाथो ने राजकुमार को बाँधा था, केवल वही अब उसके रिक्त हाथो मे रह गयी है।

अब उसकी दृष्टि मे कर्तव्य का ज्ञान न रहा। स्वय ही सचालित की तरह बाह्य वस्तुओ पर बैठती, और फिर वहाँ से उसी तरह हताश हो उठ आती है। उनसे उसकी आत्मा का सयोग नही रहता, जैसे वह स्वय अब अकेली रह गयी हो। इस आकाक्षा और अप्राप्ति के अपराजित समर मे उन्ही की तरह वह भी उच्छृखल हो गयी। इसीलिए, माता के साथ अलक्ष्य गति पर चलती हुई, वह गाने के लिए राजी हो गयी। जिस जीवन का राजकुमार की दृष्टि मे ही आदर न हुआ, उसका अब उसकी दृष्टि मे भी कोई महत्त्व न रहा।

सर्वेश्वरी कनक को प्रसन्न रखने के हर तरह के उपाय करती, पर वह उसे

सदा ही वीतराग देखती, अत भावी सुख के प्रति उसका सन्देह बढ रहा था। वह देखती, चिन्ता से उसके अचचल कपोलो पर आत्म-सम्मान की एक दिव्य ज्योति खुल पडती थी, जिससे उसे कुछ त्रस्त हो जाना पडता और कनक की देह की हरियाली के ऊपर से जेठ की लू बह जाती थी। जल की मराल-बालिका को स्थल से फिर जल मे ले जाने की सर्वेश्वरी कोशिश किया करती, पर उसका इच्छित तडाग दूर था। जिस सरोवर मे वह उसे छोडना चाहती, वह उसे पकिल देख पडता। स्वय निर्मित रूप का जब अस्तित्व ही नही रहा, तब कला की निर्जीव मूर्तियो पर कब तक उसकी दृष्टि रम सकती थी ?

सर्वेश्वरी के चलने का समय आया। तैयारियाँ होने लगी। वस्त्र, अलंकार, पेशवाज, साज-सामान आदि बँधने लगे। आकाश मे उडती हुई परी, पर काटकर, कमरे मे कैद की जाने लगी। सुख के सागर की बालिका जी बहलाने के लिए कृत्रिम सरोवर मे छोड दी गयी। जीवन के दिन सुख से काटने के विचार मे कनक को अपना पेशा अपनाने की पुनश्च सलाह दी जाने लगी। सर्वेश्वरी के साथ वाद्यकार भी जमा हो गये, और अनेक तरह की स्तुतियो से कनक को प्रसन्न करने लगे। कनक रात्रि के सौन्दर्य की तरह इन सबकी आँखो से ओझल हो गयी, रही केवल गायिका-नायिका कनक। अपनी तमाम चन्द्रिकाओ के साथ बादलो की आड से ज्योत्स्ना एक-दूसरे ही लोक मे पहुँच गयी थी, यहाँ उसकी छाया-मात्र रह गयी थी।

कनक तार भिजवा चुकी थी। चलते समय इनकार न सकी। सर्वेश्वरी कुछ देर तक कैथरिन की प्रतीक्षा करती रही, पर जब गाडी के लिए सिर्फ आधा घण्टा समय रह गया, तब परमात्मा को मन-ही-मन स्मरण कर मोटर पर बैठ गयी। कनक भी बैठ गयी। कनक समझ गयी, कैथरिन के न आने का कारण उस रोज का जवाब होगा।

कनक और सर्वेश्वरी को फर्स्ट क्लास का किराया मिला था। कनक को नही मालूम था कि कभी कुँवर साहब को वह इतनी तेज निगाह से देख चुकी है कि देखते ही पहचान लेगी। सर्वेश्वरी भी न जानती थी कि कुँवर साहब के आदमी कभी उसके मकान पर आकर लौट गये थे वही कुँवर साहब बालिग होकर अब राजा साहब के आसन पर लाखो प्रजाओ पर शासन करेंगे।

रेल समय पर, ठीक चार बजे शाम को, विजयपुर-स्टेशन पहुँची। विजयपुर वहाँ से तीन कोस था, पर स्टेशन का नाम विजयपुर ही रक्खा गया था। राजा साहब—वर्तमान राजा साहब के पिता—ने स्टेशन का यही नाम रखवाने के लिए बडी लिखा-पढी की थी। कुछ रुपये भी दिये थे। कम्पनी तो उन्ही के नाम से स्टेशन कर देना चाहती थी, पर राजा साहब को कम्पनी की माँगी हुई रकम देना मजूर न था। वह पुराने विचारो के मनुष्य थे। रुपये को नाम से अधिक महत्त्व देते थे। कहते हैं, एक बार स्वाद की बातचीत हो रही थी, तो उन्होने कहा था कि बासी दाल मे सरसो का तेल डालकर खाय, तो ऐसा स्वाद और किसी सालन मे नही मिलता। वह नही रहे, पर गरीबो मे उनकी यह कीर्ति-कथा रह गयी थी।

स्टेशन पर कनक के लिए कुँवर साहव ने अपनी मोटर भेज दी थी। सर्वेश्वरी के लिए विजिटर्स कार और उसके आदमियो के लिए एक लारी।

तार पाने के पश्चात् अपने कर्मचारियो मे कुँवर साहव ने कनक की वडी तारीफ की थी, जिससे 6-7 कोस के इर्द-गिर्द एक ही दिन मे खवर फैल गयी कि कलकत्ते की मशहूर तवायफ आ रही है, जिसका मुकावला हिन्दोस्तान की कोई भी गानेवाली नही कर सकती। आज दो ही वजे से तमाम गाँवो के लोग एकत्र होने लगे थे। आज से ही महफिल शुरू होनेवाली थी।

कनक माता के साथ ही विजिटर्स कार पर वैठने लगी, तो एक सिपाही ने कहा, "कनक साहवा के लिए महाराज ने अपनी मोटर भेजी है।"

"तुम उस पर वैठ जाओ।" सर्वेश्वरी ने कहा।

"नही, इसी पर चलूंगी।"

"यह क्या। हम जैसा कहे, वैसा कीजिए।" सिपाही ने कहा।

कनक उठकर राजा साहव की मोटर पर चली गयी। ड्राइवर कनक को ले चला। सर्वेश्वरी की मोटर खडी रही। कहने पर भी ड्राइवर "चलते है, चलते हैं।" कहकर इधर-उधर करता रहा। कभी पानी पीता, कभी पान खाता, कभी सिगरेट सुलगाता। सर्वेश्वरी का कलेजा काँपने लगा। शका की अनिमेष दृष्टि से कनक की मोटर की तरफ ताकती रही। मोटर अदृश्य हो गयी।

कनक भी पहले घवरायी, पर दूसरे ही क्षण सँभल गयी। एक अमोघ मन्त्र जो उसके पास था, वह अब भी है, उसने सोचा। रही शरीर की वात, इसका सदुपयोग, दुरुपयोग भी उसके हाथ मे है। फिर शका किस वात की? जिसका कोई लक्ष्य ही न हो, उसे किसी भी प्रगति का विचार ही क्या?

कनक निस्त्रस्त एक वगल पीछे की सीट पर वैठी थी। मोटर उडी जा रही थी। ड्राइवर को निश्चित समय पर कुँवर साहव के पास पहुँचना था। भावी के दृश्य कनक के मन को सजग कर रहे थे, पर उसका हृदय वैठ चुका था। अव उसमे उत्साह न रह गया था। रास्ते के पेडो, किनारे खडे हुए आदमियो को देखती, सव-कुछ अपरिचित था। हृदय की शून्यता वाहर के अज्ञात शून्य से मिल जाती। मार्ग पार हो रहा था। आगे क्या होगा, उसकी मा उसके साथ क्यो नही आने पायी, आदि प्रश्न मन मे उभरते, और फिर डूब जाते थे। जो एक निरन्तर मरोड उसके हृदय मे थी, उससे अधिक प्रभाव ये न डाल पा रहे थे।

सहसा उसकी तमाम शून्यता एकवारगी भर गयी। हृदय से आँखो तक पिचकारी की तरह स्नेह का रग भर गया – उसने देखा, रास्ते के किनारे राजकुमार खडा है। हृदय उमडकर फिर वैठ गया- –अव यह मेरे नही है।

दर्शन के वाद मोटर एक फर्लांग वढ गयी। दूसरे, प्रेम के दवाव से वह कुछ कह भी न सकी। राजकुमार खडा-खडा देखता रहा। कनक ने दो वार फिर-फिर-कर देखा। राजकुमार को वडी लज्जा लगी, मानो उसी के कलक की मूर्ति सहस्रो इगितो से कनक के द्वारा उसके अपयश की घोषणा कर रही थी।

राजकुमार विलकुल सादी वेष-भूपा मे था। गाना सुनने के लिए जा रहा था, दूसरो के मत से, अपने मत मे कनक को तारा से मिलाने। तारा ने जव से कहा

कि गलती तुम्हारी है, तब मे कनक को पाने के लिए उसके दिल मे पुनः लालसा का अकुर फूटने लगा था, पर फिर अपनी प्रतिज्ञा याद कर हताश हो जाता। कनक मे मुलाकात तो हुई, दो वार उसने फिर-फिरकर देखा भी। क्या वह अब भी मुझे चाहती है ? वह राजा साहब के यहाँ जा रही है। मुमकिन है, मुझे रोब दिखलाया हो। मैं क्या कहूँगा ? न, लौट जाऊँ, कह दूँ, यह मुझसे न होगा। लौटकर कलकत्ते जायगी, तब जो बातचीत करना चाहे, कर लीजियेगा।

अनेक हर्ष और विषाद की तस्वीरो को देखता हुआ, आशा और नैराश्य के जाल मे उलझा, राजकुमार विजयपुर की ही तरफ जा रहा था। घर लौटने की इच्छा प्रवल वाधा की तरह मार्ग रोककर खडी हो जाती, पर भीतर न-जाने एक और कौन थी, जिसकी दृष्टि से उमे हिम्मत बँधती। वाधा के रहने पर भी अज्ञात पदक्षेप उधर ही हो रहे थे। ज्यादा जोश मे आने पर राजकुमार भूल जाता था, कुछ समझ नही सकता था कि कनक से आखिर वह क्या कहेगा। वेहोशी के वक्त, कल्पना के लोक मे, तमाम सृष्टि उसके अनुकूल हो जाती—कनक उसकी, छाया-लोक उसके, वाग-इमारत, आकाश-पृथ्वी—सव उसके। उसके एक-एक इगित पर कनक उठती-वैठती, जैसे कभी तकरार हुई ही नही, कभी हुई थी, इसकी भी याद नही। राजकुमार इसी द्विधा मे धीरे-धीरे चला जा रहा था।

पीछे से एक मोटर और आ रही थी। यह सर्वेश्वरी की मोटर थी। कनक जव चली गयी, तव सर्वेश्वरी को ज्ञात हुआ कि उसने गलती की। वहाँ सहायक कोई न था। दूमरा उपाय भी न था। कनक की रक्षा के लिए वह उतावली हो रही थी। इसी समय उसकी दृष्टि राजकुमार पर पडी। उसने हाथ जोड लिये, फिर वुलाया। राजकुमार समझ गया, डेरे पर मिलने के लिए इशारा किया। हृदय मे आशा की समीर वह चली। पैर कुछ तेजी से उठने लगे।

कनक की मोटर एकान्त वँगले के द्वार पर आ ठहर गयी। यहाँ कुँवर साहब अपने कुछ घनिष्ठ मित्रो के साथ कनक की प्रतीक्षा कर रहे थे। एक अर्दली कनक को उतारकर कुँवर साहव के वँगले मे ले गया।

कुँवर साहव का नाम प्रतापसिह था, पर थे विलकुल दुवले-पतले। इक्कीस वर्ष की उम्र मे ही हाथ-पैर सुखी डाली की तरह, मुँह सीप की तरह पतला हो गया था। आँखो के लाल डोरे अत्यधिक अत्याचार का परिचय दे रहे थे। राजा साहब ने उठकर कनक मे हाथ मिलाया, और एक कुरसी की तरफ वैठने के लिए इशारा किया। वह वैठ गयी। देखा, वहाँ जितने आदमी थे, सव आँखो-ही-आँखो मे इशारे कर रहे थे। देखकर उसे वडा भय लगा। उधर अनर्गल शब्दो के अव्यर्थ वाण, एक ही लक्ष्य, सातो महारथियो ने निश्शक होकर छोडना प्रारम्भ कर दिये, "उस रोज जव हम आपके यहाँ गये थे, पता नही, आपकी वाँहे किसके गले मे थी।" इसी तरह के और भी चुभते हुए व्यग्य-वाक्य।

कनक को आज तक ऐस व्यग्य सुनने का मौका न पडा था। यहाँ सुनकर चुपचाप सह लेने के सिवा दूसरा उपाय भी न था, और इतनी सहनशीलता भी उसमे न थी। कुँवर साहब जिस तीखी कामुक दृष्टि से एकटक देखते हुए इस मधुर आलाप का आनन्द ले रहे थे, कनक के रोएँ-रोएँ से घृणा का जहर निकल रहा था।

"मेरी मा अभी तक नही आयी ?" कुँवर साहव की तरफ मुखातिव होकर कनक ने पूछा।

कुँवर साहव के कुछ कहने से पहले ही परिषद्-वर्ग वोल उठे, "अच्छा, अव मा की याद की जायगी ?"

सव अट्टहास हँसने लगे।

कनक सहम गयी। उसने निश्चय कर लिया कि अव यहाँ से निस्तार पाना कठिन है। याद आयी, एक वार राजकुमार ने उसे वचाया था, वह राजकुमार आज भी है, पर उसने उस उपकार का उसे जो पुरस्कार दिया, उससे उसे नफरत है, इसलिए आज वह उसकी विपत्ति का सहायक नही, केवल दर्शक होगा। वह पहुँच से दूर, अकेला है। यहाँ वह पहले की तरह होता भी, तो उसकी रक्षा न कर सकता। कनक इसी तरह सोच रही थी कि कुँवर साहव ने कहा, "आपकी मा के लिए दूसरी जगह ठीक की गयी है, यहाँ सिर्फ आप ही रहेगी।"

कनक के होश उड गये। रास्ता भूली हुई दृष्टि से चारो तरफ देख रही थी। तभी कुँवर साहव ने कहा, "आपको महफिल लगने पर ले जाने के लिए यह मोटर है। आप किसी तरह घवराइए मत। यहाँ एकान्त है। आपको आराम रहेगा। इसी ख्याल से आपको यहाँ लाया गया है। चारो तरफ से जल से भीगी हवा आ रही है। छोटी-छोटी नावें भी हैं। आप जव चाहे, जल-विहार कर सकती हैं। भोजन भी आपके लिए यही आ जायगा।"

"आपको कोई तकलीफ न होगी—खुक—खुक—खुक—खुक—खो—ओ—ओ—खो—ओ—", मुसाहवो का अट्टहास गूँज उठा।

"मुझे महफिल मे जाने से पहले अपनी मा के पास जाना होगा, क्योकि पेश-वाज वगैरा उन्ही के पास हैं।"

'अच्छा, तो घण्टे-भर पहले चली जाइएगा।" कुँवर साहव ने मुसाहिवो की तरफ देखकर कहा।

"रास्ते की थकी हुई हूँ, माफ फर्माएँ, कुछ देर आराम करना चाहती हूँ। आपके दर्शनो से कृतार्थ हो गयी।"

"कमरे मे पलँग विछा है, आराम कीजिए।"

कुँवर साहव की इस श्रुति मधुर स्तुति मे जो लालसा छिपी हुई थी, कनक उसे ताड न सकी। शायद अनभ्यास के कारण, पर उसका जी इतनी ही देर मे हद से ज्यादा ऊव गया था। उसने स्वाभाविक ढग से कहा, "यहाँ मैं आराम न कर सकूँगी। नयी जगह है। मुझे मेरी मा के पास भेज दीजिए। फिर जव आपकी आज्ञा होगी, चली आऊँगी।"

कुँवर साहव ने कनक को भेज दिया।

सर्वेश्वरी वहाँ ठहरायी गयी, जहाँ वनारस, लखनऊ, आगरे की और-और तवायफें भी ठहरी थी। सर्वेश्वरी का स्थान सवसे ऊँचा, सजा हुआ तथा सुखद था। सभी तवायफो पर पहले ही से उसका रोव गालिव था। वहाँ कनक को न देख सर्वेश्वरी अपने को जाल मे फँसी जानकर वडी व्याकुल हुई। और भी जितनी तवायफें थी, सवसे यह समाचार कहा। सभी त्रस्त हो रही थी। उसी समय उदास

कनक को लेकर मोटर पहुँची। सर्वेश्वरी की जान मे जान आयी। अन्य तवायफें आँखें फाड-फाडकर उसके अपार रूप पर विस्मय प्रकट कर रही थी, और इस तरह का खतरा साथ मे रखकर भी खतरे से वची रहने के खयाल पर, "बिस्मिल्ला, तोवा, अल्लाह ताला ने आपको कैसी अक्ल दी' इतना जमाना देखकर भी आपको पहले नही सूझा।" आदि-आदि सहानुभूति के शब्दो से अभिनन्दित कर रही थी।

सर्वेश्वरी आशा कर रही थी कि कनक अपनी दु ख-कथा कहेगी, पर वह उस प्रमग पर कुछ वोली ही नही। चुपचाप आकर माता के विस्तरे पर वैठ गयी। अन्य कई अपरिचित तवायफें परिचय के लिए पास आ, घेरकर बैठ गयी। मामूली कुशल-प्रश्न होते रहे। सबने अनेक उपायो से कनक के एकान्तवास का हाल जानना चाहा, पर वह टाल गयी, "कुछ नही, सिर्फ मिलने के लिए कुँवर साहव ने बुलवाया था।"

वह भी एकान्त स्थान था। गढ के वाहर एक वडा-सा वँगला बाग के बीच मे था। इनके रहने के लिए खाली कर दिया गया था। चारो तरफ हजारो किस्म के सुगन्धित फूल लगे हुए थे। बीच-बीच मे पक्की, टेढी, सर्प की गति की नकल पर, राहे कटी हुई थी।

राजकुमार भटकता-फिरता-पूछता बाग के फाटक पर आया। एक बार तो जी मे आया कि भीतर जाय, पर लज्जा से उधर ताकने की भी हिम्मत न होती थी। सूर्यास्त हो चुका था। गोधूलि का समय था। गढ के द्वार पर खडा रहना भी उसे अपमानजनक जान पडा। वह वाग मे घुसकर एक वेंच पर बैठ गया, और जेव से एक सिगरेट निकालकर पीने लगा। वह जिस जगह बैठा था, वही से, कनक के सामने ही, एक झरोखा था, और उससे वहाँ तक नजर साफ चली जाती थी, पर अँधेरे के कारण वाहर का आदमी नही देख सकता था।

कनक वर्तमान समय की उलझी हुई ग्रन्थि खोलने के लिए मन-ही-मन सहस्रो वार राजकुमार को याद कर चुकी थी, और हर प्रत्युत्तर मे उसे निराशा ही मिलती, "राजकुमार यहाँ क्यो आयेगा?"

कनक की माता भी उसकी फिक्र मे थी। कारण, वह जानती थी कि किसी भी अनिश्चित कार्य के लिए दवाव पडने पर उसकी कन्या जान पर खेल जायेगी। वह कनक के लिए दीन-दुनिया सवकुछ छोड सकती थी।

राजकुमार के हृदय मे लज्जा, अनिच्छा, घृणा, प्रेम, उत्सुकता, कई विरोधी गुण थे, जिनका कारण वहुत कुछ उसकी प्रकृति थी, और थोडा-सा उसका पूर्व सस्कार तथा भ्रम। सन्ध्या हो गयी, नौकर भोजन पकाने मे लगे। कमरो की वत्तियाँ जल गयी। वाहर के लाइट-पोस्ट भी जला दिये गये। राजकुमार की वेंच एक लाइट-पोस्ट के नीचे थी। वत्ती जलानेवाला राज्य का मशालची था। उसने राजकुमार को तवलची आदि समझकर कोई पूछताछ न की। कन्धे की सीढी पोस्ट से लगाकर, बत्ती जलाकर, राजकुमार की तरफ से घृणा से मुँह फेर, उस तवलची से वह मशालची होने पर भी अपने धर्म मे रहने के कारण कितना वडा है, सिर झुकाये हुए इसका निर्णय करता हुआ चला गया। राजकुमार को दुवारा देखने पर वह शायद ही पहचानता, घृणा के कारण उसकी नजर राजकुमार पर

इतनी कम ठहरी थी।

प्रकाश के कारण अव वाहर से राजकुमार भी भीतर देख रहा था। कनक को उसने एक वार, दो वार, कई वार देखा। राजकुमार के हृदय के भाव उसके आँसुओ मे झलक रहे थे। मन उसके विशेष आचरणो की आलोचना कर रहा था।

उस समय कनक की अचानक उस पर निगाह पडी। सर्वांग काँप उठा। इतना सुख उसे कभी नही मिला था। राजकुमार से मिलने के समय भी नही। फिर देखा। आँखो की प्यास वढती ही गयी। उत्कण्ठा की तरग उठी। वह भी उठकर खडी हो गयी, और राजकुमार की तरफ चली। कनक को राजकुमार ने देखा। समझ गया, वह उसी मे मिलने आ रही है।

राजकुमार को वडी लज्जा लगी—कनक के वर्तमान व्यवसाय पर और उससे अपनी घनिष्ठता के कारण। वह हिम्मत करके भी उस जगह, उजाले मे, न रह सका। तारा से कनक को यदि न मिलाना होता, तो शायद कनक को इस परिस्थिति मे देखकर वह एक क्षण भी वहाँ न ठहरता।

कनक ने देखा, राजकुमार एक अँधेरे कुज की तरफ धीरे-धीरे वढ रहा है। कनक भी उधर ही चली। इतने समय की तमाम वाते एक ही साथ निकलकर हृदय और मस्तिष्क को मथ रही थी। राजकुमार के पास पहुँचते ही कनक को चक्कर आ गया। उसे जान पडा कि वह गिर जायगी। वचाव के लिए स्वभावत एक हाथ उठकर राजकुमार के कन्धे पर पडा। अज्ञात-चालित राजकुमार ने उसे आपृष्ठ कमर एक हाथ मे लपेटकर थाम लिया। कनक अपनी देह का तमाम भार राजकुमार पर रखे आराम करने लगी, जैसे अव तक की की हुई तपस्या का फल भोग कर रही हो। राजकुमार थामे खडा रहा।

"तुमने मुझे भुला दिया, मैं अपना अपराध भी न समझ सकी।"

तकिए के तौर मे राजकुमार के कन्धे पर कपोल रक्खे हुए अधखुली, सरल, सप्रेम दृष्टि से कनक उसे देख रही थी। इतनी मधुर आवाज कानो के इतने नजदीक से राजकुमार ने कभी नही सुनी थी। उसके तमाम विरोधी गुण उस ध्वनि के तत्त्व मे डूव गये। उसे तारा की याद आयी। वह उसकी तमाम वातो को परस्पर जोडने लगा। यह वही कनक है, जिस पर उसे सन्देह था। कुज मे वाहर की वत्तियो का प्रकाश क्षीण होता हुआ भी पहुँच रहा था। उसने एक विन्दी कनक के मस क पर लाल-लाल चमकती हुई देखी। सन्देह हुआ कि उसके साथ कनक का विवाह कव हुआ! द्विधा ने मन के विस्तार को सकुचित कर एक छोटी-सी सीमा मे वाँध दिया। प्रतिज्ञा जाग उठी, मानो किसी ने कई कोडे कस दिये हो। कलेजा काँप उठा। भीनी-भीनी हवा वह रही थी। कनक ने सुख से पलकें मूँद ली। निर्वाक सचित्र राजकुमार को अपनी रक्षा का भार सौंपकर विश्राम करने लगी। राजकुमार ने कई वार पूछने का इरादा किया, पर हिम्मत न हुई—कितनी अशिष्ट, अप्रासगिक वात!

राजकुमार कनक को प्यार करता था, पर उस प्यार का रग वाहरी आवरणो से दवा हुआ था, वह समझकर भी नही समझ पाता था। इसका वहुत कुछ कारण कनक के इतिहास के सम्बन्ध मे उसका अज्ञान था। वहुत कुछ उसके पूर्व-सचित

संस्कार थे। उसके भीतर एक इतनी बडी प्रतिज्ञा थी, जिससे बडे-बडे शब्द दूसरो के दिल मे त्रास पैदा करनेवाले थे, जिसका उद्देश्य जीवन की महत्ता थी, प्रेम नही। प्रेम का छोटा-सा चित्र वहाँ टिक ही नही पाया था, इसलिए प्रेम की छाया मे पैर रखते ही चौक पडता था। अपने सुख की कल्पना कर दूसरो की निगाहो मे अपने को वहुत छोटा देखने लगता था, इसलिए उसका प्यार कनक के प्यार के सामने हल्का पड जाया करता था—पानी के तेल की तरह उसमे रहकर भी उससे जुदा रहता था, ऊपर-ही-ऊपर तैरता फिरता था। अनेक प्रकार की शकाएँ जाग उठती, दोनो की आत्मा की ग्रन्थि को एक से खुला कर दोनो को जुदा कर देती थी।

इसी अवस्था मे कुछ देर वीत गयी। थकी हुई कनक प्रिय की वाँहो मे विश्राम कर रही थी, पर हृदय मे जागती थी। अपने सुख को आप ही अकेली तौल रही थी। उसी समय राजकुमार ने कहा, "वहूजी ने तुम्हे वुलाया है, इसीलिए आया था।"

कनक की आत्मा मे अव्यक्त प्रतिध्वनि हुई, "नही तो न आते!" फिर एक जलन पैदा हुई। शिराओ मे तडित् का तेज प्रवाह वहने लगा। कितनी असहृदय वात! कितनी नफरत! कनक राजकुमार को छोड, अपने ही पैरो सँभलकर खडी हो गयी। चमकीली निगाह से एक वार देखा। पूछा, "नही तो न आते?"

इस उत्तर की राजकुमार को आशा न थी। विस्मयपूर्वक खडा कनक को एक विस्मय की ही प्रतिमा के रूप मे देखता रहा। अपने वाक्य के प्रथम अश पर ही उसका ध्यान था, पर कनक को राजकुमार की वहूजी की अपेक्षा राजकुमार की ही ज्यादा जरूरत थी, इसलिए उसने दूसरे वाक्य को ही प्रधान माना। राजकुमार के भीतर जितना दुराव कुछ विरोधी गुणो के कारण कभी-कभी आ जाया करता था, वह उसके दूसरे वाक्य मे अच्छी तरह खुल रहा था; पर उसकी प्रकृति के अनुकूल होने के कारण उस-जैसा विद्वान् मनुष्य भी उस वाक्य की फाँस नही समझ सका। कनक उसकी दृष्टि मे प्रिय अभिनेत्री, केवल सगिनी थी।

"तुम्ही ने कहा था, याद तो होगा, तुम मेरी कविता हो। इसका जवाव भी, जो मैंने दिया था, याद होगा।"

लौटकर कनक डेरे की तरफ चली। उसके शब्द राजकुमार को पार कर गये। वह खडा देखता और सोचता रहा, 'कव, कहाँ गलती से एक वात निकल गयी, उसका इतना वडा ताना! मैं साहित्य की वुद्धि के विचार से अभिनय किया करता हूँ। स्टेज की मित्रता मानकर इनका वाँकपन (अहह, कैसा वल खाती हुई जा रही है), नाजोअदा, नजाकत वरदास्त कर लेता हूँ। आयी है रुपये कमाने, ऊपर से मुझ पर गुस्सा झाडती है। न-जाने किसके कपडो का वोझ गधे की तरह तीन घण्टे तक लादे खडा रहा। काम की वात कही नही कि आँखें फेर ली, मचलकर चल दी। आखिर जात कौन है। अव मैं पैरो पडता फिरूँ? न वावा, इतनी कडी मिहनत मुझमे न होगी। वहूजी से कह दूँगा, यह काम मेरे मान का नही। उसे भेजो, जिसे मनाने का अभ्यास हो।'

राजकुमार धीरे-धीरे वगीचे के फाटक की तरफ चला। निश्चय कर लिया कि सीधे वहूजी के पास ही जायगा। सर्वेश्वरी भी वडी देर तक कनक को न देख खोज रही थी। वाहर आ रही थी कि उससे मुलाकात हुई।

"अम्मा ! वह आये हैं, और आये है, इसलिए कि उनकी वहूजी मुझसे मिलना चाहती हैं।" कनक ने सरोप कहा, "मैं चली आयी, उधर कुँवर साहव के रग-ढग भी मुझे वहुत वुरे मालूम दे रहे थे। अम्मा, मुझे तो देखकर डर लग रहा था। ऐमा देखता था, जैमे खा जायगा मुझे। छोडता ही न था। जव मैंने कहा, अभी अपनी मा से मिल लूँ, फिर जव आप याद करेंगे, मिल जाऊँगी, तव आने दिया।"

"तुमने कुछ कहा भी राजकुमार से ?" सर्वेश्वरी ने पूछा।

"नही। मुझ पर उन्हे विश्वास नही, अम्मा !" कनक की आँखें छलछला आयी।

"अभी वाग मे है ?" सर्वेश्वरी ने कुछ मोचते हुए पूछा।

"थे तो।"

"अच्छा, जरा मैं भी मिल लूँ।"

कनक खडी-खडी देखती रही। सर्वेश्वरी वाग की तरफ चली। राजकुमार फाटक पार कर चुका था।

"भैया, कहाँ जाते हो ?" घवरायी हुई सर्वेश्वरी ने पुकारा।

"घर।" वही मे, विना रुके हुए, रुखाई से राजकुमार ने कहा।

"तुम्हारा घर यही पर है ?" वढती हुई सर्वेश्वरी ने आवाज दी।

"नही, मेरे दोस्त का घर है।" राजकुमार और तेज चलने लगा।

"भैया, जरा ठहर जाओ। सुन तो लो।"

"अव माफ कीजिए, इतना वहुत हुआ।"

सामने से एक आदमी आता हुआ देख पडा। सर्वेश्वरी रुक गयी। भय हुआ, वुला न सकी। राजकुमार पेडो के अँधेरे मे अदृश्य हो गया।

"कुँवर साहव ने महफिल के लिए जल्द वुलाया है।" उस आदमी ने कहा।

"अच्छा।" सर्वेश्वरी की आवाज क्षीण थी।

"आप लोगो ने खाना न खाया हो, तो जल्दी कीजिए।"

सर्वेश्वरी डेरे की तरफ चली। आदमी दूसरी तवायफो को सूचना देने चला।

"क्या होगा, अम्मा ?" कनक ने त्रस्त निगाह से देखते हुए पूछा।

"जो भाग्य मे होगा, हो लेगा। तुमसे भी नही वना।"

कनक सिर झुकाये खडी रही। और-और तवायफें भोजन-पान मे लगी हुई थी। सर्वेश्वरी थोडा-सा खाना लेकर आयी, और कनक से खा लेने के लिए कहा। स्वय भी थोडा-सा जल-पान कर तैयार होने लगी।

चौदह

राजकुमार वाहर, एक रास्ते पर, कुछ देर खडा सोचता रहा। दिल को सख्त चोट लगी थी। वह स नाराज था। सोच रहा था, चलकर खूव फटकारूँगा। रात एक

पहर बीत चुकी थी, भूख लग रही थी। बहू के मकान की ओर चला, पर दिल पीछे खीच रहा था, तरह-तरह से आरजू-मिन्नत कर समझा रहा था, 'बहुत दूर चलना है।' बहू का मकान वहाँ से मील ही भर के फासले पर था, 'अब वहाँ खाना-पीना हो गया होगा। सब लोग सो गये होगे।'

राजकुमार को दिल की यह तजवीज पसन्द आयी।

रास्ते मे एक पुल मिला। वह वही बैठकर फिर सोचने लगा। कनक उसके शरीर मे प्राणो की ज्योति की तरह समा गयी थी, पर बाहर से वह बराबर उससे लडता रहा। 'कनक स्टेज पर नाचेगी, गायेगी, दूसरो को खुश करेगी, खुद भी प्रसन्न होगी, और मुझसे ऐसा जाहिर करती है, गोया दूध की धुली हुई है, इन सब कामो मे दिल से उसकी बिलकुल दिलचस्पी नही और वह ऐसी कनक का महफिल मे बैठकर गाना सुनना चाहता है!' राजकुमार के रोएँ-रोएँ से नफरत की आग निकल रही थी, जिससे तपकर कनक की कल्पना-मूर्ति उसे और भी चमकती हुई, स्नेहमयी बनकर घेर लेती। हृदय उमडकर उसे स्टेज की तरफ चलने के लिए प्रेरित करता। उसके तमाम विरोधी प्रयत्न विफल हो रहे थे।

अन्ततः उसने यन्त्रवत् हृदय की इस सलाह को मान लिया, और इसके अनुकूल युक्तियाँ भी निकाल ली। सोचा, 'अब बहुत देर हो गयी है, बहू सो गयी होगी। अच्छा हो, यही चलकर कही जरा जलपान कर लूँ, और रात महफिल के एक कोने मे बैठकर पार कर दूँ। कनक मेरी है कौन ? फिर मुझे इतनी ग्लानि क्यो ? जिस तरह मैं स्टेज पर जाया करता हूँ, उसी तरह यहाँ भी बैठकर बारीकियो की परीक्षा करूँगा। कनक के सिवा और भी कई तवायफें हैं। उनके सम्बन्ध मे मैं कुछ नही जानता। उनके सगीत से लेने लायक मुझे कुछ मिल सकता है।'

बस, निश्चय हो गया। फिर बहू का मील-भर दूर मकान मजिलो दूर सूझने लगा। राजकुमार लौट पडा।

चौराहे पर कुछ दीपक जल रहे थे, उसी ओर चला। कई दूकाने थी, पूडियो की भी एक दूकान थी। उसी तरफ बढा। सामने कुरसियाँ पडी थी, बैठ गया। आराम की एक ठण्डी साँस ली। पाव-भर पूडियाँ तोलने के लिए कहा।

भोजन के पश्चात् हाथ-मुँह धोकर दाम दे दिये। इसी समय गढ के भीतर कुँवर साहब की सवारी का डका सुनायी पडा। दुकानदार लोग चलने के लिए व्यग्र हो उठे। उन्ही से उसे मालूम हुआ कि अब कुँवर साहब महफिल मे जा रहे हैं। दुकानदार अपनी-अपनी दूकानें बन्द करने लगे। राजकुमार भी भीतर से पुलकित हो उठा। एक पानवाले की दूकान से दो बीडे लेकर खाता हुआ गढ की तरफ चला।

बाहर, खुली हुई जमीन पर, एक विशाल मण्डप बना था। एक तरफ स्टेज था, तीन तरफ से गेट। हर पर सगीन-बन्द सिपाही पहरे पर था। भीतर बडी सजावट थी। विद्युदाधार मँगवाकर कुँवर साहब ने भीतर और बाहर बिजली की बत्तियो से रात मे दिन कर रक्खा था।

राजकुमार ने बाहर से देखा, स्टेज जगमगा रहा था। फुटलाइट का प्रकाश

कनक के मुख पर पड रहा था, जिससे रात मे उसकी सहस्रोगुणा शोभा बढ गयी थी। गाने की आवाज आ रही थी। लोग बातचीत कर रहे थे कि आगरेवाली गा रही है। राजकुमार ने बाहर ही से देखा, तवायफें दो कतारो मे बैठी हुई हैं। दूसरी कतार की पहली तवायफ गा रही है। इस कतार मे कनक ही सबके आगे थी, बगल मे उसकी माता। लोग मन्त्र-मुग्ध होकर रूप और स्वर की सुधा पी रहे थे, अचचल आँखो मे कनक को देख रहे थे। कनक भी दीपक की शिखा की तरह स्थिर बैठी थी। यौवन की उस तरुण ज्योति की तरफ कितने ही पतिंगे बढ रहे थे। कुँवर साहब एकटक उसे ही देख रहे थे।

राजकुमार को बाहर-ही-बाहर घूमते हुए देखकर एक ने कहा, "बाबूजी, भीतर जाइए, आपके लिए कोई रोक थोडे ही है। रोक तो हम लोगो के लिए है, जिनके पास मजबूत कपडे नही। जब कुँवर साहब चले जायेंगे, तब पिछली रात को कही मौका लगेगा।"

राजकुमार को हिम्मत हुई। एक गेट से भीतर घुसा। सभ्य वेश देख सिपाही ने रास्ता छोड दिया। पीछे जगह बहुत खाली थी, एक जगह बैठ गया। उसे आते हुए कनक ने देख लिया। वह बडी देर से, जब से स्टेज पर आयी, उसे खोज रही थी। कोई भी नया आदमी आता, तो उसकी आँखें जाँच करने के लिए बढ जाती थी।

कनक राजकुमार को देख रही थी। राजकुमार ने भी कनक को देखा, और समझ गया कि उसका आना कनक को ज्ञात हो गया है, फिर भी आँखें फेरकर एक ओर बैठ गया। कनक कुछ देर तक अचचल दृष्टि से देखती ही रही। मुख पर किसी प्रकार का विकार न था। राजकुमार के विचार को जैसे वह समझ रही थी, पर चेष्टाओ मे किसी प्रकार की भावना न थी।

क्रमश दो-तीन गाने हो गये। दूसरी तरफवाली कतार खत्म होने पर थी। एक-एक सगीत की बारी थी। कारण, कुँवर साहब शीघ्र ही सबका गाना सुनकर चले जानेवाले थे। इधर की कतार मे कनक का पहला नम्बर था, फिर उसकी माता का। कुँवर साहब उसके गाने के लिए उत्सुक हो रहे थे, और अपने पास के मुसाहिबो से पहले ही से उसके मँजे हुए गले की तारीफ कर रहे थे, और इस प्रतियोगिता मे सबको वही परास्त करेगी, इसका निश्चय भी दे रहे थे। कुँवर साहब के जल्द उठ जाने का एक और कारण था, और इस कारण मे उनके साथ कनक का भी बँगले पर जाना निश्चित था। इसकी कल्पना कनक ने पहले ही कर ली थी, परन्तु मुक्ति का कोई उपाय न सोच सकी थी। कोई युक्ति थी भी नही। एक राजकुमार था, अब उससे वह निराश हो चुकी थी। राजकुमार के प्रति कनक के मन मे क्रोध कम न था।

फर्श बिछा था। ऊपर इन्द्र-धनुषी रग के रेशमी थानो को और बीच मे सोने की चित्रित चर्खी मे उन्ही कपडो को पिरोकर नये ढग की चाँदनी बनायी गयी थी। चारो तरफ लोहे के लट्ठे गडे थे, उन्ही के सहारे मण्डप खडा था। लोहे की उन कडियो मे वही कपडे लिपटे थे। दो-दो कडियो के बीच एक तोरण उन्ही कपडो से सजाया गया था। मण्डप 100 हाथ से भी लम्बा और 50 हाथ से भी चौडा था

लम्बाई की सीध में, सटा हुआ, पर मण्डप से अलग स्टेज था—स्टेज ही की तरह सजा हुआ, फुट-लाइटें जल रही थीं, साजिंदे विंग्स् के भीतर बैठे साज बजा रहे थे।

कुँवर साहब की गद्दी के दो-दो हाथ के फासले से सोने की कामदार छोटी रेलिंग चारों तरफ लगी थी। दोनों बगल गुलाब-पाश, इत्रदान, फूलदान आदि सजे हुए थे। गद्दी पर रेशमी मोटी चादर बिछी थी, चारों तरफ एक-एक हाथ मुनहला काम था, और पन्ने तथा हीरे की कन्नियाँ जड़ी हुई थीं, दोनों बगल दो छोटे-छोटे कामदार मखमली तकिए, वैसा ही पीठ की तरफ बड़ा गिरदा। कुँवर साहब की दाहिनी तरफ उनके परिवार के लोग थे, और बायीं तरफ राज्य के अफसर। पीछे आनेवाले सभ्य दर्शक तथा राज्य के पढ़े-लिखे और रईस लोग। राजकुमार यहीं बैठा था।

कनक उठ गयी। राजकुमार ने देखा। भीतर ग्रीन-रूम में जाकर उसने कुँवर साहब के नाम एक चिट्ठी लिखी, और अपने जमादार को खूब समझाकर चिट्ठी दे दी। इस काम में उसे पाँच मिनट से अधिक समय न लगा। वह फिर अपनी जगह आकर बैठ गयी।

जमादार ने चिट्ठी कुँवर साहब के अर्दली को दी। अर्दली से कह भी दिया कि जरूरी चिट्ठी है। छोटी बाईजी ने जल्द पेश करने के लिए कहा है।

कुँवर साहब के रंग-ढंग वहाँ के तमाम नौकरों को मालूम हो गये थे। छोटी बाईजी के प्रति कुँवर साहब की कैसी कृपा-दृष्टि है, और परिणाम आगे चलकर क्या होगा, इसकी चर्चा नौकरों में छिड़ गयी थी। अतः उसने तत्काल चिट्ठी पेशकार को दे दी, और साथ ही जल्द पेश कर देने की सलाह भी दी।

पेशकार साहब मौका न होने के बहाने पत्र लेकर बैठे ही रहना चाहते थे, पर जब उसने बुलाकर एकान्त में समझा दिया कि छोटी बाई इस राज्य के नौकरों के लिए कोई मामूली बाईजी नहीं; यदि जल्द पत्र न गया, तो कल ही उससे तअल्लुक रखनेवालों पर बड़ी-बड़ी विपत्तियाँ आ सकती हैं, उसने इशारे से सारा मतलब समझा दिया, तब पेशकार मन-ही-मन पुरस्कार की कल्पना करते हुए कुँवर साहब की गद्दी की तरफ बढ़े, और झुककर पत्र पेश कर दिया।

प्रकाश आवश्यकता से अधिक था। कुँवर साहब पढ़ने लगे। पढ़कर, बिना तपस्या के वर-प्राप्ति का सुन्दर सुयोग देख खुले हुए कमल पर बैठे भौंरे की तरह प्रसन्न हो गये। पत्र में कनक ने शीघ्र ही कुँवर साहब को ग्रीन-रूम में बुलाया था।

एकाएक वहाँ से उठकर कुँवर साहब न जा सकते थे, शान के खिलाफ था। उधर गाने में तृप्ति करने की अपेक्षा जाने की उत्सुकता प्रबल थी, अतः मुसाहबों को ही निर्णय के लिए छोड़ उठकर खड़े हो गये। पालकी लग गयी। कुँवर साहब प्रासाद चले गये।

इधर आम जनता के लिए द्वार खुल गया। सब तरह के आदमी भीतर धँस गये। महफिल ठसाठस भर गयी। अब तक दूसरी कतार का गाना खत्म हो चुका था। कनक की बारी थी। लोग सिर उठाये आग्रह से मुँह ताक रहे थे। सर्वेश्वरी ने धीरे से उसे कुछ समझाया। कनक के उस्तादों ने स्वर भरा। कनक ने एक अलाप ली, फिर गाने लगी—

"दिल का आना था कि काबू से था जाना दिल का;
ऐसे जाने से तो बेहतर था न आना दिल का।
हम तो कहते थे, मुहब्बत की बुरी है रस्मे,
खेल समझे थे मेरी जान, लगाना दिल का।"

स्वर की तरग से पूरी महफिल को डुबो दिया। लोगो के हृदय मे एक नया स्वप्न, सौन्दर्य के आकाश के नीचे, शिशिर के स्पर्श से धीरे-धीरे पलक खोलती हुई चमेली की तरह विकसित हो गया। उसी स्वप्न के भीतर से लोग उस स्वर की परी को देख रहे थे। साधारण लोग अपने उमडते हुए उच्छ्वास को न रोक सके। एक तरफ से आवाज आयी, "उवाह् कनकौआ, जस सुनत रहील, तइसै हऊ राजा।"

सभ्य जन सिर झुका मुस्किराने लगे। कनक उसी धैर्य से अप्रतिभ बैठी गाती रही। एक बार राजकुमार को देखा, फिर आँखें झुका लीं।

राजकुमार कलाविद् था। सगीत का उस पर पूरा असर पड गया था। एक बार, जब कनक के कला-ज्ञान की याद आती, हृदय के सहस्र कण्ठो से उसकी प्रशसा करने लगता, पर दूसरे ही क्षण उस सोने की मूर्ति मे भरे हुए जहर की कल्पना उसके शरीर को जर्जर कर देती थी। चित्त की यह डावाँडोल स्थिति उसकी आत्मा को क्रमश कमजोर करती जा रही थी, हृदय मे स्थायी प्रभाव जहर का ही रह जाता। एक अज्ञात वेदना उसे क्षुब्ध कर देती थी। कनक के स्वर, सौन्दर्य, शिक्षा आदि की वह जितनी ही बातें सोचता, और ये बातें उसके मन के यन्त्र को आप ही चला-चलाकर, उसे कल्पना के अरण्य मे भटकाकर निर्वासित कर देती थी, उतनी ही उसकी व्याकुलता बढ जाती थी। तृष्णार्त को ईप्सित सुस्वादु जल नही मिल रहा था—सामने महासागर था, पर हाय, वह लवणाक्त था!

कुँवर साहब प्रासाद मे पोशाक बदलकर सादे, सभ्य वेश मे, कुछ विश्वासपात्र अनुचरो को साथ ले, प्रकाश-हीन मार्ग से स्टेज की तरफ चल दिये। उनके अनुचर उन्हे चारो ओर से घेरे हुए थे, जिसमे दूसरो की दृष्टि उन पर न पडे। स्टेज के बहिर्द्वार से कुँवर साहब भीतर ग्रीनरूम की ओर चले एक आदमी को साथ ले, और सबको वही, इधर-उधर प्रतीक्षा करने के लिए कह दिया। ग्रीनरूम से कुँवर साहब ने अपने आदमी को कनक को बुला लाने के लिए भेज दिया। खबर पा, उँगली मुँह के नजदीक तक उठा, दर्शको को अदब दिखला सामने के विग से भीतर चलने लगी। दर्शको की तरफ मुँह किये विग की ओर फिरते समय एक बार फिर राजकुमार की ओर देखा। दृष्टि नीची कर मुस्किरायी, क्योकि राजकुमार की आँखो मे वह आग थी, जिससे वह जल रही थी।

कनक ग्रीनरूम की तरफ चली। शकित हृदय काँप उठा, पर कोई चारा न था। राजकुमार की तरफ असहाय आँखें प्रार्थना की अनिमेष दृष्टि से आप-ही-आप बढ गयी, और हताश होकर लौट आयी। कनक के अग-अग राजकुमार की तरफ से प्रकाश-हीन सन्ध्या मे कमल के दलो की तरह सकुचित हो गये। हृदय को अपनी शक्ति की किरण देख पडी, दृष्टि ने स्वय अपना पथ निश्चित कर लिया।

कनक एक विग के भीतर सोचती हुई खड़ी हो गयी थी। चली। कुँवर साहब

ने बड़े आदर से उठकर उसका स्वागत किया।

"बैठिए।" कहकर कनक उनके बैठने की प्रतीक्षा किये बिना कुरसी पर बैठ गयी। कुंवर साहब नौकर को बाहर जाने के लिए इशारा कर बैठ गये।

कनक ने कुंवर साहब पर एक तेज दृष्टि डाली। देखा, उनके अपार ऐश्वर्य पर तृष्णा की विजय थी। उनकी आँखे उसकी दृष्टि से नही मिल सकी। वे कुछ चाहती है, इसलिए झुकी हुई है। उन पर कनक का अधिकार जम गया।

"देखिए।" कनक ने कहा, "यहाँ एक आदमी बैठा है, उसको कैद कर लीजिए।"

आज्ञा-मात्र से प्रवल-पराक्रम कुंवर साहव उठकर खडे हो गये, "कौन है?"

"आइए।" कनक आगे-आगे चली।

स्टेज के सामने के गेटो की दराज से राजकुमार को दिखाया। उसके शरीर, मुख, कपडे, रग आदि की पहचान कराती रही। कुंवर साहब ने अच्छी तरह देख लिया। कई वार दृष्टि पर जोर दे-देकर देखा। दूसरी कतार की तवायफे तअज्जुब की निगाह से उस मनुष्य तथा कनक को देख रही थी। गाना हो रहा था।

कनक को उसकी इच्छा-पूर्ति से उपकृत करने के निश्चय से कुंवर साहब को उसे 'तुम' सम्बोधन करने का साहस तथा सुख मिला। कनक भी कुछ झुक गयी, जब उन्होने कहा, "अच्छा तुम ग्रीनरूम मे चलो, तब तक अपने आदमियो को बुलाकर इन्हे दिखा दूँ।"

कनक चली गयी। कुंवर साहब ने दरवाजे के पास से बाहर देखा। कई आदमी आ गये। दो को साथ भीतर ले गये। उसी जगह से राजकुमार को परिचित करा दिया, और खूब समझा दिया, "महफिल उठ जाने पर एकान्त रास्ते मे अलग बुलाकर वह जरूर गिरफ्तार कर लिया जाय। किसी को कानोकान खबर न हो। आपस के सब लोग उसे पहचान ले।"

कुंवर साहब के मनोभावो पर चढा हुआ भेद का पर्दा कनक के प्रति किये गये उपकार की शक्ति से ऊपर उठ गया। सहस्रो दृश्य दिखायी पडे। आसक्ति के उद्दाम प्रवाह मे ससार अत्यन्त रमणीय, चिरन्तन सुखो से उमडता हुआ एकमात्र उद्देश्य स्वर्ग देख पडने लगा। ऐश्वर्य की पूर्ति मे उस समय किसी प्रकार का दैन्य न था। जैसे उनकी आत्मा मे ससार के सब सुख व्याप्त हो रहे हो। उद्दाम प्रसन्नता से कुंवर साहब कनक के पास आये।

जाल मे फँसी हुई मृगी जिस तरह अपनी आँखो को विस्फारित कर मुक्त शून्य के प्रति मुक्ति के प्रयत्न मे निकलती रहती है, उसी दृष्टि से कनक ने कुंवर साहब को देखा। इतनी सुन्दर दृष्टि कुंवर साहब ने कभी नही देखी थी। किन्ही आँखो मे उन्हे वश करने का जादू न था। आँखो के जलते हुए दो स्फुलिंग उनकी प्रणय-वाटिका मे खिले हुए दो गुलाब थे। प्रतिहिंसा की गर्म साँस, वसन्त की शीतल समीर, और उस रूप की आग मे तत्काल जल जाने के लिए वह एक अधीर पतग। स्टेज पर लखनऊ की नव्वावजान गा रही थी—

"तू अगर शमा बने, मैं तेरा परवाना बनूँ।"

कुंवर साहब ने असकुचित, अकुण्ठित भाव से कनक की उन्ही आँखो मे अपनी

दृष्टि गडाते हुए निर्लज्ज स्वर से दोहराया, "तू अगर शमा बने, मैं तेरा परवाना बनूं।"

कनक ने उसी तरह असंकुचित स्वर से जवाब दिया—"मैं तो शमा बनकर ही दुनिया मे आयी हूँ, जनाब!"

"फिर मुझे परवाना बना लो।" परवाने ने परवाने के सर्वस्व दानवाले स्वर से नही, तटस्थ रहकर कहा।

कनक ने एक बार आँख उठाकर देखा।

"किस्मत!" कहकर अपनी ही आँखों की बिजली मे दूर तक रास्ता देखने लगी।

"क्या सोचती हो तुम भी; दुनिया मे हँसने-खेलने के सिवा और है क्या?"

कुँवर साहब का हितोपदेश सुनकर एक बार कनक मुस्किरायी। जलती आग मे आहुति डालती हुई बोली, "आप ठीक कहते है। आप-जैसा जहाँ परवाना हो, वहाँ तो शमा को अपनी तमाम खूबसूरती से जलते रहना चाहिए। लेकिन, मैं सोचती हूँ, मेरी मा जब तक यहाँ है, मैं शीशे के अन्दर हूँ। शमा से मिलने से पहले आप उसके शीशे को निकाल दीजिए।"

"जैसा कहो, वैसा किया जाय।" उत्सुकता-प्रसन्नता से कुँवर साहब ने कहा।

"ऐसा कीजिए की वह आज ही सुबह यहाँ से चली जायें, और-और तवायफें हैं, मैं भी हूँ, जलसा फीका न होगा। आप मुझे इस वक्त बँगले ले चलना चाहेंगे?"

कृतज्ञ प्रार्थना से कुँवर साहब ने कनक की ओर देखा। कनक समझ गयी। बोली, "अच्छा, ठहरिए, मैं जरा मा से मिल लूँ।"

कुँवर साहब खडे रहे। माता को विग्स की आड से बुलाकर, थोड़े शब्दो मे कुछ कहकर कनक चली गयी।

गाना खत्म होने का समय आ रहा था। कुँवर साहब एक पालकी पर कनक को चढा, दूसरी के बन्द पर्दे मे खुद बैठकर बँगले चले गये।

पन्द्रह

राजकुमार को नये कण्ठो के सगीत से कुछ देर तक आनन्द मिलता रहा, पर कुँवर साहब के चले जाने के बाद महफिल कुछ बेसुरी-सी लगने लगी, मानो सबके प्राणो से आनन्द की तरग लुप्त हो गयी हो, जैसे मनोरजन की जगह तमाम महफिल कार्य-क्षेत्र हो रही हो।

गायिका कनक के सगीत का उस पर कुछ प्रभाव पडा था, विदुषी कुमारी कनक उसकी नजरो मे गिर चुकी थी। अज्ञात भाव से इसके लिए उसे अन्दर-ही-अन्दर बडी पीडा मालूम हो रही थी। वह कुछ देर तक तो बैठा रहा, पर जब

कनक भीतर चली गयी, और थोडी ही देर मे कुँवर साहब भी उठ गये, और कनक वडी देर तक न आयी, फिर जब आयी, तो बाहर ही से मा को बुलाकर लौट गयी, यह सब देखकर वह स्टेज, गाना, कनक और अपने प्रयत्न की तरफ से वीतराग हो चला। फिर उसके लिए वहाँ एक-एक क्षण पहाड की तरह बोझीला हो उठा।

राजकुमार उठकर खडा हो गया, और बाहर निकलकर धीरे-धीरे डेरे की तरफ चला। बहूजी के मायके की याद से शरीर से जैसे एक भूत उतर गया हो। नशे के उतार की शिथिलता थी। धीरे-धीरे चला जा रहा था। कनक की तरफ से जो दिल को चोट लगी थी, रह-रहकर नफरत से उसे और बढाता, तरह-तरह की बातें सोचता हुआ चला जा रहा था। ज्यादा झुकाव कलकत्ते की तरफ था— सोच रहा था, इसी गाडी से कलकत्ते चला जायगा।

जब गढ के बाहर निकलकर रास्ता चलने लगा, तो उसे मालूम हुआ, कुछ आदमी और उसके साथ आ रहे है। सोचा, ये लोग भी अपने-अपने घर जा रहे होगे। धीरे-धीरे चलने लगा। वे लोग निकट आ गये। चार आदमी थे। राजकुमार ने अच्छी तरह नजर गडाकर देखा, सब साधारण सिपाही दर्जे के आदमी थे। कुछ न बोला, चलता रहा।

हटिया से निकलकर बाहर सडक पर आया। वे लोग भी आये। सामने दूर तक रास्ता-ही-रास्ता था, दोनो बगल खेत। राजकुमार ने उन लोगो की तरफ फिरकर पूछा, "तुम लोग कहाँ जाओगे ?"

"कही नही, जहाँ-जहाँ आप जायँगे।"

"मेरे साथ चलने के क्या माने ?"

"तारा बहन ने हमे आपकी खबरदारी के लिए भेजा था। साथ चन्दन बाबू भी थे।"

"चन्दन ?"

"हाँ, वह आज सुबह की गाडी से आ गये है।"

राजकुमार की आँखो पर दूसरा पर्दा उठा। ससार अस्तित्वयुक्त, सुखद और सुन्दर मालूम देने लगा। आनन्द के उच्छ्वसित कण्ठ से पूछा, "कहाँ है वह ?"

"अब आपको घर चलकर मालूम ही हो जायगा।"

ये चारो उसी गाँव के आत्माभिमानी अशिक्षित वीर आजकल की भाषा मे गुण्डे थे—प्राचीन रूढियो के अनुसार चलनेवाले। किसी ने रूढि के खिलाफ किसी तरफ कदम बढाया कि उसका सिर काट लेनेवाले। गाँव की बहुओ और बेटियो की इज्जत तथा सम्मान की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व स्वाहा कर देनेवाले। अँगरेजो और मुसलमानो पर विजातीय घृणा की आग भडकानेवाले मलखान और ऊदल के अनुयायी। महावीरजी के अनन्य भक्त। लुप्त-गौरव क्षत्रिय, जमींदार घराने के सुबह के नक्षत्र, जो अपने स्वल्प प्रकाश मे टिमटिमा रहे थे। रिश्ते मे ये तारा के भाई लगते थे।

राजकुमार के चले जाने पर तारा को इनकी याद आयी, तो जाकर नम्र शब्दो मे कहा, "भैया! आप लोग चन्दन के साथ जाओ, और राजकुमार को देखे रहना, कही टण्टा न हो जाय।" तदनुसार ये लोग चन्दन के साथ चले गये थे।

चन्दन ने जैसा बताया, वैसा ही करते रहे। खानदान की लड़की तारा अच्छे घराने में गयी है, वहाँ वाले सब ऊँचे दर्जे के पढ़े-लिखे आदमी हैं, इसका इन लोगों को गर्व था।

धीरे-धीरे गाँव नजदीक आ गया। राजकुमार ने तारा का मतलब दूर तक समझकर फिर ज्यादा बातचीत इस प्रसंग में न की। चन्दन के लिए दिल में तरह-तरह की जिज्ञासा उठ रही थी, 'वह क्यों नहीं आया, तारा ने सब बातें उसने जरूर कह दी होंगी, वह उसी चक्कर में तो नहीं घूम रहा? पर ये लोग क्यों नहीं बतलाते?'

राजकुमार इसी अधैर्य में जल्दी-जल्दी कदम बढ़ा रहा था। मकान आ गया। गाँव के आदमियों ने दरवाजे पर "बिट्टो-बिट्टो!" की असंकुचित, निर्मल आवाज लगायी। तारा ने दरवाजा खोला। राजकुमार को साथ देख स्नेह-स्वर में कहा, "आ गये तुम?"

"सुनो।" एक ने गम्भीर कण्ठ से तारा को एक तरफ अलग बुलाया।

तारा नि:संकोच बढ़ गयी। उसने धीरे-धीरे कुछ कहा। बात समाप्त कर चारों ने तारा के पैर छुए।

चारों एक तरफ चले गये। चिन्ता-युक्त तारा राजकुमार को साथ लेकर चली गयी, और दरवाजा बन्द कर लिया।

तारा के कमरे में जाते ही राजकुमार ने पूछा, "चन्दन कहाँ है बहूजी? इतनी जल्दी आ गया?"

"पुलिस के पास कोई मजबूत कागजात उनके बागीपन के सुबूत में न थे, सिर्फ सन्देह पर गिरफ्तार किये गये थे। पुलिस के साथ खास तौर से पैरवी करने पर जमानत पर छोड़ दिये गये हैं। इस पैरवी के लिए वह बड़े भाई से नाराज भी हैं। मुझे कलकत्ते ले जाने के लिए आये थे। पर यहाँ तुम्हारा हाल मुझसे सुना, तो बड़े खुश हुए, और तुमसे मिलने चले गये पर रज्जू बाबू...!" कहते-कहते युवती की आँखें भर आयीं।

राजकुमार चौंक उठा। उसे विपत्ति की शंका हुई। नमित हो, युवती के दोनों हाथ पकड़कर आग्रह और उत्सुकता से पूछा, "पर क्या? बताओ, मुझे यह शंका हो रही है।"

"तुम्हारा भी तो वही खून है।"

राजकुमार जिज्ञासा-भरी दृष्टि से उसका आशय पूछ रहा था। युवती ने अधिक बातचीत करना अनावश्यक समझा। राजकुमार उठकर बाहर चलने लगा, पर युवती ने पकड़कर डाँट दिया, "थोड़ी देर में सब मालूम हो जायगा, घर के आदमियों के आने पर। खबरदार, अगर बाहर कदम बढ़ाया।"

वीर युवक तारा के पलँग पर तकिये में सिर गड़ाये पड़ा रहा। तारा उसके हाथ-मुँह धोने और जल-पान करने का इन्तजाम करने लगी। धैर्य का बाँध तोड़कर कभी-कभी दृष्टि से अपार चिन्ता झलक पड़ती थी।

सोलह

कनक ने बँगले मे पहुँचकर जो दृश्य देखा, उससे उसकी रही-सही आशा निर्मूल हो गयी। बँगले मे कुँवर साहव के मेहमान टिके हुए थे, जिनमे एक को कनक पहले से जानती थी। वह थे मिस्टर हैमिल्टन। अधिकाश मेहमान कुँवर साहव के कलकत्ते के मित्र थे—वडे-वडे तअल्लुकेदार और गोरे साहव। ये लोग उसी रोज गाडी म उतरे थे। बँगले मे इनके ठहरने का खास इन्तजाम था। ये सभी कुँवर साहव के अन्तरग मित्र थे, अन्तरग आनन्द के हकदार। अपने स्थानो से इसी आशा से प्रयाण किया था।

कुँवर साहव ने पहले ही मे वादा कर रक्खा था कि अभिषेक हो जाने के समय ने अन्त तक वह अपने मित्रो को दर्शाते रहेगे कि मित्रो की खातिरदारी किस तरह से की जाती है। मित्र-मण्डली कभी-कभी इसका तकाजा भी करती रही है। कनक के आने का तार मिलते ही इन्होने अपने मित्रो को आने के लिए तार कर दिया था। करीव-करीव वे लोग भी कनक का नाम सुन चुके थे।

कुँवर साहव की थोडी-सी जमीदारी 24 परगने मे थी, जिससे कभी-कभी हैमिल्टन साहव से मिलने-जुलने का अवसर आ जाता था। धीरे-धीरे यह मित्रता और भी दृढ हो गयी। कारण, दोनो एक ही घाट पानी पीनेवाले थे, कई वार पी भी चुके थे, इससे हृदय भेद-भाव-रहित हो गया था। हैमिल्टन साहव तार पाकर वडे प्रसन्न हुए। हिन्दोस्तानी युवती को साहवी उद्दण्डता, क्रूरता तथा कटुता का ज्ञान करा देने के लिए वह तैयार हो रहे थे, उसी समय उन्हे तार मिला। एक वार कुँवर साहव के मानवीय मित्र की हैसियत से क्षुद्र नर्तकी देखने की लालसा प्रवल हो गयी। वह कुछ दिन की छुट्टी लेकर चले आये।

कनक ने सोचा था, कुँवर साहव को वह अपने इगित पर नचायेगी। राजकुमार को गिरफ्तार करा, जव इच्छा हो, उसे मुक्त कर उसकी सहायता से स्वय भी मुक्त हो जायगी, पर यहाँ और ही रग देखा। उसने सोचा था, कुँवर साहव अकेले रहेगे। वह भय से पीली पड गयी। हैमिल्टन उसे देखकर मुस्किराया। दृष्टि मे व्यग्य फूट रहा था। अकुश कनक के हृदय को पार कर गया। चारो तरफ से कटाक्ष हो रहे थे। सव उसकी लज्जा को भेदकर उसे देखना चाहते थे। कनक व्याकुल हो उठी। आवाज मे कही भी अपनापन न था।

कुँवर साहव पालकी से उतरे। सव लोगो ने शैतान की सूरत का स्वागत किया कनक खडी सवको देख रही थी।

"अजी, आप वडी मुश्किलो मे मिली है। और, सौदा भी वडा महँगा रहा।" कुँवर साहव ने अपने मित्रो से कनक की तरफ इशारा कर कहा।

कनक कमल-कलिका-सी सकुचित खडी रही। हृदय मे आग धधक रही थी। कभी-कभी आँखो मे ज्वाला फूट पडती थी। याद आया, वह भी महाराजकुमारी है, पर हृदय उमडकर आप ही वैठ गया, "मुझमे और इनमे कितना फर्क है। ये मालिक है, और मैं इनके इशारे पर नाचनेवाली। और, यह फर्क केवल इसी सीमा

तक है। चरित्र मे ये किसी भी तवायफ से श्रेष्ठ नही। पर फिर भी समाज इनका है, इसलिए ये अपराधी नही। नीचता से ओत-प्रोत ऐसी वृत्तियाँ लिये हुए भी ये समाज के प्रतिष्ठित, सम्मान्य, विद्वान् और बुद्धिमान मनुष्य है। और मै ?"

कनक को चक्कर आने लगा। एक खाली कुरसी पकडकर उसने अपने को सँभाला। इस तरह तप-तपकर वह और सुन्दर हो रही थी, और चारो तरफ से उसके प्रति आक्रमण भी वैसे ही और चुभीले।

कुँवर साहब मित्रो से खूब खुलकर मिले। हैमिल्टन की उन्होने बडी आव-भगत की। कुंवर साहब हैमिल्टन की जितनी ही कद्र कर रहे थे, वह उतना ही कनक को अकड-अकडकर देख रहा था।

मुस्किराते हुए कुँवर साहब ने कनक से कहा, "बैठो, इस बगलवाली कुरसी पर अपने ही आदमियो की एक बैठक होगी, दोमजिले पर। यहाँ भी हारमोनियम पर सुनाना होगा। सुरेश बाबू, दिलीपसिंह भी गायेंगे। तुम्हे आराम के लिए फुर्सत मिल जाया करेगी।" कहकर चालाक पुतलियाँ फेर ली।

एक नौकर ने आकर कुँवर साहब को खबर दी, "सर्वेश्वरी बाई यहाँ से स्टेशन के लिए रवाना हो गयी है। उनका हिसाब भी कर दिया गया है।" कहकर नौकर चला गया।

एक दूसरा नौकर आया। सलाम कर उस आदमी के गिरफ्तार होने की खबर दी। कुँवर साहब ने कनक की तरफ देखा। कनक ने हैमिल्टन को देखकर राज-कुमार को बुलवाना उचित न समझा। दूसरे, जिस अभिप्राय से उसने राजकुमार को कैद कराया था, यहाँ उसकी सफलता की कोई सम्भावना भी न थी।

कनक को मौन देख कुँवर साहब ने कहा, "यहाँ ले आओ उसे।"

कनक चौंक पडी। जल्दी मे कहा, "नही-नही, अब उसकी कोई जरूरत नही। उसे छोड दीजिए।" कनक का स्वर काँप रहा था।

"जरा देख तो लें उस इशारेबाज को।" कुँवर साहब ने नौकर को सकेत किया।

चार सिपाही अपराधी को लेकर बँगले के भीतर आये। भीतर आते ही, किसी तरफ नजर उठाये बिना, अपराधी ने झुककर तीन बार सलाम किया।

उसका शरीर और रग-ढग राजकुमार से मिलता-जुलता था, पर कनक ने देखा, वह राजकुमार न था। उसका चेहरा रूखा, कपडे मोटे, बाल छोटे-छोटे, बराबर। उम्र राजकुमार से कुछ कम जान पडती थी।

कुँवर साहब ने कहा, "क्योजी, यह इशारेबाजी तुमने कहाँ सीखी ?"

अपराधी ने सिर झुकाकर तीन बार पुनः सलाम किया, और कनक को एक तेज निगाह से देखा।

"यह वह नही है।" कनक ने जल्दी मे कहा।

कुँवर साहब देखने लगे। पहचान न सके। स्टेज पर ध्यान आदमी की तरफ से ज्यादा कनक की तरफ था। पहले के आदमी से इसमे कुछ फर्क अवश्य देखते थे।

अपराधी ने किसी तरफ देखे बिना फिर सलाम किया, और जैसे दीवार से

कह रहा हो, "हुजूर, ग्वालियर मे पखावज सीखकर कुछ दिनो तक रामपुर, जयपुर, अलवर, इन्दौर, उदयपुर, बीकानेर, टीकमगढ, रीवाँ, दरभगा, वर्दवान—इन सभी रियासतो मे मै गया हूँ, और सभी राजा-महाराजो को पखावज सुनायी है। हुजूर के यहाँ जलसा सुनकर आया था।" कहकर उसने फिर सलाम किया।

"अच्छा तुम पखावजिए हो ?"

"हुजूर !" उसने पुन सलाम किया।

हैमिल्टन की तरफ मुडकर कुँवर साहव ने अँगरेजी मे कहा, "अव वन गया काम।"

कनक आगन्तुक और कुँवर साहव को देख रही थी। रह-रहकर एक अज्ञात भय मे कलेजा काँप उठता था।

"एक पखावज ले आओ।" सिपाही से कुँवर साहव ने कहा। वँगले की दूसरी मजिल पर फर्श विछा हुआ था, मित्रो को साथ लेकर चले। आगन्तुक से कनक को ले आने के लिए कहा। सिपाही पखावज लेने चला गया। और लोग वाहर फाटक पर थे।

कुँवर साहव और उनके मित्र ऊपर चले गये। पीछे से दो खिदमतदार भी चले। कमरा सूना देख, युवक ने कनक के कन्धे पर हाथ रखकर फिसफिसाते हुए कहा, "मैं राजकुमार का मित्र हूँ।"

कनक की आँखो मे प्रसन्नता का स्रोत फूट पडा। अपलक देखने लगी।

युवक ने कहा, "यही समय है। तीन मिनट मे हम खाई पार कर जायँगे। तव तक वे लोग हमारी प्रतीक्षा करेगे। देर हुई, तो इन राक्षसो से मैं अकेले तुम्हे वचा न सकूँगा।"

कनक आवेग मे भरकर युवक से लिपट गयी, और हृदय से रेलकर उतावली से कहा, "चलो।"

"तैरना जानती हो ?" शीघ्रता से खाई की तरफ वढते हुए कहा।

"न।" शका से देखती हुई।

"पेशवाज भीग जायगी। अच्छा, हाँ," कमर-भर पानी मे खडे होकर युवक ने कहा, "धीरे से उतर पडो, घवराओ मत।"

कनक उतर पडी।

युवक ने अपनी चादर भिगोकर, पानी मे हवा भरकर, गुव्वारे-सा वना कनक को पकडा दिया। ऊपर से आवाज आयी, "अभी ये लोग आये नही। जरा नीचे आकर देखो तो।"

युवक कनक की वाँह पकडकर चुपचाप तैरकर खाई पार करने लगा।

लोग नीचे आये। फाटक की तरफ दौडे। युवक खाई पार कर चुका था।

उस पार घोर जगल था। युवक कनक को साथ ले पेडो के वीच अदृश्य हो गया।

वँगले के चारो तरफ खाई थी। केवल फाटक से जाने की राह थी। फाटक के पास से वडी सडक कुँवर साहव की कोठी तक चली गयी थी।

शोर-गुल उठ रहा था। इस पार से ये लोग सुन रहे थे।

"हम लोग पकड लिये गये, तो बडी बुरी गति होगी।" कनक ने धीरे-से युवक से कहा।

"अव हजार आदमी भी हमे नही पकड सकते। यह छ कोम का जगल है। रात है। तव तक हम घर पहुँच जायँगे।" कपडे निचोडते हुए युवक ने कहा।

"क्या आपका घर भी यही है ?" चलते हुए स्नेह-सिक्त स्वर से कनक ने पूछा।

' मेरा नही, मेरे भाई की ससुराल है। राजकुमार भी वही होगे।"

"वे लोग जगल चारो तरफ से घेर लें, तो ?"

"ऐसा नही हो सकता, और जगल की वगल मे ही वह गाँव है, इस तरफ तीन मील।"

"आपको मेरे वारे मे कैसे मालूम हुआ ?"

"भाभी ने मुझे राजकुमार की मदद के लिए भेजा था। उमे उन्होने तुम्हे ले आने के लिए भेजा था न।"

कनक के क्षुद्र हृदय मे रस का सागर उमड रहा था।

"आपकी भाभी को राजकुमार क्या कहते है ?"

"वहूजी।"

"आपकी भाभी मायके कव आयी ?"

"तीन-चार रोज हुए।"

कनक अपनी एक स्मृति पर जोर देने लगी।

"साथ राजकुमार थे ?"

"हाँ।"

"आप, तव कहाँ थे ?"

"लखनऊ। किसानो का सगठन कर रहा था, पर वचकर, क्योकि मुझे काम ज्यादा प्यारा है।"

"फिर ?"

"लखनऊ मे सरकारी खजाने पर डाका पडा। शक पर मैं भी गिरफ्तार कर लिया गया, पर मेरी गैरहाजिरी ही साबित रही। पुलिम के पास कोई वडा सुवूत न था, सिर्फ नाम दर्ज था। खुफियावाले मुझे भला आदमी जानते थे। कोई सुवूत न रहने से जमानत पर छोड दिया गया।"

"आप कव गिरफ्तार किये गये ?"

"छह-सात रोज हुए होगे। अखवारो मे भी छपा था।"

"राजकुमार को कव मालूम हुआ ?"

"जिस रोज भाभी को यहाँ ले आये, उसी रात को तुम्हारे यहाँ· "

कनक एक वार प्रणय मे पुलकित हो गयी।

"देखिए, कैसी चालाकी, मुझे कुछ नही वतलाया। मुझसे नाराज होकर आये थे।" कहा कनक ने।

"हाँ, सुना है, तुमसे नाराज हो गये थे। भाभी से वतलाया भी नही था, पर एक दिन उनकी चोरी भाभी ने पकड ली। तुम्हारे यहाँ से जो कोट पहनकर गये

थे, उसमे सिन्दूर लगा था।"

कनक शरमा गयी, "अच्छा, यह सब भी हो चुका है ?" हँसती हुई चल रही थी वह।

"हाँ, राजकुमार की मदद के लिए यहाँ आने पर मुझे मालूम हुआ कि कुंवर साहब ने उन्हे गिरफ्तार करने का हुक्म दिया है। यहाँ मेरी भाभी के पिता नौकर हैं। गिरफ्तार करनेवालो मे उनके गाँव का भी एक आदमी था। उसने उन्हे खबर दी। तभी मैंने उसे समझाया कि अपने आदमियो को बहकाकर मुझे ही गिरफ्तार होनेवाला आदमी बतलाये, और गिरफ्तार करा दे। राजकुमार की रक्षा के लिए दूसरे कई आदमियो को छोडकर मैं गिरफ्तार हो गया। मैं जानता था, तुम मुझे नही पहचानती, इसलिए छूट जाऊँगा। राजकुमार की गिरफ्तारी की वजह भी समझ मे नही आ रही थी।"

कनक ने बतलाया, "हमी ने, अपनी सहायता के लिए, राजकुमार को गिरफ्तार कराने का कुंवर साहब से आग्रह किया था।"

धीरे-धीरे गाँव नजदीक आ गया। कनक ने थककर कहा, "अभी कितनी दूर है ?"

"बस, आ गये।"

"आपने अभी अपना नाम नही बतलाया ?"

"मुझे चन्दन कहते हैं। हम लोग अब नजदीक आ गये। इन कपडो से गाँव के भीतर जाना ठीक नही। मैं पहले जाता हूँ, भाभी की एक साडी ले आऊँ, फिर तुम्हे पहनाकर ले जाऊँगा। एक दूसरे कपडे मे तुम्हारे ये सब कपडे बाँध लूंगा। घबराना मत। इस जगल मे कोई बडे जानवर नही रहते।"

कनक को ढाढस बँधाकर चन्दन भाभी के पास चला। वहाँ से गाँव चार फर्लांग के करीब था। रात थोडी रह गयी थी।

दरवाजे पर धक्का सुनकर तारा पलँग से उठी। नीचे उतरकर दरवाजा खोला। चन्दन को देखकर चाँद की तरह खिल गयी, "आ गये तुम ?"

स्नेहार्थी शिशु की दृष्टि से भाभी को देखकर चन्दन ने कहा—"भाभी, मैं रावण से सीता को भी जीत लाया।"

तारा तरगित हो उठी, "कहाँ है वह ?"

"पीछेवाले जगल मे। बँगले से खाई तैराकर लाया। वहाँ बडी खराब स्थिति हो रही थी। अपनी एक साडी दो, बहुत जल्द, और एक चादर ओढने के लिए, और एक उसके कपडे बाँधने के लिए भी।"

तुरन्त एक अच्छी साडी और दो चद्दरें निकालकर चन्दन को देते हुए तारा ने कहा, "हाँ, एक बात याद आयी, जरा ठहर जाओ, मैं भी चलती हूँ। मेरे साथ आयेगी, तुम अलग हो जाना। जरा कडे और छडे निकाल लूं।"

तारा का दिया हुआ कुल सामान चन्दन ने लपेटकर ले लिया। फिर आगे-आगे तारा को लेकर जगल की तरफ चला।

कनक प्रतीक्षा कर रही थी। शीघ्र ही दोनो उसके पास पहुँच गये। कनक को देखकर तारा से न रहा गया। "बहन, ईश्वर की इच्छा से तुम राक्षसो के हाथ से

बच गयी !" कहकर तारा ने कनक को गले से लगा लिया।

हृदय मे जैसी सहानुभूति का सुख कनक को मिल रहा था, ऐसा उसे आज जीवन मे नया ही मिला था। स्त्री के लिए स्त्री की सहानुभूति कितनी प्रखर और कितनी सुखद होती है, इसका आज ही उसे अनुभव हुआ।

तारा ने साडी देकर कहा, "यह सब उतारकर इसे पहन लो।"

कनक ने गीले वस्त्र उतार दिये। तारा ने चन्दन से कहा, "छोटे साहब, ये कडे पहना दो। देखे, कलाई मे कितनी ताकत है !"

चन्दन ने कनक के पैरो मे कडे डालकर, दोनो हाथ घुटनो के बीच रखकर, जोर लगाकर पहना दिये फिर छडे भी। युवती ने चन्दन की इस ताकत के लिए तारीफ की, फिर कनक से चद्दर ओढकर साथ चलने के लिए कहा। कनक चद्दर ओढने लगी, तो युवती ने कहा, "नही, इस तरह नही, इस तरह।" कनक को चद्दर ओढा दी।

आगे-आगे तारा, पीछे-पीछे कनक चली। चन्दन ने कनक के कपडे बाँध लिये, और दूसरी राह के मिलने तक साथ-साथ चला।

तारा चुटकियाँ लेती हुई बोली, "छोटे साहब, इस वक्त आप क्या हो रहे हैं ?"

कनक हँसी। चन्दन ने कहा, "एक दर्जा महावीर से बढ गया। केवल खबर लेने ही नही गया, बल्कि सीता को जीत भी लाया।"

थोडी ही दूर पर एक दूसरी राह मिली। चन्दन उससे होकर चला। युवती कनक को लेकर दूसरे रास्ते से चली।

प्रथम उषा का प्रकाश कुछ-कुछ फैलने लगा था। उसी समय तारा कनक को लेकर पिता के मकान पहुँची, और अपने कमरे मे, जहाँ राजकुमार सो रहा था, ले जाकर दरवाजा बन्द कर लिया।

कुछ देर मे चन्दन भी आ गया। कनक थक गयी थी। युवती ने पहले राजकुमार के पलँग पर सोने के लिए इगित किया। कनक को लज्जित खडी देख, बगल के दूसरे पलँग पर सस्नेह बाँह पकडकर बैठा दिया, और कहा, "आराम करो, बडी तकलीफ मिली।"

कनक के मुरझाये अधर खिल गये।

चन्दन ने पेशवाज सुखाने के लिए युवती को दिया। उसने लेकर कहा, "देखो, वहाँ चलकर इसका अग्नि-सस्कार करना है।"

चन्दन थक रहा था, राजकुमार की बगल मे लेट गया।

युवती सबकी देख-रेख मे रही। धीरे-धीरे चन्दन भी सो गया। कनक कुछ देर तक पडी सोचती रही। मा की याद आयी। कही ऐसा न हो कि उसकी खोज मे उसी वक्त स्टेशन मोटर दौडायी गयी हो, और तब तक गाडी न आयी हो, वह पकड ली गयी हो। समय का अन्दाजा लगाया। गाडी साढे तीन बजे रात को आती है, चढ जाना सम्भव है।

फिर राजकुमार की बातें सोचती कि न-जाने यह सब इनके मन मे क्या भाव पैदा करे। कभी चन्दन की और कभी तारा की बातें सोचती, ये लोग कैसे सहृदय

हैं ! चन्दन और राजकुमार मे कितना स्नेह ! तारा उसे कितना चाहती है ! इस प्रकार, न-मालूम, उसकी सुख-कल्पना के बीच कब उसके पलको के दल मुंद गये ।

सत्रह

कुछ दिन चढ आने पर राजकुमार की आँखो ने एक बार चिन्ता के जाल से बाहर प्रकाश के प्रति देखा । चन्दन की याद आयी । उठकर बैठ गयी । बहूजी झरोखे के पास, एक बाजू पकडे बाहर सडक की तरफ देख रही थी । कोलाहल, कौतूहलपूर्ण हास्य तथा वार्तालाप के अशिष्ट शब्द सुन पडते थे ।

राजकुमार ने उठकर देखा, बगल मे चन्दन सो रहा था । एक पलँग और बिछा था । कोई सिर से पैर तक चादर ओढे सो रहा था । चन्दन को देखकर चिन्ता की तमाम गाँठें आनन्द के मरोर से खुल गयी । जगाकर उससे अनेक बातें पूछने के लिए इच्छाओ के रगीन उत्स रोएँ-रोएँ से फूट पडे ।

उठकर बहू के पास जाकर पूछा, "यह कब आये ? जगा दूं ?"

"बात इस तरह करो कि बाहर किसी के कान मे आवाज न पडे । और, जरूरत पडने पर तुम्हे साडी पहनकर रहना होगा ।"

राजकुमार जल गया, "क्यो ?"

"बडी नाजुक स्थिति है, तुम्हे सब मालूम हो जायेगा ।"

'पर मैं साडी नही पहन सकता । अभी से कहे देता हूँ ।"

"अर्जुन तो साल-भर विराट के यहाँ साडी पहनकर नाचते रहे, तुम्हे क्या हो गया ?"

"वह उस वक्त नपुंसक थे ।"

"और इस वक्त तुम ! उससे पीछा छुडाकर नही भागे ?"

राजकुमार लज्जित प्रसन्नता से टल गया । पूछा, "यह है कौन जो पलँग पर पडे है ?"

"मुँह खोलकर देखो ।"

"नाम से ही पता चल जायगा ।"

"हमे नाम से ज्यादा काम पसन्द है ।"

"अगर कोई अनजान आदमी हो ?"

"तो जान-पहचान हो जायगी ।"

"सो रहे हैं, नाराज होगे ।"

"कुछ बक-झक लेंगे, पर जहाँ तक मेरा अनुमान है, जीत नही सकते ।"

"कोई रिश्तेदार हैं शायद ?"

"तभी तो इतनी दूर आ पहुँचे है।"

राजकुमार पलँग के पास गया। चादर रेशमी और मोटी थी, मुँह देख नही पडता था। धीरे-से उठाने लगा। तारा खडी हँस रही थी। खोलकर देखा, विस्मय मे फिर चादर उढाने लगा। कनक की आँखें खुल गयी थी। चादर उढाते हुए राजकुमार को देखा, उठकर बैठ गयी। देखा, सामने खडी तारा हँस रही है। लज्जा से उठकर खडी हो गयी। फिर तारा के पास चली गयी। सिर उसी तरह खुला रक्खा।

वार्तालाप तथा हँसी-मजाक की ध्वनि से चन्दन की नीद उखड गयी। उठकर देखा, तो सब लोग उठे हुए थे। राजकुमार ने बडे उत्साह से बाँहो मे भरकर, उसे उठाकर खडा कर दिया।

तारा और कनक दोनो को देख रही थी। दोनो एक ही-से थे। राजकुमार कुछ बडा था। शरीर भी कुछ भरा हुआ। लोटे मे जल रक्खा था। राजकुमार ने चन्दन को मुँह धोने के लिए दिया। खुद भी उसी से ढालकर मुँह धोते हुए पूछा, "कल जब मैं आया, लोगो मे मालूम हुआ, तुम आये हो। पर कहाँ हो, क्या बात है, बहूजी से बहुत पूछा, वह टाल गयी।"

"फिर बताऊँगा। अभी समय नही। बहुत-सी बातें है। अन्दाजा लगा लो। मैं न जाता, तो इनकी बडी सकटमय स्थिति थी। उन लोगो से इनकी रक्षा न होती।"

"हाँ, कुछ-कुछ समझ मे आ रहा है।"

"देखो, हम लोगो को आज ही चलने के लिए तैयार हो जाना चाहिए, ऐसी सावधानी से कि पकड मे न आये।"

"मतलब ?"

"तुम्हे गिरफ्तार करने का पहले ही हुक्म था, और आज्ञा तुम्हारी इन्होने निकलवायी थी। उसी पर मैं गिरफ्तार हुआ, तुम्हे बचाने के लिए, क्योकि तुम सब जगहो से परिचित न थे। फिर जब पेश हुआ, तब इनके दुबारा गाने का प्रकरण चल रहा था। बँगले मे खास महफिल थी।" चन्दन ने हाथ पोछते हुए कहा।

"हैमिल्टन साहब भी आये थे।" कनक ने कहा।

"फिर ?" राजकुमार ने चन्दन से पूछा।

सक्षेप मे कुल हाल चन्दन बतला गया। युवती कनक को लेकर बगलवाले कमरे मे चली गयी।

"आज ही चलना चाहिए।" चन्दन ने कहा।

"चलो।"

"चलो नही, चारो तरफ लोग फैल गये होगे। इस व्यूह से बचकर निकल जाना बहुत मामूली बात नही। और, कोई तअज्जुब नही, लोगो को दो-एक रोज मे बात मालूम हो जाय।"

"गाडी सजा लें, और उसी पर चले चलेगे।"

"कहाँ ?"

"स्टेशन।"

"खूब! तो फिर पकड जाने मे कितनी देर है?"

"फिर?"

"औरत वन सकते हो?"

"न।"

चन्दन हँसने लगा। कहा, "हाँ भई, तुम औरतवाले कैसे औरत वनोगे, पर मैं तो वन सकता हूँ।"

"यह तो पहले ही मे वने हुए है।" कहती हुई मुस्किराती कनक के साथ युवती कमरे मे आ रही थी।

युवती कनक को वही छोडकर भोजन-पान के इन्तजाम के लिए चली गयी। चन्दन को कमरा वन्द कर लेने के लिए कहती गयी। चन्दन ने कमरा वन्द कर लिया।

कनक निष्कृति के मार्ग पर आकर देख रही थी, उसके मानसिक भावो मे युवती के सग-मात्र से तीव्र परिवर्तन हो रहा था। इस परिवर्तन-चक्र पर जो सान उसके शरीर और मन को लग रही थी, उससे उसके चित्त की तमाम वृत्तियाँ एक दूसरे ही प्रवाह मे तेजी से वह रही थी, और इस धारा मे पहले की तमाम प्रखरता मिटती जा रही थी। केवल एक शान्त, शीतल अनुभूति चित्त की स्थिति को दृढतर कर रही थी। अगो की चपलता उस प्रवाह से, तट पर तपस्या करती हुई-सी, निश्चल हो रही थी।

राजकुमार चन्दन से उसका पूर्वापर कुछ प्रसग एक-एक कर पूछ रहा था। चन्दन वतला रहा था। दोनो के वियोग के समय से अव तक की सम्पूर्ण घटनाएँ एव उनके पारस्परिक सम्वन्ध वार्तालाप से जुडते जा रहे थे।

"तुम विवाह से घवराते क्यो हो?" चन्दन ने पूछा।

"प्रतिज्ञा तुम्हें याद होगी!" राजकुमार ने शान्त स्वर से कहा।

"वह मानवीय थी, यह सम्वन्ध दैवी है। इसमे शक्ति ज्यादा है।" चन्दन ने तर्क रक्खा।

"जीवन का अर्थ समर है।"

"पर जव तक वह कायदे से, सतर्क, सरस और अविराम होता रहे। विक्षिप्त का जीवन जीवन नही, और न उसका समर समर।"

"मैं अभी विक्षिप्त नही हुआ।"

चोट खाकर वर्तमान स्थिति को कनक भूल गयी। अत्रस्त दृष्टि, अकुण्ठित कण्ठ से कह उठी, "मैंने विवाह के लिए कव, किससे प्रार्थना की?"

चन्दन देखने लगा। ऐसी आँखें उसने कभी नही देखी थी। कितना तेज था उनमे!

कनक ने फिर कहा, "राजकुमारजी, आपने स्वय जो प्रतिज्ञा की है, शायद ईश्वर के सामने की है, और मेरे लिए जो शब्द आपके हैं—आप इडेन-गार्डेन की वातें भूले नहीं होगे—वे शायद वीरागना के प्रति है!"

चन्दन एक वार कनक को आँखें और एक वार नत राजकुमार को देख रहा था। दोनो के चित्र सत्य का फैसला कर रहे थे।

तारा ने दो नौकरो को वारी-वारी से दरवाजे पर वैठे रहने के लिए तैनात कर दिया कि वाहरी लोग उससे पूछकर भीतर आये।

शोर-गुल सुनकर वह ऊपर चली गयी। देखा, कनक जैसे एकान्त मे वैठी हुई हो। उसके चेहरे की उदास, चिन्तित चेष्टा से तारा के हृदय मे उसके स्नेह का स्रवण खुल गया। उसने युवको की तरफ देखा। राजकुमार मुँह मोडकर पडा हुआ परिस्थिति का पूर्ण परिचय दे रहा था। भाभी को गम्भीर मुद्रा मे देखते हुए देखकर चन्दन ने अकुण्ठित स्वर मे कह डाला, "महाराज दुष्यन्त को इस समय दिमाग की गर्मी मे विस्मरण हो रहा है। असगरअली के यहाँ का गुलाव-जल चाहिए।"

कनक मुस्किरा दी। तारा हँसने लगी।

"तुम यहाँ आकर आराम करो।" कनक से कहकर तारा ने चन्दन से कहा, "छोटे साहव, जरा तकलीफ कीजिए। इस पलँग को उठाकर उस कमरे मे डाल दीजिए। दूसरे किसी को अव इस वक्त न वुलाना ही ठीक है।"

कनक को लेकर तारा दूसरे कमरे मे चली गयी।

"उठो जी, पलँग विछाओ।" चन्दन ने राजकुमार को खोदकर कहा।

राजकुमार पडा रहा। चन्दन ने हँसते हुए पलँग उठाकर वगलवाले कमरे मे डाल दिया। विस्तर विछाने लगा। तारा ने विस्तर छीन लिया। खुद विछाने लगी। कनक की इच्छा हुई कि तारा से विस्तर लेकर विछा दे, पर इच्छा को कार्य का रूप न दे सकी, खडी ही रह गयी—तारा के प्रति एक श्रद्धा का भाव लिये। और, इसी गुरुता मे उसे लगा कि जैसे उसका मेरुदण्ड झुककर टूट जायगा।

तारा ने चन्दन से कहा—"जरा यही दो घडे पानी भी ले आइए।"

चलते-चलते चन्दन ने कहा—"एक स्टेशन आगे चलकर ही गाडी पर चढना है।"

चन्दन चला गया। तारा कनक को वैठाकर वैठ गयी, और राजकुमार की वातें साद्यन्त पूछने लगी।

चन्दन पानी ले आया, तो तारा ने कहा—"एक काम और है। आप लोग भी पानी भरकर जल्द नहा लीजिए, और जरा नीचे मुन्नी से कह दीजिए कि वह हरपालसिंह को वुला लाये। अम्मा शायद अव रोटियाँ सेंकती होगी। आज खुद ही पकाने लगी। कहा, अव चलते वक्त रोटियो से हैरान क्यो करें।"

चन्दन चला गया। तारा फिर कनक से वातचीत करने लगी। तारा के प्रति पहले ही व्यवहार से कनक आकर्षित हो चुकी थी। धीरे-धीरे वह देखने लगी, ससार मे उसके साथ पूरी सहानुभूति रखनेवाली केवल तारा है। कनक ने पहले-पहल तारा को जव दीदी कहा, उस समय उसके हृदय पर रक्खा हुआ जैसे तमाम वोझ उतर गया। दीदी की एक स्नेह-सिक्त दृष्टि से उसकी कुल थकावट, अशान्ति मिट गयी। पारिवारिक सुख से अपरिचित कनक ने स्नेह का यथार्थ मूल्य उसी

समय समझा ! उसकी बाधाएँ आप-ही-आप दूर हो गयी । अब जैसे भूली हुई वह एकाएक राजपथ पर आ गयी हो । राजकुमार के प्रथम दर्शन से लेकर अब तक का पूरा इतिहास, अपने चित्त के विपक्ष की सारी कथा, राजकुमार से कुछ कह न सकने की लज्जा, सरल, सलज्ज, मन्द स्वर से कहती रही ।

राजकुमार बगलवाले कमरे मे जाग रहा था । अपनी पूरी शक्ति से, आयी हुई अडचन को पार कर जाने के लिए, चिन्ताओ की छलाँग मार रहा था । कभी-कभी उठती हुई हास्य-ध्वनि से चौककर, अपने वैराग्य की मात्रा बढाकर वह चुप हो जाता ।

चन्दन अपना काम पूरा कर आ गया । पलँग पर बैठकर कहा, "उठो, तुम्हे एक मजेदार बात सुनाऊँ ।"

राजकुमार जागता ही था, उठकर बैठ गया ।

"सुनो, कान मे कहूँगा ।" चन्दन ने धीरे से कहा ।

राजकुमार ने चन्दन की तरफ सिर बढाया ।

चन्दन ने पहले इधर-उधर देखा, फिर राजकुमार के कान के पास मुँह ले गया । राजकुमार जब सुनने के लिए खूब एकाग्र हो गया, तो चुपके से कहा, "नहाओगे नहीं ?"

विरक्त-भाव से राजकुमार पुन लेटने लगा । चन्दन ने हाथ पकड लिया, "बस, अब उधर देखो । मुकद्दमा दायर है । अभी पुकार होती ही है ।"

"रहने भी दो । मै नही नहाऊँगा ।" राजकुमार लेट रहा ।

एक बगल चन्दन भी लेट गया, "मैं तो प्रात ही स्नान कर चुका हूँ ।"

नीचे हरपालसिह खडा था । मुन्नी 'दीदी-दीदी' पुकारती हुई ऊपर चढ आयी । कमरे से निकलकर तारा ने हरपालसिह को ऊपर बुलाया ।

चन्दन और राजकुमार उठकर बैठ गये । उसी पलँग पर तारा ने हरपालसिह को भी बैठाया ।

हरपालसिह चन्दन और राजकुमार को पहचानता था ।

"कहिए बाबू, कल आप बच गये !" राजकुमार मे कहता और इशारे करता हुआ बैठ गया । फिर राजकुमार की दाहिनी बाँह पकडकर, मुस्किराते हुए कहा, "बडे कम है !"

राजकुमार बैठा रहा । तारा स्नेह की दृष्टि से राजकुमार को देख रही थी, मानो उस दृष्टि से कह रही हो, आपकी सब बातें मालूम हो गयी हैं । दृष्टि का कौतुक बतला रहा था, अपराध तुम्हारा ही है ।

तारा का मौन फैसला समझकर चन्दन चुपचाप मुस्किरा रहा था ।

रात की घटना अब तक तीन कोस से ज्यादा फासले तक फैल चुकी थी । हरपालसिह को भी खबर मिली थी । चन्दन के भाग आने का उसने निश्चय कर लिया था, पर बाईजी के भगाने का कारण नही समझ सका था । कमरे मे इधर-उधर नजर दौडायी । बाईजी को न देखकर कुछ व्यग्र-सा हो रहा था—जैसी व्यग्रता किसी सत्य की शृखला न मिलने पर होती है ।

इसी समय तारा ने धीमे स्वर से कहा, "भैया, तुम तो सब हाल जानते ही हो ।

बल्कि सारी कामयाबी तुम्ही से हुई। अब थोडा-सा सहारा और कर दो, तो खेवा पार हो जाय।"

हरपालसिंह ने फटाफट तम्बाकू झाडकर, अन्तरदृष्टि होते हुए, फाँककर जीभ से नीचे के होठ मे दबाते हुए, सीना तानकर, सिर के साथ पलकें एक तरफ मरोडते हुए कहा, "हूँ "

तम्बाकू की झाड से चन्दन को छीक आ गयी। किसी को छीक मे शुभ वार्तालाप के समय शका न हो, इस विचार से सचेत हरपालसिंह ने एक बार सबको देखा, फिर कहा, "असगुन नहीं है, तम्बाकू की झार मे छीक आयी है।"

तारा ने कहा, "भैया, आज शाम को अपनी गाडी ले आओ। चार आदमी और साथ ले लेना। अगले स्टेशन पर हमे छोड आओ। छोटे साहब बाईजी को भी बचाकर साथ ले आये है न, वरना वहाँ उन बदमाशो से छुटकारा न होता। बाईजी ने बचाने के लिए कहा, फिर सकट मे भैया, आदमी ही आदमी का साथ देता है। भला, कैसे छोडकर आते ?"

हरपालसिंह ने डण्डा सँभाल, मुट्ठी से जमीन मे दबाते हुए, एक पीक वही थूककर कहा, "यह तो छत्री का धरम है। गोसाईंजी ने कहा है—

"रघुकुल-रीति सदा चलि आयी,
प्रान जायँ, पै वचन न जायी।"

फिर राजकुमार का कल्ला दबाते हुए कहा, "आप तो अँगरेजी पढे हो, हम तो बस थोडी-बाडी हिन्दी पढे ठहरे, है न ठीक बात ?"

राजकुमार ने जहाँ तक गम्भीर होते बना, वहाँ तक गम्भीर होकर कहा, "ठीक कहते है आप।"

तारा ने कहा, "तो भैया, शाम को आ जाओ, कुछ रात बीते चलना है।"

"बस, बैल चरकर आये कि हम जोतकर चले। कुछ और काम तो नही है ?"

"नही भैया! और कुछ नही।"

हरपालसिंह ने उठकर तारा के पैर छुए, और खटाखट जीने मे उतरकर, बाहर आ आल्हा अलापना शुरू कर दिया, "दूध लजावे ना माता को, चाहे तन धजी-धजी उड जाये, जीते बैरी हम ना राखे, हमरो क्षत्री धरम नसाय।" गाते हुए चला गया वह।

"रज्जू बाबू, गलती आपकी है।" तारा ने सहज स्वर मे कहा।

"लो, मैं कहता न था, मुकद्दमा दायर है। फैसला छोटी अदालत का ही रहा।" चन्दन ने हँसते हुए कहा।

राजकुमार कुछ न बोला। उनका गाम्भीर्य तारा को अच्छा न लगा। बोली, "यह सब वाहियात है। क्यो रज्जू बाबू, मेरी बात नही मानोगे ? देखो, मैं तुम्हें यह सम्बन्ध करने के लिए कहती हूँ।"

"अगर यह प्रस्ताव है, तो मैं इसका अनुमोदन और समर्थन करता हूँ।" चन्दन ने हँसते हुए कहा।

चन्दन की हँसी राजकुमार के अगो मे तीर की तरह चुभ रही थी।

"और अब आज से वह मेरी छोटी बहन है।" तारा ने जोर देते हुए कहा।

"तो मेरी कौन हुई ?" चन्दन ने शब्दो को दबाते हुए पूछा।

तारा अप्रतिभ हो गयी, पर सँभलकर कहा, "यह दिल्लगी का वक्त नही।"

चन्दन चुपचाप लेट गया। दूसरी तरफ राजकुमार को खोदकर फिसफिसाते हुए कहा, "आप कर क्या रही हैं ?"

"यार, तुम्हारा लडकपन नही छूटा अभी।" राजकुमार ने डाँट दिया।

चन्दन भीतर-ही-भीतर हँसते-हँसते फूल गया। तारा नीचे उतर गयी। एक बार तारा को झाँककर उसने राजकुमार से कहा, "तुम्हारा जवानपन बलबलाता रहा है, यह तो देख ही रहा हूँ।"

तारा नीचे मे लोटा और एक साडी लेकर आ रही थी। राजकुमार के कमरे मे आकर कहा, "नहा डालो रज्जू बाबू ! देर हो रही है। भोजन तैयार हो गया होगा।"

"आज नहाने की इच्छा नही है।"

"व्यर्थ तबियत खराब करने से क्या फायदा ?" हँसती हुई तारा ने कहा, "न नहाने से यह बला टल थोडे ही सकती है।"

"उठो भी, अघोर-पन्थ से घिनवाकर लोगो को भगाओगे क्या ? साबुन और सेण्ट-पन्थियो से पाला पडा है। तुम्हारे अघोर-पन्थ के भूत उतार दिये जायँगे।" चन्दन ने पडे हुए कहा।

"और आप' 'आप भी जल्दी कीजिए।" हँसती हुई तारा ने चन्दन से कहा।

"अब बार-बार क्या नहाऊँ ? पिछली रात नहा तो चुका, और ऐसा-वैसा स्नान नही, स्त्री-रूपी नदी को छूकर पहला स्नान, सरोवर मे दूसरा, फिर डेढ घण्टे तक ओस मे तीसरा, और जो गीले कपडो मे रहा, वह सब बट्टे खाते।" चन्दन ने हँसते हुए कहा।

तारा हँसती रही। राजकुमार से एक बार और नहाने के लिए कहकर कनक के कमरे मे चली गयी।

मकान मे ही कुआँ था। महरी पानी भर रही थी। राजकुमार नहाने चला गया।

मुन्नी भोजन के लिए राजकुमार और चन्दन को बुलाने आयी थी। कुएँ पर राजकुमार को नहाते देखकर बाहर चली गयी।

अभी तक घर की स्त्रियो को कनक की खबर न थी। अकारण घृणा की शका कर तारा ने किसी से कहा भी नही था। अधिक भय उसे रहस्य के खुल जाने का था। कनक को नहलाकर, वह माता के पास जाकर एक थाली मे भोजन परोसवा लायी। माता ने पूछा भी, "यह किसका भोजन है ?"

"एक मेहमान आये हैं। आपसे फिर मिला दूँगी।" सक्षेप मे समाप्त कर तारा थाली लेकर चली गयी।

कनक बैठी हुई तारा की सेवा, स्नेह, सहृदयता पर विचार कर रही थी। बातचीत से कनक को मालूम हो गया कि तारा पढी-लिखी है, और मामूली अँगरेजी भी अच्छी जानती है। उसके इतिहास के प्रसग पर जो अँगरेजी के नाम आये थे, तारा ने उनका बडा सुन्दर उच्चारण किया था, और अपनी तरफ से भी

एकाध अँगरेजी के शब्द कहे थे। 'तारा का जीवन कितना सुखमय है!' कनक सोच रही थी। और, जितनी ही उसकी आलोचना कर रही थी, अपने सारे स्त्री-स्वभाव से उसके उतने ही निकट आ रही थी, जैसे लोहे को चुम्बक देख पड़ा हो। तारा ने जमीन पर आसन डालकर थाली रख दी, और भोजन के लिए सस्नेह कनक का हाथ पकड़, उठाकर बैठा दिया। कनक के पास इस व्यवहार का, वश्यता स्वीकार के सिवा और कोई प्रतिदान न था। वह चुपचाप आसन पर बैठ गयी, और भोजन करने लगी। वहीं तारा भी बैठ गयी।

"दीदी, मैं अब आप ही के साथ रहूँगी।"

तारा का हृदय भर आया। कहा, "मैंने पहले ही यह निश्चय कर लिया है। हम लोगों में पुराने खयालात के जो लोग है, उन्हें तुमसे कुछ दुराव रह सकता है, क्योंकि ये लोग उन्ही खयालात के भीतर पले हैं। उनसे तुम्हें कुछ दुःख होगा, पर बहन, मनुष्य के अज्ञान की मार मनुष्य ही तो सहते हैं। फिर स्त्री तो अपनी क्षमा और सहिष्णुता के कारण ही पुरुष से बड़ी है। उसके ये ही गुण तो पुरुष की जलन को शीतल करते हैं।"

कनक सोच रही थी, उसकी दीदी इसीलिए मोम की प्रतिमा बन गयी है।

तारा ने पुनः कहा, "मेरी अम्मा, छोटे साहब की मा, शायद वहाँ तुमसे कुछ नफरत करें। अगर उनसे तुम्हारी मुलाकात होगी, तो मैं उनसे कुछ छिपाकर न कह सकूँगी। तुम्हारा वृत्तान्त सुनकर वह जिस स्वभाव की हैं, तुम्हें छूने में तथा अच्छी तरह बातचीत करने में जरूर कुछ संकोच करेंगी। वह शीघ्र ही काशी चली जानेवाली है। अब वहीं रहेंगी। मैं अब की जाते ही उनके काशीवास का प्रबन्ध करवाऊँगी।"

कनक को हिन्दू-समाज से बड़ी घृणा हुई, यह सोचकर कि क्या वह मनुष्य नही है। अब तक मनुष्य कहलानेवाले समाज के बड़े-बड़े अनेक लोगों के जैसे आचरण उसने देखे है, क्या वह उनसे किसी प्रकार भी पतित है? कनक ने भोजन बन्द कर दिया। पूछा, "दीदी, क्या किसी जात का आदमी तरक्की करके दूसरी जात मे नही जा सकता?"

"बहन, हिन्दुओं में अब यह रिवाज नही रहा। यों, पौराणिक काल मे, ऋषि विश्वामित्र का उदाहरण हमारे सामने अवश्य है। तुम्हें छोटे साहब विस्तार में बता सकेंगे। वह यह सब नही मानते। काफी पढ़ा भी है। वह कहते हैं, आदमी आदमी है, और ऊँचे शास्त्रों के अनुसार सब लोग एक ही परमात्मा से हुए है। यहाँ जिस तरह शिक्षा-क्रम से बड़े-छोटे का अन्दाज लगाया जाता है, पहले इसी तरह शिक्षा, सभ्यता और व्यवसाय का क्रम रखकर ही जातियों का वर्गीकरण हुआ था। वह और भी बहुत-सी बातें कहते है।"

कनक ने इस प्रसंग के पहले गुस्से में भोजन बन्द कर दिया था, अब खुश होकर फिर खाने लगी। दिल-ही-दिल चन्दन से मिलकर तमाम बातें पूछने की तैयारी कर रही थी।

तारा निविष्ट चित्त से कनक का भोजन करना देख रही थी। जब से कनक मिली, तारा तभी से उसकी सब प्रकार से परीक्षा कर रही थी। कनक में बहुत

बडे-बडे लक्षण उसने देखे। उसने किसी भी बडे खानदान मे इतने बडे लक्षण नही देखे। उसका चाल-चलन, उठना-बैठना, वोलना-चालना, सव उसके वडे खानदान मे पैदा होने की सूचना दे रहे थे। उसके एक-एक इगित मे आकर्षण था। सत्रह साल की युवती की इतनी पवित्र चितवन उसने कभी नही देखी। सिर्फ एक दोष तारा को मिल रहा था, वह थी कनक की तीव्रता।

मुन्नी वाहर से घूमकर आ गयी। राजकुमार नहाकर ऊपर चला गया। उसने उँगली पकडकर कहा, "चलिए, खाना तैयार है।" फिर उसी तरह चन्दन की उँगली पकडकर खीचा, "उठिए।"

राजकुमार और चन्दन भोजन करने चले गये।

तारा डव्वा उठाकर पान लगाने लगी। कनक भोजन समाप्त कर उठी। तारा ने पानी दिया। पलँग पर आराम करने के लिए कहा, और कह दिया कि तीसरे पहर उसके घर की स्त्रियाँ और उसकी माता मिलेगी। अभी तक उनको कनक के आने के सम्वन्ध मे विशेप कुछ मालूम नही है। साथ ही यह भी वतला दिया कि एक झूठा परिचय दे देने मे नुकसान कुछ नही, वल्कि फायदा ज्यादा है, यो उन लोगो को पीछे से तमाम इतिहास मालूम हो ही जायगा।

कनक यह परिचय छिपाने का मतलव कुछ-कुछ समझ रही थी। उसे अच्छा नही लगा, पर तारा की वात उसने मान ली। चुपचाप सिर हिलाकर सम्मति दी।

तारा भी भोजन करने चली गयी। कनक को इस व्यक्तिगत घृणा से एक जलन हो रही थी। वह समझने की कोशिश करके भी समझ न पाती थी। एक सान्त्वना उसके तत्कालीन जीवन के लक्ष्य मे तारा थी। तारा के मौन प्रभाव की कल्पना करते-करते उसकी आँख लग गयी।

राजकुमार और चन्दन भोजन करके आ गये। चन्दन को नीद लग रही थी। राजकुमार स्वभावत गम्भीर हो चला था। कोई वातचीत न हुई। दोनो लेट रहे।

उन्नीस

कुछ दिन के रहते अपना असवाव वँधवाकर तारा कनक को देखने गयी। चन्दन सो रहा था। राजकुमार एक किताव वडे गौर से पढ रहा था। कनक को देखा, सो रही थी। जगा दिया। घटे से पानी ढालकर मुँह धोने के लिए दिया। फिर पान लगाने लगी।

कनक मुँह धो चुकी। तारा ने पान दिया। एक वार फिर समझा दिया कि अव घर की स्त्रियो से मिलना होगा, खूव सँभलकर वातचीत करेगी। फिर वह चन्दन के पास गयी। चन्दन को जगाया, कहा कि अव सव लोग आ रही हैं, और

वह छीटो के लिए तैयार होकर, हाथ-मुँह धोकर वैठे।

तारा नीचे चली गयी। चन्दन भी हाथ-मुंह धोने के लिए नीचे उतर गया। राजकुमार किताव मे तल्लीन था।

देखते-देखते कई औरतें वरावर के दूसरे मकान से निकलकर तारा के कमरे की ओर वढने लगी। आगे-आगे तारा थी।

तारा के घर के लोग, उसके पिता और भाई जो स्टेट मे नौकर थ, चन्दन की गिरफ्तारी का हाल जानते थे। इससे भागने पर निश्चय कर लिया था कि छोटी वाईजी को वही लेकर भागा है। इस समय इन्तजाम से उन्हे फुर्सत न थी। अत घर सिर्फ दोपहर को भोजन के लिए आये थे, और चुपचाप तारा से पूछकर भोजन करने चले गये थे। घर की स्त्रियो से इसकी कोई चर्चा नही की। डर रहे थे कि इस तरह भेद खुल जायगा। तारा उसी दिन चली जायगी, इससे उन्हे कुछ प्रसन्नता हुई, और कुछ चिन्ता भी। तारा के पिता ने उसे वताया कि वडे जोर-शोर से खोज हो रही है और शायद कलकत्ते के लिए आदमी रवाना किये जायँ। उन्होने यह भी वतलाया है कि कई साहव आये थे। एक घवराये हुए है, शायद आज ही चले जायँ।

तारा दो-एक रोज और रहती, पर भेद खुल जाने के डर से उसी रोज तैयार हो गयी थी। उसने सोच लिया था कि वह किसी तरह विपत्ति मे वच भी सकती है, पर एक वार भी अगर गढ मे यह खवर पहुँच गयी, तो उसके पिता का किसी प्रकार भी वचाव नही हो सकेगा।

स्त्रियो को लेकर तारा कनक के कमरे मे गयी। दोनो पलँग के विस्तर के नीचे से दरी निकालकर फर्श पर विछाने लगी। तारा की भावज ने उसकी सहायता की।

कनक को देखकर तारा की भावजें और वहने एक दूसरी को खोदने लगी। तारा की मा को देखकर वडा आश्चर्य हुआ। कनक की ऐसी दृष्टि थी, जिसे देखकर किसी भी गृहस्थ स्त्री को क्रोध होता। उसकी दृष्टि मे श्रद्धा न थी, थी स्पर्धा। विल्कुल सीधी चितवन, उम्र मे उससे वडी-वडी स्त्रियाँ थी, कम-से-कम तारा की मा तो थी ही, पर उसने किसी प्रकार भी अपना अदव जाहिर नही किया। लगता था, जैसे जगल की हिरनी अभी-अभी कैद की गयी हो।

तारा कुल मतलव समझती थी, पर कुछ कह न सकती थी। कनक ने स्त्रियो से मिलने की सभ्यता का एक अक्षर भी नही पढा था, उसे जरूरत भी नहीं थी। वह प्रणाम करना तो जानती ही न थी। खडी कभी तारा को देखती, कभी आगन्तुक स्त्रियो को।

तारा की माता प्रणाम करवाने और व्राह्मण-कन्या या व्राह्मण वहू होने पर उसके प्रणाम करने की लालसा लिये खडी रह गयी। तारा से पूछा, "कौन है ?"

तारा ने कहा, "अपनी ही जात।"

कनक को हार्दिक कष्ट था। जाहिर करने का कोई उपाय न था, इससे और कष्ट।

कनक का सिन्दूर धुल गया था, पर उम्र से तारा की मा तथा औरो को

विवाह हो जाने का ही निश्चय हो रहा था। फिर सोचा, शायद विधवा हो, परन्तु पहनावे ने फिर शका होती। इन सब मानसिक प्रहारो से कनक का कलेजा जैसे चारो ओर दबा जा रहा हो, कही साँस लेने की भी जगह न रह गयी हो।

कुछ देर तक यह दृश्य देखकर तारा ने माता से कहा, "अम्मा, बैठ जाओ!"

तारा की मा बैठ गयी। अन्य स्त्रियाँ भी बैठ गयीं। तारा ने कनक को भी बैठा दिया।

कनक किसी तरह उनमे नही मिल पा रही थी। तारा की मा उसके प्रणाम न करने के अपराध को किसी तरह भी क्षमा नही करना चाहती थी। और, उतनी बडी लडकी का विवाह होना उनके पास 99 फीसदी निश्चय मे दाखिल था। प्रखर स्वर से कनक से पूछा, 'कहाँ रहती हो बच्ची ?"

कनक के दिमाग के तार एकसाथ झनझना उठे। उत्तर देना चाहती थी, पर गुस्से से बोल न सकी। तारा ने सँभाल लिया, "कलकत्ते मे।"

"यह गूँगी है क्या ?" तारा की मा ने दूसरा वार किया। अन्य स्त्रियाँ एक-दूसरी को खोदकर हँस रही थी। उन्हे ज्यादा खुशी कनक के तग किये जाने पर इसलिए थी कि वह इन सबमे सुन्दरी थी, और एक-एक बार जिसकी तरफ भी देखा था, सबने पहले आँखे झुका ली थी, और दुबारा आँखो के प्यालो मे ऊपर तक जहर भरकर उसकी तरफ उँडेला था। उसके जैसे सौन्दर्य के अभाव से, उतने समय के लिए, वीतराग होकर उसके सौन्दर्य को मन-ही-मन कस्बियो की सम्पत्ति करार दे रही थी।

"जी नही, गूँगी तो नही हूँ।" कनक ने अपनी समझ मे बहुत मुलायम स्वर मे कहा, पर तारा की मा के लिए इससे तेज दूसरा उत्तर था ही नही। फिर घर आयी से, पराजय होने पर भी, हमेशा विजय की गुजायश बनी रहती है। इस प्राकृतिक अनुभूति से स्वत प्रेरित स्वर को मध्यम से धैवत-निषाद तक चढाकर, भौएँ तीन जगह से सिकोडकर, जैसे बहुत दूर की कोई वस्तु देख रही हो, मनुष्य नही, फिर आक्रमण किया, "अकेले यहाँ कैसे आयी ?"

तारा को इस हद तक आशा न थी। उसे बहुत ही बुरा लगा। उसने उसी वक्त बात बना ली, "स्टेशन आ रही थी—अपने मामा के यहाँ। छोटे साहब से मुलाकात हो गयी, तो साथ ले लिया। कहा, एक साथ चलेगे। उन्ही ने मुझे बताया कि यह भी साथ चलेंगी।"

"अरे, वही कहा न कि अकेले घूमना विवाह हो गया है कि नही ?" तारा की माता के मुख पर शका, सन्देह, नफरत आदि भाव बादलो-से, पहाडी दृश्य की तरह, बदल रहे थे।

"अभी नही।" कनक को अच्छी तरह देखते हुए तारा ने कहा।

मुद्रा से माता ने आश्चर्य प्रकट किया। और-और स्त्रियाँ असकुचित हँसने लगी। कनक की मानसिक स्थिति बयान से बाहर हो गयी।

चन्दन वही, दूसरे कमरे मे, पडा यह सब आलम-परिचय सुन रहा था। उसे बडा बुरा लगा। स्त्रियो ही की तरह निर्लज्ज हँसी हँसता हुआ कहने लगा, "अम्मा, बस, इसी तरह समझिए, जैसे विट्टन मामा के यहाँ गयी है, और रास्ते मे

मैं मिल गया होऊँ, और मेरे खानदान की कोई स्त्री हो, वहाँ टिका लूं, फिर यहाँ ले आऊँ। हाँ, विट्टन मे और इनमे यह फर्क अवश्य है कि विट्टन को चाहे, तो कोई भगा ले जा मकता है, पर इन्हे नही, क्योकि यह काफी पढी-लिखी है।"

तारा की माता पस्त हो गयी। बिट्टन उन्ही की लडकी है। उम्र 15 माल की, पर अभी विवाह नही हुआ था। चन्दन मे विवाह करने के इरादे से रोक रक्खा है। विट्टन अपने मामा के यहाँ गयी हुई थी।

तारा को चन्दन का जवाव नितान्त युक्ति-सगत लगा, और कनक के गाल तो मारे प्रसन्नता के लाल पड गये। राजकुमार उसी तरह निर्विकार चित्त से किताव पढने का ठाट दिखा रहा था। भीतर से मोच रहा था, किसी तरह कलकत्ता पहुँचूं, तो वताऊँ।

महिला-मण्डली का रग फीका पड गया।

"अभी पिसनहर के यहाँ पिसना देने जाना है।" कहकर, कॉखकर, वैसे ही त्रिभागी दृष्टि से कनक को देखती हुई, मुँह वनाकर तारा की माता उठी, और धीरे-धीरे नीचे उतर गयी। जीने से एक वार चन्दन की ओर घूरकर देखा। उमके वाद घर की और-और स्त्रियो ने भी 'महाजनो येन गत स पन्था' का अनुसरण किया।

कनक वैठे-वैठे सवको देखती रही। सव चली गयी, तो तारा मे पूछा, "दीदी! ये लोग कोई पढी-लिखी नही थी शायद ?"

"न, यहाँ तो वडा पाप समझा जाता है।"

"आप तो पढी-लिखी जान पडती हैं ?"

"मेरा लिखना-पढना वही हुआ है। घर मे कोई काम था ही नही। छोटे साहव के भाई साहव की इच्छा थी कि कुछ पढ लूं। उन्ही से तीन-चार साल मे हिन्दी और कुछ अँगरेजी पढ ली।"

कनक वैठी सोच रही थी, और उसकी समझ मे नही आ रहा था कि वे सव स्त्रियाँ, जो अपने घर मे भी इतनी असभ्यता से पेश आयी, किस अश मे उससे वडी थी। दीदी की सहृदयता और चन्दन का स्नेह स्मरण कर रोमाचित हो उठती, पर राजकुमार की याद से उसे वैसी ही निराशा हो रही थी। उसके अविचल मौन मे वह ममझ गयी कि अव वह उमे पत्नी-रूप मे ग्रहण नही करेगा। इस चिन्ता से उसका चित्त न जाने कैमा हो जाता, मानो पक्षी के उडने की सव दिशाएँ अन्धकार से ढक गयी हो, और ऊपर आकाश हो और नीचे समुद्र। अपने पेशे का जैमा अनुभव तथा उदाहरण वह लेकर आयी थी, उमकी याद आते ही घृणा और प्रतिहिंसा की एक लपट वनकर जल उठती, जो जलाने से दूसरो को दूर देखकर अपने ही तृण और काष्ठ जला रही थी।

सन्ध्या हो चुकी थी। सूर्य की अन्तिम किरणे पृथ्वी से विदा हो रही थी। नीचे हरपालमिह ने आवाज दी।

तारा ने उसे ऊपर वुला लिया। हरपालमिह विलकुल तैयार होकर आज्ञा लेने आया था कि तारा कहे, तो वह गाडी लेकर आ जाय। हरपालसिंह को चन्दन के पास पलँग पर वैठाकर तारा नीचे चली गयी, और थोडी देर मे चार सौ रुपये के नोट लेकर लौट आयी। हरपालमिह को रुपये देकर कहा कि वह सौ-सौ रुपये

के तीन थान सोने के गहने और दस-दस रुपये तक के दस थान चाँदी के, जो भी मिल जायँ, बाजार से जल्द ले आवे।

हरपालसिंह चला गया। तारा कमरों में दिये जलाने लगी। फिर पान लगा-कर दो-दो बीड़े सबको देकर नीचे माता के पास चली गयी। उसकी माता पूड़ियाँ निकाल रही थी। उसे देखकर पुनः प्रश्न कर बैठी, "इससे तुम्हारी कैसे पहचान हुई ?"

तभी एक भावज ने कहा, "देखो न, मारे ठसक के किसी से बोली ही नहीं। 'प्रभु ने गरब कियो, नो हारा, गरब कियो वे बन को घुँघची, मुख कारा कर डारा।' हमें तो बड़ी गुस्सा लगी पर हमने कहा, कौन बोले इस बेहूदी से!"

दूसरी बोल उठी, "इसी तरह तो औरत बिगड़ जाती है। जुअण्टा है, व्याह नहीं हुआ, और अकेली घूमती है!"

"छोटे बाबू से जान-पहचान अच्छी है।" पूड़ियाँ बेलती हुई अपनी जिठानी की तरफ देखकर, आँखों में बड़ी मार्मिक हँसी हँसकर तीसरी ने कहा।

जिठानी ने साथ दिया, "हाँ, देखो न, बेचारे उतनी दूर से बिना बोले नहीं रह सके। कैसा बनाया, जैसे और कोई सत्तू में छेद करना जानता ही नहीं।"

उत्साह में तीसरी ने कहा, "इसीलिए तो व्याह नहीं करते।"

तारा को इस आलोचना-प्रत्यालोचना के बीच बच रहने की काफी जगह मिली। काम हो रहा है, देख वह लौट गयी। इनके व्यवहार से मन-ही-मन उसे बड़ी ग्लानि हुई।

तारा कनक के पास चली आयी। उसके प्रति जो व्यावहारिक अन्याय उसके घर की स्त्रियों ने किया था, उसके लिए बार-बार क्षमा माँगने लगी। पहले उसे लज्जा होती थी, पर अब उसे काफी बल मिल रहा था।

"दीदी, आप मुझे मिलें, तो सबकुछ छोड़ सकती हूँ।" कनक ने स्नेह-सिक्त स्वर से कहा।

तारा के हृदय में कनक के लिए पहले ही से बड़ी जगह थी, इस शब्द से वहाँ उसकी इतनी कीमत हो गयी, जितनी आज तक किसी की भी न हुई थी।

चन्दन पड़ा हुआ सुन रहा था, उससे न रहा गया। कहा, "बस, जैसी तजवीज आपने निकाली है, कुल रोगों की एक ही दवा है। मजबूती से इन्हें पकड़े रहिये। गुरु समर्थ है, तो चेला कभी तो सिद्ध हो ही जायगा।"

हरपालसिंह ने आवाज लगायी, तारा उठ गयी। दिखाकर हरपालसिंह ने दरवाजे पर ही कुल सामान दे दिया, और पूछकर अपनी गाड़ी लेने चला गया। रात एक घण्टे से ज्यादा पार हो चुकी थी।

यह सब सामान तारा ने अपनी भावजों तथा अपने नियुक्त किये हुए लोगों और कुछ परजों को देने के लिए मँगवाया था।

मकान में जाकर अपनी मा से तैयारी करने के लिए कहा। पूड़ियाँ बाँध दी गयीं। असबाब पहले ही से बाँधकर तैयार कर रक्खा था।

घर में स्त्रियाँ एकत्र होने लगीं। पड़ोस की भी कुछ स्त्रियाँ आ-आकर जमने लगीं। तारा उठकर बार-बार देवता को स्मरण कर रही थी। ऊपर जा कनक को

ओढने के लिए अपनी चादर दी। भूल गयी थी, छत से उसकी पेशवाज ले आयी, और बाँधकर एक बॉक्स मे, जिसमे पुराने कपडे आदि मामूली सामान थे, डाल दी।

हरपालसिंह गाडी ले आया। कोई पूछता, तो कह देता, गाँव के स्टेशन गाडी ले जानी है।

तारा ने भावजो को भेंट दी। माता तथा गाँव की स्त्रियो से मिली। नौकरो को इनाम दिया। फिर कनक को ऊपर से लिवा लायी। थोडे ही शब्दो मे सबको उसका परिचय देकर, गाडी पर बैठाल, सामान रखवा, स्वय भी भगवान् विश्वनाथ का स्मरण कर बैठ गयी। गाडी चल दी। राजकुमार और चन्दन पैदल चलने लगे।

बीस

दूसरा स्टेशन वहाँ स 5-6 कोस पडता था। रात डेढ-दो बजे के करीब गाडी पहुँची। तारा ने रास्ते मे ही कनक को घूँघट मे अच्छी तरह छिपा रक्खा था। स्टेशन के पास एक बगल गाडी खडी कर दी गयी। चन्दन टिकट खरीदने और आवश्यक बाते जानने के लिए स्टेशन चला गया। राजकुमार से वही रहने के लिए कह गया। ट्रेन रात चार बजे के करीब आती थी।

चन्दन ने स्टेशन-मास्टर से पूछा, तो मालूम हुआ कि सेकेण्ड क्लास का डब्बा मिल सकता है। चन्दन भाभी के पास लौटकर समझाने लगा कि फर्स्टक्लास का टिकट खरीदने की अपेक्षा, उसके विचार से, एक सेकेण्ड क्लास छोटा डब्बा रिजर्व करा लेने से सुविधा ज्यादा होगी। दूसरे, खर्च मे भी कमी रहेगी। तारा सहमत हो गयी। चन्दन ने सौ रुपये तारा से और ले लिये।

रास्ते-भर कनक के सम्बन्ध मे कोई बातचीत नही हुई। चन्दन ने सबको समझा दिया था कि कोई इस विषय पर किसी प्रकार का जिक्र न छेडे। हरपालसिंह के आदमी, स्टेशन से दूर उसके लौटने की प्रतीक्षा कर रहे थे। चन्दन सोच रहा था, स्त्रियो को वेटिंग-रूम मे ले जाया जाय या गाडी आने तक यही ठहरे। हरपालसिंह फुरसत पा टहलता हुआ स्टेशन की तरफ चला गया। चन्दन डब्बा रिजर्व कराने चला। राजकुमार को तारा ने अपने पास बैठा लिया।

कुछ देर बाद, शका से अगल-बगल देख-दाख, सीना तानता हुआ हरपालसिंह लौटा। तारा से कहा, "यहाँ तो बडा खतरा है बहन! सँभलकर जाना। लोग लगे है। सबकी बातचीत सुनते हैं, और बडी जाँच हो रही है। राज्य के कई सिपाही भी हैं।

सुनकर राजकुमार की आँखो से ज्वाला निकलने लगी, पर सँभलकर रह

गया। तारा घबराकर राजकुमार की तरफ देखने लगी। कनक भी तेज निगाह से राजकुमार को देख रही थी। स्टेशन की बत्तियो के प्रकाश से घूंघट के भीतर उसकी चमकती हुई आँखें झलक रही थी। कुल मुखाकृति जाहिर हो रही थी। तारा ने एक साँस लेकर हरपालसिंह से कहा, "भैया, छोटे बाबू को बुला तो लाओ।"

स्टेशन बड़ा था। बगल मे डब्बे लगे। कई कर्मचारी थे। चन्दन का काम हो गया था। वह हरपालसिंह को रास्ते मे ही मिल गया। उनके पास आने पर तारा शकित, दबे हुए स्वर से स्टेशन के वायुमण्डल का हाल, अवश्यम्भावी विपत्ति से घबरायी हुई, कहने लगी।

चन्दन थोडी देर सोचता रहा, फिर उसने हरपालसिंह से कहा, "भैया, तुम चले जाओ, भेद अगर खुल गया, और तुम साथ रहे, तो तुम्हारे लिए बहुत बुरा होगा।"

हरपालसिंह की भौहे तन गयी, निगाह बदल गयी। बोला, 'भैया हे! जान का खेयाल करते, तो आपका साथ न देते! आपकी इच्छा होय, तो हियँ लाठी…"

चन्दन ने उतावली से रोक लिया। इधर-उधर देखकर धीरे से कहा, "यह सब हमे मालूम है भैया, तुम्हारे कहने से पहले ही, पर अब ज्यादा बहस इस पर ठीक नही। तुम चले जाओ, हम आराम-कमरे मे जाते है। गाडी आती ही होगी। हमारे साथ तुम स्टेशन पर रहोगे, तो देखकर लोग शक कर सकते हैं।"

"हाँ, यह तो ठीक है।" बात हरपालसिंह को जँच गयी।

उसे विदा करने के लिए तारा उठकर खड़ी हो गयी। सामान पहले ही गाड़ी से उतारकर नीचे रख दिया गया था। हरपालसिंह ने बैल नह दिये, और तारा के चरण छुए। तारा खड़ी रही। कनक के दिल मे भी हरपालसिंह के प्रति इज्जत पैदा हो गयी थी। तारा के साथ ही वह भी उठकर खडी हो गयी। उसका खडा होना हरपालसिंह को बहुत अच्छा लगा। इस सभ्यता से उसके वीर हृदय को एक प्रकार की शान्ति मिली। तारा उसके पुरस्कार की बात सोचकर भी कुछ ठीक न कर सकी। एकाएक सरस्वती के दिये शब्दो की तरह उसे एक पुरस्कार सूझा, "भैया, जरा रुक जाओ। जिसके लिए यह हो रहा है, उसे अच्छी तरह देख लो।" यह कह उसने कनक का घूंघट उलट दिया।

वीर हरपालसिंह की दृष्टि मे जरा देर के लिए विस्मय देख पडा। फिर न-जाने क्या सोचकर उसने गर्दन झुका ली, और अपनी गाडी पर बैठ गया। फिर उस तरफ उसने नहीं देखा। धीरे-धीरे सडक से गाडी ले चला। राजकुमार और चन्दन पचास कदम तक बढकर उसे छोडने गये।

लौटकर राजकुमार को वे ही कीमती कपडे, जो कनक के यहाँ उसे मिले थे, पहनाकर, खुद भी इच्छानुसार दूसरी पोशाक बदलकर चन्दन कुली बुलाने स्टेशन गया। तारा से कह गया, जरूरत पडने पर वह कनक को अपनी देवरानी बतायेगी, बाकी परिचय वह दे लेगा।

आगे-आगे सामान लिये हुए तीन कुली, उनके पीछे चन्दन, बीच मे दोनो स्त्रियाँ, सबसे पीछे राजकुमार अपना सुरक्षित व्यूह बनाकर स्टेशन चले। कनक

अवगुण्ठित, तारा ताग की तरह खुली हुई पर बारीक विचार रखनेवाले देखकर ही समझ सकते थे, कि उन दोनों में कौन अवगुण्ठित, और कौन खुली हुई थी। कनक सब अंगों में ढकी हुई होने पर भी कहीं से भी झुकी हुई न थी। बिलकुल सीधी, जैसे अपनी रेखा और पदक्षेप में ही अपना खुला हुआ जीवन सूचित कर रही हो। उधर तारा की तमाम झुकी मानसिक वृत्तियाँ, उसके अनवगुण्ठित रहने पर भी, आत्मावरोध का हाल बयान कर रही थी।

नौकर ने जनाने वेटिंग-रूम का द्वार खोल दिया। तारा कनक को लेकर भीतर चली गयी। बाहर दो कुर्सियाँ डलवा, बुक-स्टाल से दो अँगरेजी उपन्यास खरीदकर, दोनों मित्र बैठकर पढ़ने लगे। लोग चक्कर लगाते हुए आते, देखकर चले जाते। कुँवर साहब के आदमी भी कई बार आये। देर तक देखकर चले गये। जिस पखावजिये ने कनक को भगाया था, चन्दन अपनी स्थिति द्वारा उससे बहुत दूर, बहुत ऊँचे, सन्देह से परे था। किसी को शक होने पर वह अपने शक पर ही शक करता।

राजकुमार किताब कम पढ़ रहा था, अपने को ज्यादा। वह जितना ही कनक से भागता, चन्दन और तारा उतना ही उसका पीछा करते। कनक अपनी जगह पर खड़ी रह जाती। उसकी दृष्टि में उसके लिए कोई प्रार्थना न थी, कोई शाप भी न था, जैसे वह केवल राजकुमार के इस अभिनय को खुले हृदय की आँखों से देखनेवाली हो। यह राजकुमार की ओर चोट करता था। स्वीकार करते हुए उसका जैसे तमाम बल ही नष्ट हो जाता।

राजकुमार की समस्त दुर्बलताओं का अपने उस समय के स्वभाव के तीखेपन और तेजी से आकर्षित कर चन्दन लोगों को अपनी तरफ मोड़ लेता था। वह भी कुछ पढ़ नहीं रहा था, पर राजकुमार जितनी हद तक मनोराज्य में था, उतनी ही हद तक चन्दन बाहरी दुनिया में, अपनी तमाम वृत्तियों को सतर्क किये हुए—जैसे आकस्मिक आक्रमण को तत्काल रोकने के लिए तैयार हो। पन्ने केवल दिखावे के लिए उलटता था, और इतनी जल्दबाजी थी कि लोग उसी की तरफ आकृष्ट होते थे। चन्दन का सोलहों आने बाहरी आडम्बर था। राजकुमार का बाह्य-ज्ञान-साहित्य उस पर आक्रमण करने, पूछताछ करने का मौका देता था, पर चन्दन से लोगों में भय और सम्भ्रम पैदा हो जाता। वे त्रस्त हो जाते थे, और खिंचते भी थे उसी की तरफ पहले। वहाँ जिसकी खोज में स्टेट के आदमी से उसकी पूछताछ बेअदबी तथा मूर्खता थी, और स्टेट की भी इसमें बेइज्जती होती थी—कहीं बात फैल गयी, शंका थी, कहीं यह कोई बड़ा आदमी हो, पाप था—हिम्मत था नहीं, लोग आते और लौट जाते। चन्दन समझता था, इसलिए वह और गम्भीर बना रहा।

गाड़ी का वक्त हो गया। लोग प्लेटफार्म पर जमने लगे। चन्दन का डब्बा दूसरी लाइन पर लाकर लगा दिया गया। सिगनल गिरा। देखते-देखते गाड़ी भी आ गयी। स्टेशन-मास्टर ने गाड़ी कटवाकर चन्दन के सामने ही वह डब्बा लगवा दिया, और फिर बड़े अदब से आकर चन्दन को सूचना दी। दस रुपये का एक नोट निकालकर चन्दन ने स्टेशन-मास्टर को पुरस्कृत किया। स्टेशन-मास्टर प्रसन्न हो गये। पास खड़े पुलिस के दो सिपाही देख रहे थे। सामने आकर उन्होंने भी सलामी

दी। दो-दो रुपये चन्दन ने उन्हे भी दिये।

चन्दन ने तारा को बाहर ही से आवाज दी, "भाभी, चलिए !"

सिपाहियो ने आदमियो को हटाकर रास्ता बना दिया। हटाते वक्त दो-एक धक्के स्टेट के आदमियो को भी मिले। कुली सामान उठा-उठाकर डब्बे मे रखने लगे। चन्दन ने खिडकियाँ बन्द करा दी। दरवाजा चपरासी ने खोल दिया। तारा कनक को साथ लेकर धीरे-धीरे डब्बे के भीतर चली गयी। चन्दन ने कुलियो और चपरासियो को भी पुरस्कार दिया। राजकुमार भीतर चला गया। चन्दन के चढते समय पुलिस के सिपाहियो ने फिर सलामी दी। चन्दन ने दो-दो रुपये फिर दिये, और गाडी मे चढ गया।

पुलिस के सिपाहियो ने फिर अपनी मुस्तैदी दिखाकर—चलते-चलते प्रसन्न कर जाने के विचार से—'क्या देखते हो, हटो यहाँ से" कह-कहकर सामने खडी भीड को दो-चार धक्के और लगा दिये। प्राय सभी लोग स्टेट के ही खुफिया-विभाग के थे।

गाडी चल दी। कनक ने आप-ही-आप घूंघट उठा दिया। विगत प्रसग पर बातें होती रही। चारो ने खुलकर एक-दूसरे की बातें की। जो कुछ भी राजकुमार को अविदित था, मालूम हो गया। कनक के अन्दर अब किसी प्रकार का उत्साह नही रह गया था। वह जो कुछ कहती थी, सिर्फ कहना था, इसलिए। उसके स्वर मे किसी प्रकार का अभियोग न था, कोई आकाक्षा न थी। राजकुमार के पिछले भावो से उसके मर्मस्थल पर गहरी चोट लग चुकी थी।

जितनी ही बातें होती, राजकुमार उतना ही बदलता जा रहा था। तारा ने फिर विवाह आदि के लिए आग्रह नही किया। चन्दन भी दो-एक बार उसे दोष देकर चुप रह गया।

हाँ, उसने जिस मनोवैज्ञानिक ढग से बात की थी, उसे सुनकर राजकुमार को अपनी त्रुटि मालूम हो रही थी, पर कनक ने इधर जिस तेजी से, सम्बन्ध-रहित की तरह, बिलकुल खुली हुई बातचीत की, इससे चन्दन के प्रसग पर अत्यन्त सकोच और हेठी के कारण राजकुमार हारकर भी विवाह की बात स्वीकृत नही कर रहा था।

उस समय कनक को जो कुछ आनन्द मिला था, वह केवल चन्दन की बातचीत से। नाराज थी कि उसके इस प्रसग का इतना बढाव किया जा रहा है। सत्य-प्राप्ति के बाद जैसे सत्य की बहस केवल तकरार होती रही है, हृदय-शून्य ये तमाम बातें कनक को वैसी ही लग रही थी। राजकुमार के प्रति तारा के हृदय मे क्रोध था और कनक के हृदय मे दुराव।

चारो एक-एक बर्थ पर बैठे थे। तारा थक रही थी। लेट रही। चन्दन ने स्टेशन पर जितनी शक्ति खर्च की थी, उसके लिए विश्राम करना आवश्यक हो रहा था। वह भी लेट रहा। हवा नही लग रही थी, इसलिए उठकर, खिड़की खोलकर फिर लेट रहा।

राजकुमार बैठा कुछ सोच रहा था। कनक बैठी अपने भविष्य की कल्पना कर रही थी, जहाँ केवल भावना-ही-भावना थी, सार्थक शब्द-जाल कोई नही। बडी देर

हो गयी। गाडी पूरी रफ्तार से चली जा रही थी। कनक चन्दन की किताब उठाकर पढने लगी। तारा और चन्दन सो गये थे।

राजकुमार अपने गत जीवन के चित्रों को देख रहा था। कुछ संस्मरण लिखने के लिए पॉकेट से नोटबुक निकाली। लिखने लगा। एक विचित्र अनुभव हुआ, जैसे उसकी तमाम देह बँधी हुई खिंची जा रही हो कनक की तरफ, हर अंग उसके उसी अंग से बँधा हुआ। जोर लगाना चाहा, पर जैसे शक्ति ही न हो। इच्छा का वाष्प जैसे शरीर के सब छिद्रों से निकल गया हो। केवल उसका निष्क्रिय अहं-ज्ञान और निष्क्रिय शरीर रह जाता था, मानो केवल प्रतिघात करते रहने के लिए, कुछ सृष्टि करने के लिए नहीं। इसके बाद ही उसका शरीर काँपने लगा। ऐसी दशा उसकी कभी नहीं हुई थी। उसने अपने को सँभालने की बडी चेष्टा की, पर संस्कारगत शरीर पर उसके नये प्रयत्न चल नहीं रहे थे, जैसे उसका श्रेय जो कुछ था, कनक ने ले लिया हो, जो उसी का हो गया था, वह जिसे अपना समझता था, जिसके दान में उसे संकोच था, जैसे उसी के पास रह गया हो, और उसकी वश्यता से अलग। अपनी तमाम रचनाओं की ऐसी विशृंखल अवस्था देख वह हताश हो गया। आँखों में आँसू भर आये। चेष्टा विकृत हो गयी।

तारा और चन्दन सो रहे थे। कनक राजकुमार को देख रही थी। अब तक वह मन से उससे पूर्णतया अलग थी। राजकुमार के साथ जिन-जिन भावनाओं के साथ वह लिपटी थी, उन सबको बैठी हुई अपनी तरफ खींच रही थी। कभी-कभी राजकुमार की मुख-चेष्टा में हृदय की करुणाश्रित महानुभूति उसके स्त्रीत्व की पुष्टि करती हुई राजकुमार की तरफ उमड पडती थी, तब राजकुमार की क्षुब्ध चित्त-वृत्तियों पर एक प्रकार का सुख झलक जाया करता, कुछ सान्त्वना मिलती थी। नवीन बल प्राप्त कर वह अपने समर के लिए फिर तैयार होता था। कनक रह-रहकर, खुद चलकर, अपनी निर्दोषिता जाहिर कर एक बार फिर अन्तिम बार प्रार्थना करने का निश्चय कर रही थी। लज्जा और मर्यादा का बाँध तोड़कर उसके स्त्रीत्व का प्रवाह एक बार फिर उसके पास पहुँचने के लिए व्याकुल हो उठा, पर दूसरे ही क्षण राजकुमार के रूक्ष बर्ताव याद आते ही वह संकुचित हो बैठी रही।

जब कनक के भीतर सहृदय कल्पनाएँ उठती थीं, तब राजकुमार देखता था, कनक उसके भीतर, उसकी भावनाओं से रँगकर, अत्यन्त सुन्दर हो गयी है। हृदय में उसका उदय होते ही एक ज्योति-प्रवाह फूट पडता था। स्नेह, सहानुभूति और अनेक कल्पनाओं के साथ उसकी कविता सुन्दर तरंगों में उसे बहलाकर बह जाती थी।

गाडी आसनसोल-स्टेशन पर खडी थी। राजकुमार बिलकुल सामने की सीट पर था। डब्बे के झरोखे खुले हुए थे। गाडी को स्टेशन पहुँचे दस मिनट के करीब हो चुका था। कनक का मुँह प्लेटफार्म की तरफ था। बाहर के लोग उसे अच्छी तरह देख सकते थे, और देख रहे थे। प्लेटफार्म की तरफ राजकुमार की पीठ थी।

राजकुमार चौंक पडा, जब एकाएक गाडी का दरवाजा खुल गया। कनक

सिकुडकर शकित दृष्टि मे एक आदमी को देख रही थी। घूँघट काढना, अनभ्यास के कारण, उसके शकित स्वभाव के प्रतिकूल हो गया।

दरवाजे के शब्द मे राजकुमार की चेतना ने आँखे खोल दी। झटपट उठा। एक अपरिचित आदमी देख पडा। कनक ने तारा और चन्दन को जगा दिया। दोनो ने उठकर देखा, एक साहव और राजकुमार, दोनो एक-दूसरे को तीव्र स्पर्धा की दृष्टि से देख रहे थे।

"तुम शायद मुझे भूले नही हैमिल्टन!" राजकुमार ने अँगरेजी मे डपटकर कहा।

साहव देखते रहे। साहब के साथ एक पुलिस का सिपाही, स्टेशन-मास्टर, स्टेशन के कर्मचारी और कुछ परिदर्शक एकत्र थे। साहव को वुरी तरह डाँटे जाते देखकर स्टेशन-मास्टर ने मदद की, "इस डब्वे मे भगाई हुई औरत है—वह कौन है?"

"है नही, है कहिए, उत्तर तव मिलेगा। पर आप कौन है, जिन्हे उत्तर देना है?" राजकुमार ने तेज स्वर से पूछा।

"मेरी टोपी बतला रही है।" स्टेशन-मास्टर ने भी आँखे निकालकर कहा।

"मै आपको आदमी तव समझूँगा, जब जरूरत के वक्त आप कहे कि एक रिजर्व सेकेण्ड क्लास के यात्री को आपने 'कौन है' कहा था।"

स्टेशन-मास्टर का चेहरा उतर गया। तव कास्टेबिल ने हिम्मत की, "आपके साथ वह कौन वैठी हुई है?"

'मेरी स्त्री, भावज और भाई।"

स्टेशन-मास्टर ने साहव को भी अँगरेजी मे समझा दिया। साहब ने दो वार आँखें झुकाये हुए सिर हिलाया, फिर अपने कम्पार्टमेण्ट की तरफ चल दिये। और लोग भी पीछे-पीछे चले।

दरवाजा वन्द करते हुए राजकुमार ने सुनाकर कहा, 'कावर्ड्स!"

गाडी चल दी।

इक्कीस

राजकुमार के होठो का शब्द-विन्दु पीकर कनक सीपी की तरह आनन्द के सागर पर तैरने लगी। भविष्य की मुक्ता की ज्योति उसकी वर्तमान दृष्टि मे चमक उठी। अभी तक उसे राजकुमार से लज्जा नही थी, पर अव दीदी के सामने आप-ही आप लाज के भार से पलकें झुकी पडती थी। राजकुमार के हृदय का भार भी उसी क्षण दूर हो गया। एक प्रकार की गरिमा मे चेहरा वसन्त के खुले हुए फूल पर पडती हुई सूर्यरश्मि मे जैसे चमक उठा।

तारा के तारक नेत्र पूरे उत्साह मे उसका स्वागत कर रहे थे, और चन्दन तो अपनी मुक्त प्रसन्नता मे जैसे सबको छाप रहा हो।

चन्दन राजकुमार को भाभी और कनक के पास पकड ले गया, "ओह ! देखा भाभी, कितने गहरे है जनाव !"

कनक अब राजकुमार से आँखे नही मिला पा रही थी। राजकुमार को देखती, तो जैसे कोई उसे गुदगुदा देता। और, उससे सहानुभूति रखनेवाली उसकी दीदी और चन्दन भी इस समय उसकी लज्जा की तरफ न होगे, उसने समझ लिया था। राजकुमार के पकड आते ही वह उठकर तारा की दूसरी बगल सटकर बैठ गयी। राजकुमार और चन्दन भी उसी बर्थ पर बैठ गये।

राजकुमार की तरफ देखकर तारा सस्नेह हँस रही थी, "तो यह कहिए, आप दोनो सधे हुए थे, यह अभिनय अब तक केवल दिखलाने के लिए ही कर रहे थे ? आपने अभिनय की सफलता मे कमाल कर दिया।"

"आप लोगो को प्रसन्न करना भी तो धर्म है।" राजकुमार मुस्किराता जाता था।

कनक दीदी की आड मे छिपकर हँस रही थी।

चन्दन मानव-प्रकृति का ज्ञाता था। उसने सोचा, आनन्द के समय जितना ही चुप रहा जाये, आनन्द उतना ही स्थायी होता है, और तभी उसकी अनुभूति का सच्चा सुख भी प्राप्त होता है। इस विचार मे उसने प्रसग बदलकर कहा, "भाभी, ताश तो होगे ?"

"हाँ, बक्से मे पडे तो थे।"

"निकाल दो। अच्छा, मुझे गुच्छा दो, और किस बाक्स मे है, बतला दो, मैं निकाल लूंगा।" चन्दन ने हाथ बढाया।

तारा स्वय उठकर चली। "रज्जू बाबू, जरा यह बॉक्स तो उतार दो।"

राजकुमार ने उठकर ऊपरवाला तारा का कैश-बॉक्स नीचे रख उस बडे बॉक्स को उतार लिया।

खोलकर तारा ने ताश निकाल लिये। कौन किस तरफ हो, इसका निर्णय होने लगा। राजकुमार बॉक्स को उठाकर रखने लगा। फैसला नही हो रहा था। चन्दन कहता था, तुम दोनो एक तरफ हो जाओ, मै और राजकुमार एक तरफ, पर तारा चन्दन को लेना चाहती थी। क्योकि मजाक के लिए मौका राजकुमार और कनक को एक तरफ करने मे था। दूसरे चन्दन खेलता भी अच्छा था।

कनक सोचती थी, दीदी हार जायेगी, वह जरूर अच्छा नही खेलती होगी। अपनी ही तरह दिल से तारा भी कनक को कमजोर समझ रही थी। राजकुमार जरा-सी बात के लिए इस लम्बे विवाद पर चुपचाप हँस रहा था। कनक ने खुलकर कह दिया, मैं छोटे साहब को लूंगी। यही फैसला रहा।

अब बात उठी, क्या खेला जाय। चन्दन ने कहा, ब्रिज। तारा इनकार कर गयी। वह ब्रिज अच्छा नही जानती थी। उसने कहा, बादशाह पकड। कनक हँसने लगी।

चन्दन बोला, "अच्छा, टुएण्टीनाइन खेलो।"

राजकुमार ने कहा, "भई, अपनी डफली, अपना राग, स्क्रू खेलो। बहूजी टुएण्टीनाइन-खेल अच्छा नही जानती, मैं हार जाऊँगा।"

"मैं सडियल खेल नहीं खेलता, क्यो भाभीजी ? उनतीस के लिए पत्ते छॉटता हूँ।" चन्दन ने सबमे छोटे होने के छोटे स्वर मे वडी दृढ़ता रखकर कहा।

अन्तत यही निश्चय रहा।

"आप तो जानती है न टुएण्टीनाइन ?" कनक से चन्दन ने पूछा।

'खेलिए।" कनक मन्द मुस्किरा दी।

कनक और चन्दन एक तरफ, तारा और राजकुमार दूसरी तरफ हुए। चन्दन ने पत्ते अलग कर लिये। कह दिया, बोली चार-ही-चार पत्तो पर होगी, और रग छिपाकर रक्खा जायगा, जिसे जरूरत पडे, साबित करा ले। रग खुलने के बाद रॉयल पेयर की कीमत होगी।

चार-चार पत्ते बॉटकर चन्दन ने कहा, "कुछ बाजी भी ?"

"हाँ, घुमावल। हर सेट पर पाँच घूँसे।" राजकुमार ने कहा।

"यार, तुम गँवार के गँवार ही रहे। एम ए. तो पास किया, पर सिंहजी का शिकारी स्वभाव वैसा ही बना हुआ है। मैं तो कहता हूँ, बाजी यह रही कि हावडा-स्टेशन पर हैमिल्टन की कारस्तानी का मोरचा वह ले, जो जीते।"

राजकुमार चन्दन की सूझ पर खुश हो गया। खेल शुरू किया। कहा, "सेवन्टीन।"

कनक ने कहा—"नाइनटीन।"

राजकुमार—"पास।"

चन्दन—"बस ! तुम तो एक ही धौल मे फिस्स हो गये।"

तारा और चन्दन ने भी पास किया। कनक के उन्नीस रहे। उसने रग रख दिया। खेल होता रहा। कनक ने उन्नीस कर लिये।

खेल मे राजकुमार कभी घायल नहीं हुआ, पर आज एक ही बार हारकर उसे बडी लज्जा मालूम दी।

अब राजकुमार ने पत्ते बाँटे।

कनक—"सेवन्टीन।"

तारा—"नाइनटीन।"

कनक—"नाइनटीन।"

चन्दन ने कहा, "गोइयाँ पर क्या बोले ! पास।"

राजकुमार के पास रग न था, पर कनक फिर बढ रही थी। उसका पुरुषोचित अकारण बडप्पन फडक उठा, कहा, "टुएन्टी।"

कनक—"ऐक्सेप्टेड।"

राजकुमार—"टुएन्टीवन।"

कनक, अच्छी तरह अपने पत्ते देखती हुई, मुस्किराकर बोली, "ऐक्सेप्टेड।"

राजकुमार—"टुएण्टी टू।"

कनक—"ऐक्सेप्टेड।"

राजकुमार (बिना पत्ते देखे, खुलकर)—"टुएण्टी थ्री।"

कनक ने हँसकर कहा, "पास।"

राजकुमार ने बड़ी शिथिलता से रंग रक्खा। खेल होने लगा। पहला हाथ चन्दन ने लिया। कनक ने एक पेअर दिखलाया। चन्दन ने कहा, टुएण्टी फाइव। राजकुमार के पास पत्ते थे नहीं। शान पर चढ़ गया था। हारता रहा। खेल हो जाने पर देखा गया, राजकुमार के आधे भी न बने थे। दो काली बिन्दियाँ खुलीं। राजकुमार बहुत झेंपा।

गाड़ी बर्दवान पार कर चुकी थी। खेल होता रहा। अब तक राजकुमार पर तीन काले और चार लाल खुल चुके थे।

तारा ने स्टेशन करीब देख, तैयार हो रहने के विचार से, खेल बन्द कर दिया। पहले उसे राजकुमार की बातों से जितना आनन्द मिला था, अब हावड़ा ज्यों-ज्यों नजदीक आने लगा, उतना ही हृदय में डरने लगी। मन-ही-मन सकुशल सबके घर पहुँच जाने की कालीजी से प्रार्थना करने लगी। कनक को अच्छी तरह ओढ़कर, मुँह पर घूँघट डालकर चलने की शिक्षा दी।

चन्दन ने कहा, "करार हो चुका है—अब मैं जैसा-जैसा कहूँ, करो। कहीं मारपीट की नौबत आयेगी, तो तुम्हें सामने कर दूँगा।"

इस मित्र-परिवार की तमाम आशाओं और शंकाओं को लिये पूरी रफ्तार में बढ़ती हुई गाड़ी लिलुआ-स्टेशन पर आकर खड़ी हो गयी। हर डब्बे पर एक-एक टिकट-कलक्टर चढ़कर यात्रियों से टिकट लेने लगा।

कनक से हारकर अब राजकुमार उससे नजर नहीं मिलाता था। कनक स्पर्धा की दृष्टि से, अलि-युवती की तरह, जो अपने फूल के चारों ओर मँडराया करती है, सीधे, तिरछे, एक बगल, जिस तरह भी आँखों को जगह मिलती है, दीदी और चन्दन से बचकर पूरी बेहयाई से उससे चुभ जाती है। उसे गिरफ्तार कर खींचती, झुका हुआ देख सस्नेह छोड़ देती है। एक स्त्री के सामने राजकुमार की यह पहली हार थी—हर तरह।

गाड़ी ने लिलुआ-स्टेशन छोड़ दिया। चन्दन ने नेतृत्व सँभाला। तारा का हृदय रह-रहकर काँप उठता था। राजकुमार महापुरुष की तरह स्थिर हो रहा था, अपनी तमाम शक्तियों से सकुचित, चन्दन की जरूरत के वक्त तत्काल मदद करने के लिए। कनक पारिजात की तरह अर्द्ध-प्रस्फुट निष्कलंक दृष्टि से हावड़ा-स्टेशन की प्रतीक्षा कर रही थी। केवल सिर चादर से ढका हुआ, श्वेत बादलों में अधखुले सूर्य की तरह।

देखते-देखते हावड़ा आ गया। गाड़ी पहले प्लेटफॉर्म पर लगी। चन्दन तुरन्त उतर पड़ा। दो टैक्सियाँ कीं। कुली सामान उठाकर रखने लगे। चन्दन ने एक ही टैक्सी पर कुल सामान रखवाया। सिर्फ बहू का कैश-बॉक्स लिये रहा। राजकुमार को धीरे-से समझा दिया कि सामान वह अपने डेरे पर उतारकर रक्खेगा, वह बहू को छोड़कर घर से गाड़ी लेकर आता है। कुलियों को दाम दे दिये।

एक टैक्सी पर राजकुमार अकेला बैठा, एक पर बहू, कनक और चन्दन। टैक्सियाँ चल दीं। चन्दन रह-रहकर पीछे देखता जाता था। पुल पार कर उसने देखा, एक टैक्सी आ रही है। उसे कुछ सन्देह हुआ। उस पर जो आदमी था, वह

यात्री नहीं जान पड़ता था। चन्दन ने सोचा, यह जरूर खुफिया का कोई है, और हैमिल्टन ने इसे पीछे लगाया है। अपने ड्राइवर से कहा, इस गाड़ी को दूसरी गाड़ी की बगल करो। ड्राइवर ने वैसे ही किया। चन्दन ने सर बाहर निकालकर राजकुमार ने कहा, 'टी' पीछे लगा है। टैक्सी एक है, देखें, किसके पीछे लगती है। चन्दन और कलकत्ते के विद्यार्थी गुप्त विभागवालो को 'टी' कहते थे।

राजकुमार ने एक बार फिर लापरवाह निगाह से पीछे देखा। सेन्ट्रल एवेन्यू के पास दोनो गाड़ियाँ दो तरफ हो गयी। राजकुमार की टैक्सी दक्षिण चली, और चन्दन की उत्तर। कुछ दूर चलकर चन्दन ने देखा, टैक्सी बिना रुके राजकुमार की टैक्सी के पीछे चली गयी। चन्दन को चिन्ता हुई। सोचने लगा।

वहू ने कहा, "छोटे साहब, वह गाड़ी शायद उधर ही गयी है ?"

"हाँ।" चन्दन का स्वर गम्भीर हो रहा था।

"तुम्हारा मकान तो आ गया, इस तरफ है न ?" तारा ने कनक से पूछा।

"हाँ। चलो दीदी, आज हमारे यहाँ ही रहो।" ड्राइवर से कनक ने कहा, "बायी तरफ।"

टैक्सी कनक के मकान के सामने खड़ी हो गयी। कोठी देखकर चन्दन के हृदय मे कनक के प्रति सम्भ्रम पैदा हुआ। कनक उतर पड़ी। सब लोग बड़े प्रसन्न हुए। दौड़कर सर्वेश्वरी को खबर दी। कनक ने अपने नौकर से टैक्सी का किराया चुका देने के लिए कहा। चन्दन ने कहा, "अब घर चलकर किराया चुका दिया जायगा।" कनक ने न सुना। तारा का हाथ पकड़कर कहा, "दीदी चलो।"

तारा ने कहा, "अभी नही बहन, इसका अर्थ तुम्हे फिर मालूम हो जायगा। फिर कभी रज्जू बाबू को साथ लेकर आया जायगा। तुम्हारा विवाह तो हमे यहीं करना है।"

कनक कुछ खिन्न हो गयी। अपने ड्राइवर से गाड़ी ले आने के लिए कहा। तारा और चन्दन उतरकर अहाते मे खड़े हो गये। सर्वेश्वरी ऊपर से उतर आयी। कनक को गले लगाकर चूमा। एक साँस मे कनक बहुत कुछ कह गयी। सर्वेश्वरी ने तारा को देखा, तारा ने सर्वेश्वरी को। तारा ने मुँह फेरकर चन्दन से कहा, "छोटे साहब, जल्द चलो।"

तारा को बड़ी घुटन मालूम दे रही थी। सर्वेश्वरी अत्यन्त सुन्दर होने पर भी तारा को बड़ी कुत्सित देख पड़ी। उसके मुख की रेखाओ के स्मरण-मात्र से तारा को भय होता था। अपने चरित्र-बल से सर्वेश्वरी के विकृत परमाणुओ को रोकती हुई जैसे मुहूर्त-मात्र मे थककर ऊब गयी हो। तब तक कनक-ड्राइवर मोटर ले आया।

पहले सर्वेश्वरी तारा को स्नेह करना चाहती थी, क्योंकि दीदी का परिचय कनक ने सबसे पहले दिया था, पर हिम्मत करके भी तारा की तरफ स्नेह-भाव से नही बढ सकी, मानो तारा की प्रकृति उससे किसी प्रकार का भी दान स्वीकृत करने के लिए तैयार नही, उसे उससे परमार्थ के रूप मे जो कुछ लेना हो, ले।

कनक ने दीदी की ऐसी मूर्ति कभी न देखी थी—यह वह दीदी न थी! कनक के हृदय मे यह पहले पहल विशद भावना का प्रकाश हुआ। सर्वेश्वरी इतना सब नही

समझ सकी। समझी सिर्फ अपनी क्षुद्रता और तारा की महत्ता—अविचल स्त्रीत्व, पतिनिष्ठा। आप-ही-आप सर्वेश्वरी का मस्तक झुक गया। उसका विष पीकर तारा एक बार तपकर फिर धीर हो गयी। सर्वेश्वरी के हृदय मे शान्ति का उद्रेक हुआ। ऐसी परीक्षा कभी नही दी थी। सिद्धान्त वह बहुत जानती थी, पर इतना प्रत्यक्ष प्रमाण अब तक न मिला था। वह जानती थी, हिन्दू-घराने मे, और खासकर बगाल छोडकर भारत के अपर उत्तरी भागो मे, कन्या को देवी मानकर, घरवाले उसके पैर छूते हैं। कनक की दीदी को उसने देवी और कन्या के रूप मे मानकर, पास आ पैर छुए। तारा शान्त खडी रही। चन्दन स्थिर, झुका हुआ।

ड्राइवर गाडी लगाये हुए था। तारा बिना कुछ कहे गाडी की तरफ बढी, मन से भगवान् विश्वनाथ और कालीजी को स्मरण करती हुई। पीछे-पीछे चन्दन चला।

सर्वेश्वरी ने बढकर दरवाजा खोल दिया। तारा बैठ गयी। नौकर ने कैश-बॉक्स रख दिया। चन्दन भी बैठ गया।

कनक देखती रही। पहले उसकी इच्छा थी कि वह भी दीदी के साथ उसके मकान जायेगी, पर इस भाव-परिवर्तन को देख वह कुछ घबरा-सी गयी थी। जडवत् उसी जगह खडी रही। गाडी चल दी, चन्दन के कहने पर।

बाईस

राजकुमार ने अपने कमरे मे पहुँचकर देखा, उसके सवाद-पत्र पडे थे। कुलियो से सामान रखवाया, उन्हे पारिश्रमिक दिया, और फिर उन्ही सवाद-पत्रो के ढेर मे खोजने लगा, उसके पत्र भी आये है या नही। उसकी सलाह के अनुसार उसके पत्र भी पोस्टमैन झरोखे से डाल जाते थे। कई पत्र थे। अधिकाश मित्रो के। एक उसके घर का था। खोलकर पढने लगा। उसकी माता ने लिखा था, गर्मियो की छुट्टी मे तुम घर आनेवाले थे, पर नही आये। चित्त लगा है—आदि-आदि। अभी कॉलेज खुलने मे बहुत दिन थे। राजकुमार बैठा सोच रहा था कि एक बार घर जाकर माता के दर्शन कर आवे।

राजकुमार ने 'टी' को पीछा करते हुए देखा था, और देखा था कि उसकी टैक्सी के रुकने के साथ ही 'टी' की टैक्सी भी कुछ दूर पीछे रुक गयी थी। वह स्वभाव का इतना लापरवाह था कि इसके बाद उस पर क्या विपत्ति बीतेगी, इसकी उसने कल्पना भी न की। जब एकाएक माता का ध्यान आया, तो स्मरण आया कि चन्दन की किताबें यहाँ है। और, यदि तलाशी हुई, तो चन्दन पर भी विपत्ति आ सकती है। वह विचारो को छोडकर किताबे उलट-उलटकर देखने लगा।

दराज मे रबड और ब्लेड निकालकर जहाँ कही भी उसने चन्दन का नाम लिखा हुआ देखा, घिसकर, काटकर उडा दिया। इस पर भी किसी प्रकार की शका हो, इस विचार मे, बीच-बीच ऊपर के सफो पर, अपना नाम लिखता जाता। अधिकाश पुस्तकें चन्दन के नाम की छाप से रिक्त थी। कारण, उसे नाम लिखने की लत न थी। जहाँ कही भी था, वह बहुत अस्पष्ट। और, इतनी मैली वे किताबे थी, जिनमे यह छाप होती कि देखकर यह अनुमान लगा लेना सहज होता था कि यह "परहस्तेपु गता" की दशा है, और दूसरे लोग आक्रमण से स्वय बचे रहने के लिए किताबो पर मालिक का नाम लिख देते थे, इस तरह अपने यहाँ छिपाकर पढते थे।

राजकुमार जब इस कृत्य मे लीन था, तब चन्दन कनक के मकान मे था। राजकुमार के यहाँ सामान ले आने और 'टी' के सम्बन्ध मे जानने के लिए वह उत्सुक हो रहा था। वह सीधे राजकुमार के पास ही जाता, पर कनक को बहू के भाव न समझ सकने के कारण कष्ट हो रहा होगा, इस शका से पहले कनक के ही यहाँ गया।

कनक चन्दन को अपने यहाँ देखकर बडी ही प्रसन्न हुई। वाक्पटु चन्दन ने तारा की बातो का गूढ अर्थ, जिससे वह उसके मकान मे नही रुकी, कुछ सच और कुछ रँगकर खूब समझाया। चन्दन के सत्य का तो कुछ असर कनक पर पडा, पर उसकी रगामेजी से कनक के दिल मे दीदी का रग फीका नही पडा। कारण, उसने स्वय अपनी आँखो दीदी की उस समय की अनुपम छवि देखी थी, जिसका पुरअसर खयाल वह किसी तरह भी न छोड सकी थी। दीदी पुरानी आदतो से मजबूर है, यह सिर्फ उसने सुन लिया, और सभ्यता की खातिर इसके बाद एक 'हाँ' कर दिया। चन्दन ने समझा, मैंने खूब समझाया। कनक ने दिल मे कहा, तुम कुछ नही समझे।

चन्दन की इच्छा न रहने पर भी कनक ने उसे जलपान कराया, और फिर यह जानकर कि वह राजकुमार के यहाँ जा रहा है, उससे आग्रह किया कि वह और राजकुमार आज शाम चार बजे उसके यहाँ आ जायँ, और वही भोजन करे।

चन्दन ने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। उतरकर अपनी मोटर पर राजकुमार के यहाँ चला।

राजकुमार ने नया मकान बदला था, इसका ज्ञान तो चन्दन को था, पर कहाँ है, नही जानता था, अतः दो-एक जगह पूछकर, रुक-रुककर जाना पडा। राजकुमार अपने किताबी कार्य से निवृत्त हो, चाय मँगवाकर आराम स पी रहा था।

चन्दन पहले सीधे मकान के मैनेजर के पास गया, पूछा, "10 न कमरे का कितना किराया बाकी है?"

मैनेजर ने आगन्तुक को देखे बिना अपना खाता खोलकर बतलाया, "चालीस रुपये। दो महीने का है। आपको तो मालूम होगा।"

चन्दन ने बिलकुल सज्ञान की तरह कहा, "हाँ मालूम था, पर मैंने कहा, एक

दफा जाँच कर लूं। अच्छा, यह लीजिए।"

चन्दन ने दस-दस रुपये के चार नोट दे दिये।

"अच्छा आप बता सकते हैं, आज मेरे बारे मे किसी ने यहाँ कोई पूछताछ की थी ?" चन्दन ने गौर से मैनेजर को देखते हुए पूछा।

"हाँ, एक आदमी आया था। उसने पूछताछ की थी, पर इस तरह अक्सर लोग आया करते हैं, पूछ-पछोरकर चले जाते है।" मैनेजर ने कुछ विरक्ति से कहा।

'हाँ, कोई गैर-जिम्मेदार आदमी होंगे। कुछ काम नही, तो दूसरो की जाँच-पडताल करते फिरे।" व्यग्य के स्वर मे कहकर चन्दन वहाँ से चल दिया।

मैनेजर को चन्दन का कहना अच्छा न लगा। जब उसने निगाह उठायी, तब तक चन्दन मुँह फेर चुका था।

राजकुमार के कमरे मे जाकर चन्दन ने देखा, वह अखबार उलट रहा था। पास बैठ गया।

"तुम्हारा न्यौता है। रक्खो अखबार।"

"कहाँ ?"

"तुम्हारी बीवी के यहाँ।"

"मैं घर जाना चाहता हूँ। अम्मा ने बुलाया है। कालेज खुलने तक लौटूंगा।"

"तो कल चले जाना, न्यौता तो आज है।"

"गाडी तो लाये होगे ?"

"हाँ।"

"अरे रमजान !" राजकुमार ने नौकर को बुलाया। नाम उसका रामजियावन था, पर राजकुमार ने छोटा कर लिया था।

रामजियावन सामान उठाकर मोटर पर रखने लगा।

"कमरे की कुजी मुझे दे दो।" चन्दन ने कहा।

राजकुमार ने कारण न पूछा, कुजी दे दी, कहा, "मैं कल चला जाऊँगा। लौटकर दूसरी कुजी बनवा लूँगा। न्यौते मे तुम तो होगे ही ?"

"जहाँ भी मुफ्त माल मिलता हो, वहाँ मेरी बेरहमी तुम जानते हो।"

"तुमने मुफ्त माल के लिए काफी गुजायश कर ली। आसामी मालदार है।"

"दादा, किस्मत तो तुम्हारी है, जिसे रास्ता चलते जान व माल दोनो मिलते है। यहाँ तो ईश्वर ने दिखलावे के लिए बडे घर मे पैदा किया है, लेकिन रहने के लिए दूसरा ही बडा घर चुना है। रामबान कूटते-कूटते ही जान जायगी अब ! कपाल क्या, मशाल जल रही है !" चन्दन ने राजकुमार को देखते हुए कहा।

नौकर ने आकर कहा, "जल्दी जाइये, सामान रख दिया है बाबूजी !"

राजकुमार और चन्दन भवानीपुर चले। राह मे चन्दन ने उसे कनक के यहाँ छोड जाने के लिए पूछा, पर उसने पहले घर चलकर अम्मा और बडे भैया को प्रणाम करने की इच्छा प्रकट की। चन्दन गाडी ड्राइव कर रहा था। सीधे भवानीपुर चला।

राजकुमार को देखकर चन्दन की माता और बडे भाई नन्दन बडे खुश हुए।

बहू ने घर पहुँचते ही पति से राजकुमार के नये ढग के विवाह की कथा कही, अपनी सरलता से रग चढा-चढाकर खूब चमका दिया था। नन्दन की वैसी स्थिति मे राजकुमार से पूरी सहानुभूति थी। तारा ने अपनी सास से इसकी चर्चा नही की। नन्दन ने भी मना कर दिया था। तारा को कुछ अधिक स्वतन्त्रता देने के विचार से नन्दन ने उसके आते ही खोदकर माता के काशी-वास की कथा उठा दी थी। अब तक इसी पर बहस हो रही थी—उन्हे कौन काशी छोडने जायेगा, वहाँ कितना मासिक खर्च सम्भव है, एक नौकर और एक ब्राह्मण से काम चल जायगा या नही, आदि-आदि। इसी समय राजकुमार और चन्दन वहाँ पहुँचे।

राजकुमार ने मित्र की माता की चरण-धूलि सिर से लगा ली, बडे भाई को हाथ जोडकर प्रणाम किया। नन्दन ने अँगरेजी मे कहा, "तुम्हारी भाभी से तुम्हारे विचित्र विवाह की बात सुनकर हमे बडी प्रसन्नता हुई।"

राजकुमार ने नजर झुका ली। अँगरेजी का मर्म शायद काशी-वास की कथा हो, जो अभी चल रही थी, यह समझकर चन्दन की मा ने कहा, "देखो न भैया, न-जाने कब जीव निकल जाय, करारे का रूख, कौन ठिकाना, चाहे जब भहरायके बैठ जाय, यही से अब जितनी जल्दी बाबा बिस्वनाथजी की पैरपोसी मा हाजिर ह्वै सकी, वतनै अच्छा है।"

"हाँ अम्मा, विचार तो बडा अच्छा है।" राजकुमार ने ज़रा स्वर ऊँचा करके कहा।

"लै जाय की फुर्सत नाही ना कोहू का! यह छिबुलका पैदा होय के साथै आफत बरपा करै लगा।" चन्दन की तरफ देखकर माता ने कहा, "यहिके साथ को जाय!"

"अम्मा, मैं कल घर जाऊँगा, अम्मा ने बुलाया है। आप चलें, तो आपको काशी छोड दूं।" राजकुमार ने कहा।

वृद्धा गद्‌गद हो गयी। राजकुमार को आशीर्वाद दिया। नन्दन मे कल ही सब इन्तजाम कर देने के लिए कहा।

"तो तुम लौटोगे कब?" तारा ने राजकुमार की ओर व्यग्रता से देखते हुए पूछा।

"चार-पाँच रोज मे लौट आऊँगा।"

भोजन तैयार था। तारा ने राजकुमार और चन्दन से नहाने के लिए कहा। महरी दोनो की धोतियाँ गुसलखाने मे रख आयी। राजकुमार और चन्दन नहाने चले गये।

भोजन कर दोनो मित्र आराम कर रहे थे। तारा आयी। राजकुमार से कहा, "रज्जू बाबू! अम्मा को मिलने के लिए पडोसियो के यहाँ भेज दूंगी, अगर कल तुम उन्हे लिये जाते हो। आज शाम को उसे यहाँ ले आओ।"

"अच्छी बात है।" राजकुमार ने शान्ति से कहा। चन्दन ने उसके पेट मे उँगली कोची। राजकुमार हँस पडा।

"बनते क्यो हो?" चन्दन ने कहा, "मुझे बडा गुस्सा लगता है, जब मियाँ बन-कर लोग गाल फुलाने लगते है। वाहियात! दूसरो को जताते है कि मेरे बीवी है। बीवी कही पढी-लिखी हुई, तब तो उन्हे बीवी के बोलते हुए विज्ञापन समझो, मियाँ

लोग दुनिया के सबसे बडे जोकर है ।"

तारा खडी हँस रही थी, "आपके भाई साहब ?"

"वह सब साहब पर एक ही ट्रेडमार्क है ।"

"अच्छा-अच्छा, अब आपकी भी जल्द खबर ली जायगी ।" तारा ने हँसते हुए कहा ।

"मुझको कोई पूछता है, तुम ब्याहे हो, या गैर-ब्याहे, तो मैं अपने को ब्याहा हुआ बतलाता हूँ ।" चन्दन ने राजकुमार को फाँसकर अकडते हुए कहा, "बदन बहुत टूट रहा है ।"

"सोओगे, तो ठीक हो जायेगा । ब्याह हुआ किस तरह बतलाते हो ?" राजकुमार ने पूछा ।

"किसी ने कहा है, मेरी शादी कानून से हुई है, किसी ने कहा है, मैं कविता-कुमारी का भर्तार हूँ, किसी ने कहा है, मेरी प्यारी बीबी चिकित्सा है, मैं कहता हूँ, मेरी हृदयेश्वरी, इस जीवन की एकमात्र सगिनी, इस चन्दनसिंह की सिंहिनी सरकार है ।"

तारा मुस्किराकर रह गयी । राजकुमार चुपचाप सोचने लगा ।

महरी पान दे गयी । तारा ने सबको पान दिया । पाँच बजे ले आने के लिए एक बार फिर याद दिला भीतर चली गयी । दोनो पडे रहे ।

तेईस

चार का समय हुआ । चन्दन उठ बठा । राजकुमार को उठाया । दोनो ने हाथ-मुँह धोकर कुछ जलपान किया । चन्दन ने चलने के लिए कहा । राजकुमार तैयार हो गया ।

तारा ने सास को कल जाने की बात वाक्-छल से याद दिला दी । पडोस की वृद्धाओ का जिक्र करते हुए पूछा, वह कैसी हैं, उनका लडका विलायत से लौटने-वाला था, लौटा या नही, उनके पोते की शादी होनेवाली थी, किसी कारण से रुक गयी थी, वह शादी होगी या नही, आदि-आदि । वृद्धा को स्वभावतः सबसे मिलने की इच्छा हुई । जल्द जाने के विचार मे तारा के प्रश्नो के बहुत सक्षिप्त उत्तर दिये । चलने लगी, तो तारा को अपनी जरूरत की चीजें बतलाकर कह दिया कि सब सँभालकर इकट्ठी कर रक्खे । तारा ने बडी तत्परता से उत्तर दिया कि वह निश्चिन्त रहे । तारा जानती थी, यह सब दस मिनट का काम है, चलते समय भी कर दिया जा सकता है ।

तारा की सास मोटर पर गयी । राजकुमार और चन्दन ट्राम पर चले । राजकुमार भीतर-ही-भीतर अपने जीवन के उस स्वप्न को देख रहा था, जो किरणो मे

कनक को खोलकर उसके हृदय की काव्य-जन्य रूप-तृष्णा तृप्त कर रहा था। बाहर तथा भीतर वह सब सिद्धियो के द्वार पर चक्कर लगा चुका था। बाहर अनेक प्रकार से सुन्दरी स्त्रियो के चित्र देखे थे, पर भीतर ध्यान-नेत्रो से न देख सकने के कारण जब कभी उसने काव्य-रचना की, उसके दिल मे एक असम्पूर्णता हमेशा खटकती रही। उसके सतत प्रयत्न इस त्रुटि को दूर नही कर सके।

अब, वह देखता है, आप-ही-आप, अशब्द ऋतु-वर्तन की तरह, जीवन का एक चक्र उसे प्रवर्तित कर परिपूर्ण चित्रकारिता के रहस्य-द्वार पर ला खडा कर गया है। दिल मे आप-ही-आप निश्चय हुआ, सुन्दरी स्त्री को अब तक मैं दूर से प्यार करता था, केवल इन्द्रियाँ देकर, आत्मा अलग रहती थी, इसलिए सिर्फ उसके एक-एक अग-प्रत्यग लिखने के समय आते थे, परिपूर्ण मूर्ति नही, पूर्ण प्राप्ति पूर्ण दाव चाहती है, मैंने परिपूर्ण पुरुष-देह देकर सम्पूर्ण स्त्री-मूर्ति प्राप्त की, आत्मा और प्राणो से सयुक्त, साँस लेती हुई, पलकें मारती हुई, रस से ओत-प्रोत, चचल, स्नेहमयी। तत्त्व के मिलने पर जिस तरह सन्तोष होता है, राजकुमार को वैसी ही तृप्ति हुई।

राजकुमार जितनी भीतर की उधेड-बुन मे था, चन्दन उतनी ही बाहर की छानबीन मे। चौरगी की रगीन परकटी परियो को देख जिस नेम से उसके विचार के रथ-चक्र बराबर चक्कर लगाया करते थे, उसी से देश की दुर्दशा, भारतीयो का अर्थ-सकट, सम्पत्ति-वृद्धि के उपाय, अनेकता मे एकता का मूल सूत्र आदि-आदि सद्विप्रो की अनेक उक्तियो की एक राह से वह गुजर रहा था। इसी से उसे अनेक चित्र, अनेक भाव, अपार सौन्दर्य मिल रहा था। ससार की तमाम जातियाँ उसके एक तागे से बँधी हुई थी, जिन्हे इगित पर नाचते रहनेवाला वही सूत्रधार था।

"उतरो जी।" राजकुमार की बाँह पकडकर चन्दन ने उसे झकझोर दिया।

तब तक राजकुमार कल्पना के मार्ग से बहुत दूर गुजर चुका था, जहाँ वह और कनक आकाश और पृथ्वी की तरह मिल रहे थे, जैसे दूर आकाश पृथ्वी को हृदय से लगा, हृदय-बल से उठाता हुआ, हमेशा उसे अपनी ही तरह सीमा-शून्य, अशून्य कर देने के लिए प्रयत्न-तत्पर हो, और यही जैसे सृष्टि की सर्वोत्तम कविता हो रही हो।

राजकुमार सजग हो धीरे-धीरे उतरने लगा। तब तक श्याम-बाजारवाली ट्राम आ गयी। खीचते हुए चन्दन ने कहा, "गृहस्थी की फिर चिन्ता करना, चोट खाकर कही गिर जाओगे।"

दोनो श्याम-बाजारवाली ट्राम पर बैठ गये। बहू-बाजार के चौराहे के पास ट्राम पहुँची, तो उतरकर कनक के मकान की तरफ चले। चन्दन ने देखा, कनक तिमजिले पर खडी दूसरी तरफ—चितरजन एवेन्यू की तरफ देख रही है।

राजकुमार को बडी खुशी हुई। वह मर्म समझ गया। चन्दन से कहा, "बतला सकते हो, आप उस तरफ क्यो देख रही है ?"

"अजी, ये सब इन्तजारी के नजारे, प्रेम के मजे है। तुम मुझे क्या समझाओगे ?"

"मजे तो हैं, पर ठीक वजह यह नही। बहू को मैं इसी तरफ से लेकर गया था।"

"अच्छा! लडाई के बाद ?"

राजकुमार ने हँसकर कहा, "हाँ।"

"अच्छा, तो इन्होने सोचा, मियाँ इसी राह मसजिद दौडते हैं।"

दोनो कनक के मकान पर आ गये। नौकर से पहले ही कनक ने कह रक्खा था कि दीदी के यहाँ के लोग आवें, तो वह विना खबर दिये ही उसके पास ले आयेगा।

नौकर दोनो को कनक के पास ले गया। कनक राजकुमार को ज़रा-सा सिर झुका, हँसकर चन्दन से मिली। हाथ पकडकर गद्दी पर वैठाया।

चन्दन वैठते हुए कहता गया, "पहले अपने अपने उनको उठाओ-वैठाओ, मैं तो यहाँ उन्ही के सिलसिले से हूँ।"

"उनका तमाम मकान है, जहाँ चाहे, उठें-वैठें।" कनक होठ काटकर मुस्किराती जाती थी।

तत्काल चन्दन ने कहा, "उनका तमाम मकान है, और मेरा ?"

"तुम्हारा ? तुम्हारी मैं और यह।"

राजकुमार भी चन्दन के पास वैठ गया।

चन्दन झेप गया था। कनक भी उसी गद्दी पर वैठ गयी। चन्दन ने कहा, "तुम मुझसे वडी हो, पर मुझे आप-आप कहते वडा बुरा लगता है। मैं तुम्हारे इन्ही को आप नही कहता! तुम्ही चुन दो तुम्हे क्या कहूँ ?"

"तुम्हारी जो इच्छा!" कनक स्नेह मे हँस रही थी।

"मैं तुम्हे जी कहूँगा।"

"तुमने जीजी का एक वटे दो कर दिया। एक हिस्सा मुझे मिला, एक किसके लिए रक्खा ?"

"वह इनके लिए है। क्यो जी, इस तरह 'जीजी' यन्नव्येति तदव्ययम् कही जायगी, या कहा जायगा ?"

राजकुमार कुछ न वोला। कनक ने वगल से उठाकर घण्टी बजायी। नौकर के आने पर पखावज और वीणा बढा देने के लिए कहा।

खुश होकर चन्दन ने कहा, "हाँ जी—तुम्हारा गाना तो अवश्य सुनूंगा।"

"पखावज लीजिए।"

"गाना लौटकर हो, तो अच्छा होगा। अभी बहू के पास जाना है।" राजकुमार ने साधारण गम्भीरता से कहा।

"हाँ-हाँ, भूल गया था। भाभी ने तुम्हे बुलाया है।" चन्दन ने कनक से कहा।

कनक ने वीणा रख दी। गाडी तैयार करने के लिए कहा। इनकी प्रतीक्षा मे कपडे पहले ही वदल चुकी थी। उठकर खडी हो गयी। जूते पहने। आगे-आगे उतरने लगी। पति का अदब-कायदा सब भूल गया। वीच मे राजकुमार था, पीछे चन्दन। चन्दन मुस्किरा रहा था। मन-ही-मन कह उठा, इस आकाश के

पक्षी को पिंजड़े मे 'राम-राम' रटाना समाज की वेवकूफी है। इसका तो इसी रूप मे सौन्दर्य है।

गाडी तैयार थी। आगे ड्राइवर और अर्दली वैठे थे, पीछे दाहनी ओर राजकुमार, वायीं ओर चन्दन, वीच मे कनक वैठ गयी।

गाडी भवानीपुर चली।

कुछ सोचते हुए चन्दन ने कहा, "जी, मुझे एक हजार रुपये दो। मैने हरदोई-जिले मे, देहान मे, एक राष्ट्रीय विद्यालय खोला है, उसकी मदद के लिए।"

"आज तुम्हे अम्मा से चेक दिला दूँगी।" कनक ने विना कुछ सोचे, सहज स्वर मे कहा।

"नही, मुझे चेक देने की जरूरत नही। मै तुम्हे वता दूँगा, उसी पते पर अपने नाम से भेज देना।" कुछ सोचते हुए चन्दन कह उठा।

"तुम भीख मांगने मे वडे निपुण देख पडते हो।" राजकुमार कह उठा।

"तुम जी को उपहार नही दोगे ?" चन्दन ने पूछा।

"क्यो, वक्तृता के प्रभाव से वेचवाने का इरादा है।"

"नही, पहले जव उपन्यासो की चाट थी, कॉलेज-जीवन मे देखता था, प्यार के उवाल मे उपहार ही ईंधन का काम करते थे।"

"पर यह तो दैवी सयोग है।" राजकुमार ने मुस्किराकर कहा।

वातो-ही-वातो मे रास्ता पार हो गया। गेट के सामने गाडी पहुँची। तारा प्रतीक्षा कर रही थी। नीचे उतर आयी। वडे स्नेह से कनक को ऊपर ले गयी। राजकुमार और चन्दन पीछे-पीछे चले।

तारा ने पहले ही से कनक की पेशवाज निकाल रक्खी थी। दियासलाई और पेशवाज लेकर सीधे छत पर चढने लगी। ये लोग भी पीछे-पीछे जा रहे थे।

पेशवाज छत पर रखकर, दियासलाई जला, आग लगा दी।

कनक गम्भीर हो रही थी। निष्पन्द पलके, अन्तर्दृष्टि।

तारा ने कहा, "प्रतिज्ञा करो, आज से यह काम कभी नही करूँगी।"

"कभी नही करूँगी।" कनक ने कहा।

"कहो, सुवह नहाकर रोज शिव-पूजन करूँगी।"

"सुवह नहाकर रोज शिव-पूजन करूँगी।"

उस समय की कनक को देखकर चन्दन तथा राजकुमार के हृदय मे मर्यादा के भाव जाग रहे थे।

तारा ने कनक को गले लगा लिया। कहा, "अपनी मा से दूसरी जगह रहने के लिए कहो। मकान मे यज्ञ कराओ। एक दिन गरीवो को भोजन दो। मकान मे एक छोटा-सा शिव-मन्दिर वनवा लो। जव तक मन्दिर नही वनता, तव तक किसी कमरे मे, अलग, जहाँ लोगो की आमद-रफ्त ज्यादा न हो, पूजा-स्थान कर लो। आज आदमी भेजकर एक शिव-मूर्ति मैंने मँगा ली है। चलो, लेती जाओ।"

"भाभी!" चन्दन ने रोककर कहा, "यह सव सोना, जो मिट्टी मे पडा है, कहो तो मैं ले लूँ।"

राजकुमार हँसा।

"ले लीजिए।" कहकर, तारा, कनक को साथ ले, नीचे उतरने लगी। वह चन्दन को पहचानती थी। राजकुमार खडा देखता रहा। चन्दन गग्न फूंककर सोने के दाने इकट्ठे कर रहा था। एकत्र कर तअज्जुब की निगाह मे देखता रहा। सोना दो सेर से ज्यादा था।

"ईश्वर करे, एक पेशवाज रोज ऐसी जले, और सोना गरीबो को दिया जाय।" कहकर, अपनी धोती के छोर मे बाँधकर चन्दन अपने कमरे की तरफ उतर गया। राजकुमार वहू के पास रह गया।

चन्दन के वडे भाई भी आ गये थे, कही वाहर गये हुए थे। तारा मे उन्होने वहू देखने की इच्छा जाहिर की थी। तारा ने कह दिया था कि कुछ नजर करनी होगी। शायद इसी विचार मे वाजार की तरफ गये थे। नीचे बैठे प्रतीक्षा कर रहे थे, कव बुलावा आये। वहू ने दरबान मे रोक रखने के लिए कह दिया था।

तारा ने अपनी खरीदी हुई एक लाल रेशमी साडी कनक को पहना दी। सुबह की पूजा का पुष्प चढाया हुआ रखा था, सिर से छुला, चलते समय अपने हाथो गगा मे छोडने का उपदेश दे, सामने के आँचल मे बाँध दिया, जिसकी मद्दी गाँठ चाँद के कलक की तरह कनक को और सुन्दर कर रही थी। इसके वाद नया सिन्दूर निकाल, मन-ही-मन गौरी को अर्पित कर, कनक की माँग अच्छी तरह भर दी। राजकुमार मे कहा, "जाओ, अपने भाई को वुला लाओ, वह देखेंगे।" कनक का घूँघट काढ दिया। फर्श पर बैठा, दरवाजा वन्द कर, दरवाजे के पास खडी रही।

नन्दन ने भेट करने की वडी-वडी कल्पनाएँ की, पर कुछ सूझा नही। तारा से उन्हे मालूम हो चुका था, कनक ऐश्वर्यवती है। इसलिए हजार-पाँच सौ की भेंट से उन्हे सन्तोप नही हो रहा था। कोई नयी चीज सूझ नही रही थी। तभी उनके सामने से एक आदमी चर्खा लेकर गुज़रा। कलकत्ते मे कही कही जनेऊ के शुद्ध सूत निकालने के अभिप्राय से वनते और विकते थे। स्वदेशी-आन्दोलन के समय कुछ प्रचार स्वदेशी वस्त्रो का भी हुआ था, तव मे और भी वनने लगे थे। छाँटकर एक अच्छा चर्खा उन्होने खरीद लिया। इसके साथ उन्हे शान्तिपुर और वगाल-कैमिकल की याद आयी। एक शान्तिपुरी कीमती साडी और कुछ वगाल-कैमिकल के तेल फुलेल, सेण्ट-पाउण्डर आदि खरीद लिये, पर ये सव वहुत साधारण कीमत पर मिल गये थे। उन्हे सन्तोप नही हुआ। वह जवाहरात की दुकान पर गये। वडी देख-भाल के वाद एक अँगूठी उन्हे वहुत पसन्द आयी—हीरे-जडी। कीमत हजार रुपये। खरीद ली। उसमे खूबी यह थी कि 'सती' शब्द पर, नग की जगह, हीरक-चूर्ण जडे थे, जिनमे अक्षर जगमगा रहे थे।

राजकुमार से खवर पा, भेंटकी चीजे लेकर नन्दनसिंह वहू को देखने ऊपर चले। तारा कमरे के दरवाजे पर खडी थी। एक वार कनक को देखकर दरवाजा खोल दिया। नन्दन ने भेंट का सामान तारा के सामने टेविल पर रख दिया। फिर अँगूठी पहना देने के लिए दी। अँगूठी के अक्षर पढकर प्रसन्न हो, तारा ने कनक को पहना दी, और कहा, "वह तुम्हारे जेठ तुम्हारा मुँह देखेंगे।"

राजकुमार नीचे चन्दन के पास उतर गया। तारा ने कनक का मुँह खोल

दिया। जिस रूप मे उसने वहू को सजा रक्खा था, उसे देखकर नन्दन की तवीयत भर गयी। प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया, "अखण्ड सौभाग्यवती रहो!"

कनक अचचल पलके झुकाये बैठी रही।

"हमारी एक साध बहू और तुम्हे पूरी करनी है। एक भजन गाकर सुना दो। याद हो, तो गुसाईंजी का।" नन्दन ने कहा।

तारा ने कनक की ओर निहारा। उसने सिर हिलाकर सम्मति दी। तारा ने कहा, "उस कमरे मे बैठकर सुनियेगा, और ज़रा छोटे साहव को वुला दीजिए।"

राजकुमार और चन्दन तव तक स्वय ऊपर आ गये। तारा चन्दन से तवला वजाने का प्रस्ताव कर मुस्किरायी। चन्दन राजी हो गया। कमरे मे एक बॉक्स-हारमोनियम था। चन्दन तवलो की जोडी ले आया। राजकुमार वाहर कर दिया गया। भीतर तारा, कनक और चन्दन रहे।

स्वर मिलाकर कनक गाने लगी—

श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन हरन भव-भय दारुनम्;
नव-कज लोचन, कज मुख, कर कज, पद कजारुनम्।
कन्दर्प-अगनित-अमित छवि नव-नील-नीरज सुन्दरम्,
पट पीत मानहु तडित रुचि सुचि नौमि जनकसुतावरम्।

एक-एक शब्द से कनक अपने शुद्ध हुए हृदय से भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को अर्घ्य दे रही थी। चन्दन गम्भीर हो रहा था, तारा और नन्दन रो रहे थे।

नन्दन ने राजकुमार को अप्सरा-विवाह के लिए हार्दिक धन्यवाद दिया। कनक के रुपहले तार-से चमचमाते हुए भावनसुदर बेफॉस स्वर की वडी तारीफ की।

तारा ने चन्दन की ठेकेवाजी पर चुटकियाँ कसी। कनक का श्रमित, शान्त मुख चूमकर, उसे परी-वहू श्रुति-सुखद शब्द सुना कुछ उभाड दिया।

नन्दन ने छोटे भाई से कहा, "अब तुम्हारे लखनऊ जाने की जरूरत न होगी। वकील की चिट्ठी आयी है, पुलिस ने लिखा-पढी करके तुम्हारा नाम निकाल दिया।"

चन्दन ने भौं सिकोडकर सुन लिया।

चन्दन और राजकुमार वातचीत करते हुए नीचे उतर गये। नन्दन राजकुमार को कुछ उपदेश दे रहे थे।

तारा ने चन्दन से वहू के पुष्प-विसर्जनोत्सव पर गगाजी चलने के लिए कहा। कार्य अन्त तक अपने ही सामने करा देना उसे पसन्द आया। कनक के मोजे उतरवा दिये, और देव-कार्य के समय सदा नगे पैर रहने का उपदेश भी दिया।

गगा मे कनक के आँचल का फूल छुडवा, कालीजी के दर्शन करवा जब वह लौटी, तव आठ वज रहे थे। कनक ने चलने की आज्ञा माँगी। विदा हो, प्रणाम कर चन्दन और राजकुमार के साथ घर लौटी।

चौबीस

सर्वेश्वरी वडी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही थी। उसने निश्चय कर लिया था, अब इस मकान मे उसका रहना ठीक नही। जिन्दगी मे उपार्जन उसने वहुत किया था। अव उसकी चित्तवृत्ति वदल रही थी। कलकत्ता रहना सिर्फ उपार्जन के लिए था। अब वह भी अपने हिन्दू-विचारो के अनुसार जीवन के अन्तिम दिवस काशी ही रहकर बाबा विश्वनाथ के चरणो मे पार करना चाहती थी। बैंको मे चार लाख से कुछ अधिक रुपये उसने जमा कर रक्खे है। यह सव कनक की सम्पत्ति है। राजकुमार को दहेज के रूप मे देने के लिए कुछ रुपये उसने आज निकाले है। बैठी हुई इसी सम्बन्ध मे सोच रही थी कि कनक की गाडी पहुँची।

कनक राजकुमार और चन्दन को लेकर पहले माता के कमरे मे गयी, और दोनो को वही छोडकर ऊपर अपने कमरे मे चली गयी। कनक को माता के विचार मालूम थे।

सर्वेश्वरी ने वडे आदर से उठकर राजकुमार और चन्दन को एक-एक सोफे पर बैठाया। गद्दी छोडकर खुद फर्श पर बैठी, अपने भविष्य के विचार दोनो के सामने प्रकट करने के लिए।

कनक भोजन पका रही थी। जो कार्य उसका अधूरा रह गया था, आज चन्दन के आने के कारण दूने उत्साह से पूरा कर रही थी। इन्तजाम इनके आने से पहले ही कर रक्खा था। मदद करनेवाले नौकर थे ही। घण्टे-भर से ज्यादा देर नही लगी। एक साथ कई चूल्हे जलवा दिये थे।

सर्वेश्वरी ने कहा, "पहले मेरा विचार था, कुँवर साहव पर मुकद्दमा चलाऊँ, कुछ रोज कनक को गायव करके, पर कनक की राय नही पडी, इसलिए वह विचार त्याग देना पडा। वह कहती है, (राजकुमार की तरफ इगित कर) आपकी बदनामी होगी।"

"इस समय सहन करने की शक्ति वढाना ज्यादा ही अच्छा है।" चन्दन ने कहा, अन्य अनेक वाते लुप्त रखकर, जिससे उसके शब्दो का प्रभाव वढ रहा था।

"मैं अव काशी रहना चाहती हूँ, यह मकान भैया के लिए रहेगा।"

"यह तो अच्छा विचार है।" चन्दन ने कहा, "भैया तो कल ही वनारस जा रहे है, लेकिन शायद आपको न ले जा सकें, मेरी मा साथ जा रही हैं। अन्त-समय काशी रहना धर्म और स्वास्थ्य, दोनो के लिए हितकर है।"

चन्दन की चुटकियो से सर्वेश्वरी खुश हो रही थी, उसके दिल को ताडकर। कुछ देर तक कनक की नादानी, उसके अपराधो की क्षमा, अव राजकुमार के सिवा उसके लिए दूसरा अवलम्ब नही, मनोरजन के लिए और विषय नही रहा, उसका सर्वस्व राजकुमार का है, आदि-आदि बाते सर्वेश्वरी अपने को पतित सास समझ, उतनी ही दूर रहकर, उतनी ही अधिक सहानुभूति और स्नेह से कहती रही।

चन्दन भी पूरे उदात्त स्वरो से राजकुमार की विद्या-वुद्धि, सच्चरित्रता और सवसे बढकर उसकी कनक-निष्ठा की तारीफ करता रहा, और समझाता रहा कि

कनक-जैसी सोने की जजीर को राजकुमार के देवता भी कभी नही तोड सकते। और, चन्दन के घरवाले, उसके भाई और भाभी, इस सम्बन्ध को पूरी सहानुभूति से स्वीकार करते हैं।

चन्दन ने कुल मकान नही देखा था, देखने की इच्छा प्रकट की। सर्वेश्वरी खुद चलकर दिखाने लगी। मकान की सुन्दरता चन्दन को बहुत पसन्द आयी। तिमजिले पर कनक को भोजन पकाते हुए देखा। तब तक भोजन तैयार हो चुका था। राजकुमार उसके पढनेवाले कमरे मे रह गया था। मकान देखकर चन्दन भी वही लौट आया। सर्वेश्वरी अपने कमरे मे चली गयी।

कनक अपने कमरे मे थालियाँ लगाकर दोनो को बुलाने के लिए नीचे उतरी। देखा, दोनो बैठे एक-एक किताब पढ रहे है।

कनक ने पुकारा। किताब से आँख उठा बडी इज्जत की दृष्टि से चन्दन ने उसे देखा। उठकर खडा हो गया। राजकुमार भी उसके पीछे चला।

हाथ-मुँह धोकर दोनो बैठ गये। कनक ने कहा, "छोटे साहब, उस रोज यही से तकरार शुरू हुई थी।"

"तुम दोनो की बेवकूफी थी।" चन्दन ने ग्रास निगलकर कहा, "और यज्ञ, यह नरमेध—यक्ष, बिना मेरे पूरा किस तरह होता ?"

कनक ने सर्वेश्वरी को बुला भेजा था। सर्वेश्वरी और उसके नौकर तोडा लिये कमरे मे आये। दोनो के पास पाँच-पाँच तोडे रखवाकर सर्वेश्वरी ने हाथ जोडकर प्रणाम किया। चन्दन गौर से तोडो को देखता रहा। समझ गया, इसलिए कुछ कहा नही।

कनक ने कहा, "अम्मा, छोटे साहब को एक हजार रुपये और चाहिए। मुझे चेक दे दीजिएगा।"

सर्वेश्वरी सुनकर चली गयी। सोचा, शायद छोटे साहब इज्जत मे बडे साहब है।

राजकुमार ने कहा, "पेट तो अभी क्यो भरा होगा ?"

"पॉकेट कहो। साहित्यिक हो, वैल !" उठते हुए चन्दन ने कहा। राजकुमार झेंपकर उठा। कनक ने दोनो के हाथ धुलाये, तौलिया दिया, हाथ पोछ चुकने पर पान।

अब तक दस का समय था। चन्दन ने कहा, "ये रुपये, जो मेरे हक आये है, रखवा दो, जरूरत पडने पर ले लूँगा।"

राजकुमार ने कहा, "मैंने अपने रुपये भी तुम्हे दिये।"

"तो इन्हे भी रक्खो जी। कितने हैं सब ?"

कनक ने धीमे स्वर से कहा, "दस हजार।"

"अच्छा, हजार-हजार के तोडे है। सुनो, अब मैं जाता हूँ।" फिर राजकुमार की ओर एक शरारत-भरी दृष्टि डालकर कहा, "आज तो तुम अपनी तरफ से यहाँ रहना चाहते होगे ?"

कनक लजाकर कमरे से निकल गयी। राजकुमार ने कहा, "नही, तुम्हारे साथ चलता हूँ।"

"अब आज मेरी प्रार्थना मंजूर करके रह जाओ, क्योंकि कल तुममें बहुत बातें सुनने को मिलेंगी।"

"तो कल स्टेशन पर या भवानीपुर में मिलना। मैं सुबह चला जाऊँगा।"

"अच्छी बात है, जी। सलाम।" चन्दन उतरने लगा। कनक ने पकड़ लिया, "तुम भी यहीं रह जाओ न।"

"कई काम हैं। तुम्हारे पैर पड़ूँ, छोड़ दो।"

"अच्छा, चलो, मैं तुम्हें छोड़ आऊँ।"

गाड़ी मँगवायी। चन्दन के साथ ही कनक भी बैठ गयी। चोरबागान चलने के लिए चन्दन ने कहा।

इस समय चन्दन भविष्य के किसी सत्य चित्र को स्पष्ट कर रहा था। एक तूफान-सा उलटनेवाला था।

गाड़ी चोरबागान पहुँची। राजकुमार के मकान के सामने रुकवा चन्दन उतर पड़ा। कहा, "अपने पतिदेव का कमरा देखना चाहती हो, तो आओ, तुम्हें दिखला दूँ।"

कनक उतर पड़ी। भीतर जा, राजकुमार का कमरा खोलकर चन्दन ने बटन दबाया, बत्ती जल गयी।

कनक ने देखा, सारा सामान विशृंखल था।

चन्दन ने कहा, "यह देखो, जली सिगरेटों के ढेर। यह देखो, कैसी साफ किताबें है, जिल्दों का पता नही। वे उधरवाली मेरी हैं।"

राजकुमार के स्वभाव के अनुरूप ही उसका कमरा भी बन रहा था।

"इधर बहुत रोज से रहे नहीं न। लगता है, इसीलिए गन्दा पड़ा है।" कनक ने कहा।

"अब मुझे विश्वास हो गया, तुम्हारी-उनकी अच्छी निभेगी, क्योंकि उनके स्याह दाग तुम बड़ी खूबसूरती से धो दिया करोगी।"

"अच्छा, छोटे साहब, अब चलिए।"

"हाँ, चलो, वह प्रतीक्षा करते होंगे। बेचारे की आँखें कड़ुवा रही होंगी, आँखों को रोशनी मिले!"

हँसकर कनक ने चन्दन की एक किताब उठा ली।

चन्दन ने कनक को मोटर पर बैठाल दिया, और हरदोई का पता लिखकर दिया।

लौटकर लेटा, तब ग्यारह बजने पर थे। सोचता हुआ सो गया। आँख खुली बिलकुल तड़के, दरवाजे की भड़भड़ाहट से। दरवाजा खोला, तो मकान के मैनेजर और कई कांस्टेबिल खड़े थे।

चन्दन ने देखा, एक दारोगा भी है, सबसे पीछे। फ्रेंच-कट दाढ़ी मुलायम होने की सूचना दे रही थी।

"यही है ?" दारोगाजी ने मैनेजर से पूछा।

मैनेजर चकराया हुआ था।

चन्दन ने तुरन्त कहा, "कल जो चालीस रुपये मैंने दिये थे, अभी तक आपने

रसीद नही दी।"

"यही है।" मैनेजर ने तुरन्त कहा।

दारोगा आज्ञा-पत्र दिखलाकर तलाशी लेने लगे। किताबें सामने ही रक्खी थी। देखकर उछल पडे। उलटते हुए नाम भी उन्हे मिल गया, "राजकुमार।" दूसरा मजबूत मुकद्दमा सूझा। सब किताबे निकाल ली।

चन्दन शान्त खडा रहा। दारोगाजी ने इशारा किया। कान्स्टेबिलो ने हथकडी डाल दी। अपराधी को प्रमाण के साथ मोटर पर लेकर कॉलेज-स्ट्रीट से होकर दारोगाजी लालडिग्गी की तरफ चले।

प्रात काल था। मोटर कनक के मकानवाली सडक से जा रही थी। तिमजिले से टेबिल-हारमोनियम की आवाज आ रही थी। दूर से चन्दन को कनक का परिचित स्वर सुन पडा। नजदीक आने पर सुना, कनक गा रही थी—

"आज रजनि बडभागिनि लेख्यउँ पेख्येउँ पिय-मुख-चन्दा।"

पच्चीस

चार रोज बाद राजकुमार लौटा, तब कनक पूजा समाप्त कर निकल रही थी। दोनो एक साथ कमरे मे गये, तो नीचे अखबार-बालक आवाज लगा रहे थे, "राजकुमार वर्मा को एक साल की सख्त कैद।"

दोनो हँसकर एक साथ नीचे झाँकने लगे। नौकर ने कनक को अखबार लाकर दिया।

ooo

अलका

हार

जिस अलका' पर सावित्री की पूरी-पूरी छाया पडी है,
आर्य-सभ्यता से उत्कर्षोज्ज्वल मित्रवर श्री नन्ददुलारे
वाजपेयी एम्. ए. उसे उसी दृष्टि से देखे ।

वेदना

मेरे जिन प्रिय पाठको ने 'अप्सरा' को पढकर साहित्य के सिर बराबर वैसी ही बिजली गिराते रहने की मुझे अनुपम सलाह दी, या जिन्होने 'अप्सरा' को चुपचाप हृदय मे रखकर मेरी तरफ से आँखें फेर ली, अथवा जिन्हे 'अप्सरा' द्वारा पहले-पहल इस साहित्य के मुख पर मन्द-मन्द प्रणय-हास मिला, मुझे विश्वास है, वे 'अलका' को पाकर विरही यक्ष की तरह प्रसन्न होगे, और अण्डे तोडकर निकलने से पहले खडखडाते हुए जिन्होने मुझ पर आवाजें कसी, वे एक बार देखें, उनके सम्राटो द्वारा अनधिकृत साहित्य की स्वर्ग-भूमि मे मैंने कितने हीरे-मोती उन्हे दान मे दिये।

मुझे आशा है, हिन्दी के पाठक, साहित्यिक और आलोचक 'अलका' को अलको के अन्धकार मे न छिपाकर उसकी आँखो का प्रकाश देखेंगे कि हिन्दी के नवीन पथ से वह कितनी दूर तक परिचय कर सकी है।

घटनाओ मे सत्य होने के कारण स्थानो के नाम कही-कही नही दिये गये। मुझे इससे उपन्यास-तत्त्व की हानि नही दिखायी पडी।

—'निराला'

लखनऊ
1 6 33

एक

महासमर का अन्त हो गया है, भारत मे महाव्याधि फैली हुई है। एकाएक महासमर की जहरीली गैस ने भारत को घर के धुएँ की तरह घेर लिया है, चारो ओर त्राहि-त्राहि, हाय-हाय। विदेशो से, भिन्न प्रान्तो से, जितने यात्री रेल से रवाना हो रहे है, सब अपने घरवालो की अचानक बीमारी का हाल पाकर। युक्त-प्रान्त मे इसका और भी प्रकोप, गगा, यमुना, सरयू, वेतवा, बडी-बडी नदियो मे लाशो के मारे जल का प्रवाह रुक गया है। गगा का जल, जो कभी खराब नही हुआ, जिसके माहात्म्य मे कहा जाता था, दूसरा जल रख देने पर कीडे पड जाते है, पर गगा के जल मे यह कल्मष नही मिलता, वह भी पीने के बिलकुल अयोग्य बतलाया गया। परीक्षा कर डॉक्टरो ने कहा, एक सेर जल मे आठवाँ हिस्सा सडा मास और मेद है। गगा के दोनो ओर दो-दो और तीन-तीन कोस पर जो घाट है, उनमे एक-एक दिन मे, दो-दो हजार तक लाशे पहुँचती हैं। जलमय दोनो किनारे शवो मे ठसे हुए, बीच मे प्रवाह की बहुत ही क्षीण रेखा, घोर दुर्गन्ध, दोनो ओर एक-एक मील तक रहा नही जाता। जल-जन्तु, कुत्ते, गीध, स्यार लाश छूते तक नही। नदियो मे दूरवाले देशो मे लोगो ने कुओ मे लाशे डाल-डाल दी। मकान-के-मकान खाली हो गये। एक परिवार के दस आदमियो मे दसो के प्राण निकल गये। कही-कही घरो मे ही लाशे सडती रही। वैद्य और डॉक्टरो को रोग की पहचान भी न हुई। यह सब नृशस महामृत्यु-ताण्डव पन्द्रह दिनो के अन्दर हो गया। भारत के साठ लाख आदमी काम आये।

इसी समय सरकारी कर्मचारियो ने घोषणा की, सरकार ने जग फतह की है, आनन्द मनाओ, सब लोग अपने-अपने दरवाजो पर दिये जलाकर रक्खे। पति के शोक मे सद्य विधवा, पुत्र के शोक मे दीर्ण माता, भाई के दुःख मे मुरझायी बहन और पिता के प्रयाण से दुखी असहाय बाल-विधवाओ ने दूसरी विपत्ति की शका कर काँपते हुए शीर्ण हाथो मे दिये जला-जलाकर द्वार पर रक्खे, और घरो के भीतर दु ख से उभड उभडकर रोने लगी। पुलिस घूम-घूमकर देखने लगी कि किस घर मे शान्ति का चिह्न, रोशनी नही।

जब घर मे थी, शोभा के पिता का देहान्त हुआ, तो गाँव का कोई नही गया। सब अपनी रो रहे थे। उस समय जिलेदार महादेवप्रसाद ने मदद की। उसके पिता की लाश गाडी पर गगा ले गये। मन-ही-मन शोभा कृतज्ञ हो गयी—कितने अच्छे आदमी है यह—दूसरे का दु ख कितना देखते है!

इसके बाद उसकी माता बीमार पडी। तब उन्हे युवती कन्या की रक्षा के लिए चिन्ता हुई। यदि उनके भी प्राण निकल जायँ, तो शोभा का क्या होगा, यह विचार कर उन्होने विजय तथा ससुराल को पत्र लिखने के लिए शोभा से कहा। विजय शोभा का पति है। अभी तक उसने पति को पत्र नही लिखा। कभी चार आँखो की एक पहचान होने का अवसर नही मिला। वह कैसे है, वह नही जानती। फिर क्या लिखे ? बैठी सोचती रही कि दु ख-भरे स्नेह के कुछ कठोर स्वर मे कर्तव्य का ज्ञान दे बिस्तरे से माता ने फिर कहा। स्वर पर बजने के लिए उँगली की तरह उठकर शोभा कागज, कलम और दावात लेने चली। दु ख मे भी अज्ञात कोई हृदय के निर्मल, शुभ्र आकाश मे अपरिमित सुख, सौरभ भरने लगा, अज्ञात मुँदी हुई जैसे कोई कली इस आदेश-मात्र से खुल गयी, और अपना लेश-मात्र सौरभ अब नही रखना चाहती। दावात, कलम और कागज ले आ सरल चितवन निष्कलक पकजा ने माता से पूछा, क्या लिखूं अम्मा ? घर का सब हाल और ऐसी दशा मे तुम्हे ले जाना अत्यन्त आवश्यक है, लिख दो माता ने कहा। ससुराल को मेरे नाम लिख देना, आपकी समधिन कहती है, इस तरह।

किसे किस तरह पत्र लिखना चाहिए, इतना शोभा को मालूम था। चिट्ठी लिखने की किताब पढने से जैसे सस्कार बन गये थे, वैसे ही दाब के दबाव मे लिख गयी—"प्रिय", परन्तु फिर उस शब्द को मन-ही-मन हँसकर, न-जाने क्या सोच-कर, लजाकर काट दिया। फिर लिखा—"महाशय", पर शब्द जैसे एक सुई हो, कोमल हृदय को चुभने लगा। फिर बडी देर तक सोचती रही। कुछ निश्चय नही हो रहा था। एकाएक भीतर की सचित सम्पूर्ण श्रद्धा पत्र लिखने की पीडा के भीतर से निकल पडी, और उसने लिखा—"देव", फिर नही काटा। मन को विशेष आपत्ति नही हुई। देवताओ ने जैसे भय, बाधा, विघ्न, सब दूर कर दिये। दूसरा भी लिखा। पत्र पूरे कर माता को सुनाने के लिए पूछा। माता ने कहा, क्या आवश्यक है, मतलब सब लिख ही गया होगा, अपने हाथ डाकखाने मे छोड आओ। पत्र लिफाफे मे भरकर, पता लिखकर डाकखाने छोडने चली। आँचल मे दुनिया की दृष्टि से दूर अपने मनोभावो का प्रमाण छिपा लिया। पत्र मे वह अपने अलख सखा को, हृदय के सर्वस्व को कुछ भी नही दे सकी, एक भी बात ऐसी नही, जो वह अपनी माता के सामने न पढ सकती, सिवा इसके कि मुझे जल्द आकर ले जाइए, अम्मा को मेरी तरफ से घबराहट है। पर फिर भी उसका हृदय कह रहा था कि उसने अपना सबकुछ दे दिया है। लाज की पुलकित पुतलियो से इधर-उधर देख, अपने प्रिय सशय को प्रमाण मे परिणत होते हुए न पा, पत्रो को आंचल से बाहर कर चिट्ठीवाले बॉक्स मे डाल दिया, और अचपल मन्द-मृदु-चरण-क्षेप मूर्ति-मती महिमा-सी, अनावृत्त मुख बढती हुई माता के पास लौट आयी। दूसरे दिन चलते हुए तूफान का एक झोका और लगा, माता का कण्ठ कफ से फेफडे जकड जाने पर रुँध गया, देखते-देखते पुतलियाँ पलट गयी। उनका देहान्त हो गया, वह छाँह की एकमात्र शाखा भी टूटकर भू-लुण्ठित हो गयी। अब ससार मे कुछ भी उसकी दृष्टि मे परिचित नही। इस एकाएक प्रहार से स्तब्ध हो गयी। ससार मे कोई है, ससार मे उसकी रक्षा कौन करेगा, कुछ खयाल नही, जैसे केवल एक

तस्वीर निस्फलक खडी हो, समय आप आता, आप चला जाता है, समय का कोई ज्ञान नही। जैसे किसी निष्ठुर पति ने विना पाप ही अभिशाप दे प्राणो की कोमल, रूपवती तरुणी को प्रस्तर की अहल्या बना दिया है। महादेव कब से आया हुआ खडा है, उसे इसका ज्ञान नही। उसे उस हालत मे खडी हुई देख महादेव के हृदय मे एक बार सहानुभूति पैदा हो गयी। पर उसे तरक्की करनी है, दुनिया इसी तरह उत्थान के चरम सोपान पर पहुँची है, वह गरीब है, इसीलिए अमीरो के तलवे चाटता है, उसके भी बच्चे हैं—उन्हे भी आदमी करना है, लडकियो की शादी मे तीन-तीन चार-चार और पाँच-पाँच हजार का सवाल हल करना है, इतना धर्म का रास्ता देखने पर यह संसार की मजिल वह कैसे तय करेगा ?

"शोभा !" महादेव ने आवाज दी। शोभा होश मे आयी। "अब चलो, प्यारेलाल के यहाँ तुम्हे रख आवे। कोठरियो मे ताले लगा दें, दो कुजियो का गुच्छा ले आओ, ताले कहाँ है, क्या किया जाय वेटी, इस वक्त दुनिया पर यही आफत है, फिर तुम्हारी मा को गगाजी पहुँचाने का वन्दोवस्त करें।"

माता का नाम सुनकर, स्वप्न देखकर जगी-सी होश मे आ मृत माता पर उसी की एक छोटी, क्षीण लता-सी लिपट गयी। अव तक सहानुभूति दिखलानेवाला कोई नही था, इसलिए तमाम प्रवाह आँसुओ के वाष्पाकार हृदय मे टुकडे-टुकडे फैले हुए एकत्र हो रहे थे। स्नेह के शीतल समीर से एकाएक गलकर सहस्र-सहस्र उच्छ्वासो से अजस्र वर्षा करने लगे। महादेव स्वय जाकर प्यारेलाल तथा उसकी स्त्री को बुला लाया। जमीदार के डेरे का नौकर गाडी साजकर ले चला। कुछ और लोग भी इस महा विपत्ति मे सहानुभूति दिखलाना धर्म है, ऐसा धार्मिक विचार कर आये। शोभा को माता से हटा, कोठरियो मे सबके सामने ताले लगाकर प्यारेलाल ने कुजी महादेव को दे दी। प्यारेलाल की स्त्री शोभा को अपने साथ ले गयी। उसके घर का कुल सामान एक पुर्जे मे लिखकर, डेरे भिजवा महादेव उसकी मा की लाश गगाजी ले गया। तमाम रास्ता यही निर्णय रहा कि शोभा को किसी तरह मुरलीधर के हवाले कर पाँच-छ हजार की रकम अपने हाथ लगाये। लौटकर शोभा की खुशखबरी मालिक को सुनाने के लिए सदर गया। शोभा से कह गया, उसकी ससुराल खबर देने जा रहा है। वहाँ की खवर जानकर उसे लौटकर ससुराल ले जायगा। शोभा सोचती थी, कई दिन हो गये, वह क्यो नही आये ? उस घर मे अच्छा न लगता था, जैसे वे आदमी वहुत दूर के हो, इतने नजदीक रहकर भी उसके साथ नजदीक का कोई वर्ताव नही करते। रह-रहकर दु ख से गला भर आता है, पर रोती नही, दुःख और वढता है।

शाम हो चुकी। घर-घर सरकार की विजय के दीपक जलने लगे। डेरे पर और प्यारेलाल के मकान मे सव जगह से ज्यादा प्रकाश है। प्यारेलाल की स्त्री, लडके, लडकियाँ द्वार पर बैठी प्रसन्न आँखो से दीपो का प्रकाश देख रही है। इसी समय शोभा की हम-उम्र गाँव की एक लडकी कहारो के भीतर गयी। शोभा चिन्ता मे डूबी हुई थी। लडकी ने धीरे से छू दिया। इसका नाम राधा है। इसकी मा शोभा के यहाँ टहल करती थी, इसी इन्फ्लूएजा मे गुजर गयी है। राधा पडोस के एक कहार के यहाँ रहती थी। उसके शौहर को खबर कर दी गयी थी। अब वह

अपनी स्त्री को ले जाने के लिए आया है। सुवह वह चली जायगी। शोभा से मिलने आयी है।

फिर शोभा ने देखा, राधा है। राधा सटकर बैठ गयी, और उसके एक हाथ की मुट्ठी अपने दोनो हाथो मे भर ली, और धीरे मे, मतर्क होकर पूछा—"कोई है तो नही ?"

"ना" शोभा सूखे आँसुओ की मुरझायी दृष्टि से देखकर वोली, "कल मैं जाती हूँ। आये हैं। एक वात मालूम हुई। वह वही नौकर है, जिसमे यह गाँव है। उन्हे मालूम हुआ है, महादेव की कुल कारगुजारी झूठ, तुम्हे फँसाने के लिए है। वह आज वहाँ से मोटर लेकर आया है। ससुराल के वहाने रात को सवकी आँख वचा तुम्हे वही ले जायगा। वहाँ किमी की इज्जत नही वचती। वह पूछते थे कि इस गाँव मे कोई शोभा है। मैंने कहा, हाँ। नव सारा हाल वतलाया। मैंने उन्हे समझाया कि हम लोग मेहनती आदमी हैं, जहाँ मेहनत करेंगे, वही कमायेगे, खायेंगे। वहाँ की नौकरी आज ही मे छोड दो। वह मान गये। कानपुर मे मेरा देवर रहता है। कल तडकेवाली गाडी मे हम लोग कानपुर जायँगे। आदमियो का कुछ चलना-फिरना वन्द होने पर महादेव तुम्हे ले जाने के लिए आवेगा। मोटर गाँव से कुछ दूर पर खडी है।"

एकाएक शोभा मे मम्पूर्ण चेतना आ गयी। मनहारिन की वात, उसका आशय क्या हो सकना है, राधा की वात मे पूरा-पूरा प्रमाण मिल गया। घवराकर वोली, "तो मुझे यही छोड जायगी ?"

"नही, तुम्हे निकालने का रास्ता वतलाऊँगी। मैं साथ नही जा सकती। चाची ने मुझे देख लिया है। शक करेंगी, अगर तुम मेरे साथ न लौटी। फिर लोग मुझे कहेगे, कुछ कर दिया। वह यही हैं। पकड जायँगे। इससे किशोरी को साथ लेकर देवी के दर्शन करने जाओ। लौटकर, उसे रास्ते पर खडी कर, वासुदेव वावा के दर्शन का वहाना कर वगीचे जाना। फिर जल्द-जल्द वगीचे-वगीचे दूर निकल जाना। एक मील ठीक उत्तर जाने पर एक कच्ची सडक मिलेगी। उसी सडक-सडक पाँच मील चलने के वाद दाहने हाथ स्टेशन है, जो हमारे स्टेशन के वाद पडता है। कल पाँच वजे सवेरेवाली गाडी मे हम लोग भी जायँगे। दूसरे स्टेशन पर मिलना। उनसे कहकर मैं एक टिकट कटवा लूँगी, फिर तुम्हे कानपुर से तुम्हारी ससुराल भेजवा दूँगी। अच्छा, मैं जाती हूँ, किशोरी को भेज दूँ।"

मुस्किराती हुई राधा वाहर निकली। "क्या है राधा ?" प्यारेलाल की स्त्री ने पूछा।

"कल जा रही हूँ चाची, शोभा दीदी से मिलने आयी थी।"

"पाहुने लिवाने आये हैं ?"

मधुर, लजीली निगाह नीची कर राधा ने कहा, "चाची, शोभा दीदी किशोरी को वुला रही हैं।"

"हुकुम के मारे नाक मे दम हो गया। देखो तो किशोरी, क्या काम है।"

राधा धीरे-धीरे, चाची को अपने रास्ते की पहचान कराती हुई, सामनेवाली

राह से हलवाइयो की दूकान के उजाले होकर, ठण्डे भाड के किनारे भुजइन भौजी की बगल मे बैठकर अपने जाने की बातचीत करने लगी, जैसे विदा होने से पहले मिलने गयी हो। घण्टे-भर बाद, शोर-गुल उठने पर, भुजइन, हलवाइन तथा पड़ोस के दूसरी स्त्रियो और लोगो के साथ मौके पर पहुँचकर शोभा के गायब होने पर सबके बराबर ताज्जुब दिखला, अपने निर्लिप्त रहने का मौन प्रमाण देती, उखडती हुई जनता के साथ, सबके स्वर मे स्वर मिलाकर कहती हुई कि पहले से कोई साधक-सिद्धवाला मामला रहा होगा, घर गयी, और पति की चुभती चितवन से मन के समाचार दे, रस भरकर अपनी दोनो तरह की विजय समझा दी।

दो

बाबू मुरलीधर अवध के आकाश के एक सबसे चमकीले तारे है, जहाँ तक ऐश्वर्य की रोशनी से ताल्लुक है, यानी सबसे नामी ताल्लुकेदार। कहते हैं, कभी उनके दीपक मे इतना तेल न था कि रात को उजाले मे भोजन करते, बात उनके पूर्वजो पर है। उनके यहाँ शाम मे पहले भोजन-पान समाप्त हो जाता था। यह विशाल सम्पत्ति उनके पितामह ने अँगरेज सरकार की तरफदारी कर प्राप्त की। गदर के समय बकरियो के बच्चे ढकनेवाले बडे-बडे झावो के अन्दर बन्द कर कई मेम और साहबो को बागियो से उन्होने बचाया था। फिर जब राय विजयबहादुर की फाँसी के समय, उनके महान् भक्त होने के कारण, तीन बार फाँसी की रस्सी कट-कट गयी, और गोरे बहुत घबराये, तब उनके गले मे फाँसी लगने का उपाय इन्होने बतलाया कि यह विष्णु भगवान् के बडे भक्त हैं, जब तक इनका धर्म नष्ट न होगा, इन्हे फाँसी नही लग सकती, इसलिए मुर्गी के अण्डे का छिलका इनकी देह से छुला दिया जाय। साहबो ने ऐसा ही किया, तब फाँसी लगी। मुरलीधर के पितामह भगवानदास को अँगरेज सरकार ने इन कार्यो का पुरस्कार हजार गाँव साधारण लगान और दूसरे ताल्लुकेदारो मे अनुकूल खास-खास शर्तो पर दिये, तब से इनका रात का दिया जला।

जब से मुरलीधर पैत्रिक सिंहासन पर अपने नाम की मुरली धारण कर बैठे, बराबर सनातन-प्रथा के अनुसार सरकारी अफसरो की सोहावनी सोहनी छेडते जा रहे हैं। पर अभी तक सरकारी अफसरो की सिफारिश से किसी प्रकार का पदवी-प्रसाद नही प्राप्त हुआ। पेट जितना भी भरा रहे, आशा कभी नही भरती। वह जीवो को कोई-न-कोई अप्राप्य, कुछ नही या केवल रगो की माया का इन्द्र-धनुष प्राप्त करने के मायावी दलदल मे फँसा ही देती है। लक्ष्मी के वाहन प्रभूत प्रभुता की डाल पर बैठे हुए इन महाशय उलूक को इसी प्रकार रात मे प्रभात देख पडा। उपाधि बिना उपाधि के नही मिलती। इन्होने भी उपाधि-प्राप्ति के लिए उपाधि

वितरण शुरू किया। थोड़े ही दिनो के अध्यवसाय से इन्हे यथेष्ट परिज्ञान भी प्राप्त हुआ कि सरकारी अफसरो मे शासक और शासन का भाव प्रवल होने के कारण मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन आदि विशेष प्रचलित है। अत शक्ति के लोग उपासक है, और बाकायदा पचमकार-साधन करते हैं। तव मुरलीधर ने भी केवल तान छेडनेवाली मुरली छोड दी। मन और वाणी के वाद कर्म से मदुद्देश की सिद्धि के लिए लगे। विशाल सम्पत्ति के अधिकारी होने पर भी, सरकारी अफसरो के सिवा, मुरलीधर के पितामह से ऊँचे वश के स्वजाति और विजाति-वालो का खान-पान वन्द था। वरावरवाले भी वरावर नही बैठे। मुरलीधर के पिता का विवाह वडी नीच शाखा की लडकी से हुआ था, जिसके पिता ने लडकी देकर दारिद्र्य के हाथ निस्तार पाने का उपाय भी साथ-साथ सोचा था। मुरलीधर के पितामह के कृत्यो की इलाके मे घर-घर चर्चा थी। वाहर भी यथेष्ट प्रभाव पडा था। इस वैमनस्य को दूर करने मे मुरलीधर के पिता गिरधारीलाल ने ताल ठोककर सफलता प्राप्त की। वात यह हुई कि उनके समय मे आर्य-समाज का जोरो से आन्दोलन शुरू हुआ। हिन्दू-समाज की इमारत इस भूकम्प से वार वार हिलने लगी। मूर्तियो के मृदुल पूजा-भावो पर वार-वार मामूद की-सी प्रखर तलवार के वार होने लगे। हिन्दू-जनता के मूर्ति-पूजन के भय को प्रश्रय देकर सनातन-समाज की निष्ठा पर प्रतिष्ठित होने के विचार से उन्होने यह मौका हाथ से न जाने दिया। देश-देशान्तरो से प्रकाण्ड पण्डित बुलवाकर एक विराट् सभा करायी। आर्यसमाज के पण्डितो और प्रचारको को भी निमन्त्रण भेजा। अपने इलाके से 'सत्य सनातन-धर्म की जय" वोलने के लिए हजारो स्वयसेवक भक्तो को एकत्र किया। विवाद के दिन आर्य-समाजी पण्डितो के भाषण के समय पुन-पुन "सनातन धर्म की जय" के नारे उठने लगे। भाषण नक्कारखाने मे तूती की आवाज हो गये। सनातनी पण्डितो के समय "धन्य है, धन्य है" होने लगा। इसके लिए उन्होने अपनी तरफ से एक डिक्टेटर नियुक्त कर रखा था। पश्चात् "आर्य-समाज की क्षय हो" के अभिवादन से सभा समाप्त करायी। सत्यनारायणजी की कथा का प्रसाद वँटा। सनातनी पण्डितो को मोटी-मोटी विदाइयाँ मिली। जनता खु। दिल गिरधारीलाल के धर्म की तारीफ करने लगी। इस तरह प्राचीन कलक नवीन धार्मिक उज्जवलता से धुलकर जनता के हृदय के तत्त्व से ही मिल गया। गिरधारीलाल ने अपनी महत्ता स अव समाज का गोवर्धन धारण कर लिया। उनकी इस उच्चता का उन्हे वाछित वर भी मिला। जमीदारी के लोगो के प्रत्येक प्रकार के ताप का भाप द्रवित हो-हो वही वरसने लगा, और गिरधारीलाल गिरवर की ही तरह ऐश्वर्य के जल से भरते रहे। वढा हुआ जल सनातन-प्रथा के नदी-पथ से वरावर सरकार के समुद्र की ओर वहता रहा। जमीदारी के लोग प्यास वुझाने के लिए वरावर पत्थर फोड-फोडकर कुएँ वनाते रहे।

पितामह ने सम्पत्ति प्राप्त की, पिता ने प्रतिष्ठा। अव मुरलीधर के लिए दुरूह दुर्ग कोई विजय के लिए रह गया, तो प्रतिष्ठा के अनुकूल खिताब। इनसे हैसियत के वहुत छोटे-छोटे ताल्लुकेदार अपने खिताव की शान मे इनकी तरफ देखते भी नही। वातें करते हैं, जैसे दो मजिलेवाला सडकवाले से वोलता हो।

यह सब उनके लिए, जिनके पास अधिक सम्पत्ति हो, सहन कर जाने की बात नही।

अफसरो को खुश कर पदवी प्राप्त करने का अचूक मन्त्र मुरलीधर को उनके सेक्रेटरी बाबू मोहनलाल ने दिया। मोहनलाल पहले कालवन स्कूल के शिक्षक थे। मुरलीधर जब पढते थे, तभी शिक्षक की हैसियत से मन्त्र और मन्त्रणा देते हुए यह शिष्य के बहुत नजदीक आ गये थे। इनका मतलब लक्ष्मी से ही सामीप्य और सायुज्य प्राप्त करना था, मुरलीधर को यह क्लास के पहले ही दिन से काठ का उल्लू समझते आ रहे है। माता के आन्तरिक स्नेह के कारण मुरलीधर को ज्ञान के सोपान तय करने का परिश्रम न करना पडता था, क्योकि बालक के पिता को माता साधारण सूत्र-मात्र से समझा देती थी कि लाल को पेट के लाले नही पडने, जो फूल की कुल खुशबू स्कूल के आकाश मे उड जाय, और वह किताबो की कडी धूप से मुरझाकर घर लौटे। बाबू मोहनलाल इस श्रुति के आधार पर फूल के बराबर खिले रहने की कोशिश करते रहे। मुरलीधर को प्रवेशिका तक तो हर साल बिना परिश्रम के फल-प्राप्ति होती रही, पर द्वार पर पहुँचकर अटक गये। मास्टर मोहनलाल के बढावे से मेढे की तरह दो-तीन साल तक प्रवेशिका के द्वार ठोकरें मारी, पर हताश होकर लौट आये। घर मे मोहनलाल ने आकर कहा, लडके की अक्ल तो बडी तेज है, पर परीक्षक लोग शराब पीकर परचे देखते हैं, जिससे अच्छे के लिए बुरा और बुरे के लिए अच्छा नतीजा हासिल हो जाता है। और लडके को नौकरी तो करनी नहीं, बिना डिगरी के डग नही उठेंगे, यो इल्म के लिहाज से लडका किसी ग्रेजुएट से कम नही। माता-पिता को तो खुशी होती ही थी, मुरलीधर ने भी दृढ निश्चय किया कि उसकी प्रतिभा को अगर अब तक ससार मे किसी ने समझा, तो एक मास्टर साहब ने। इसी निश्चय के आधार पर, पिता के स्वर्गवास के पश्चात् अंगरेज अफसरो को तथा दूसरे मामलो मे अँगरेजी मे पत्र लिखने, बातचीत करने मे दिक्कत पडने के कारण और खास तौर से अपनी प्रभुता जताते रहने के उद्देश से मुरलीधर ने मास्टर साहब को याद किया, और यथेष्ट तनख्वाह देकर अपने ही यहाँ रख लिया। *"यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवतितादृशी"* का इतने दिनो बाद मास्टर साहब को प्रमाण मिला। अब शिष्य की उन्नति के लिए विशेष रूप मे दत्तचित्त हुए। कुछ दिनो तक शिष्य के मनोभावो को पढते रहे। पढकर प्रौढ युवक को प्रौढता की तरफ फेरने लगे। पहले छुरी, चम्मच, काँटा पकडाकर साहबी ठाठ से भोजन करना सिखलाया। फिर धीरे-धीरे स्वास्थ्य के नाम पर शराब का नुस्खा रखा। फिर छिप-छिपाकर सरकारी अफसरो के साथ भोजन करने को प्रोत्साहन। फिर बगीचे की कोठी मे बाकायदा पंचमकार-साधन और देशी-विलायती सरकारी अफसरो को कम-से-कम निमन्त्रण। एक साल के अन्दर लखनऊ, इलाहाबाद और कानपुर आदि की खूबसूरत-से-खूबसूरत वेश्याएँ आकर, नाचकर, गाकर सरकारी अधिकारियो को खुश कर-कर चली गयी। दूसरे साल सम्राट् के जन्म-दिन के उपलक्ष्य मे स्टेट्समैन, पायनीयर, लीडर आदि मे देखा, तो उन्हे पदवी नही मिली। पडोस के मामूली रियासतदार राजा हो गये है। अनुभवी मोहनलाल ने कहा, इस वर्ष तो अभी सिफारिश गयी ही होगी, साल-दो

साल जब और मेहनत की जायगी, तब नतीजा हासिल होगा, ये (विशेष निकट, सम्बन्ध मे सूचित कर) सरकारी अफसर एक दिन मे नही पिघलते, जानते हैं, माल भरा है, सोचते हैं, चार दिन की दावत मे राजा बनाकर बेवकूफ बनाना चाहता है, इसलिए घबराने की कोई बात नही, अपने पास माल है, तो नाम जरूर होगा।

मुरलीधर को धैर्य हुआ। इससे पहले की दावतो मे सुन्दरी-से-सुन्दरी वेश्याओ के कदम-शरीफ फिर चुके थे। फिर उनकी ओर सेकेण्ड हैण्ड किताबें खरीदने की तरह अपना ही मन नही मुडता, फिर निमन्त्रित व्यक्ति कैसे खुश होगे। यह शका भी मोहनलाल ने की, और समाधान भी उन्होने किया। कहा, अब दावतो का रुख बदल देना है। अब गाने के लिए तो मशहूर विद्याधरी, राजेश्वरी-जैसी रण्डियाँ बुलायी जायँ और (इशारे से समझाकर) गृहस्थो के घर की, बहुत मिलेंगी, एक-से एक खूबसूरत पडी हैं, रुपया चाहिए, अपने पास इसकी कमी नही।

कल्पना के हवाई जहाज पर चढे हुए मुरलीधर की तेज हवा के भीतर की स्थिति पार हो गयी, और अपना स्थान सुखमय निकट देख पडने लगा। मास्टर साहब को भी कुछ दिन और हिसाब मे अपने लिए काफी निकासी कर लेने का मौका मिला। उन्होने इसके लिए पहले से अपने खास आदमी रक्खे थे, जिन पर उन्हे पूरा विश्वास था। दारिद्र्य का भार न सह सकनेवाली या कुलटा या लोभ से बिगडी हुई अथवा कूटनियो से बिगाडी हुई गृहस्थो के घर की सुन्दरी-से-सुन्दरी स्त्रियाँ मिलने लगी। वात्स्यायन के समय से पहले भी, शायद सृष्टि के प्रारम्भ से ही, मिलती थी। मुरलीधर के रस की रास-लीला ऐश्वर्य की शुभ्र शारद ज्योत्स्ना मे सारगी से मग्न स्वरो, नूपुर-निक्वणो और नेत्रवीक्षणो से मधुमय क्षण-क्षण मर्त्य को लोगो की चिर-कामना के स्वर्ग मे बदलने लगी।

इलाके के विशेष रूप मुरलीधर के, नजदीक रहनेवाले प्रिय पात्र, मोहनलाल के लाडले, शागिर्द, कर्मचारी, जिलेदार जमाने का रग खूब पहचानते थे। इनके द्वारा भी दूसरो की दाराएँ कभी-कभी जमीदारो का द्वार देख जाती थी। पहले शहर के गृहस्थो से, जहाँ शौकीन शाह वाजिदअली का आदर्श है, रुपये के बदले रूप लिया जाता रहा, पर यह प्रथा गाँवो तक फैली हुई है। प्रमाण मिलने पर देहाती खूबसूरती पर ध्यान ज्यादा गया। देहाती रूपसियो की निर्दोषिता साहबो को पसन्द आयी, इसलिए धीरे-धीरे गाँवो पर धावे होने लगे। देहात की सुन्दरी विधवाएँ, भ्रष्ट की हुई अविवाहिता युवतियाँ एकमात्र माता जिनकी अभिभाविका थी, और अपना खर्च नही चला सकती थी, और इस तरह के लब्ध अर्थ से लडकी का धोके से ब्याह कर देना चाहती थी, लगान की छूट, माफी आदि पाने की गरज से, कुटनियो के बहकावे मे आकर, चली जाती या भेज दी जाती थी। लौट आने पर किसी रिश्तेदारी की जगह जानेवाले कारण गढ लिये जाते थे। जमीदार के लोग स्वय सहायक रहते थे, कोई डरवाली बात न होने पाती थी। विश्वासी जिलेदार इस तरह के मामलो मे सूराख लगानेवाले, सौदा तय करनेवाले थे।

एक दिन महादेवप्रसाद नामक एक जिलेदार ने खबर दी कि उसके गाँव मे शोभा नाम की एक पन्द्रह-सोलह साल की लडकी है। वह धूप मे भी गोरी और

फूल से भी खूबसूरत है। आँखें बडी-बडी, आम की फाँक-जैसी, पढी-लिखी, जैसे सुबह की किरण आसमान मे उतरी हो। शादी हो चुकी है, पर अभी ससुराल का मुँह नही देखा। उसे तोलने के लिए एक दिन एक कुटनी भेजी गयी थी। वह मनहारिन है। कुछ फासले पर एक दूसरे गाँव मे रहती है। उसने एकान्त पा एक रोज बडे-बडे लोभ दिये कि एक तुम्हारे चाहनेवाले है, वह राजा से भी बढकर धनी और कृष्णजी से भी खूबसूरत-गोरे है, और तुम्हारे लिए बेचैन है।

"नाम तो नही बतलाया ?" मोहनलाल ने छूटते ही पूछा।

"नही साहब, मैं ऐसा बेवकूफ हूँ, जो नाम भी कहने के लिए कह देता।"

"हाँ, फिर ?"

"फिर उसके पर किसी तरह काँपे मे न फँसे। गालियाँ देकर मनहारिन को निकाल बाहर कर दिया, लेकिन ईश्वर की मार भी एक होती है। मैं उस रोज से रोज महादेवजी को जल चढाकर मनाने लगा कि हे बाबा, यह किसी तरह मिल जाय, तो आपके लिए एक चबूतरा पक्का बनवा दूँ। आप देवो के देव हैं, आपने देवीजी का मनोरथ पूरा किया था, मेरा भी पूरा करें। फिर सरकार चलने लगा महादेवजी का त्रिशूल, यही जो बीमारी फैल रही है—"

"इन्फ्ल्युएजा ?"

"हुजूर, इसी इन्फ्ल्युएजा मे उसका बाप मरा, फिर मा मरी, गाँव के सैकडो आदमी—बसन्तलाल, रामलोचन, लछमनसिंह, अम्बालाल, बनवारीपरसाद, रामगोपाल, कृष्णकान्त वगैरा मशहूर जितने मालदार थे, करीब-करीब सब साफ हो गये। कोई किसी के पास खडा नही होता। चारो ओर सन्नाटा छाया हुआ है। यह हुजूर यहाँ भी देख रहे है। जब उस लडकी के मा-बाप कूच कर गये, तब मैंने सोचा, अब इसे इन्तजाम के साथ अपने कब्जे मे करना चाहिए। वही प्यारेलाल के मकान मे रखवा दिया है, और कह दिया है कि उसकी ससुराल खबर भेजी जाती है। उसने ससुराल का पता भी बता दिया है। उसका खाविन्द परदेस मे, बम्बई मे, कही पढता है। प्यारेलाल अपना ही आदमी है, ब्राह्मण है औरत-बच्चेवाला। लोगो को शक नही हो सकता। अब जब हुजूर की राय हो, ले आयी जाय। सरकार जब तक उसे देखते नही, तभी तक दिल को तसल्ली दें, वरना मैं तो कहूँगा, हुजूर की नेक नजर मे ऐसी खूबसूरत औरत पडी न होगी। ईश्वर की मर्जी, उसे मामूली ब्राह्मण के यहाँ पैदा किया, नही तो है वह महलो-लायक सरकार !"

प्रसन्न होकर मुरलीधर ने पूछा, "क्या नाम बताया ?"

"शोभा, हुजूर !"

मुरलीधर सोचते रहे—एक साधारण स्त्री है। मर्जी के खिलाफ भी वह लायी जा सकती है। सब सरकारी कर्मचारी उन्हीं की तरफ है। विपक्ष से शिकायत करनेवाला कोई नही। वह न हो, यही रख ली जायगी।

मोहनलाल बोल उठे, परसो सरकार के जग फतह करने की खुशी मे जलसा है। एक खास अफसर के निमन्त्रण की बात कही। कहा, "बनारस की सुहागभरी और नियामतउल्लाखाँ, मुशीजी, अलीमुहम्मद और भैरवप्रसाद वगैरा उस्ताद भी

आवेंगे, अगर वह भी आ जाय, तो कोई वाजू कमजोर न रहेगा।"

"लेकिन उसका दिल अभी दुखा हुआ है।" महादेव ने कहा।

"तो यहाँ जहर न दिया जायगा।" लापरवाही से मुरलीधर ने कहा।

तीन

देवी-दर्शन के पश्चात् रास्ते पर किशोरी को खडी कर वासुदेव वावा को प्रणाम करने को वगीचे मे पैठने से पहले शोभा ने समझा दिया कि क्वाँरी लडकियो को देवी समझकर वासुदेव वावा उनमे प्रणाम नही लेते, वह कुछ देर प्रतीक्षा करे, शोभा जल्द आ जायगी। किशोरी ने कुछ देर तक तो प्रतीक्षा की, पर डरकर फिर पुकारने लगी। उत्तर न मिला, तो रोती हुई घर गयी। सुनकर उसकी मा के होश उड गये। वह डेरे की तरफ दौडी। प्यारेलाल वही था। महादेव धीरे-धीरे मोटर वढाकर डेरे आने के लिए गाँव के वाहर गया था। प्यारेलाल के देवता कूच कर गये, जव सुना, शोभा वासुदेव वावा के दर्शन करने गयी थी, तव से गायव है। दौडता हुआ वगीचे की तरफ कुछ दूर तक गया, पर कही कुछ न देखकर लौट आया। शंका हुई, पीपल के पासवाले कुएँ मे न गिर गयी हो। कुछ देर तक कुएँ की तलाशी होती रही। गाँव के वहुत-मे लोग इकट्ठे हो गये। कई रस्मे वाँवकर कुएँ मे पैठे। पर वहाँ भी शोभा न थी। फिर कुछ दूर तक वगीचे मे गये, पर अँवेरे के सिवा कुछ न देख पडा। कोई भी शोभा को देखनेवाला गवाह न था। सव-के-सव मिर हिलाने लगे। लोगो ने निश्चय किया, किसी के साथ वह निकल गयी।

जव तक गाँव के भीतर शोभा की तलाश और उसके वुरे चरित्र की चर्चा हो रही थी, तव तक गाँव छोडकर वह वहुत दूर निकल गयी। पहले ही जितना फासला कर ले, इम विचार मे, खवर होने तक, वगीचो की श्रेणी पार कर गयी। पहले डरे हुए पैर तेज उठने लगे। शका, भय, उद्वेग और दु खो को उसकी एक अलक्ष्य शक्ति लडकर पार कर जाना चाहती थी। मुक्ति की प्रवल इच्छा सामने के विघ्नो को पीछे के पतन के भय से झेल रही है। कभी रास्ता नही चली। आज एक ही साथ जीवन का सवमे जटिल दुर्गम, मार्ग तय करना पडा। कटी घास की पैनी नोको मे तलवे छलनी हो रहे है, खून के फव्वारे छूट रहे हैं, पर रास्ता पार करना है, याद आते ही कितना वल मिल रहा है। अकुरो के चूमने की पीडा एक नि शब्द आह मे भर जाती है। केवल एक लगन—रास्ता पूरा करना है, पकड न ले। वह रास्ता कितना लम्वा है, वह स्टेशन कितनी दूर है, जानकर भी नही जानती, मव भूल गयी, केवल इतना ही होश कि रास्ता पार करना है। उमे किस-किस तरफ से होकर कहाँ जाना होगा, कितनी दूर एक घण्टे मे चली आयी, वह

कँच्ची सडक कहाँ है, कुछ ज्ञान नहीं। जरा रुकने पर पैर की खील निकालने के क्षण-मात्र मे काँप उठती कि पकड ली गयी पीछे कोई आ रहा है! हृदय धडक उठता, वेदना भूलकर लम्बे पग सामने बढती जाती है। एक घण्टा हो गया, जहाँ तक अँधेरा मिलता है, पेड देख पडते है, उसी तरफ जाती है। एक, दो, तीन, कई घण्टे पार हो गये। साथ-साथ श्रान्ति बढ गयी। गला सूख गया। दर्द भीगा, पैर दुखने लगे, बेताब हो वही बैठ गयी। वह स्टेशन कहाँ है। वह कहाँ आयी? कल क्या होगा? सोचती-सोचती पीडा की गोद मे मूर्च्छित हो गयी। जब आँखें खुली, तब न वह स्थान है, न वह दृश्य! फेन-शुभ्र मसृण शय्या पर लेटी, एक अपरिचित स्त्री पखा झलती हुई, सिर पर सुगन्ध से वासित पट्टी, तलवो मे रुई के फाहे बँधे हुए।

जब महादेव लौटकर आया, और उसे मालूम हुआ कि शोभा गायब हो गयी है, तो बहुत घबराया। लोगो को एकत्र कर शोभा को बचाने का धार्मिक उद्देश समझाकर मदद माँगी, और लोगो के तैयार होने पर रात ही को तीन-तीन, चार-चार कोस के फासले तक के गाँवो मे, मा-बाप की मृत्यु से घबराकर या किसी बहकानेवाले के साथ भगने की उसकी खबर फैला देने और वहाँ के लोगो मे प्रार्थना करने के लिए कहा कि अपनी शक्ति-भर सब लोग उसकी सतीत्व-रक्षा का प्रबन्ध करें। लोगो को महादेव की सलाह बहुत पसन्द आयी। मदद के लिए गाँव के लोग तैयार हो गये। उधर उसने कहा कि मालिको के यहाँ भी यह खबर हो जानी चाहिए। मुमकिन है, वहाँ से भी कोई मदद मिल जाय, और प्यारेलाल को एक रपोट लिखकर रात ही को चौकी के मुशी को दे देने और सुबह कानपुरवाली गाडी से कानपुर तक स्टेशन देखते जाने के लिए कहा। एक दूसरे सिपाही को बादवाली गाडी से होकर प्रयाग तक देख आने के लिए कहा, यदि शोभा किसी के साथ रेल पर सवार हो। खुद सदर मुरलीधर के पास खबर देने को गया, क्योकि वह इन्तजार करते रहेगे। मुमकिन कोई दूसरा बन्दोबस्त आये हुए साहब के लिए करना पडे।

पडोस के और फासले तक ज्यादातर गाँव मुरलीधर के ही थे। रातोरात तीन-तीन, चार-चार कोस तक गाँवो मे खबर देने के लिए लोग दौडे। चारो ओर सन्नाटा छा गया। राधा का पति डरा। दूसरे दिन उसका कानपुर जाना न हुआ। लोगो मे तरह-तरह की टिप्पणियाँ चलने लगी। प्राय सभी शोभा के खिलाफ—अबला प्रबल रूप धारण करने पर क्या नही कर सकती!

पण्डित स्नेहशकरजी सात-आठ गाँव के मामूली जमीदार है। ऊँचे दरजे के शिक्षित। विदेशो का भ्रमण कर चुके हैं। ऊँची शिक्षा प्राप्त करने पर भी ऊँचे पदो की प्राप्ति स्वेच्छा से नही की। सरस्वती की सेवा मे दत्तचित्त रहते हैं। उम्र पचास के उधर होगी, साठ के इधर। लम्बे, पुष्ट, गोरे, ऋषियो के अनुयायी, इसलिए ईश्वरप्रदत्त रोओ पर नाई का उस्तरा नही फिरता। सर के बाल, मूछें, दाढी, यथासस्कार प्रतिभा और प्रौढता के अनुरूप। सदा प्रसन्न आँखो से गगा के जल की-सी निर्मल ज्योति निकलती हुई। ज्ञान की उस उभय धारा मे देश के आदर्श युवक स्नान कर

धन्य होने के लिए आते है, जमीदारी मे रियाया के माथ रियायत का पूरा सम्बन्ध अर्थ की ईंटो और शिक्षा के चूने से उठी ग्राम-सगठन की सुदृढ सुन्दर इमारत प्रान्त के उन्नतमना मनुष्य कभी-कभी देखने के लिए आते हैं। कभी-कभी सरकार मे भी कुछ सहायता मिल जाती है। मुरलीधर के गाँव की अपार क्षार-जल-राशि के भीतर एक छोटे-से द्वीप की तरह सुजला-सुफला, शस्य-श्यामला, ज्ञान-दात्री, धात्री इतनी-सी भूमि। चारो ओर विना सहारे की नाव के अपने पैर पार करने की गुजाइश नही। जल-जन्तुओ, डुवा देनेवाली उत्तुग तरगो तथा तूफान का सदा भय। स्नेहशकरजी गाँवो के जमीदार की तरह नही, रियाया की तरह रहते हैं। जमीदारी का प्रवन्ध वही के किसानो की एक कमेटी करती है। अपनी पुस्तको की आमदनी से भी वह कभी-कभी किसानो के शिक्षा-विभाग की मदद करते हैं।

नियमानुसार वह ब्राह्ममुहूर्त मे उठकर टहलने चले। कुछ दूर जाने पर तारो के प्रकाश मे देखा, एक स्त्री वाग की खाई मे कुछ फासले पर पडी सो रही है, नजदीक जाकर देखा, हरसिगार के दो-चार फूल खुल-खुलकर उस पर गिरे हुए है, अच्छी तरह देखा, साँस चल रही है, नाडी वहुत क्षीण। मुख पर दिव्य सौन्दर्य की स्वर्गीय छटा जैसे साक्षात् गायत्री युग-शाप को सहन न कर विश्व-ब्रह्म की गोद पर मूर्च्छित पडी हुई हो। स्नेहशकर अनेक प्रकार की कल्पनाएँ उस किशोरी पर करते-करते शीघ्र घर लौटे। अपने पुत्र अम्बिकादत्त और पुत्र-वधू सावित्री को शयन-गृह के द्वार पर पुकारा। दोनो सो रहे थे। जगकर ससकोच दोनो वाहर आये। सक्षेप मे समाचार सुना, स्नेहशकरजी ने उठा लाने को दोनो से कहा। दोनो पिता के पश्चाद्वर्ती हुए। शोभा की प्राजल, करुण, मूर्च्छित शोभा देखकर सावित्री रोने लगी। सँभालकर दोनो घर उठा लाये। अपने विस्तरे पर लिटा, फाहे से तलवो का खून धोकर आयडिन लगा, ढीले वाँध दिया, सिर पर गुलाव की पट्टी रखकर सावित्री पखा झलने लगी।

प्रभात हुआ। गाँव के लोग जागे। उषा की लालिमा के माथ शोभा के भी सरोज-दृग अँधेरी क्लान्ति के भीतर से वाहर के जाग्रत् ससार मे खुल गये। निश्चल चितवन मे अपरिचिता सुन्दरी सेविका को देखा, पर नेत्र अव्यक्त शका से निहार के कमल-जैसे व्याकुल हो गये, जैसे ससार मे विश्वासपात्र अव कोई नही रहा, जैसे इस सेवा मे भी स्वार्थ छिपा हो।

सावित्री प्रश्न न कर चुपचाप अपने पति के पास गयी, और पिताजी को वाहर से वुला लाने को कहा। कहा, अव होश हुआ है।

स्नेहशकरजी शीघ्र आये, और स्नेह मे अभय दिया। कुल शका-सकोच दूर कर कहने लायक हालत हो, तो हाल वयान करने के लिए कहा।

गल-गलकर पलको के करारो से युगपद् आँसुओ की धारा वहने लगी। स्नेह-शकर के हृदय के स्नेह की पहचान पा शोभा करुण चितवन से देखकर रह गयी, कुछ कह न सकी। इस अव्यक्त कथा मे, इतने व्यक्त प्रकाश मे स्नेहशकर वीज-रूप अर्थ समझ गये। उनकी वेदना के आँसू शोभा को सहानुभूति-प्रदर्शन के लिए गुप्त पथ पार कर वाहर आ गये। फिर सँभलकर उन्होने कहा, "अच्छा, कुछ स्वस्थ हो लो, कुछ खा-पी लो, तव कहना।"

दु:ख-भरी पुकार से करुण शोभा का पत्र विजय की दृष्टि-किरणो मे ठीक उषा-काल की ओस के आँसुओ का तरु-पल्लव हुआ, शिशिर का शतपत्र। पर दूरतम पथ पार करने को पाथेय कुछ नही। पिंजडे मे आशुवन्दी पक्षी के सदृश हृदय देह के भीतर तडफडाने लगा, पर पतत्रि को पुन -पुन क्षतो के सिवा उडने का पथ नही मिला। सेठजी, जिनके प्रसाद से वह किसी तरह वम्बई मे रहकर रही एक साल की पढाई पूरी कर लेना चाहता है, नाराज है। अव सहायता देने से उन्होने इनकार कर दिया है। पुलिस के गुप्त विभाग के किसी अफसर मे उनके पास उसके नाम शिकायत पहुँची है। इन्ही सेठजी के यहाँ उसके पिता ईमानदारी से तीस वर्ष तक कार्य करके, वृद्ध हो घर गये, इन्ही सेठजी को तीन वार मवालियो के आक्रमण मे मैदान मे टहलते समय साथ रहकर उसने वचाया था, इन्ही सेठजी के घर से, पुलिस की सलाह के अनुसार, राजनीतिक कवल से जूठी पत्तल की तरह, वह वाहर निकाल दिया गया, पर उसका मानसिक स्वातन्त्र्य सामयिक वादलो मे सूर्य की तरह ढका है। सेठजी से प्रार्थना करने के लिए फिर गया, पर ड्योढी से भीतर पैठ नही हुई। दरवान ने कहा, ड्योढी वन्द है। दो लडको को पढाने लगा था, अभी महीना पूरा नही हुआ। उनके अभिभावको के पास गया। दोनो जगह एक ही-से उत्तर—"वगैर महीना पूरा हुए आपको कैसे रुपये दे दिये जायँ—ऐसी उतावली हो, तो आप अगले महीने मे मत पढाइए, हम दूसरा इन्तजाम कर लेंगे।"

विजय—"तो अव तक का जो होना हो, कृपा कर वही दे दीजिए, फिर मै न आऊँगा, मेरे घर मे वीमारी है, घर जाना चाहता हूँ।"

"अच्छा, यह वात है, अव आप नहीं आना चाहते, कोई दूसरा काम मिला होगा। खैर। रुपये नही है। हमारे यहाँ पन्द्रह-पन्द्रह, सोलह-सोलह दिन मे तनख्वाह नही दी जाती।"

विजय फिर कुछ कहने चला, तो दरवान की पुकार हुई, और तृतीय पुरुष के परुष सम्वोधन से कहा गया, इसे निकाल दो।

पहली जगह तो अपमान को पीकर किसी तरह दिल को उसने समझा लिया, पर दूसरी जगह धैर्य न रहा। दरवान के आने के साथ तौलकर ऐसा एक हाथ रक्खा कि वह मुँह के वल आया। फिर विद्यार्थी के पिता की तरफ चला, तो वह जेब मे हाथ डालकर जो कुछ वचाव के लिए निकला, सभय देने लगे। नोट थे। विजय की आँख चढी थी। नोट लेकर सदर्प, सक्रोध गद्दी से वाहर निकल गया। दूर सडक पर जाकर देखा, छ दस रुपये के और एक सौ रुपये का नोट। क्रोध के वाद धनी-स्वभाव की परीक्षा कर हँसी आ गयी। यह क्रोध और वल है, जिसे तीन महीने की पढाई से अधिक अर्थ मिलता है, वह सौजन्य और शिष्टता है, जिसकी गर्दन पर हाथ जाता है। ऐसा है आज भारत—सोचता हुआ अपने डेरे की तरफ चला। भाडा आदि चुका, विस्तरा वाँधकर सीधे स्टेशन पहुँचा। फिर टिकट लेकर डाकगाडी से ससुराल के लिए रवाना हो गया।

पाँच

वातों से शोभा को पहचानकर स्नेहशकर, उनके पुत्र और पुत्र-वधू ने गृह की कली मे उसे सौरभ की तरह छिपा रक्खा। शत-पथ-वाहिनी शतद्रु जैसे पर्वत-पिता के वक्ष स्थल मे मूलवास अन्तर्हित कर रही। जो जन-रव फैला था, इस परिवार को परिचय के दूसरे ही दिन मालूम हुआ, और तत्त्वज्ञ, दार्शनिक, पुरातत्त्ववेत्ता स्नेहशकर को शोभा के सत्य के साथ जनता के सत्य का एक दृष्ट प्रमाण मिला।

अच्छा हो, स्नान समाप्त कर, वाल खोले दिन मे शिशिर की स्नात ज्योत्स्ना-रात-सी स्निग्ध, शुभ्र-वसना, सुकेशा शोभा उदार, अपलक दृष्टि मे न-जाने क्या मन-ही-मन देख रही थी, किसी दूरतर लक्ष्य की ओर क्षिप्त दृष्टि, ऐसे समय एक वार फिर इस गायत्री को, विद्या ही-सी चमकती, जल-जड मे उमडकर आयी चिन्मयी मूर्ति को स्नेहशकर ने देखा —मुख की प्रभा तथा सघन केशों के अन्धकार मे दिन और रात का दिव्यार्थ रूपक। याद कर सहास्य कहा, "अलका है यह।"

सावित्री खडी थी। पिता की कविता सुन मुस्किराकर पूछा, "अलका क्या पिता ?"

"इसका नाम है, यही नाम लोगो से वतलाना, और जैसा अव तक कहा है, मेरी वहन है। खूव याद रखना, भूलना मत।"

"हाँ, ठीक है।"

नारियल के जल की तरह प्रसन्न, विश्वामित्र के वर से मनुष्य रूप, विद्या और वुद्धि के कठोर आवरण के भीतर, छिपा दिया गया। स्नेह का ऐसा प्रगाढ लेप होता है कि जीव की तृप्ति मिलने के कारण जीवन दु खप्रद, भार-सा नही मालूम होता, वल्कि इस मायिक वन्धन मे कायिक आनुकूल्य या प्रतिमा प्रसन्न चमकती है। अलका पितृपक्ष के दृश्य अपनी ही आँखो अनादि काल मे अवसित होते देख चुकी थी। उसके चिर-स्नेह के अभ्यस्त आश्रय पिता-माता को एक अलक्ष्य शक्ति ने मूर्तियो से पुनश्च अणु-परमाणुओ मे चूर्ण कर दिया था। अव दूसरे शक्ति-चक्र से घूर्णित, विशेष कष्टो के वाद, एक दूसरा स्नेहमय, मधुर माया-ससार सगठित हो गया है। उसे पूर्वार्जित नष्ट स्नेह-प्रतिमाओ का दु ख तो है, पर सन्तप्त हृदय को अनेक प्रकार से स्नेह-समीर भी स्पर्श कर ताप हर जाती है, इसका भी सुख उसे मिलता है। सावित्री एक ऐसी वहन उसे मिली, जैसी पिता के गृह मे दूसरी न थी। वम्वई से तार का जवाव आया है, उसका पति अव वहाँ नही, वहुत सम्भव, वह घर गया हो। उसके दूसरे धर्म-पिता स्नेहशकर अपनी पूरी शक्ति से उसके हितो को देखते है। वम्वई मे उनके मित्र और विशेषता से उसके पति का पता लगा रहे है। अलका इन्ही भावनाओ की मूर्ति वनी खडी थी।

"इनकी ससुराल का पता कुछ मिला पिता ?" सावित्री ने साग्रह पूछा।

"हाँ, जो हाल पिता के गृह का, वही श्वसुर-गृह का भी।" स्नेहशकरजी स्तब्ध वैठे रहे।

"तो क्या "

"हाँ, कोई नही, विजय के पिता, माता, भाई, सभी स्वर्ग सिधार गये। विजय है, पर पता नही चल रहा। अलका को मानसिक बहुत ही दु:ख है, पर निरुपाय दु:खों को सहना ही पडता है।

"हम लोग परसो लखनऊ चलेंगे। वहाँ इसका जी कुछ बहल सकता है। हमने ससुराल का हाल छिपा रखना अनुचित समझा। अभी इसे कष्ट है। पर जब हमें भी अपने परिवार तथा स्नेह मे सम्मिलित समझेगी, तब ऐसा मनोभाव न रहेगा।

"इसी भारत मे आश्रयहीन बालिका और तरुणि विधवाएँ भी है। उन्हे खाने को नही मिलता, भूख के कारण विधर्म को भी उन्हे ग्रहण करना पडता है, चिर-सञ्चित सतीत्व-धन से भी हाथ धोती हैं। इस घोर सामाजिक अन्धकार मे पथ-परिचय का बहुत कुछ प्रकाश पा अलका को कदापि खिन्न नही होना चाहिए।

"हम कहते है, आगे यह खेद न रहेगा। ज्ञान की शान्ति मे दु:ख की सब ज्वाला बुझ जायगी। वह अपनी बहनो के लिए प्रदर्शिका होकर बहुत कुछ कर सकती है। क्यो अलका ?"

"जैसी आपकी आज्ञा।" नत-करुण नयना अलका ने धीमे स्वर मे कहा।

"भय क्या बेटी, दुःख मनुष्य ही झेलते हैं, तू महाशक्ति। जितना परिचय शक्ति का तूने दिया, उससे अधिक की मृत्यु के सामने भी जरूरत नही। भरोसा रख। सदा समझ, भारत की दुखी विधवाएँ, महिलाएँ तुझे चाहती हैं। अब तेरी उचित शिक्षा का प्रबन्ध करना है। तू देखेगी, किस तरह की भी आशा से, उसकी पूर्ति से भी हृदय को ज्ञान-प्राप्ति के बिना इतना आनन्द नही मिलता।"

अलका पितृ-चरणो पर कोमल-नत-दृष्टि खडी रही। सावित्री ने लौंग लाकर दी।

"यह कौन है, जानती है ?"

अलका ने प्रश्न की पद्म-दृष्टि से देखा।

"मुझे क्या, अपने चिरजीव पुत्र-रत्न को कहिए। बहारने की जरूरत पर मैं खुद झाड़ू लगा लेती हूँ, उन्हे नही पकडती गनीमत कहिए।" चपल-चितवन पिता को देखती हुई प्रखर सावित्री कह गयी।

अलका नही समझी, ऐसी निगाह से पिता को देखा।

"समय आने पर सावित्री खुद तुझे समझा देगी, अभी नही।" इतना कह न-जाने कितनी दूर, चिर-कांक्षित चिराभ्यस्त यत्न कल्पित ज्योतिर्मय लोक मे स्नेह-शकरजी दृष्टि बाँधकर रह गये। सावित्री पिता के मनोभावो से परिचित थी। एक अर्थ आप ही सोचकर मुस्किराती रही।

"देश तैयार नही," स्नेहशकरजी ने सचित शान्तिपूर्वक कहा।

"जी।" सावित्री ने आँखें झुका ली।

"कार्यकर्त्ता जो कुछ भी प्रभात के विरल तारो-से देख पडते हैं, योरप के मरु-स्थल की ओर बढ रहे हैं और उद्देश जल का लिये हुए, पर नही समझते, यह एक दूसरे की प्राकृत ज्वाला से जला हुआ प्रकृति की नकल है। यहाँ के नखलिस्तान के केलो के जल से तमाम देश की प्यास न बुझेगी।"

"जी।"

"इमीलिए लोगो को समृद्ध करने के उपाय छोडकर स्वय प्रसिद्ध होने को तत्पर होते है। इस तरह जिस समूह को वे स्वतन्त्र करना चाहते है, उसे ही अपनी आज्ञाओ का अनुवर्ती, गुलाम करने के फेर मे पड जाते हैं। इससे बडा मनुष्य-मस्तिष्क का दूसरा अपकार नही।"

"आपके क्या विचार हैं ?"

"जो कुछ मैंने तुम्हारे साथ, तुम्हारे पति के साथ किया, जनाभाव के कारण अपनी भावनाओ का अनुरूप विस्तार नही कर सका। पर इच्छा है। साहित्य मे इसीलिए इन विचारो की पुष्टि करता हूँ। यदि किसी प्रवल शिला के कारण प्रवाह का पथ-रोध हो रहा हो, तो शिला के हटाने का ही प्रयत्न करना चाहिए। प्रवाह स्वय स्वतन्त्र है। यह अपनी गति निश्चित, निर्धारित करता हुआ ठीक अतल-अपार समुद्र से मिलेगा। रास्ते मे नदी-नदो का सहयोग भी उसे आप प्राप्त होगा, पर जो प्रवाह शोण के साथ सहयोग कर वगोपसागर मे मिलना चाहता है, उसे अरव-समुद्र मे गिराने का प्रयत्न केवल कारीगरी की प्रशस्ति-प्राप्ति के लिए है, यह उसकी सुविधा न की गयी।"

"आपका मतलब मैं नही समझी।" एकाग्र हो सावित्री पिता की ओर देखने लगी।

"वात यह कि देश की स्वतन्त्रता एक मिश्र विषय है। वह केवल राजनीतिक प्रगति नही। मान लो, एक मशीन वनाने की जरूरत हुई, तो कानून का जानकार क्या कर सकता है ? मनुष्य के जीवन को एक साधारण-से-साधारण गृहस्थ को जैसे निर्वाह के लिए आवश्यक छोटी-मोटी सभी वातो का ज्ञान रखना पडता है, वह खेती का हाल भी जानता है, वागवानी भी जानता है, कुछ कल-पुर्जो का ज्ञान भी रखता है, पशु-पालन मे भी परिचित है, और सीना-पिरोना, पाक-शास्त्र, वैद्यक, शिशु-रक्षा, पत्रलेखन, पुस्तक-पाठ, साहित्य, दर्शन, समाज और राजनीति के भी यथावश्यक कानून जानता है, और इस प्रकार एक मिश्र ज्ञान उसकी व्यावहारिक गृह-स्वतन्त्रता का अवलम्वन है, वैसे ही देश की व्यापक स्वतन्त्रता को सव तरफ की पुष्टि चाहिए। जव तक सव अगो मे समान पूर्णता नही होती, तब तक स्वतन्त्र शरीर सगठित नही हो सकता। हमारे यहाँ ऐसा नही हो रहा है। हमारे यहाँ तो कानून के वल पर राजनीतिक स्वतन्त्रता हासिल की जा रही है, सवाद-पत्रो मे कानून के जानकारो का विज्ञापन होता है—वे ही देश के सर्वोत्तम मनुष्य है। उन्ही की आज्ञा शिरोधार्य है।"

"पिता, पर कैसे-कैसे त्यागी नर-रत्न है।"

"मैं अस्वीकार तो करता नही, पर क्या दूसरी तरफ भी ऐसे ही त्यागी और सयत मनुष्य नही ? क्या देश उनकी भी वैसे ही इज्जत करता है ? सावित्री, नही करता, इसका वही कारण है। यह मेरी अपनी बुद्धि, अपने विचार हैं। स्वतन्त्रता के नाम से देश घोर परतन्त्र है। सवाद-पत्र एक दल-विशेष, व्यक्ति-विशेष की नीति के प्रचारक है। वे इस तरह अपने पत्र का भी प्रचार करते है। जिसे अभ्यु-दयशील, जनता मे आकर्षक, लोक-प्रिय समझते है, वरावर उसी का प्रचार करते रहते हैं। जनता वडी असमर्थ होती है सावित्री ! वह मनुष्य को विना स्याह दाग

का ईश्वर भी समझ लेती है। जो कमजोर को और भी कमजोर, परावलम्बी कर देता है। सवाद-पत्रो मे स्वतन्त्रता का व्यवसाय होता है। सम्पादक ऐसी स्वाधीनता के ढोल है, जो केवल वजते हैं, बोल के अर्थ, ताल, गति नही जानते, अर्थात् उनके भीतर वैसे ही पोल भी है। वे दूसरे की हाथो की थपकियो से मधुर वोलते है—जनता वाह-वाह करती है, और वजानेवाले देवता को पुष्प-माला लेकर यथाभ्यास, जैसा सुझाया गया, पूजने को दौडती है। यह स्वतन्त्रता का परिणाम नहीं।"

"पर नेता को सभी सम्मान देते हैं।"

"नेता ? नेता कौन है ? मनुष्य ? एक मनुष्य सब विषयो की पूर्णता पा सकता है ?"

"न।"

"इसीलिए नेता मनुष्य नही, सभी विषयो की सकलित ज्ञान-राशि का भाव नेता है। इसीलिए किसी भी तरफ का भरापूरा मनुष्य दूसरे किसी भी तरफ के वडे मनुष्य की बरावरी कर सकता है। पर देश मे यह बात नही हो रही।

"यही मैं कह रहा था। एक को पैत्रिक सम्पत्ति मिली। पिता जज थे। पूर्ण शिक्षा भी मिली, क्योकि अब रुपये मे शिक्षा का तअल्लुक है। वह इटली, जर्मनी, फ्राम, इगलैण्ड और अमेरिका आदि देशो से शिक्षोत्कीर्ण पदवियो के हीरा का हार पहनकर स्वदेश लौटे। वैरिस्टर हुए। दो करोड रुपया अर्जित किया। अन्त मे दस लाख देश को दान कर दिया। कोने-कोने तक नाम फैल गया। पत्र यशोगान करने लगे। वह देश के नेता हो गये। एक दूसरे को केवल वैल, हल और मूसल पैत्रिक चल सम्पत्ति मिली, और शिकमी जोत सिर्फ दस बीघे जमीन। वह हल और माची कन्धे पर लादकर, एक पहर रात रहते, खेतो मे जाता, शाम तक जोतता, दोपहर वही नहाकर भोजन करता, घण्टे-भर छाँह मे बैल चारा खाते, तब तक अपनी प्रिया से खेती की वातचीत करता है। शाम को काम कर घर लौटता है।

"एडी-चोटी का पसीना एक करके, मुश्किल से भर-पेट खाने को पाता है। लगान चुकाता है। भिक्षुक को भीख देता और फसल न होने पर जमीदार के कोडे सहता है। कभी-कभी उन्ही की कृपा से कचेहरी जा वैरिस्टर साहब को भी कुछ दे आता है। जमीदार, पुलिस, कचेहरी, समाज, सभी जगह वह नीच, अधम, मनुष्य की पदवी से रहित, ठोकरे खानेवाला है। कोई देख न ले, और रोने का मतलब और-और न सोचे, इसीलिए खुलकर नही रोता। एकान्त मे ईश्वर को पुकार, शून्य देख, दुख के आँसू पीकर रह जाता है। तमाम उम्र इसने ऐसे ही पार की। छोटी-सी सीमा के बाहर कोई इसे नही पहचानता। सदा इसके सिर पर समाज, राजनीति, धर्म और मनुष्य-रूप राक्षसो से मिले दु खो का पहाड रक्खा हुआ है। यह इसे अपने ही कर्मो का फल समझ, किसी को भी इसके लिए न कोसकर चुपचाप ढोता चला जा रहा है। इन दोनो मे कौन वडा है सावित्री ?"

"यही किसान।"

"यह क्या चाहता है सावित्री ?"

"यह क्या चाहता है पिता ?"

झर-झर आँसुओ का अनर्गल प्रवाह सानुभाव विद्वान् पण्डित प्रवर की आँखो

से बहने लगा। ओस से आकाश के रोने के साथ-साथ, उसके स्नेहाच्छन्द की पत्रिका, अलका भी रोने लगी। सावित्री ने रात की ही तरह पलकें मूंद ली, यह दृश्य न देखा।

सँभलकर स्नेहशकरजी ने कहा—"चाहते और क्या हैं, न्याय, इस दु ख से मुक्ति। इसलिए, जो लोग वास्तव मे क्षेत्र से उतरकर देश के लिए कार्य करते हैं, वे यदि इन किसानो की शिक्षा के लिए सोचे, हर जिले के आदमी, अपने ही जिले मे जितने हो, उतने केन्द्र कर अर्थात् उतने गाँवो मे, इन किसानो को केवल प्रारम्भिक शिक्षा भी दे दे, तो उनके जेलवास से ज्यादा उपकार हो, और यह शिक्षा की सचाई सहृदयो की यथेष्ट सख्या-वृद्धि कर दे।

"फिर वे भी इस कार्य मे कार्यकताओ की मदद करें। किसी प्रकार का सुधार पहले मस्तिष्क मे होता है। जहाँ मस्तिष्क ही न हो, वहाँ नेता की आवाज का क्या असर हो सकता है? समझदार कभी भी समझ नही छोडता। ठीक-ठीक काम तभी होता है। मनुष्य-रूपो मे जिनकी पशुओ की सज्ञा अज्ञान के कारण हो रही है, वे किसी विषय को अच्छी तरह जाने विना ग्रहण नही कर सकते। कठिन समय आने पर उसे छोड देंगे।"

"लोग इस मनोभाव को न छोडें, इसीलिए तो नेता अनेक दु ख-कष्ट झेलने, तपस्या करते है।"

"मैं विरोध नही करता। पर, जैसा पहले उस किसान के लिए कहा है, वैसा ही फिर कहता हूँ, शक्ति की दृश्य क्रिया से अदृश्य क्रिया मे और भी कष्ट मिलते है। तुम यह न सोचो कि जो मनुष्य दस-बीस वर्षो तक एकनिष्ठ हो किसानो की दी रोटियाँ खाकर उनके बच्चो को पढायेगा, उसे किसी जेलवासी से कम दु ख उठाने पडेंगे। शक्ति के सयम मे जितना दु ख, जितनी साधना है, उतना दु ख, उतनी साधना बेमेल शक्तियो की प्रतिक्रिया मे नही। गीता मे यही उपदेश है। ब्राह्मण इसीलिए क्षत्रिय से बडा है।

"जेल क्या बाहर नही? सरकारी जेलो की दृश्य दीवारो के बाहर ईश्वरीय जेलो के कैदी कम तकलीफ उठाते हैं? ऊँचे विचारो से वायु और आकाश की दीवारें और मजबूत, और दु खप्रद है। फिर एक ही पारतन्त्र्य की दीवार जेल के भीतर भी है और बाहर भी। अर्जुन सशस्त्र है, प्रतिघात करते, मार का जवाब मार मे देते हैं, कृष्ण निरस्त्र हैं, हाथ मे घोडो की लगाम, लक्ष्य सदा मार्ग पर, शरीर का बिलकुल ज्ञान नही। पर दु ख कौन ज्यादा उठाता है? सयम किसमे अधिक है? उत्तरदायित्व किसका बडा है? उद्धार के लिए वही रुख अच्छा होता है, जहाँ रुकावट न हो।

"रस्साकशी (Tug of war) मे अन्तत एक पक्ष दूसरे को खीच लेता है, पर जब तक एक पक्ष की शक्ति समाप्त नही हो जाती, खीचनेवाले कितना हैरान होते है? देश की राजनीति की अभी ऐसी दशा नही कि बराबर का जोड हो, इसलिए सुधार की ही तरह सुधार करना चाहिए, नही तो हार अवश्य होगी। नेताओ के साथ अधिक सख्या मे जनता सहयोग न करेगी। अपने अगो मे जो कमजोरियाँ है, उन्हे दूर कर किला मजबूत करने के काम मे लगने पर, किले पर गोला-

वारी होने की कोई शका नही, परन्तु साधना, कष्ट और महत्त्व भी जेलसेवा से कम नही। जेल मे व्यर्थ जीवन व्यतीत होता है। जनता मुँह फैलाये सवाद-पत्रो मे स्वतन्त्रता की राह देखती है।"

अम्विकादत्त किसान-लडको को पढाने, अपनी ही तैयार करायी पास की पाठशाला, गये थे। घर लौटे। गाँव का तमाम काम शिक्षा, गोपालन, कृषि, वस्त्र-निर्माण आदि इन्ही के सिपुर्द है। कुछ और सिखाये हुए कार्यकर्ता है, जो वही रहते हैं। कभी-कभी प. स्नेहशकरजी भी देखते हैं। पर इनका अधिक समय पुस्तक-प्रणयन मे पार होता है।

पीछे-पीछे भोला चमार कुछ मूलियाँ व्यवहार मे देने के लिए लेकर आया। टोकनी मे रखकर सावित्री ने निकट ही बैठाला। भोला चमडे का बाजार गिरने का हाल वतलाने लगा।

मन्ना पासी चौगडे 3 4 शिकार कर लाया था। अम्विकादत्त मास खाते थे। सावित्री को भी अरुचि न थी। सिर्फ स्नेहशंकरजी उत्तेजक समझकर न खाते थे। इन दोनो के लिए उन्होने स्वय राय दी थी।

मन्ना लगभग सेर-भर मास महुए के पत्ते के दोने मे ले आया, और द्वार पर सदर्प "भौजी, भौजी" की निर्भीक आवाज लगायी।

सावित्री ने उसे बुलाया। मन्ना ने भीतर आकर भौजी के हाथ पर हँसते हुए मास का दोना रख दिया।

मास की ओर देखकर शोभा ने ऐसी मुद्रा वनायी कि स्नेहशकर समझ गये, इसने मास कभी खाया नही, इसलिए घृणा करती है।

हँसकर, पास बुला कहने लगे, "आज हमारा-तुम्हारा अलग चूल्हा दग जाय, हम तुम्हारे दल मे हैं।"

"क्या दीदी खाती हैं ?" भयभीत दृष्टि से सावित्री की ओर देखते हुए अलका ने पूछा।

"हाँ, रोज बाजार मे वकरा आता था। तुम्हारे आने मे वन्द था। अव यदि कहो, आज से श्रीगणेश हो। क्यो, दीदी से अव विशेष सहानुभूति नही रही ?"

अलका कुछ पग पिता की ओर वढ गयी, "मुझे डर लगता है।"

स्नेहशकर हँसने लगे।

छह

कानपुर की एक सकीर्ण गली के मकान मे वैठा हुआ युवक आवाज पा वाहर आया, और मित्र को देखकर प्रसन्नता से लिपट गया, "तुम आ गये विजय ? आने का पत्र नही लिखा तुमने।" विजय को ले जाकर अपने कमरे मे वैठाला, कुली ने

उसका सामान रख दिया। विजय ने कुली की मजदूरी चुका दी। फिर एक साँस छोडकर कहा, "वडी विपत्ति मे हूँ अजित!"

"विपत्ति!" शका की दृष्टि से अजित ने देखा।

विजय—"हाँ, मेरे मा-वाप, सास-ससुर, सवका इसी वीमारी मे शरीरान्त हो गया! मेरे पास ससुराल से एक पत्र आया था। लो, पढो।"

विजय ने शोभा का पत्र पढने को दिया। अजित पढने लगा। पढकर साश्चर्य विजय को देखा।

विजय फिर कहने लगा, "उसके गाँव मे पता लगा है, वह किसी के साथ भग गयी।"

अजित—"झूठ है। जिसके हाथ का ऐसा पत्र है, उसके मनोभाव वैमे नही हो सकते।"

विजय—"लेकिन पता नही लग रहा, क्यो गाँव से गयी? उस गाँव के जिलेदार, कहते हैं, उसके वडे हितकारी थे। उनकी सूरत लेकिन एक खासे मक्कार की है।"

अजित—"वस-वस, यही कुछ रहस्य है।"

विजय—"लेकिन रहस्य का पता लगने-लगाने तक शोभा का सतीत्व तो नही रह सकता, जैसा समय है।"

अजित—"यह ठीक है। पर यह भी मम्भव है, कुछ दाल मे काला देखकर उसने आत्महत्या कर ली हो, और पकड जाने के डर से गाँववाले छिपा रहे हो।"

कुछ देर तक दोनो सन्ध्या समय के प्रान्तर की तरह शून्य-जन मौन वैठे रहे। विजय ने कहा, "क्या करता, लाचार घर चला। रास्ते मे सवाद मिला, पिताजी और माताजी का भी देहान्त हो गया है। छोटा भाई था, उसे भी सरदी लग चुकी थी, दु ख, शोक और रोग मे उसने भी प्राण छोड दिये। घर की रकम जमीदार के हाथ लगी। अचल सम्पत्ति कुछ थी नही। फिर जाना न जाना वरावर सोचकर यहाँ चला आया।"

अजित—"तो क्या विचार है अव?"

विजय—"जो एक मनुष्य का होना चाहिए, लेकिन न-जाने क्यो कुछ दिनो से पुलिस पीछे लगी है। यहाँ रहूँगा, तो मुमकिन, तुम पर भी शक हो।"

अजित—"अरे, यहाँ तो छ महीने से ससुरजी की वेटी जवान है, रोज़ देखने आते है।"

विजय—"तव यही वात होगी, जो मुझ पर सन्देह है। तुम्हारे पत्र के कारण है।"

अजित—"लेकिन तुम्हे मैंने कोई ऐसी वात तो नही लिखी।"

विजय—"पत्र लिखा। सम्वन्ध है। शिकारी हो—राह-चलता, व्याघ्र को वू मिली।"

अजित—"वडे भाग्य है जी, एक शरीर-रक्षक हमारे साथ रहेगा।"

विजय हँसने लगा—"ये गुप्त विभागवाले वकरे चुन-चुनकर, पौदो के सिर काटकर खाते है—पत्ते नही, नये कोपलवाले डण्ठल। एक वार चर जाने पर फिर

पौदा नही पनपता, धीरे-धीरे मुरझाता हुआ सूख ही जाता है।"

अजित ने विजय को बीडी दी। विजय ने इनकार किया। तब अपनी मे आग लगा लापरवाही मे कमरे को धूमायमान कर पुकारा—"रामलोचन, जरा दो कप चाय तो बना लाओ।" फिर विजय से पूछा—'तो तुम अब क्या करना चाहते हो ?"

विजय—"सोचा था, एम् ए. कर लूंगा, पर भाग्य मे ऐसा नही लिखा, और डिगरी करूँगा भी क्या लेकर ?—नौकरी करनी नहीं, किताब पढकर समझने लायक लियाकत हो ही गयी है। ईश्वर ने रास्ता भी साफ कर दिया। अब तो तमाम भारतवर्ष अपना मकान है। उसी के लिए जो कुछ होगा, करूँगा।—'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'।" कहकर कुछ देर विजय चुपचाप बैठा रहा, फिर अजित से पूछा, "तुम क्या करोगे ?"

अजित—"तुम ईश्वर पर विश्वास रखते हो, ऐसा जान पडता है। मुझे तो ईश्वर के नाम पर अँधेरे के सिवा और कुछ नही नजर आता। हालाँकि मैं डी ए.वी. स्कूल का पढा हुआ हूँ। खैर, मैंने खराबी यह की कि पहले के परिचय के कारण ज्योति स्वरूप को अपने कमरे मे टिका लिया। मैं नही जानता था कि ज्योति.स्वरूप इस समय राजनीतिक अन्धकारपथ के यात्री है, इससे खुफियावाले हमेशा उन्हे राह बताने के लिए उनके साथ रहते है। नतीजा यह हुआ कि उनके जाने पर सरकार की राजभक्त रियाया की लिस्ट से, धर्म-भ्रष्ट हिन्दू की तरह, मैं भी जाति-च्युत किया गया, अर्थात् सरकार के परिवार मे मेरी लुटिया-थाली अलग कर दी गयी। साथ-साथ पूरे सेर-भर मिर्च की झार से पिताजी के सामने मेरे नाम पर छोक-फटकार की गयी है। मै बुलाया गया। पिताजी ने पूछा, 'तुम्हारे पास ऐसे लोग क्यो आते है, जो सरकार के खिलाफ है ?' मैंने कहा, 'मुझे सरकार की खिलाफत का कुछ इल्म नही।' 'अबे गँवार, खिलाफत क्या कहता है, बी. ए. मे पढता है,' पिताजी गरज उठे। मैंने कहा, 'आप अपने खिलाफ का नाउन (विशेष्य) समझ लीजिए, मैंने उर्दू की वर्दी नही पहनी।' तो 'उनसे क्यो मिलता-जुलता है, जो सरकार के खिलाफ है ?' बडे क्रोध से कहा। मैंने फिर गलती की, लेकिन भाव की नही। कहा, 'तो क्या वे सरकार की खिलाफत का तमगा लटकाये फिरते हैं ?' इसका कुछ जवाब न देकर मुझे घर से निकाल दिया। बडे शिव-भक्त हैं, पर अक्ल ऐसी! बताओ, वह शिवजी के बैल या शीतलादेवी के शिष्ट वाहन से भी बढकर विशेषता रखते है या नही। इसीलिए 'पितरि प्रीति-मापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवत:' तो यही तक समझो। माताजी फल्गु की तरह पिताजी के अज्ञात भाव से भीतर-ही-भीतर अर्थ-जल भेजवा देती है, किसी तरह बी ए पास कर लिया है, अब उन्हे भी तकलीफ नही देना चाहता। सोचता हूँ, जिनमे बदनाम हूँ, उन्ही मे मिल जाऊँ, जो होगा, होगा। लेकिन मुझे तो इसका कुछ पता भी नही मालूम। ज्योति स्वरूप को छोडकर किसी दूसरे को जानता भी नही। उसे भी अब जाना कि ऐसा है। इस वक्त पजाब मे है। अगर पता चला, तो पहुँच तक के लिए गुनहगार हूँगा। तुम क्या कहते हो ?"

विजय—"चलो, काग्रेस का काम करे।"

अजित—"काग्रेस का हाल पूछो मत। यहाँ जो महाशय त्रिवेणीप्रसाद हैं, वह दोनो तरफ रेंगते है, ऐसे जीव है। मैं गया था। दूसरे दिन हजरते दाग फिर ऐम वैठे कि उठे ही नही। समझे ? एक वात है। देहात मे सिक्का जम सकता है। रायवरेली जिले मे कुछ काम भी हो रहा है, और अभी महीने-भर पहले मैंने एक व्याख्यान भी दिया था। किसानो की सभा थी, मैं मामा के यहाँ से देखने गया था। लोगो ने कद्र की थी। वहाँ काम चल सकता है, और यह जो तुम्हारा प्रकरण है, इसका भी वहुत कुछ रहस्य वहाँ से मालूम हो सकता है। वहाँ के किसान मुझे पहचानते है। दो केन्द्र कर लेगे, और काग्रेस से न होगा, तो स्वतन्त्र रहकर काम करेंगे।"

विजय—"ठीक है, चलो, कुछ अनुभव ही प्राप्त होगा।"

चाय पीकर विजय आराम करने लगा। अजित कुछ काम से, विजय से, कह-कर वाहर चला गया।

सात

"सुराज क्या है रे ?" वुधुआ ने महँगू मे पूछा।

"किसानो का राज।" गम्भीर होकर महँगू ने कहा।

महँगू व्यापारी है। लकडी का कारोवार करता है। देहात मे खडे ववूल, ऊसरो और काश्तकारो के खेतोवाले, मोल लेता है। काश्तकारोवाले किफायत से मिलते है, जमीदार अपने सिपाहियो से कटवाने मे मदद करता है। महँगू को काफी मुनाफा हो जाता है। आठ महीने तक, लकडी कटवाना, लदवाना और कानपुर मे वेचना, यही महँगू का काम रहता है। चार महीने वरसात-भर जुआर, अरहर, तिल्ली, सन, मूंग, उडद आदि की खेती कर घर रहता, फिर क्वार मे चने और जव-चनी असीचे वो-वुआकर कार्तिक से अपना काम शुरू करता है। गाँव मे शहर की खवरो का एक मुख्य रिपोर्टर, किसानो का जमीदार से भी मिला हुआ नेता। गाँव के रिश्ते मे वुधुआ चचा लगता है, महँगू भतीजा।

"तो क्यो रे महँगू !" वुधुआ ने पूछा, "फिर ये जमीदार और पटवारी क्या करेंगे ?"

"झख मारेंगे और क्या करेंगे ?"

वुधुआ कुछ समझ न सका कि देश मे, गाँव मे रहते हुए कैसे झख मार सकते हैं। महँगू भी गहराई तक नही समझता था। सुनता था जो कुछ, पचीसो उलट-फेर के वाद खुद भी न मानता था कि यह पुलिसवाली सरकार और जमीदार लोग लगानवाला हक छोडकर ख्वाव की तरह कैसे गायव हो जायँगे। पर दूसरो को नेताओ की तरह समझाना उसकी आदत पड गयी थी।

बुधुआ ने डरते-डरते, पलकें तिलमिलाते हुए धीरे से पूछा, "ये कहाँ जायँगे रे महँगू ?"

"तू तो वात पूछता है, और वात की जड पूछता है। गन्धी महरानी का प्रताप ऐसा है कि इनके साथ वँध जायँगे, और वोल वन्द हो जायगा, तव ये किसानो के तलवे चाटेंगे।" महँगू अपनी दाद खुजलाने लगा।

"तो लगान फिर किसको दिया जायगा ?"

"किसी को नही, लगान दिया गया, तो सुराज कैसा ? विद्यारथीजी समझा रहे थे, अव के जव मैं कम्पू गया था।"

"तव तो वडा अच्छा है।"

मैकू भी खडा सुन रहा था। अपनी समझ पर जोर देते हुए कहा, "यह वूढा हो गया, पर समझ रत्ती-भर नही। मैं लछमनपुर गया था। वहाँ वावू साहव के घर के लडके कह रहे थे कि तिलक महराज कहते है कि जमीन रियाया की है, जमींदार को लगान न दिया जाय।"

सुक्खू ने सानी करना वन्द कर, आवेश मे आकर कहा, "जिसकी लाठी, उसकी भैस, अभी गाँव-भर के आदमी मिल जाओ, दूसरा गाँव लूट लो।"

"वडी वातें न वघार" सुक्खू के भाई लक्खू ने कहा, "सरकार ने तोप के वल हिन्दुस्तान फते किया है, जवानी कैफियत से न छोड देगा, साले, कर देगा रपोट चौकीदार, तो चूतड की खाल निकाल ली जायगी, वकने दो इनको आयँ-वायँ, अभी शेर है, जिमीदार के सामने चूहे वन जायँगे, नही तो चलेगा हण्टर डिल्ली-वाला।"

महँगू ने सोचा, कही इसने मुझे भी लपेटा, तो वडे पेंच मे पडूँगा, फिर एक सूत न सुलझेगा। वदलकर वोला, "देखो न लक्खू भैया, तुम्हे रुई से काम, कपास का हाल क्या पूछते हो ? दुनिया है, कोई किसी रग मे, कोई किसी रग मे। शहर का हाल पूछते हो, वतला दिया, नही, वात की जड पूछेंगे।"

नजदीक ही, निकास पर, वीरन पासी घर की वनायी शराव पिये, अपनी चौपाल मे वैठा, नशे मे वातचीत का मजा ले रहा था। ये छ भाई है। हरएक के दो-दो, चार-चार, छ-छ लडके। इनमे भी आवे से अधिक जवान। छहो भाई अलग-अलग घर वनवाकर रहते हैं। रात को सवकी निगरानी होती है। मशहूर वदमाश। गाँव मे हाथी मारकर ले आये, हज्म हो जाय। पुलिस पता लगाती रह जाय। गाँव-भर लोभ तथा भय से इनसे सहयोग करता है। इनकी वदौलत लोधो के यहाँ भी चाँदी के गहने हो गये। चोरी का माल चवन्नी कीमत पर विकता है। ज्यादा सामान—सोना-चाँदी—गाँव तथा पडोस के महाजनो के यहाँ दूसरे-दूसरे रूप मे मिलेगा। रामदीन सोनार सोना और चाँदी गलाकर दूसरे ढाँचे मे गढ देता है। थानेदार और पुलिस के सिपाही ठेके से शराव नही खरीदते, वरावर वीरन वगैरह के यहाँ से चालान चौकीदार के हाथ जाता है। शक्ति, सगठन, कार्य-कलाप, सभी तरफ से गाँववाले वीरन के खानदान से डरते है। गाँव का नेतृत्व वहुत कुछ इन्ही के हाथ है। जमीदार भी इन्हे मानता है। वेगार, हल, वेडी, भूसा, रस आदि रकम सिवा इन्हे नही देनी पडती। इनकी रातवाली आमदनी काफी

रहने पर भी ये तंगदस्त रहते हैं। उधर थानेदार की निगाह बदल गयी है, क्योंकि कुछ रुपये—सब लोगों ने केवल 600) उन्होंने माँगे थे—पर ये नहीं दे सके। पुलिस से तंग आ इन्हीं लोगों ने गाँव को सलाह देकर सभा करायी। पर बाहरी तौर पर सभा से बाहर थे। महँगू की चालबाजी से बीरन को बड़ा क्रोध आया कि पलट रहा है, बेचारे बुधुआ को पिटवायेगा। पहले से सलाह हो चुकी थी कि अब के महाजन से कर्ज लेकर लगान न चुकाया जाय। जिसके खेत की जैसी पैदावार हो, वह वैसा ही लगान दे। देखा जाय, जमींदार क्या करता है। बुधुआ बड़ा ही गरीब किसान है, फिर अब के उसके खेत की खरीफ डेढ़ हाथ से ज्यादा नहीं बढ़ी, वह भी जगह जगह जली हुई। इसीलिए उसे सुराज की सबसे ज्यादा खोज है कि दो-चार रोज में मिल जाय, तो जमींदार के कोड़ों से पीठ का निकट सम्बन्ध जाना रहे। बीरन यह सब समझता था। चुपचाप उठकर झूमता हुआ महँगू के पास पहुँचा, और हाथ पकड़कर, अकड़ से पूछा, "क्यों रे साले तू बबूलों का ठेकेदार है या सुराज का भी? गाँव के गरीबों के बबूल काट लिये। जिनके खेतों में वे थे उनके अनाज की पैदावार घटी या नहीं? कुछ जगह बबूल छाँह मारते रहे? फिर खेतों का पूरा लगान सबने चुकाया? तो बोल साले, वे बबूल किसानों के थे या जमींदार के?"

महँगू के होश फाख्ता हो गये। लगा गिड़गिड़ाने, "भैया, मैं कानून क्या जानूं, मैं तो यही जानता था कि जो पेड़ जिमींदार बेचते हैं, वे उन्हीं के हैं, तुम कहो, तो मैं कान पकड़ता हूँ। (एक हाथ से कान पकड़कर) अब कभी जो ऐसा काम करूँ।"

बीरन ने छोड़ दिया। सोचा था—'इस साले के पीछे साल-भर और ससुराल हो आऊँ। सुराज समझाता है, ढफाली कहीं का! हम लोग कलकत्ता, बम्बई, लखनऊ, इलाहाबाद तक पैंज भरते हैं पर किसी से नहीं कहते। दद्दा कमिश्नर साहब की कनात काटकर, ऊपर से डण्डे-डण्डे उतर गये। उनकी वास्कट उठा लाये, ऐन मेले में, और सिपाही पहरा देते रह गये। कह-बदकर उठा लाये। तीसरे दिन वापस दी। कमिश्नर साहब ने पीठ ठोकी, और बहादुरी में नाम लिख दिया। वे जीते-जी मर गये, पर कभी अपनी जुबान से बहबूदी न बघारी। और, यह बित्ते-भर की मेख—जी में आता है, गाड़ दूं साले को—जहाँ देखो, वहीं खटक रहा है। तू ही कम्पू जाता है? विद्यार्थी ने तो यह भी कहा है, क्यों बुद्धू काका? (हाँ बच्चा कहा है, बिना बात सुने बुद्धू ने गवाही दी, और मुँह बाये खड़ा रहा) कि बाजार में मुसलमानों का काटा बकरा न मोल लो, खाओ तो काटकर खाओ। ठेके से शराब न खरीदो, पियो तो बनाकर पियो—सूबेदार बाबा के लड़के हरनाथ काका कहते थे कि नहीं, गनेशपुरवाले?'

बीरन से सहयोग करने के लिए, विशेष उत्साह के साथ झूठ पर सच्चाई का जोर देकर सुक्खू ने कहा, "अभी परसों तो मेरे सामने कहा, चारा लेने आये थे।"

"खबरदार, जो बात हो चुकी है, उससे कोई टला, तो खैर न समझे, फिर वह है यह बीरन।" सबको सूचना देकर बीरन अपने घर की तरफ बढ़ा ही था कि

जमीदार का सिपाही दूसरी गली मे आया, और बुधुआ को पकडकर डेरे की तरफ घसीटा, "चल, मालिक बुलाते हैं।" करुण स्वर से बुधुआ ने वीरन को पुकारा, पर वीरन ने सुनकर भी न सुना, दरवाजा खोलकर भीतर चला गया, और लोग भी लम्बे पडे।

"वहाँ चल, उसको क्या पुकारता है? वहाँ कुमेटी का हाल पूछ, और देख आटा-दाल का भाव।" बुधुआ को घसीटता हुआ सिपाही डेरे ले चला।

जमीदार पं कृपानाथ डेरे पर तप रहे थे। यह एक ही गाँव उनकी जमीदारी है। उनके पिता पहले होटल मे रोटकरे थे। फिर लखनऊ मे सण्डीले के लड्डू वेचते रहे। फिर कपडे की फेरी की। वाद मे सिगर की दो मशीनें खरीदकर रूमालो का कारखाना खोला। धीरे-धीरे वडे आदमी वन गये। इधर जव प्राचीन राज-वशावतश नवीन सभ्यता की आग मे ऋण के रुपये तृण की तरह फूंकने लगे, और सभ्यता की ज्वाला राजा के वाद राज्य को भी दग्ध करने चली, तव सरकार ने यथाधर्म उपाय का जल सीचा, अर्थात् सम्पत्ति को वचाने का विचार कर कुछ गाँव नीलाम करना निश्चित किया। यह गाँव भी नीलामवाली नामावली मे जुडा। इसके कई खरीदार खडे हुए। पर कृपानाथ के पिता इस गाँव के ज्यादा नजदीक थे। अर्जी मे इस निकटतम सम्वन्ध का उन्होने उल्लेख भी किया कि चूंकि दूसरे खरीदारो से वह इस गाँव के ज्यादा नजदीक रहनेवाले है, इसलिए उनका हक भी ज्यादा पहुँचता है। वडी सिफारिशे करवायी, हुक्कामो की मुट्ठी भी गर्म की। अन्त मे सत्तर हजार का मौजा तीस हजार मे उन्हे ही मिला। अव वह नही हैं, उनके पुत्र कृपानाथ जमीदार है।

बुधुआ को देखते ही कृपानाथ आग हो गये, "क्यो रे, अभी पारसाल के लगान-वाले दो रुपये वाकी है, नजर की वात नही, इस साल भी अधकरी का वक्त आ गया, तू देने का नाम नही लेता! देता है आज रुपये या मुर्गा वनाया जाय?"

बुधुआ इतना घवराया कि उसकी जवान वन्द हो गयी। खडा सिर्फ काँपने लगा, जो रुपये न रहने का रोएँ-रोएँ से दिया हुआ उत्तर था। बुधुवा की हालत प्राय अच्छी नही रहती। कारण जमीदार साहव स्वय हैं। दूसरे खेतो से कम निर्ख पर जो खेत उसे देने की उन्होने कृपा की, वे उपज मे ऊसर से वरावर होड करनेवाले, प्राय: महाजन को डेढी का नाज भी नही दे सकते। इसलिए बुधुआ का पेशा काश्तकारी केवल दिखाने के लिए है, करता है वह मजदूरी। इसी से पेट काटकर किसी तरह उसने यहाँ तक लगान चुकाया।

जवाव न पा जमीदार साहव ताव मे आ गये। तव तक लक्खू भी पहले की वातचीत से घवराया हुआ, सफाई देकर वचने के विशद उद्देश से, जमीदार के पास आया, और वडे भक्ति-भाव से प्रणाम कर, हाथ जोडकर खडा हो गया। "क्या है लक्खू!" चालाक चितवन, पर सस्नेह स्वर से कृपानाथ ने पूछा।

"यही कि मालिक, गाँव विगड रहा है।" हाथ मलते हुए लक्खू ने कहा। पाले की पलित अरहर-जैसे तमाम अगो से मुरझाया हुआ, झुलसी कलियो-सी आँखो मे ओस के अश्रु-कण, बुधुआ ने लक्खू को प्रखर-मुख किरणो मे, अनिमेष-क्षण, कृपा-काक्षित देखा।

बुघुआ से लक्खू और लक्खू से जमींदार की ओर निर्झरी-सी वक्र फिरती हुई कृपा-प्रार्थना स्वाभाविक चाल से चलती रही। जमींदार को सक्रोध, सप्रश्न, साग्रह अपनी तरफ देखते हुए लक्ष्य कर वर्फ हुए लक्खू से हर्फ-हर्फ झूठ समाचार निकलने लगे। कहा, "यह सुराज की खोज में नेता की तरह तत्पर है, सरकार और जमींदार के दो पाटों में रहकर पिसने से नहीं डरता, लोगों को अपनी लीक पर ले चलने को बछवे-जैसे फेरता फिरता है, कहाँ से भगवान् जाने इसके पास खबर आती है। अब रियाया को लगान न देना होगा, दिन-भर इसी काम में तत्पर रहना है।" बुघुआ कमजोर था, और उसने लक्खू का कोई स्वार्थ न था, इसलिए उसने गुनाह बेलज्जत नहीं किया। पासियों के खिलाफ एक आवाज उसने नहीं उठायी। ऐसे प्रोपागैंडा के पेच से सच्चा मतलब निकालते हुए बुघुआ को देर न लगी। अपने दरिद्र भाल पर मन-ही-मन कराघात कर ईश्वर-स्मरण करने लगा। लक्खू कृपा के पुरस्कार के लिए स्वामी के निश्छल सेवक की तरह हाथ जोड़े अचल, अनिमेष दृष्टि से खड़ा रहा।

एक तुच्छ गँवार किसान भी इतना कर सकता है, जमींदार न समझे। उनकी समझ में निस्तरंग जल-तल की तरह उनकी जमींदारी के लोग बराबर वैपक्षिक शक्ति धारण करते हैं, फिर कल-कल स्वर से विरोध-प्रचार करने में सभी जल-मुख मुखर हो सकते हैं, इस बीज-मन्त्र के प्राय सभी जमींदार प्रत्यक्ष भाष्य, जमीन की स्वत्पाधिक उर्वरा-शक्ति मानते हुए भी खाद के गुण-परिणाम से शक्ति-परिमाण को भी साथ-साथ बराबर कर देते हैं। इसलिए बुघुआ के कार्य-कलाप पर सन्देह की छाँह को पेट भी मिला। अपने अहाते में, अपने मातहत आदमियों के बीच, अपनी महत्ता के आप ही प्रमाण, हाथ में डण्डा लेकर जमींदार कृपानाथ पशुवत् बुघुआ की बुद्धि को प्रहार से पथ पर लाने लगे। क्षीण, दुर्बल, मनुष्याकार, वह चर्मास्थि-शेष प्रत्यक्ष दारिद्र्य कृपा-प्रार्थना की करुण दृष्टि उन्मीलित कर रह गया। प्रहार से पीठ फट गयी, मुख से फेन बह चला, वहीं पृथ्वी की गोद में वह बेहोश हो लुढक गया।

आठ

अजित के इंगित पर जीवन का पूर्व-निश्चित मार्ग स्थित कर उसी रोज शाम की गाडी से विजय अजित के साथ उस गाँव पहुँचा। अजित को गाँववालों से विजय का परिचय करा देना था। गाँव के बाहर एक मन्दिर और उसी से लगी हुई अतिथिशाला है। सामने चारों ओर से बँधा हुआ पक्का तालाब, बगल में कुआँ, फुलवाड़ी। कोई रहता नहीं। सुबह-शाम स्त्री-पुरुषों की भीड़ स्नान, पूजन और कसरत के लिए होती है। यहीं दोनों आकर कुछ देर के लिए विश्राम करने लगे।

बुधुआ के मार खाने के बाद लोग आपस मे मिलते हुए रास्तो, खेतो और घरो मे वही चर्चा करते रहे। इस साल भी जुवार की अच्छी उम्मीद नही। गत दो वर्ष रवी अच्छी नही हुई। अधिकाश किसान महाजनो के कर्जदार हो चुके है। इस साल भी कर्ज से लगान चुकाया था। अभी तक उनका पूरा व्याज नही वसूल हुआ। अब कर्ज मिलने की कोई आशा नही, न लगान चुकाने की गुजाइश है। महाजन दावा करने की धमकियाँ दे रहे हैं। इधर जमीदार का जूता भी चलने लगा। छिप-छिपकर लोग पासियो की सलाह लेने लगे, और उनके वीर-रस के व्याख्यान से पूरे प्रभावित हो, किसी का जरा-सा इशारा मिलने पर, विद्रोह के लिए—यानी विना दाम के, लगान न मानने के लिए—तैयार हो गये। जमीदार के चले जाने पर पासियो के पश्चात् सव लोग बुधुआ के घर गये। जमीदार ने उसे उठवाकर भेज दिया था। उसकी फटी पीठ और हाथो के स्याह दागो पर, जो डण्डे पडने से पडे थे, गर्म हल्दी वँधवायी, और आपस मे मिल जाने के सलाह-मशविरे करने लगे।

इसी समय विजय को लेकर अजित गाँव मे पैठा। निकास के पास ही बुधुआ का मकान था। वाहर आदमियो को देखकर अजित सीधे, दूसरी राह छोडकर, गया। द्वार पर लोगो के रहने के कारण अण्डी के तेल का दिया रक्खा था। छप्पर के नीचे कई मस्तक एक दूसरे के इतने निकट थे कि पुलिस को तत्काल जुआ खेलने का शक होता। अजित ने अपना मुख-वन्द मन-ही-मन तैयार कर, वढकर खुलती आवाज से पूछा, "क्यो, सव लोग अच्छी तरह तो हो! सभा के वाद फिर कोई खास वात तो नही हुई? हमे पहचानते हो न? सभा मे हम आये थे।"

इतने परिष्कृत परिचय से कई पहचानवाले निकले। ऐसी असम्भाव्य घटना हुई कि लोगो को दु.ख की रात ही मे सुखकर प्रभात हुआ, हृदय के कमल खुल गये। 'नेताजी आ गये' हर्ष के उच्च स्वर से सबने सवेदना की। 'नेताजी आ गये' यह खवर वीरन खुद गाँव-भर को सुनाने के लिए उठा, और 'जब तक वह गाँव-भर को वही वुला लाता है, तव तक वह कृपाकर वैठें', यह प्रार्थना कर, दौडता हुआ अपने घर से कम्बल उठा लाया, और छप्पर के नीचे विछा दिया। विजय और अजित वैठ गये। प्रदीप का प्रकाश हो रहा था।

हर्ष मे कर्तव्य का ज्ञान नही होता। लोग अव तक अपना धर्म, जो सुराज दिलानेवाले नेता के प्रति है, भूले हुए थे—जैसे वे अपना धर्म, अपने ही व्यक्तित्व पर निर्भर स्वराज्य के एक ही उद्देश से वहु-फल-प्रसू महान् कर्म भूले हुए सुख की प्रतीक्षा मे पर-मुखापेक्षी हो रहे है, विजय और अजित अपने स्वाभाविक परिच्छद मे न थे। स्वेच्छा से नही, लोगो पर प्रभाव डालकर पक्ष-समर्थन के लिए भी नही, केवल कर्म के प्रसार द्वारा सहानुभूति और सत्य के विस्तार के लिए उन्होने गेरुए वस्त्र धारण किये थे। उन दिनो कानपुर मे लाल-इमली-ऊलेन-मिल्स काटन-मिल्स-जैसे कारखानो मे देशी वस्त्रो का वयन विदेशी मूल-सूत्रो के चयन से होता था, जिसका विस्तार देहात तक कोरियो और जुलाहो की गजी और गाढे मे भी हो चुका था, शान्तिपुर, ढाका, वगलक्षी, अहमदावाद, सव जगह विदेशी सूत की ही आवादी थी। अत इनके वसन के रग तक मे स्वदेशीपन न था। मिल के कपडे

गेरुए की मिसाल नारगी रग से रँगे थे। पर इनके भीतर जो रंग था, वह आज 1933 ई मे भी मुश्किल से मिलता है। नेताओ को प्रणाम करने के उद्देश से गाँव के लोग उठे, और भूमिष्ठ-मस्तक, चरणोपान्त प्रणाम कर-कर श्रद्धा का भार इन दो दिव्याधारो पर रखने लगे। बीरन भी गाँव के आदमियो को, जिनमे अधिकाश किसान थे, लेकर आया। प्रणाम कर बीरन बुधुआ का हाल बयान करने लगा। कवि न होने पर भी प्रहार के वर्णन मे उसने पूरा कवित्व प्रदर्शित किया—रूपक से रूप बाँधकर अत्युक्ति मे समाप्त किया। आवेश मे उसे यह न सूझा कि इतनी मार का केवल जिह्वाग्र द्वारा वर्णन होता है या कोई मनुष्य इतनी मार सहन भी कर सकता है।

गाँव मे शूद्रो की ही सख्या है। प्राय सभी किसान कुछ ब्राह्मण हैं, जो अत्यन्त दरिद्र, बकरियो का कारोबार करते है, अर्थात् बकरियाँ पालकर बच्चे बकर-कसाइयो को बेचते है। दो-तीन घर ऐसे भी हैं, जो काश्तकारी करते है। ब्राह्मण होने के कारण गाँव के लोगो मे उनकी पूजा है, पर तभी तक, जब तक वे गो-ब्राह्मण है। यह मनोभाव वे लोग समझते थे, इसलिए अपनी पूजा प्रचलित रखने के विचार से बराबर गाँव के अधिकाश लोगो के साथ रहते थे। इधर पासियो का प्राधान्य होने पर उन्ही की प्रभुता मानकर रहते रहे। बुलाने पर सोलहो आने गाँव आया। बचाव की सबकी इच्छा थी, और एकाएक वैसी व्याख्यावाले सुराज के प्राप्त होने पर भी महामूर्ख ही फल-भोग से विमुख होगा। सब लोगो ने समस्वर से बीरन की वक्तृता का समर्थन किया।

बात बहुत अशो मे ठीक भी थी। विजय ने उस किसान को देखने की इच्छा प्रकट की। गाँववाले सावधानी से उसे भीतर ले गये। बुधुआ को देखकर बीरन की अत्युक्ति विजय और अजित की छोटी जान पडी। मार क बाद घाव भीग चुके थे। हाथ-पैर फूलकर स्वाभाविक आकारो को अत्यन्त अस्वाभाविक कर रहे थे। बाकी दो रुपये लगान के लिए उसकी यह दुर्दशा हुई है—जानकर इन लोगो की दशा के सुधार के लिए विजय ने जान तक देने का निश्चय कर लिया।

सब लोग बाहर आये। जमीदार के उपद्रवो से बचने के लिए गाँव के लोगो को किस प्रकार सगठित होना चाहिए। एक अलग कोष सर्व-साधारण की भलाई के लिए एकत्र कर रखने पर मौके पर काम देता है, नही तो उपाय-शून्य गरीब रियाया जमीदार का मुकाबला नही कर सकती, फूटकर एक-एक आदमी जमीदार से कमजोर होने के कारण लड नही सकते, इसलिए उनका सगठन जरूरी है, जो भीख भगवान् के नाम पर भिक्षुको को दी जाती है, प्रतिदिन यदि उतना अन्न निकालकर एक हण्डी मे रख लिया जाय, और महीने के अन्त मे गाँव-भर का अन्न एकत्र कर बेचा जाय, तो उसी अर्थ से एक शिक्षक रखकर वे अपने बालको को प्रारम्भिक शिक्षा दे सकते है, जो तमाम दिन व्यर्थ के खेल-कूद और लडाई-झगडो मे पार करते रहते है, जब तक रियाया अपने अर्थ को पूरी मात्रा मे नही समझती, तब तक दूसरे समझदार का जुआ उसके कन्धे पर रक्खा रहेगा; अज्ञान के अँधेरे गढे से बाहर उजाले मे खिले हुए फूलो से दूसरे देशो के किसानो की दशा और सुधार का ज्ञान प्राप्त करना यहाँ के किसानो के लिए बहुत जरूरी है। यहाँ लोग

यह भी नही जानते कि किस तरह दस मन की जगह पन्द्रह मन अनाज पैदा किया जा सकता है, क्यो यहाँ के लोग इतने दुखी और सदा सताये हुए रहते हैं आदि-आदि। किसानो की सुविधा, सुयोग और उन्नति के मर्म से भरी अनेक प्रकार की बातें विजय ने सुनायी।

जो-जो चित्र वह खीच रहा था, सदियो के अन्धकार से मूँदे सबके हृदय का प्रफुल्ल पंकज प्रकाश पा जैसे एक-एक दल खोलता जा रहा हो, ऐसा आनन्द लोगो को मिला। अपने भविष्य की इस सुहावनी कल्पना मे वीरन और उसके भाइयो को शराब के नशे से ज्यादा रगीन, एक न-जाने हुए न-जाने कैसा स्वर्ग सुखकर छवियो मे भुला रखनेवाला मालूम हुआ। हृदय के सागर ने पूर्णेन्दु को प्राप्त करने को लालसा के सौ-सौ हाथ फैला दिये। अब तक एक दूसरे के प्रति द्वेष का विष भर रखनेवाले जो सर्प थे, सुखकर स्वर सुनकर, काटना भूल, मन्त्र-मुग्ध रह गये।

अजित ने याद दिलाकर उस भाषण के मुख्य कार्य पर कहा, "कल से कुछ चन्दा एकत्र करो, और यह नेताजी लडको के पढाने का भार लेंगे। सिर्फ इनके भोजन का सब लोगो को प्रबन्ध करना होगा।"

"इससे अच्छी ऐसे विद्वान् नेता के रहते गाँव की रक्षा की और कौन-सी बात होगी," लोगो ने प्रतिध्वनि की, "नेताजी के रहने पर जमीदार न सतायेगा, रकम सिवा जो लगान की दूनी चाल बढ रही है, रुक जायगी, लड़के पढ-लिख जायँगे, गाँववालो को जैसे विधाता ने इच्छित वर दिया।"

पर वीरन को इतने ही से विश्वास न हुआ कि गाँववाले सच्चाई से ठीक राह पर चले जायँगे, जमीदार के बहकावे मे न आयँगे। कई मर्तबे गाँववालो ने धोका दिया है। मुमकिन है, अब के भी दें, इसलिए उसने कहा, "भई, दूध का जला मट्ठा फूँककर पीता है। अब के सब लोग महादेव बाबा के थान पर चलकर कसम करो कि कोई एका छोडकर जमीदार की तरफ न जायगा।" जो लोग गाँव की फूट से कई बार मार खा चुके थे, और पीछे अपने घर-द्वार, रुपये-पैसे, बाल-बच्चो की रक्षा के लिए, मनुष्यता से हाथ धो, महीनो तक जमीदार के पीछे-पीछे फिरते रहे, वे वीरन की इस बात से सहमत हो गये। पासी सब वीरन के साथ थे, इसलिए तमाम गाँव साथ हो गया। महादेवजी के मन्दिर मे सब लोगो ने कसम खायी, "जो गाँव से फूटकर अलग हो, वह दोगला है।"

एक ब्राह्मण के यहाँ विजय और अजित के भोजन का प्रबन्ध हुआ। कच्ची बन रही थी। गृहिणी ने पति से पूछा, "ये नेता कौन जात के होते है?"

"कोई जात है इनके? रँगे स्यार हैं, पेट का धन्धा एक कर रक्खा है।" गम्भीर उत्तर मिला।

नौ

तीन-चार दिन तक अजित बुधुआ की सेवा तथा अपने केन्द्र के निश्चय के लिए विजय के मा ' ही रहा। शोभा के सम्बन्ध मे भी उसने बातचीत की, और समझा कि उसके लिए विजय के हृदय मे स्थान है, यदि वास्तव मे उडी हुई खबर झूठ है, पर ज्यादा झुकाव देश-सेवा की ही तरफ उसका है। शोभा को प्राप्त कर गार्हस्थ्य सुख की लालसा उसे नही, केवल शोभा को सम्मान की दृष्टि देखने से वह विरत न होगा। और विजय की शिक्षा, अध्ययन और चरित्र नवीन यौवन मे ही जीवन की जितनी गहराई तक पहुँच चुके थे, अपने संस्कारो से जिस रूप मे उसे बदल चुके थे, वहाँ से उसका प्रवर्तन जीवन का ही नष्ट होना था, किसी के इच्छित एक दूसरे रूप मे बदलना नही। अजित भी, स्वभाव के दूसरे परमाणुओ से गठित होने पर भी, सहानुभूति मे विजय की ही तरह मनुष्य था। इसलिए मित्र से बातचीत कर एक बार और केवल समझ लिया और अपने मुख्य उद्देश के साथ गौण का स्वरूप बतला, विजय से विदा होकर उसकी ससुराल की तरफ गया। वह, और कोई भी समझदार किसानो की वैसी हालत मे काम कर किसी भी जगह जड जमा सकता है, जिसे किसी प्रकार के भी दु ख को वीर्य के पुष्ट, सुदृढ भुजो मे निर्भय बाँधने का हार्दिक उत्साह हो, सुबोध अजित यह खूब जानता था।

वर्षा के जल के दबाव से तट और तराइयो को भी छापकर बहनेवाली क्षुद्र नदियो की तरह सुराज की प्राप्ति से लगान न देने का कल्पित सुख जनता के दुख-हृदय के दोनो कूल प्लावित कर बहने लगा। पडोस के प्राय सभी किसान इस प्लावन के सुख-प्रवाह मे बह चले। बुधुआ के दु ख मे सेवा करनेवाले किसानो के बालको को केवल भोजन प्राप्त कर पढानेवाले विद्वान् स्वामीजी शीघ्रातिशीघ्र पडोस के गाँव मे प्रसिद्ध हो गये। उनके पहुँचने के दूसरे दिन प्रभात से उनके वस्त्रो का रग और ज्योतिर्मय नेत्र देख जनता नेता कहना छोडकर स्वामीजी शब्द से अभिहित करने लगी। देखते-देखते अनेक गाँवो के साधारण किसान स्वामीजी के अनन्य भक्त हो गये। वे लोग अपने यहाँ भी वैसी ही योजना करने को उत्सुक हुए। विजय ने पाँच-छ गाँव मे जहाँ से मदरसे दूर थे, और किसान-बालको को पढने की असुविधा थी, उसी तरीके पर साधारण शिक्षा देनेवाला, उसी-उसी गाँव का मामूली पढा-लिखा, कलम की नौकरी करने मे अयोग्य, गृहो मे हताश रहनेवाला एक-एक युवक नियुक्त कर दिया।

बुधुआ बहुत कुछ अच्छा हो गया, पर अभी काम नही कर सकता। गाँव मे टहल लेता है। पीठ के बरारो पर पडी पपडियो से मार के निशान साफ जाहिर है। दोनो हाथो मे बाजू बाँधनेवाली स्त्रियो के स्याह दाग-जैसे मार के निशान कई जगह स्पष्ट हैं।

बुधुआ ने सुना, आज गाँव मे डिप्टी साहब का दौरा है। दौडा हुआ बगीचेवाली शाला मे स्वामीजी के पास गया। लडके पढ रहे थे। हाँफते हुए विजय को डिप्टी साहब के आने की खबर दी। उसकी इच्छा जानकर विजय उसे डिप्टी साहब

के पास ले चलने को राजी हो गया। सुना, डिप्टी साहव एक पहर दिन रहने से शाम तक इजलास करते हैं, भगवानदीनवाले वाग मे खीमे गड चुके है। दफ्तर, उनके मातहत अफसर, सिपाही और नौकर-चाकर आ गये हैं। डिप्टी साहव भी शिकार कर जल्द आनेवाले हैं, नाम है सरदारसिंह। गाँव के जमीदार और पटवारी सुवह से ही गाँव आये हुए किराये के टट्टू-जैसे दौड-धूप कर रहे है।

देखते-देखते चरण कुम्हार, पलटू अहीर, छक्कन और घसीटा चमार, लाला गगादीन, जगतू वगैरा मिश्र जातियो के कई आदमी स्वामीजी के पास उपस्थित हुए, और हाथ जोडकर साक्षात् ईश्वर के सामने जैसे, अमित-विक्रम, इगित-मात्र से शासन-चक्र चूर्ण कर सुखकर सुराज दिलानेवाले ऐन्द्रजालिक नेता स्वामीजी के सामने परम-भक्ति-भाव से नत-मस्तक खडे हो गये। किसी भी मन्द सवाद से स्वामीजी को इनकी मानसिक दशा से प्राप्त दु ख के इतना दु ख न होता। डिप्टी साहव के शुभागमन मे इन्हे कितने अशुभ की शका है, इनकी भक्ति की छाप मे मुद्रित हृदय के वाक्य-कलाप स्वामीजी ने पढ लिये। विशेष ज्ञान की प्राप्ति के लिए उन्होने चरण से प्रश्न-पथ पर प्रथम चरण रक्खा, "क्या वात है चरण ?"

"स्वामीजी, हर साल साहव आते है, और आवदस्त तक के लिए वासन मुझे भेजने पडते है। नौकर-चाकर जितने है, चपरासी तक, लोटे मलने की मेहनत वचाने को, मुफ्त के कमोरे ले-लेकर जगल जाते है। गगरी, पर्छे, नाँद, क़मोरे, वडे से छोटे तक, एक वासन घर मे नही रह जाता। महाराज, पाँच-छ रुपये का धक्का सहता हूँ।" चरण भक्ति-पूर्वक व्यथा कहकर साश्रु अनिमिष रह गया है।

डिप्टी साहव को नाँद भी देने पडते है, यह सोचकर विजय को हँसी आ गयी। सकौतुक पूछा, "तो नाँद क्यो देते हो चरण ? डिप्टी साहव को सानी का भी शौक है ?"

"महाराज, घोडे जो साथ रहते है।" विशुद्ध हृदय से चरण ने कहा।

"तुम्हे दाम नही दिया जाता ?"

"दाम मिलता होगा, तो जिमीदार की जेव मे रह जाता होगा।" चरण ने तअज्जुव से सोचते हुए कहा।

"अच्छा, अव के दाम लेकर वासन देना या कह देना, नही हैं।"

फिर पलटू अहीर वढा, और चिर काल के प्रहार से जैसी प्रकृति वन गयी थी, उसी अभ्यस्त न्यस्त मुद्रा से, टूटी आवाज, वोला, "महाराजजी, डिप्टी साहव को वीस सेर दूध विना दाम देना मेरा काम है, और वीस सेर में भी उन्हे क्या होता है, पर मेरे पास इससे ज्यादा का ठिकाना नही, वाकी गाँव से वसूल होता है।"

छक्कन और घसीटे ने शिकायत की, "पहर-भर रात रही, तव से वीघे-भर की घास छीलकर छोलदारियो की जगह वनायी, अव मालिक कहते है, लकडी चीर दे। दाम कुछ नही मिलता।" औरो ने भी वेगार की शिकायत की।

क्रोध मे विजय का चेहरा लाल पड गया। पर उसने नही सोचा कि यह सव गाँवो मे पैत्रिक अधिकारो की तरह अशक्तो पर शक्तिवालो के सनातन अधिकार मे दाखिल है। सदर्प उसने कहा, "क्यो तुम लोग ऐसा करते हो ? आपस के झगडे मे एक भाई की खोपडी मे लट्ठ मारकर फाँसी मे लटक जाते हो, और इस अन्याय

के सुधार के लिए जान पर नही खेल सकते ? साहव तनख्वाह और दौरे के लिए राह-खर्च नही पाते ? फिर तुम्हे देने से क्यो इनकार करते है ? और अगर देते भी हों, तो अव के पता चल जायगा कि वह जमीदार के पेट मे जाता है या दफ्तर मे ही हज्म कर लिया जाता है।"

लोगो को जमे आत्मा के भीतर वल प्राप्त हुआ हो, उनका मानसिक शरीर शक्ति के प्रवाह से धुएँ से गुब्बारे की तरह फूलकर, हर सिकुडन को भरकर, जैसे यौवन मे भी न प्राप्त किया हुआ पूर्ण हो गया। एक ऐसी हिम्मत आ गयी, जो आज तक नही आयी थी, जैसे 'मुश्किल-आसान' के सव मन मे प्रत्यक्ष प्रमाण वन रहे हो।

"जव तक डरोगे," विजय ने कहा, "डर पीछा नही छोड सकता, यही मुद्दतो से भरी हुई तुम्हारे अन्दर स्वभाव की कमजोरी है। अगर पढ-लिख नही सके, और पढ-लिखकर भी लोग कभी ज्यादा गिर जाते है, जव वुद्धि को वुरे स्वार्थ की तरफ फेरते हैं, खैर, तो भी तुम अपने स्वभाव को ऊँचा उठाने की कोशिश कर सकते हो। जव देखो, किसी काम के लिए दिल नही तैयार, तव जरूर-जरूर उसे करने से इनकार कर दो। अरे, मौत तो चारपाई पर होगी, फिर खुद क्यो नही उसका सामना करना सीखते ? अच्छा, जाओ, लडको की पढाई रुक रही है।"

सव लोग चल दिये। चलते समय प्रणाम करना भूल गये थे, इतनी शक्ति भर गयी थी भीतर, सस्कारो से वना-वनाया हुआ वह शरीर ही उन्हे भूल गया था। उस वक्त वह शक्ति-शरीरवाले वन रहे थे। वडे जोश से लौटे हुए घर जा रहे थे कि लाख माँगने पर भी विना दाम वासन न दूँगा, वेगार हरगिज नही कर सकता —मैं नौकर हूँ ?

सौ कदम जाने पर छक्कन को अपने स्वरूप का ज्ञान हुआ—एक दफा पुलिस की वेगार का वुलावा आया था, वह घर से नही निकला, औरत ने कहा, वह नही हैं, तव पुलिस के सिपाही घर मे घुसकर मारते-मारते उसे वाहर ले आये थे, और वेगार करायी थी, वोझ लेकर उसे थाने तक जाना पडा था। अगर उसे वेगार न करनी होती, तो चमार के वदले वह जमीदार होकर न पैदा होता ? जव वह व्राह्मण-ठाकुर नही, तव ईश्वर ने ही उसे वेगार खटकनेवाला चमार वनाकर भेजा है। करनी का फल तो सभी को भोगना पडता है।

जिस तरीके से विचार करने का उसे अभ्यास, वाप-दादो से मिला हुआ सस्कार था, उसकी उधेड-वुन मे पहले ही की तरह जाल वुनकर अपने को उसने फाँस लिया, और वडी देर से गायव रहने पर डरा। जमीदार उसे खोजते होगे। यह कोई मामूली थाने के सिपाही नही, डिप्टी साहव है, जो इजलास मे वैठकर फैसला करते है। हाँ को ना और ना को हाँ करने का जिन्हे पूरा अख्तियार है। उसे सज़ा कर दें, तो वाल-वच्चे भूखो मर जायँ।

सोचकर, डरकर उसने कहा, "चरण काका, तो फिर क्या कहते हो ?"

जो दशा राह चलते हुए छक्कन की थी, वही चरण काका तथा और सवकी थी। चरण ने कहा, "स्वामीजी ने तो जवान-भर हिला दी, यहाँ तो वासन न गये, तो पीठ का चर्सा न रह जायगा।"

"तो स्वामीजी किसी के साथ वाँस न वजावेंगे। लखुअरा ठीक कहता था,"

मधुआ ने कहा, "जिनके पास तोप और बन्दूक है, वे जवान से नही मान सकते।"

"तो तुम दोगे वासन ?" छक्कन ने पूछा।

"वासन देता हूँ, तो स्वामीजी का मान नही रहता, नही देना, तो मार खाता हूँ। कहो, सजा वोल दे डिप्टी साहव, तव चाक स्वामीजी न चलावेगे, लडके मर जायँगे भूखो। इधर ठोकर भी 5-6 रुपये की पडनी है।" चरण ने द्विविधा करते हुए कहा।

"भाई हम तो जायँगे," मधुआ ने कहा, "एक दिन की मजूरी न सही।"

"भाई, सुनो, पलटू पलट नही सकता, पूरव के सूरज चाहे पछाँह मे उगे।" पलटू ने कहा।

"साले, अहिर का मूमर, कल से ढोर निकलना मुश्किल हो जायगा, वडी वीरता वघारता है, दरवाजे के खूँटे उखडवा डालेगा जमीदार। है तेरे विस्वा-भर कही जमीन, जहाँ ढोर खडा करे ?" चरण ने डाटकर कहा।

"मैं नदी-पार सुसराल जा वसूँगा, वह कहती है, यहाँ ढोर मरे जाते हैं, न चारा, न घास, मेरे मायके मे नदी के किनारे छाती-भर चारा होता है, और विकता भी है सेंत। तू अपनी मिट्टी की सोच। साल-भर वर्तन गढता है जिमीदार की मिट्टी से और एक रोज वासन देते मुँह विगाडता है।" लापरवाही से पलटू ने कहा।

वुधुआ (काँपते हुए)—"लेकिन सव लोग कसम कर चुके हो कि कोई काम स्वामीजी और गाँव की सलाह विना न करोगे। अगर कोई करे, तो उसका हुक्का-पानी और गाँव के लोगो मे उठना-वैठना वन्द कर दिया जाय। अव तुम्ही लोग ऐसा कह रहे हो !"

"अरे, तो वासन लिये वैठा है कोई कि ले जाव ? एक वात-की-वात कह रहा हूँ।"

"वाह रे चरण काका, तुमसे कोई सच-सच पूछे, तो तुम वात-की-वात कहो !"

"एँह ! गाँव चलोगे, तो पकड जाओगे, टहलते होगे जम के दूत, मैं अव इधर से नाले मे जाकर छिपता हूँ।" पलटू राह काटकर दूसरी तरफ मुडा। यन्त्रवत् और लोग भी साथ हो लिये। सिर्फ वुधुआ रीढ टेढी किये, उस पर एक हाथ रक्खे, एक हाथ एक घुटने मे टेककर, दूने धैर्य मे कॉखता हुआ और धीरे-धीरे ढेकी की चाल गाँव की तरफ चला।

दरवाजे पहुँचा ही था कि जमीदार साहव और कुछ सिपाही मिले।

"क्यो रे," गरजकर जमीदार साहव ने पूछा, "चरना को देखा है ?"

और जोर से काँखकर, देर तक यक्ष्मा की खाँसी खाँसकर वुधुआ ने जवाव दिया कि कल मे उसने चरण को नही देखा। और जमीदार तथा सिपाहियो को सम्भ्रम-सलाम कर घर का रास्ता लिया। उसकी मार मे जमीदार साहव दिल से घवराये हुए थे कि स्वामीजी कही उसे लेकर खडा न कर दे, इसलिए उसे एक ऐसे काम से रखना चाहा कि तमाम दिन फुरसत न हो, और मेहनत भी न पडे।

सोचकर उन्होने कहा, "वुद्धू, एक काम तो करो।"

डरकर वुधुआ रुक गया। त्रस्त आँखो से देखने लगा।

"तुम जरा हमारे गाँव तक चले जाओ, काम और कुछ नही, यह लो, बीमार हो, इसलिए चार आने तुम्हे मजदूरी देते है। लल्ला बीमार है, यह चिट्ठी लल्ला के मामा को दे देना, इसमे दवा देने का हाल लिखा है, वह पढ लेंगे। बस, इतना ही काम है।"

बुधुआ घबराया। मार से बचने के लिए इनकार न किया। चिट्ठी माँगी। जमीदार ने जेब से चुटका निकालकर लिखा, और कहा, "लौटकर डेरे मे पैसे ले लेना।"

"अभी चले जाओ बुद्धू।" स्नेह-शब्दो मे कहकर जमीदार दूसरी तरफ आदमियो की तलाश मे गये। सिपाहियो को बुधुआ ने इतना कहते सुना, "कहिए साहब, न मिले, तो जायँ, अब डिप्टी साहब आ गये होगे।"

बुधुआ समझ गया। चिट्ठी लेकर वह जमीदार साहब के गाँव के बहाने सीधे स्वामीजी के पास फिर पहुँचा। बुधुआ वगैरा के आने के बाद कुछ लोग और वहाँ नहाने के लिए गये थे, और दूध-घी की चर्चा थी कि मुफ्त की गुनहगारी पडती है। स्वामीजी ने सबको देने से मना कर दिया था। लडके छूटकर लौट रहे थे, आपस मे बातचीत कर रहे थे, बुधुआ ने सुना।

स्वामीजी को वह चिट्ठी देते हुए उसने कहा, "मुझे यह चिट्ठी घर पहुँचाने के लिए दी है।" कुछ सन्देह मे आ विजय चिट्ठी पढने लगा। लिखा था—इसे शाम तक खिला-पिलाकर बहला रखना, छोडना हरगिज नही।

पढकर, मुस्किराकर विजय ने चिट्ठी रख ली, और कहा, "यही रहो बुद्धू, तुम्हे जाना न होगा, देखो, भोजन पक जाय, तो यही खा लो, फिर सीधे डिप्टी साहब के पडाव को चलें। चरण वगैरा को जानते हो, कहाँ है?"

"हाँ, यही नाले मे बैठे होगे।"

"नाले मे?"

"हाँ।"

"नाले मे क्यो?"

"घर जायँ, तो मारे न जायँगे, डटकर छिपे हैं।"

"तो जिन्दगी-भर छिपे रहेगे? जब निकलेंगे, तब न पिटेंगे? तुम जानते हो, तो उन्हे बुला लाओ।"

बुधुआ नाले की तरफ चला। विजय स्नान कर भोजन पकाने लगा। चौका-बर्तन गाँव का कहार कर जाता है।

नाले मे बैठे हुए लोग उचक-उचककर देखते थे कि कोई आता तो नही। बुधुआ को देखकर चरण उठकर खडा हो गया। आँखो मे शका भरी हुई थी। सोच रहा था, घर मे तो नही घुस गये।

पास जा बुधुआ ने कहा, "स्वामीजी सबको बुलाते है। जमीदार ने हमे अपने घर भेजा था, स्वामीजी ने रोक लिया। अब देख, आज क्या गुल खिलता है।"

एक-एक करके छक्कन, पलटू, मधुआ वगैरा नाले से निकले, और बुधुआ के साथ स्वामीजी के पास चले।

बडी देर तक जमीदार के पीछे-पीछे घूमकर, हैरान होकर दस बजे के बाद

सिप'ही लोग जमीदार को कलेक्टर साहव के सामने याद करने का न्यौता देकर चले गये। गाँव मे ऐसा स्वागत था कि कही भी दरवाजा खुला नही मिला।

दस

दोवारा हृदय को वल मिलने पर सव लोग गाँव गये, और भोजन-पान समाप्त कर दोपहर को स्वामीजी के पास लौट आये। गाँव मे कोई उपद्रव नही हुआ। जमीदार साहव से नही मिले।

दोपहर कुछ ढलने पर सवको लेकर विजय डिप्टी साहव के पडाव को चला। कुछ ही दूर पर उनका खीमा था। नजदीक जाकर देखा, हाल के पकडे हुए चोर की तरह जमीदार साहव सिपाहियो के वीच मे खडे किये हुए थे। अभी तक डिप्टी साहव ने उनसे कोई कैफियत नही तलव की। वह दस वजे खीमे के भीतर गये हुए अभी तक वाहर नही निकले। चपरासी इधर-उधर वातचीत कर रहे थे, "भूखो मार डाला साले ने, जी चाहता है, गोली मार दें।"

कोई-कोई आवाज विजय के कानो तक गँज जाती है। उसने निश्चय किया कि आज आप लोगो को फलाहर-रूप सूक्ष्म भोजन के अतिरिक्त माल-मलाई की शायद विशेष सुविधा नही प्राप्त हुई, गर्म तवो पर घी न पडकर एक-एक वूँद पानी पड रहा है, जिससे यह छनकार आ रही है, और चतुर्दिक् धूमायमान है। पटवारी एक वार जमीदार को सिर उठाकर देख लेता है, फिर अपने कागजात मे पहले से अधिक दत्तचित्त हो जाता है। गाँव के लोगो के जाने पर उसे जीवन मे पहलेपहल अद्भुत प्रकार का भय हुआ। जमीदार साहव तो वुधुआ को देखकर अधमरे हो गये, और लोग जितने थे, उन सवसे भी आज के अभियोग का तअल्लुक है, भविष्य पर विचार कर जमीदार साहव का थूक सूख गया। जितनी गुंजायश झूठ कहने की थी, जाती रही।

एक महुए के पेड के नीचे विजय लोगो को उनका खास-खास पाठ समझाने लगा, और पूरा भरोसा देकर कहा कि वे भय न करें। जो डरता है, उसकी वात विगडे वगैर नही रहती। जिसके दिल मे जो कुछ है, साफ-साफ डिप्टी साहव से कहे। इसके लिए पहले वुधुआ को ही उसने ठीक किया, और समझा दिया कि सव लोग साथ रहेगे, साहव के पूछने पर गवाही जरूर दें कि उनके सामने वह पीटा गया। वुधुआ से कह दिया कि मुकदमा चलाने के लिए कहे, तो कह देना—"साहव, मेरे पास मुकदमा चलाने को रुपया होता, तो लगान ही वाले को न चुका देता। इतनी मार क्यो खाता?"

और-और लोगो को भी उनकी मार्मिक वातें समझाकर निडर कहने के लिए भेज दिया कि साहव के निकलते ही सव लोग वढकर लम्वी दण्डवत् करना और

वुधुआ को अपनी रामकहानी कह लेने देना। विजय उसी पेड के नीचे वैठा रहा।

दौरे पे हाकिमो को प्राय मौका देखना पडता है। यहां भी एक ऐसा ही मामला था। सरहद के दूसरे गाँव के जमीदार ने एक वाग वेदखल करने की अर्जी दी थी। उनके हिसाव से वाग वजर था और लावारिस। वाग के स्वामी स्वर्ग सिधार गये थे। तीन और हकदार खडे हुए। दो दूर के भैयाचार, जिन्होने वाग के अधिकारी के साथ मरने से पहले तक तअल्लुक नही रक्खा, मरने के वाद दोनो ने सिर घुटाकर क्रिया-कर्म कर डाला, और कई महीने हो चुकने पर भी लोखर और लोटा लेकर अदालत पेश होते थे, तीसरा हकदार उस मृत मनुष्य का नाती, लडकी का दूध-पीता लडका था। पर वह लडकी उसी वाग के अधिकारी रामनाथ सुकुल की है, अदालत मे इसका पूर्ण प्रमाणाभाव था। मृत रामनाथ के भैयाचार, जमीदार और पटवारी हाकिम के पूछने पर इनकार कर गये थे कि वह रामनाथ की लडकी थी। रामनाथ के कोई लडकी थी, यह भी किसी को मालूम न था। क्योकि रामनाथ के जीवन-काल तक कभी किसी लडकी को किसी ने नही देखा। भँवर मे चक्कर खा एक तरफ को झुकी हुई अव डूवी, तव डूवी नाव के सवारो की तरह रामनाथ की युवती कन्या और युवक दामाद की दशा थी। मछुए वृहत् जाल मे जैसे गाँव की सभी मछलियो को जमीदार ने अपनी तरफ अपनी पकड मे, अपने ही दया-वारि के वश कर रक्खा था। दूसरे जमीदार अपने किसी दूसरे जमीदार भाई के ऐसे मामलात मे दस्तदाजी नही करते, न अपनी रियया द्वारा होने देते है। अभिप्राय यह कि कन्या और दामाद सव तरफ निराश हो चुके थे। महुए के नीचे कुछ आदमियो को देखकर पति को लेकर रामनाथ की लडकी उधर ही चली। गोद मे उसका वच्चा मुरझा रहा था। मा के कपोलो पर आँसुओ के कई सूखे तार लुप्तजल भरे हुए नदी-पथो का प्राचीन प्रवाह सूचित कर रहे थे। वडी चेष्टा करने पर भी, दुधमुँहे वच्चे को उसकी जीविका से जीवन दे, गाँव की कन्या और गो पर कृपा करने की वार-वार प्रार्थना करने पर भी, जल मे रहकर मगर से वैर करनेवाला कोई भी न निकला। रामनाथ की कन्या गाँव या विलकुल पडोस मे परिचय का प्रमाण न पा हताश हो चुकी थी। पर मनुष्य की आशा वडी अद्‌भुत है। महुए के नीचे कुछ आदमियो को देखकर पुनश्च कुछ आश्वस्त हो वढी।

"भैया!" विजय को लक्ष्य कर पूछा, "तुम इसी गाँव मे रहते हो?"

"हाँ, क्यो?"

युवती अपना हाल कह गयी। विजय ने अपने आदमियो से पूछा।

जगतू ने कहा, "यह सरजू वुआ है, रामनाथ दादा की विटिया, वह उनकी वाग है, आम वीनने आती थी, जब व्याह नही हुआ था, हम लोग आम छीनकर खाते थे, और रुलाते थे। क्यो वुआ, है याद?"

वुआ के आँसुओ से सूखे, चर्राये कपोलो पर दु:ख के समय भी, वाल्य की एक सुखकर स्मृति मे, लाज-विजडित मन्द सहृदय हँसी चक्राकृति फैल गयी।

विजय ने कहा, "आप निश्चिन्त रहे, जरूरत पडने पर आप जगतू तथा और दो आदमियो को शिनाख्त के लिए ले जायँ। यह भी कह दें कि गाँव जमीदार का है, गाँव से गवाह नही मिल सके, लोग जमीदार से दवते है। हाकिम को विश्वास

हो जायगा। जरूरत पर जवानी कहला दें। अगर आज फैसला न हुआ, तो ये दूसरी जगह भी नामजद होकर गवाही दे आवेंगे। पर हाकिम को विश्वास है, जान पडता है, इसीलिए भैयाचारो की हिम्मत और भैयाचारी वह देख रहे थे कि लडकी के सम्बन्ध मे क्या कहते है, अब आपका लडकी होना साबित होते ही उन सबका मुकद्दमा हारेगा, और बाग बेदखल होने लायक हैमियत से गिरा हुआ नही, यह तो हाकिम खुद मौका देखकर समझ जायेंगे—बाग खूब भरा है न ?"

"भरा ? स्वामीजी, पन्द्रह से कम भेडिए न निकलेंगे, और आम, महुए, जामुन, खीरनी, बेर, इमली, कैथे, पीपल, पकरिया, इनके अलावा हजारो झाड और चारो ओर से कटीली झाडियो का घेरा, बाग है, पूरा वन ! वह देखिए, बेनई देख पडती है।" जगतू ने उँगली उठाकर बाग दिखलाया।

बुधुआ इन बातो से दूर पूरी एकाग्रता मे साहब के निकलने की प्रतीक्षा कर रहा था। मन-ही-मन वह कितने बडे प्रतिशोध के लिए तैयार !—ऐसा मौका उसे कभी नही मिला। आज जमीदार साहब से आँखे मिलाते हुए वह बिलकुल नही डरता, वह निर्दोष है, फिर भी उसके हृदय ने कितने बार एकान्त मे अपने दुर्बल तार झकृत कर-कर शक्तिमानो से उसे निरस्त रहने की सलाह दी है, यह सब स्मरण, सब दौर्बल्य एकत्र हो, वाष्प के मेघो की तरह पूर्ण प्राबल्य से सूर्य को घेर-कर उसे समझा देना चाहता है कि तपन के विरोध मे सिक्त करने की वह कितनी शक्ति रखता है।

डिप्टी साहब को मौका देखने के लिए जाना था। जमीदार साहब ने किस प्रकार स्वागत किया था, इसका प्रमाण भी उन्हे दूसरे दिनो की तुलना मे आज का भोजन दे चुका था। जमीदार से वह नाराज थे, इसलिए कि दाम देने पर भी वह सामान नही जुटा सका। अवश्य दाम का कही नाम तक नही लिया गया। दाम की आशा होती, तो माल आशा से कुछ अधिक मिलता। पर कर्मचारी लोग जहाँ आँख दिखाकर धर्म पालन करा लेते है, और दाम, खर्च की तालिका पेशकर अपनी जेब मे रखते या आपस मे बाँट लेते हैं, वहाँ दाम के सम्बन्ध मे वे इतने उदार क्यो होने लगे, फिर जब जमीदार स्वय उनका खर्च चलाते हो। कर्मचारियो की तरह जमीदार भी फायदे मे रहते है। माल उनके घर से नही जाता। वह सिर्फ आठ-दस सेर आटा और डेढ-दो सेर दाल घर से मँगवा देते है। बाकी सब्जी, घी, दूध, मिट्टी के बर्तन और गडरियो के बकरे तक रियाया से लेकर देते है। मुनाफा यह होता है कि कर्मचारियो से उनकी पहचान बढती, अदालत मे काम निकलता है। इसी-लिए, डिप्टी साहब के आने पर, सिपाहियो के साथ आजकल के सुशासन के तौर पर कलेक्टर साहब का अतिरजित प्रचार और प्रजा की श्रद्धा की जगह भय मुद्रित कर टेढी उँगलियो घृत निकालने की कहावत चरितार्थ करते हैं।

अब के ऐसा नही हो सका। केवल आटा-दाल और एक रुपये का घी और तीन-चार सेर तरकारी दूसरे गाँव से खरीदवाकर भेज दिया था। डेरे के सिपाहियो का दो सेर दूध था, वह दूध चला गया था। इससे डिप्टी साहब और उनके कर्मचारियो को ही पूरा नही पडा, सिपाही-चपरासियो की बात क्या ? पर देवता के गण प्रभाव मे बडे होते हैं, ऐसा शास्त्रकारो ने लिखा है। देवता थोडे उपचार से प्रसन्न

हो सकते है, पर उपदेवता बिना वलिदान के बात नही करते। डिप्टी साहब के धैर्य के लिए चीज न मिलने की कैफियत काफी होती, पर सिपाही और चपरासी कभी कैफियत नही देखते। उन्होने कर्मचारियो से सलाह कर साहब से कह दिया कि जमीदार ने दाम देने पर भी कोई मदद नही की, उल्टे कहा, "मैं डिप्टी साहब का नौकर हूँ ? चीजें कहाँ मिलती है, चपरासियो को पता नही था, कचहरी का वक्त हो जाने के कारण वे दूसरे गाँव नही जा सके, कमर बाँधकर तैयार हो गये, भूखे खडे है।" डिप्टी साहब को इसके प्रमाण की जरूरत नही हुई, क्योकि ऐसा मुकद्दमा अभी तक उनके पास नही आया। जमीदार को बुलवाकर उन्होने बाहर बैठाल रक्खा। अब निकलकर सरकार क्या होती है, अच्छी तरह याद करा देगे।

डिप्टी साहब अपने खीमे से निकलकर बीस कदम बाहर आये थे कि सिपाहियो के रोकने पर भी गिडगिडाता हुआ बुधुआ पैरो पडने के लिए जमीन पर लम्बा होकर एक हाथ से खुली पीठ के बरारे दिखाकर रोने लगा।

डिप्टी साहब को उसकी दशा पर दया आ गयी। स्नेह-स्वर से उसे अभय देते हुए रुककर रोने का कारण पूछा, बुधुआ और फफक-फफककर सान्त्वना से उच्छ्वसित हो-हो रोने लगा। डिप्टी साहब परीक्षा की दृष्टि से पीठ के बरारे देखते हुए स्वय बोले, किसी ने मारा है इसे। उस उच्छवास से रोते हुए रुक-रुककर बुधुआ ने कहा, "जमीदार कृपानाथ ने दो रुपये बाकी लगान के लिए मारा है।"

अब तक विजय तथा और-और लोग जो अपने अपने मुकद्दमे मे या दर्शक की हैसियत से गये थे, एकत्र हो गये। कुछ सिपाही जमीदार साहब को घेरे हुए वही खडे थे। धीरे-से किसी ने कहा, "हुजूर, जमीदार साहब हैं इसी मिजाज के।"

साहब रुक गये। पटवारी को बुलाया। भय और श्रद्धा के कूबड से भारग्रस्त केवल सिर उठाये ऊँट की चाल दौडता हुआ पटवारी आया। साहब ने कहा, 'इसके जोत की पैदावार परसाल की क्या है ? बताओ।' सलाम कर पटवारी ने कहा कि साहब की आज्ञा न रहने से पैदावारवाली बही वह नही ले आया, हुकुम हो, तो कल लाकर पेश करे। बुधुआ से साहब ने कहा, 'तुम जमीदार पर मुकद्दमा चला सकते हो।' जैसा सिखलाया हुआ, बुधुआ ने कहा, "हुजूर, रुपया होता, तो लगान न चुका देता, मार क्यो खाता ?"

साहब ने जमीदार को पूछा। बढाकर सिपाहियो ने परिचय करा दिया। कृपानाथ की जबान से निकला, "हजूर, ये लोग काग्रेस से मिले है, और एक आदमी वह खडा है, तमाम गाँव बिगाडे हुए है। सारी करामात इसी की है।"

साहब ने विजय की तरफ देखा। विजय बढ गया। न-जाने क्यो, साहब के मन मे विजय के प्रति इज्जत पैदा हुई। पूछा, "आप काग्रेस मे हैं ?"

"जी नही।"

"आप यहाँ के रहनेवाले हैं ?"

"जी नही।"

"फिर यहाँ क्यो है ?"

"किसान-लडको को पढाना मेरा लक्ष्य है, मैं और कुछ नही करता, जो भीख गाँव से वाहर मुफ्त जाया करती है, उसके दुअन्नी से भी कम मे मेरे जैसे तीन शिक्षको की गुजर हो सकती है, केवल भोजन कर गरीबो को शिक्षा देना मैंने अपना लक्ष्य कर लिया है।"

साहव ने आपाद-मस्तक विजय को देखा।

"आप सन्यासी है ?" पूछा।

"जी हाँ, यह काम अव तक सन्यासियो के ही हाथ रहा है, जो कम लेकर ज्यादा देते रहे।"

"आप कहाँ तक पढे है ?"

"मैं वम्वई विश्वविद्यालय का ग्रेजुएट हूँ।"

डिप्टी साहव नौजवान थे। हाल ही कॉलेज छोडा था। तव तक विद्या और विद्यार्थियो की प्रेम-वर्षा शासन-समुद्र मे मिश्रित हो लवणाक्त न हुई थी। प्रेम से पास वुला विजय से गाँव के इस उपद्रव का कारण पूछने लगे। विजय ने जमीदार की चिट्ठी निकाली। वुधुआ के हटाने का सार ही कारण है कि साहव के पास प्रमाण न पहुँचे, सुझाया। काट पर डाट ऐसी बैठ रही थी कि साहव विना विश्वास किये रह नही सके। फिर चरण, छक्कन, घसीटा, पलटू आदि को वुलाकर रसद का छिपा रहस्य समझाया। रियाया पर होते हुए ऐसे-ऐसे अत्याचारो का उन्हे बिलकुल ज्ञान न था। जिस विषय मे उनके कर्मचारी तक सटे हुए थे, उसका उन्होने केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया। प्रसग न उठाया। चिढकर जमीदार के लिए आज्ञा दी, इसे हटा दो। सिपाहियो ने व्याज-समेत वसूल किया, यानी कुछ दूर तक कान पकडकर घसीटा, फिर धक्के लगाकर रिस वुझायी। विजय से साहव ने कहा, "आपके ऐसे कार्य के लिए मैं हृदय मे आपको वधाई देता हूँ, अगर कांग्रेस से आपका तअल्लुक नही।"

फिर साहव वाग की तरफ वढे। विजय अपने आश्रम की ओर चला। कुछ आदमी सरजू वुआ की गवाही के लिए रह गये। गवाही हुई, और वाग की हैसियत वाग लिखकर साहव ने रामनाथ के नाती को ही वह हिस्सा दिया।

गाँवो मे चारो तरफ किसानो मे विजय की जय-वैजयन्ती फहराने लगी। जिन-जिन गाँवो मे अभी तक किसी शिक्षा का प्रसार न हुआ था, वहाँ-वहाँ होना निश्चय हो गया। वहाँ के कई गाँवो का विजय प्रमुख मनुष्य माना जाने लगा। जमीदारो ने रिपोर्ट डरकर न की कि डिप्टी साहव की स्वामीजी पर कृपा है, कही उल्टा फल न हो। विजय भी अपने निश्चय के अनुसार पूरी ताकत से शिक्षा के विस्तार पर लगा। उसके पास कुछ ऐसे भी लडके आने लगे, जिन्होने पासवाली पाठशाला से चहर्रुम पास किया था, पर अर्थाभाव के कारण मिडिल पास करने तहसीलवाले मदरसे नही जा सके।

अलका पिता के सुखकर वृन्त पर प्रस्फुट कली-सी कल्पना के समीर में अपनी ही हद में हिल रही है—सरोवर के वृक्ष पर फलित एक किरण उसके नवीन जीवन की चपलता। ज्ञान में भी नहीं जानती, जीवन का ऋतुराज तन्वी को कुछ पृथुल कर, उसमें मधु सुरभि भर, अपलक ज्योति से सजाकर कब दृष्टि से ओझल हो गया—ऐसी सुघर, साँचे में ढली वाणी की वीणा बना गया कि कोई भी मनुष्य उसे देखकर क्षण-भर चकित हो सोचे, ऐसी छवि उम्र-भर कभी नहीं देखी। इतना जादू, जैसे जागरण के बाद स्वप्न-स्मृति सदा पलकों पर—विस्मृति की सलील सलिल-राशि से उठी हुई भूली परी एकाएक रूप में निखरकर सामने खड़ी हो गयी हो! प्रात रश्मि-सी पृथ्वी की पलकें ज्योति स्नान करती हुई, मनुष्यों के परिचय को सूक्ष्मतम किरण-तन्तुओं से गूँथती हुई, जग के जीवों को एक ही ज्योतिर्मय हारकर! किंशुक के देह की डाल जैसे पुष्पांशुक से ढक गयी है! वह स्वयं कोई कारण नहीं खोज पाती—वह इतनी असाधारण क्यों हो गयी। पिता के पास कुछ भी ऐसे विलासवाले उपकरण नहीं, जो अपना भिन्न-भिन्न आभरण नाम धारण कर, खौलते हुए दूध की तरह उफानों से अपनी विशालता का परिचय देते रहे, और मनुष्यता के पात्र को ही छापकर छलक जायँ। फिर भी न-जाने वह कौन-सी शक्ति उस साधारण बगीचे की कली को भी बादशाह-जादियों की नजरवाली कली की तरह उभाड़-उभाड़कर चटकने के लिए विवश कर रही है। प्रति अंग पर कितना उच्छ्वास—कितना हास कितना विलास! पिता उसके अज्ञान के भीतर से निकलते हुए दार्शनिक सूत्रों का अपूर्व चमत्कार देख, प्रमाण पा, चकित होकर ज्ञान की हद में निर्वाक् बँधे रह जाते हैं, सुताकर उसे कुछ नहीं कह सकते। वह सबको समान स्वातन्त्र्य उपभोग के लिए देते आये हैं, यह उनका स्वभाव है, इसलिए अलका के उस विकास पर उन्होंने दबाव नहीं डाला। धीरे-धीरे एक साल पार हो गया, पर विजय की खबर न मिली। अलका को ऐसा दिन नहीं जाता, जब एक बार अपने अन्तरतम प्रदेश में पिता की आँख बचा चुपचाप अपने अदेख पति से वार्तालाप न करती हो। कितनी शक्ति वह मौन तन्मयता प्रियतम के हृदय में भर देती है, किसी दार्शनिक को क्या मालूम! किस प्रकार बार-बार विजय अपने कार्य के लिए एक अपराजिता प्राणों की पूर्ण शक्ति का प्रवाह प्राप्त करता, जहाँ से वह आती है, वहाँ—उस तपस्या, शान्ति, जीवन की चिर-संगिनी की ओर उसे न फेरकर दूसरी ओर, लोक-कल्याण के लिए, किस तरह फेरता है, इसकी दार्शनिक व्याख्या करने में कौन समर्थ है? जिस अलका द्वारा अज्ञात इंगितों से विजय को सत्य प्रेम का यह बल प्राप्त होता है, उसी अलका को अपने हृदय के श्रुति-कल्पित कलक-भावना से विजय क्या विष अज्ञात भाव से दे रहा है!—यदि इसका फल अलका के भविष्य-जीवन में विपरीत हो, तो क्या विजय सोच सकता है कि उसे सत्य से असत्य के मार्ग पर ले चलने का सबसे अधिक उत्तरदायित्व विजय का ही था? संसार के किसी भी प्रश्न का यथार्थ

उत्तर नही मिला; देवता भी उतरकर नही दे सकते।

सावित्री पहले दो-तीन महीने तक रही, फिर बालिकाओ के शिक्षा-क्रम मे बाधा पड रही होगी, सोचकर गाँव चली गयी। पिता और अलका को तकलीफ होने के विचार से एक चतुर दासी देख-रेख के लिए और एक ब्राह्मण भेज दिया। अलका पढ रही थी, दैनिक गृह-कर्म उससे कराना उसने अनुचित समझा।

अलका के रहन-सहन मे सावित्री के स्वभाव का पूरा प्रभाव पडा। ऐसी पढी हुई कुशल विदुषी की तरफ, उसके कार्य-कलाप से, अलका का विद्यार्थी मन आप खिंच गया, चुम्बक की ओर लोहे की कमजोर सुई की तरह। सावित्री कभी श्रृगार नही करती, सुहाग का एक भी चिह्न नही धारण करती। इस सम्बन्ध मे एक रोज अलका से उसने कहा था —'सुहाग प्राणो का विषय है, किसी चिह्न का धारण उसे धवल नही करता। दागे हुए साँड या कम्पनी-विशेष के घोडो की तरह किसी देवता या पुरुष के नाम चढ जाने की मुहर लगाकर फिरना स्त्रियो के लिए सम्मानजनक कदापि नही।' सावित्री सेन्दुर, टिकुली, चूडी आदि कभी नही पहनती, पर उसके हृदय मे अपने पति के प्रति अपार प्रेम है। अलका पर इसका प्रभाव पडा। कुछ ही समय मे सत्य इसे भी जँचने लगा, बिना किसी भूषण के अलका हलकी रहने लगी, मन पावन चिन्तन मे स्वस्थ रहा।

स्नेहशकर अलका को पढाते और साथ लेकर लखनऊ के दर्शनीय स्थान दिखा लाते है। नाटक, सिनेमा और कभी-कभी मित्रो के मकान भी अलका के साथ जाती है। एक-एक उद्देश का सभी को नशा रहता है। पुस्तकें लिखना और अलका को एक बार ज्ञान मे प्रतिष्ठित करके देखना, ये ही दो स्नेहशकर के सम्मिलित उद्देश है। कुछ पढी-लिखी अलका पहले से ही थी, अब परिश्रम कर पिता की योग्य उत्तराधिकारिणी होने चली। स्नेहशकर अँगरेजी भी सामयिक प्रधान भाषा जानकर पढाते थे। नाटक, सिनेमा आदि बहुत-से ऐसे थे, जिनके प्रति स्नेहशकर की अपनी कोई प्रेरणा न थी, खासकर हिन्दी, उर्दू मे तो एक भी नाटक-सिनेमा उन्हे पसन्द नही आया। वह जैसा चाहते थे, जनता की चाह उससे बहुत पीछे थी। वह केवल दो-तीन घण्टे मे एक सचित्र पुस्तक पढा देने, सामाजिक रुचि की आलोचना कर अलका की दृष्टि को समयानुकूल तथा मार्जित कर लेने के विचार से नाटक, सिनेमा आदि देखने जाते थे।

ज्यो-ज्यो शिक्षा गहन हो चली, त्यो-त्यो अलका के विचारो मे उन्हे फूलो से फल का निश्चय होने लगा। अलका का मन कलरव से अलग, आकाश की तरह जीव-जग से ऊपर रहने लगा। स्वभाव मे गम्भीर रहनेवाले अपने अज्ञान को ही ओढकर गहन बन जाते हैं, इसकी व्याख्या वह पिता से सुन चुकी थी, और उनके कितने ही मित्रो को मिलते समय ज्ञान-गम्भीर बनते देखकर मन-ही-मन हँस चुकी थी। उसकी तमाम क्रीडाओ मे हृदय से स्वच्छ होठो पर आयी, मधुर व्रीडा पढ-पढकर स्नेहशकर अपने उद्देश मे स्थिर होने लगे।

विचार, वय क्रम, पिता तथा दीदी की मुहर से प्रतिदिन वह स्पष्टतर छप-छपकर निकलने लगी। बाल्य का खोया चापल्य उस खुले बालोवाली, नग्न-पद अमल अलका पर, च्युत-राज्य राजा की पुनः अधिकार-प्राप्ति जैसे प्रतिष्ठित होने

लगा। विद्यार्थिनी पर तारुण्य की सब निर्दोष प्रचलित क्रीडा प्रथाएँ प्रभाव छोड अपनी तरफ खींचकर लिप्त करने लगी। टेनिस का गेंद ले, उछालती, दौडती, पकडती हुई, छत तथा भीतर मकान का आसमान सुखद कलरवों से समुद्वेल करती, हँसती, आँचल उडाती हुई, पिता की बगल मे हाँफती थककर बैठ जाती है। पिता स्नेह की दृष्टि से देखकर, जनाने उस छोटे-से बगीचे मे दौडकर स्वास्थ्य ठीक रखने को उत्साह देते है।

स्नेहशकर की कुमारी यही अलका कभी भावावेश मे विजय की प्यारी मानसिक शोभा बनकर, छत पर, सान्ध्य सूर्य-किरण की कृशता देख, उनसे नजर मिला, जैसे उन्ही के साथ कही किसी की खोज मे, अस्त हो रही हो, शान्त, सयत, निष्पात पलको से निष्पन्द खडी हुई, केवल शून्य की थाह-सी लेती, कहाँ डूबकर चली जाती है! आँचल सिर से खुलकर गिर गया, बाल उड-उडकर गाल, वक्ष पर आ गये, वह उसी अपरिचित ध्यान मे तन्मय है! किरणें उससे विदा होकर चली गयी। धरा को अँधेरे ने उसी के हृदय की तरह ढक लिया। पृथ्वी का ताप आकाश की पलको से अदृश्य शिशिर के आँसू बन-बनकर प्रतिदान मे प्रिया का हृदय सिक्त करने लगा, पर उसे उसके प्रिय की मौन प्रेरणा किस रूप मे मिली, वह नही जानती। डूबकर शून्य गह्वर से बाहर निकल भीतर हृदय का जैसा अपने चारो ओर अन्धकार देख, धीरे-धीरे छत से नीचे उतर आती है। कभी-कभी, किसी-किसी दिन देर हो जाती, पिता बुला भेजते है, दासी आकर देखती, अलका छत की चारदीवार पकडे चिन्ता मे कही अन्तर्धान है! दासी हिलाकर बुलाती है, तब, होश मे आ, डरकर, नही जानती क्यो अपराध की दृष्टि से पिता को देखती हुई, पलकें झुका, किताब ले पढने बैठती है। स्नेहशकर हँस देते हैं, अलका का शून्य पवित्र वात्सल्य रस से पूर्ण हो जाता है। पिता मर्म पर दृष्टि रख पूछते हैं, 'आज तू गम्भीर है ?' अर्थ समझ पुत्री आँसुओ मे हँस देती है। दु ख के प्रतिघात से पिता भी दुखी हो जाते है, अलका स्वभावत दुःख से मुक्ति पाती, नत-मस्तक धीरे-धीरे पढने लगती है।

इस प्रकार अपने स्वभाव को बार-बार भूलती, बार-बार याद करती हुई एक साल पार कर गयी। पिता उस सरिता की प्रवाह-गति का पूरा परिचय रखते हैं। वह उसे उसी के पति की ओर लिये जा रहे हैं, जहाँ अपार तृप्ति का सागर है, जो उसके पति का बृहत् रूप है, जहाँ चिन्ता का प्रवाह ही चुक गया है—भोग की इच्छावाले मिलन का दु ख नही। वही से उससे उसकी बहनो के लिए सबसे बडा त्याग करायेंगे—यह उनका आदर्श है, इसी की पूरी तैयारी उनकी शिक्षा। सस्कारोवाले सुहाग पर कुछ दूर तक सोचकर स्नेहशंकर अभी कुछ नही कहते; जानते हैं, यह छोटा, यह दो प्रेमियो का गले-गले लगना अपने महत्त्व मे बडे से छोटा कभी नही, केवल वियोग दु खप्रद है, इसलिए ज्ञान की दृष्टि से अनित्य।

आज थिएटर जाने की बात है। कलकत्ते का कोरिथियन-थिएटर उत्तर-भारत का सफर करता हुआ लखनऊ आया है। स्नेहशकर के मित्र लखनऊ के सहायक डिप्टी-कमिश्नर प ज्ञानप्रकाश और उनकी पत्नी भी जायँगी। स्नेहशकर और ज्ञानप्रकाश की इधर कुछ दिनो से घनिष्ठ मैत्री है, पहले परिचय था।

ज्ञानप्रकाश दार्शनिक तो बहुत अच्छे नही, पर आर्यसमाजी होने के कारण वैदिक साहित्य पर पूरी भक्ति रखते है। वह सिद्ध नहीं कर सकते पर वेद अपौरुषेय है, इस पर उनका विश्वास दृढ है। रोज हवन करते है। एक बार किसी अखबार मे लिखा था, आजकल आग मे घी फूँकना बेवकूफी है, जब घी खाने को नही मिलता। आक्षेप करनेवाली एक लेखिका थी। नाम सावित्री था। इन्हे यह लेख आर्य-धर्म के विरुद्ध मालूम दिया। अपने सिद्धान्त की रक्षा के लिए इन्होने वेद तथा गीता की आवृत्तियो से सिद्ध किया कि मेघ बिना हवन किये जल नही बरसा सकते, हवन छोडकर ही अधिकाश लोग अनार्य हो गये हैं। फिर लेखिका के सावित्री नाम पर भी इन्होने प्रक्षेप किये, यद्यपि सरकारी नौकरी के मैदान मे वाद-विवाद पर इतना बढना हानिकारक था। बात यही से नहीं खत्म हुई। लेखिका सावित्री ने युक्तियो और प्रमाणो की पुट दे-देकर हवन करना सोलहो आने बेवकूफी फिर साबित किया। लिखा—"सूर्य द्वारा समुद्र के विशाल कुण्ड से अविरत जल जला-जलाकर जो प्रकृति पानी बरसाती है, वह नकलचियो के घृत-हवन की अपेक्षा नही करती। जहाँ मनो घी बेवकूफी मे जलता हो, वहाँ आर्य निस्सन्देह अनार्य हो गये है। वह घी और यव गरीबो के पेट के अग्नि-कुण्ड मे जलकर उनकी नसो मे रक्त तथा जीवनी शक्ति सचित करके ही यज्ञ की सर्वोच्च व्याख्या से सार्थक होगा। जहाँ लाखो टन जले कोयले का धुआँ वायु-मण्डल मे जहर भर रहा हो, वहाँ मामूली सख्या के आर्य-समाजी तोले-तोले घी फूँककर वायु-मण्डल शुद्ध कर देंगे! प्रकृति ने इसे पवित्र करने के कार्य मे पहले से हवा को लगा रक्खा है। वह बह-बहकर धुएँ का जहर जल की धारा की तरह फटकारती, साफ करती रहती है—" आदि-आदि। जवाब देखकर डिप्टी-कमिश्नर साहब का रग उड़ गया। बात लाजवाब थी। पर स्वामीजी, जिन्होने डूबते हुए देश के हाथो बए की तरह वेदो को रक्खा, हवन करने को आवाहन किया, वह बगैर गहरे पैठे, मतलब समझे ही ऐसा करने को कह गये है, उनके तेजस्वी मन को विश्वास न हुआ। उन दिनो स्नेहशकर लखनऊ मे ही रहते थे। इनके पास इस लेख का उचित उत्तर लिखवाने आये। डिप्टी-कमिश्नर साहब को इनके ज्ञान पर पूरा विश्वास था। लेख और नाम देखकर स्नेहशकर हँसे। कमिश्नर साहब ने कहा, "यह तो घर ही की बहू है।" परिचय दिया। कहा, "आपने ठीक लिखा है, ऋषियो ने इन कर्मों का प्रतिपादन बडे-बडे ज्ञान के आश्रय से किया है।" कमिश्नर साहब प्रसन्न हो, मार्मिक उच्छ्वसित आँखो से देखकर बोले, "वही तो मैंने कहा, बिलकुल तख्ता उलट देना चाहती है! लेकिन आपके घर मे नास्तिक—और स्त्री!" "कुछ नही, लडकपन है।" स्नेहशकर मुस्किराये, बोले, "आपसे क्या कहूँ? आप ऐसी आलोचना का उत्तर ही न दें, उपेक्षा कर जायँ।"

डिप्टी-कमिश्नर साहब प्रसन्न होकर चले गये। अलका बैठी हुई आँखें नीची किये मुस्किरा रही थी। उनके चले जाने पर पिता से पूछा, "आपने इन्हे कैसी सलाह दी?" "यह तो दुनिया है" स्नेहशकर बोले, "जो जैसी खूराक का आदी है, वह वैसी ही खूराक पाने पर प्रसन्न होता है। इनका जिधर रुख था, उधर हमने इन्हे चार कदम बढा दिया, अब मजे मे पाव-भर घी हवन-कुण्ड मे रोज फूँककर

गरीबों के मुँह राख झोंकते रहे। साश्चर्य अलका अपने अद्भुत पिता की ओर ताकती रह गयी।

दूसरे दिन अलका को साथ लेकर स्नेहशंकर भी डिप्टी-कमिश्नर साहब के घर गये। इस तरह आना-जाना लगा रहा। आज थिएटर जाने का निश्चय था। पहले से चार सीटें रिजर्व करा ली गयी थीं। शाम का भोजन समाप्त करके डिप्टी-कमिश्नर साहब अपनी धर्मपत्नी के साथ स्नेहशंकर और अलका को ले जाने के लिए खूब सजकर आये। वे तैयार थे, सब लोग बैठ गये।

बारह

ठीक नौ बजने पर तमाशा शुरू होगा। स्नेहशंकर और ज्ञानप्रकाश के बीच, अर्केस्ट्रा में, ज्ञानप्रकाश की पत्नी और अलका बैठ गयीं। पत्नी पति की तरफ, अलका पिता की तरफ। हाल ऐसा भरा, जैसे रेत पर सटे बगले बैठे हों। नव्वाबी सभ्यता के सूक्ष्मतम तन्तुओं-सी देहवाले, तहजीब के रूपक, लखनऊ के रईस, राजे, तअल्लुकेदार और देशी अफसर कोई-कोई अपनी महिलाओं के साथ, सामनेवाली सीटें आबाद किये, शान से गर्दन उठाये बैठे हुए हैं। कोई-कोई सफेदपोश बड़ी-बड़ी आँखोंवाली अलका को बड़ी तन्मयता से देख रहे हैं।

खेल सामाजिक है। नाम है 'सच्चा प्यार'। समय पर ड्राप उठा। खेल शुरू हो गया। रोशनी में एक साथ हाथ मिला गुच्छों में खिली चपल कलियों-सी परियाँ लोगों की अपल आँखों में खिंच गयीं। विद्या की अगम चारदीवार के अन्दर न आने पर भी संगीत और शायरी के रमज्ञ रईस फड़क उठे।

दर्शकों में साश्चर्य उत्साह भर-भरकर नाटक होने लगा। एक राजा शिकार खेलने को चले। नेपथ्य में घोड़ों की टापों का रूपक कर स्टेज भड़भड़ाया गया, आवाज-पर-आवाजें आने लगीं—'सब लोग होशियार हो जाओ, तूफान उठ रहा है, ओफ् ओले गिर रहे हैं!' फिर किसी ने तार-स्वर में पुकारा—'महाराज, अरे! हमारे महाराज कहाँ?' फिर समझाया गया, शायद उनका घोड़ा बहक गया है! फिर दूसरे दृश्य में राजा एक झोपड़ी के भीतर ओले के स्वर्गीय प्रहार से घायल, चारपाई पर पड़े कराह रहे हैं, एक सुन्दर युवती कृषक-कुमारी उनकी शुश्रूषा कर रही है।

स्टेज के और-और लोग इस समय पूरे एकाग्र हैं, पर पिता से अलका ने शंका की, इन राजा के साथियों को क्या हुआ होगा पिता?

हँसकर स्नेहशंकर बोले, "सम्भव, वे बच गये हों, राज्य में खबर देने के लिए, देखो।"

किसान-युवती अपने छोटे भाई के साथ अकेली है। उसके पिता और भाई

अपने पडोसियो के साथ तीर्थ करने गये है। राजा अच्छे होकर उसके प्रेम के पाश मे फँस गये।

अलका ने फिर पूछा, "क्या इनकी शादी अभी हुई नही ?" "दुष्यन्त की तरह, बहुत मुमकिन, हुई हो।" स्नेहशकर प्रसन्न व्यग्य से बोले। लोग अत्यन्त एकाग्र होकर यह प्रेम-लीला देख रहे हैं। राजा ने ईश्वर-साक्षी कर गान्धर्व रीति से किसान-युवती का पाणिग्रहण किया। दर्शक शृगार के मन्त्र से मुग्ध हो गये ! अलका चुपचाप, राजनीति के समालोचक की तरह, अपनी पूर्वकृत भविष्य-चिन्ता के निश्चित फल की ओर लक्ष्य किये हुए है।

वैसा ही हुआ। राजा के साथी बाल-बाल बचकर राजभवन पहुँच गये। राजमाता, रानी तथा मन्त्री को राजा के गायब होने की खबर हुई, राजमाता मूर्च्छित हो गयी, रानी आठ-आठ आँसू रोने लगी। राजा की त्वरित तलाश के लिए मन्त्री ने चराचर चर भेज दिये।

उस कृषक-युवती के प्रेम मे राजा ऐसे फँसे कि निकलना दुश्वार हो गया। इतनी भी खबर नही कि उस प्रेयसी से अपने विवाहित होने की, अपनी रानी की एक बार बातचीत करते। अवश्य यह सौत का जिक्र शास्त्रानुसार वर्जित है, और कुल हिन्दू और मुसलमानो मे जो राजा के लिए इच्छानुसार वर बनते रहने की स्वतन्त्रता वरण किये बैठे थे, यह भी प्राचीन सस्कारो का शुभ धर्म था, इसीलिए उनके इस शृगार-रस मे दुर्भावना की मक्खी नही पडी। अलका को सबसे बडा तअज्जुब बचपन मे सुनी एक दन्त-कथा का प्रमाण मिलने पर हुआ कि सचमुच राजा प्रेम के जादूवाले बंगाले मे मनुष्य से ऐसे भेड बने कि किसान-युवती अपनी हद के खूंटो मे इच्छानुसार उन्हे छोरने-बाँधने लगी। बेचारे पशु की जबान, आदमी की तरह सच्चा हाल कैसे बयान करती !—अलका अब ऐसा सोच लेती है।

एक रोज पास ही की नदी मे यह नयी युवती स्नान करने गयी। राजा उसके घर मे रक्खे हुए है। ऐसे समय एक चर व्याघ्र की तरह घ्राण-मात्र से राजा का निश्चय कर भीतर झाँकता है। देखकर प्रसन्न हो पास जाता और राज्य के दु ख कहता है। एक साथ राजा ऐसे आवेश मे आते हैं कि अपने देश को इतने दिन भूले रहने के लिए अपने को धिक्कार देते हुए उसी वक्त चर के साथ घर चले जाते हैं। युवती स्नान कर लौटती और राजा को न देख व्याकुल होकर रोती रहती है।

युवती का छोटा भाई ढोर चराकर लौटा, और बहन को उदास बैठी हुई, सजल दृग आकाश देखती हुई देखकर पति से उसे मिला देने की प्रतिज्ञा की, इतने छोटे मुंह इतनी बडी-बडी बातें सुनकर एक तरह रगस्थल के सभी दर्शक 'असम्भव' को प्रकृति से निकाल देने के पक्ष मे नेपोलियन बन गये, जैसे प्रयत्न-कथा के दुर्गम अन्धकार मे सत्य-रत्न के बिना भी, प्रकाश पाने के वे आदी हो गये है।

कुछ दिनो बाद उसके पिता और भाई पडोसियो के साथ लौटे, और अन्य स्त्रियो से सुना कि कन्या किसी नवागत पुरुष से प्रणय कर गर्भवती हो गयी है। पिता ने पुत्री और एक धर्म-पत्नी के सम्मान के प्रतिकूल अनेक कटु शब्द कहे, जिससे उसी रात पिता का आश्रय छोडकर पति के देश मे निरुद्देश हो गयी।

अलका अपनी सारी शक्तियो मे एकाग्र है। सहानुभूति के स्रोत मे उसकी समालोचना के घाट की जजीर हाथ से छूट गयी। पिता रह-रहकर एक नजर यह वदला हुआ मनोभाव देख लेते है। चलते-चलते तेज धूप से प्यासी एक आश्रय देखकर बैठ गयी, उत्पल-कल्मागी, जीवन के सान्ध्य क्षण मे द्विदल लोचन मूंद लिये, फिर वही पृथ्वी की शून्य गोद मे निस्तरुलता-सी मूर्च्छिता हो गयी।

वहाँ एक महात्मा की कुटी थी। वाहर आ इस सीता को धूलि-धूषिता अवलुण्ठिता देखकर दयार्द्र हो जल-सेककर होश मे लाये और समस्त कारण अवगत हो प्रज्ञा-शक्ति से उसके जीवन के भविष्य पट-चित्र प्रत्यक्ष करने लगे, पुनः दर्शको पर भाग्य के अखण्डन आलेख्य का प्रभाव छोडते हुए तार-स्वर से स्वगत वोले, "एक पतिव्रता को गत जन्म मे पतिवचिता करने के अपराध मे सीता की तरह इमे चिर पति-विरह सहना होगा।"

त्वरित अपनी आलोचक-स्थिति मे आ अलका मन की जवान से कह गयी, "हश! सफेद झूठ, यह लेखक की चालवाजी है! यह नीच-कुल की है, इसलिए साधारण जनो की दृष्टि मे पत्नी-रूप से इसे न मिलने देगा।" मन के दाँत पीस-कर रह गयी। स्नेहशकर ने उसकी मुद्रा की ओर फिर देखा।

फिर महात्माजी ने तीन दिन ऐसी तीव्र तपस्या की कि उसके पति महाराजा-धिराज को मृगया के लिए सामन्त-सरदारो के साथ उस तपोवन की तरफ आना ही पडा। ऋषिराज ने उस युवती को महाराज से अपनी दु ख-कथा कहने के लिए कहा। अनेक सभ्यो के साथ महाराज को देखकर उस युवती ने उन्हे पहचानकर भी अपने पति-रूप से परिचित न किया, सोचा, पति की इज्जत रखना ही पत्नी का धर्म है।

अलका विलकुल न समझ सकी कि यह कौन-सा पत्नी-धर्म हो सकता है। जनता गद्गद कण्ठ से साधु-साधु कहने लगी। पुरुष की जहाँ इतनी महत्ता वढ रही हो, वहाँ पुरुष-जाति प्रसन्न हुए विना कैमे रह सकती है, अलका सोचने लगी, पर पर्दे की स्त्रियो की क्या हालत होगी? क्या वे भी ऐसे कार्य को आदर्श सोचती होगी? श्रीमती डिप्टी-कमिश्नर की राय के विना उसकी चपलता न रुक सकी, पूछा, "यहाँ आपको कैसा लग रहा है?" "वहुत ऊँचा आदर्श है, वहुत अच्छा दर्शाया है।" यह उत्तर पा प्रहत हो, विरोध की आँखो से एक वार देखकर अलका चुप हो गयी।

पत्नी ने तो तत्काल पहचान लिया, पर पति उत्कल महाराज की कमल-आँखो पर उस पूर्व जन्म के शाप की छाप जो पडी, वह किसी तरह भी भले-चगे मनुष्य होकर न पहचान सके। वार-वार, वडे सहृदय-भाव से, अच्छी तरह देखते हुए, पूछा, "तुम उस दुराचारी पति का नाम जाहिर कर दो, मैं उसे दण्ड दूंगा।" पत्नी ने कहा, "वह एक राजा है।" पर राजा होश मे न आये। महात्माजी सच्चे वाल्मीकि थे नही, न नाटक के लेखक महोदय ही वाल्मीकि के ऋषित्व से परि-चित, दुखीजनो का राजा ही पोषक है, अत महाराज यह शिकार कर अपने यहाँ परवरिश के लिए ले चले। रास्ते मे इत्तिफाक से उसका वही छोटा भाई वहन के निकल जाने पर उमे पति से मिलाने के लिए घर छोडकर निकला हुआ आ मिला।

वह राजा को पहचानकर उसी ताव से बातें करने लगा, जैसी उसके घर की स्थिति थी। उसे राजा साहब ने पहचाना, तव युवती का मुख भी याद आया। युवती को साथ लेकर कुछ लोग आगे थे, उसके भाई ने अपनी बहन को नही देखा, न राजा ने दिखाने की जरूरत समझी। वल्कि लेखक महोदय की कृपा से ऐसा किया कि साथवाले अपर लोगो को भी विदा कर दिया, फिर एकान्त मे कृपक-कुमार से करुणा-क्रन्दन करने लगे कि उन्हे विस्मरण हो गया था। लेकिन फिर भी उससे उसकी वहन का हाल न कहा कि वह आगे साथ ही चल रही है। फिर पर्दा गिरा और मामला खतम। फिर कौन पूछता है कि किसान-कुमार कहाँ गया ?

राजधानी मे कृषक-किशोरी अस्तवल से होड करनेवाली कवूतर के दर्बो-सी वनी हुई आवारागर्द औरतो की एक साधारण खोली मे लाकर रक्खी गयी। आधी रात को पूरे छद्म-वेश मे महाराज वहाँ तशरीफ ले गये। फिर क्षुरधार प्रणय की वाढ मे ऐसा बहे कि लोगो पर पूरा प्रभाव पड गया, और अलका के छक्के छूट गये। वह किशोरी स्त्री प्राण रहने तक पति की मर्यादा अक्षुण्ण रक्खेगी, यह प्रण किया। सुनकर महान् पतिव्रत के आदर्श-ज्ञान से पुलकित जनता ने पलकें मूंद ली, और आहे भरने लगी। महाराज भी पूरा प्रेम जता, अपना फर्ज अदा कर, बडे दु खित भाव से धीरे-धीरे चले गये। सुवह होने पर किशोरी धर्माधिकरण लायी गयी, और पति का नाम न बतलाने पर कलकिनी करार दी गयी! कलक का एक निशार सूच्यग्र जले लोह से लगाया गया, और उसी अस्तवल मे लाकर डाल दी गयी।

उसके लडका पैदा हुआ, राजकुमार। पर किस्मत अस्तवल के साईसो के लडको से वदनर। महाराज ने फिर कभी उधर नजर नही की। लडका पेट मे था, इसलिए लेखक को निकालना ही पडा। यदि आदर्शवादी कला को पेट से बच्चा उडाने का कोई कौशल हासिल होता, तो हिन्दी के नाटक-उपन्यास-सम्राट् ऐसे समय जरूर इसका प्रदर्शन करते। लाचार, बच्चा हुआ, और कुछ दिनो वाद स्वर्ग सिधार गया। नाटक मे पहली रानी के कोई पुत्र नही। फिर भी इस वच्चे पर रहम न हुआ। फिर माता पागल हुई, वेश्या का आश्रय ग्रहण किया, गाना-वजाना सीखा और अन्त मे महाराज की महफिल मे नाचकर, उन्हे अपने प्राचीन परिचय के प्रेम से मकान तक खीचकर, बीमार हो, भाई द्वारा जनता की आँखो राज-परिणय का भेद खुलने के पश्चात्, राजा, पति या उपपति की गोद मे मरी। उसका एक स्मारक ताजमहल की तरह महाराज ने तैयार कराया, और ऐसी प्रेम की मूर्ति पर मृत्यु के वाद रोज पुष्पाजलि अर्पित करने लगे।

दर्शको के हर्षातिरेक से अभिनय समाप्त हुआ। स्नेहशकर ने देखा, अलका के अपागो मे नफरत खिच रही है। डिप्टी-कमिश्नर के साथ सब लोग उठकर वाहर आये।

किसी ने लक्ष्य नही किया, एक दूसरा युवक शुरू से आखीर तक अलका को देखता रहा।

मोटर लगी हुई थी। सव लोग वैठ गये। पहले स्नेहशकर के मकान मोटर गयी। पिता-पुत्री उतर गये। एक दूसरी मोटर शीघ्र निकल गयी।

डिप्टी-कमिश्नर घर गये। रास्ते मे उनकी पत्नी ने कहा, 'लडकी कैसी भोली और सुन्दर है! बरबस जी का प्यार हर लेती है।"

डिप्टी-कमिश्नर निःसन्तान हैं। कहा, "हाँ, हमारी तबियत भी उसे देखकर बहुत खुश होती है। मुँह पर किसी भी प्रकार का छल-कपट नही।"

"एक जगह शायद मतलब समझ मे नही आया, लडकी ही तो ठहरी, मुझसे पूछा, मैंने समझाया, क्योकि ऊँचा भाव था।" आत्मप्रसाद का स्वाद लेते हुए पत्नी ने कहा, "तुम कहो न, स्नेहशकरजी यह लडकी हमे दे दे।"

"इच्छा तो हमारी भी होती है। ऐसा देखती है, जैसे अपनी लडकी हो। अच्छा, कल कहेगे। वह जैम सज्जन हैं, उनसे हमारी इच्छा पूरी होगी, ऐसी आशा है।"

तेरह

अजित मामा के यहाँ न गया। उसे पकड जाने, शोहरत होने पर घर खबर पहुँचने का खौफ हुआ। कुछ पुलिस से भी डरा, जिसकी आँख मे धूल झोककर यह बाना बनाया था। सीधे विजय की ससुराल पहुँचा। लालगज मे गीता की किताब खरीद ली, अँगरेजी जानने की जड मार दी। घुटी चाँद सफाचट डाढी-मूछ नाम स्वामी धर्मानन्द, खयालात सात सदी पीछे के, हाथ मे मोटा सोटा, बगल मे झोला, जिसमे चिलम और गाँजा खासतौर से हिफाजत से रक्खा हुआ—दूसरो को पिलाना, उन्हे बहलाकर मतलब गाँठना, बातचीत पूरे गँजेडी की, बैठा गला। धर्मानन्दजी ने सोचा—'विजय की तरह विद्या के बल से बल-विद्यार्थियो को, पूँछ ऐठ-ऐंठकर, राह पर लाना गधो को घोडा बनाना है, लिहाजा एक बिलकुल गैर-मुमकिन बात, फिर अक्लमन्द कैसा, जो दस कदम पेश्तर न सोच ले? बात यह कि असर जात का नही जाता, किसान जमाने से गँवार और जमाने तक ऐसे रहेगे, विजय को यह एक शौक चर्राया है, बल्कि झक या कहे दिमाग की कम्जोरी है, हल जोतने और किताब पढने से बडा बट्टा, कही के किसान पढे-लिखे है, इसके मानी ये न हुए कि वे विलियम पिट हो गये, फिर अगर ऐसा ही खयाल है कि किसान पूरी ताकत मे हल की मूठ पकडकर भी पूरी सफाई मे कलम चला लेंगे, तो न्यूटन की राह लोग क्यो नही पकडते?—विजय को पहले भेड चराना था, न कि पढना।'

दुनिया मे सब लोग अपने-अपने फायदे की युक्तियाँ निकाल लेते हैं। धर्मानन्द-जी दुनिया मे विनोद-कौतुक से रहनेवाले जीव है। लिखाई-पढाई का काम वह नही कर सकते, ऐसी बात नही, उसके क्या गुण और उपयोग है, वह जानते है, पर एक ही किस्म की निरन्तर बकवाद से वह बहुत घबराते है, दो रोज, चार रोज, दस रोज तक ज्यादा-से-ज्यादा वह लडको को पढा दे सकते है। पुलिस पीछा

किये थी, घरवाले सर खाये थे, चले आये। एक नया अनुभव होगा। फिर विजय की कथा भी कम दिलचस्प नही।—एक रोज की शोभा इतिहास के कितने रजक पृष्ठो के पश्चात् छिपी होगी! पुन, जीवन के नैश मुहूर्त मे एक ही स्नेह की किरण ने खिले कैरव और चन्द्र के बन्धुत्व की तरह विजय और अजित परस्पर हिले-मिले—किसी राहु के छन्द से वदन जब तक तमोवृत न होगा, अजित विजय को स्निग्ध-हृदय की अमृत-ज्योत्स्ना से तब तक सीचता रहेगा। अपरच, जिनके यहाँ की भीख पर उसे काल यापन करना है, उनका ऋण भी वह ब्याज समेत चुका देगा, वह विजय से मैत्री मे पीछे कदम रखनेवाला नही।

इस प्रकार कल्पना की उधेड-बुन मे बगल मे झोला लटकाये स्वामी धर्मानन्दजी विजय की ससुराल से दो कोस फासले पर एक गाँव पहुँचे। बगीचे से लकडी तोडकर धूनी जला दी। आग तैयार होने पर वदन मे खूब राख मलकर बैठ गये। जगह सुहावनी, पास ही मन्दिर और कुआँ, लोगो की आमदरफ्त की काफी गुजायश।

धीरे-धीरे बाबाजी के पास भक्त-किसान खेतो से आ-आकर एकत्र होने लगे। बाबाजी ने बिना व्यर्थ वाक्य-व्यय के, पूर्ण धीर-गम्भीर मुद्रा से गाँजा मलने को भक्त वृन्द के सामने बढा दिया। यथेष्ट लोभ होने पर भी भक्तगण पहले हिचके। किसी ने कहा, "बाबा, आपका प्रसाद तो है, पर कैसे लिया जाय, शाम को हम लोग ठेके से ले आवें, तब आपका प्रसाद ले।"

बाबा धर्मानन्दजी ने आँखे मूँदकर, नाक सीधे आसमान की तरफ उठाकर सिर हिलाया कि यह कथन शास्त्र-सगत नही। भक्तगण सभक्ति चकित हो तपस्वी बाबाजी की विशाल मुद्रा देखते रह गये। धीरे-धीरे सानुनासिक-स्वर बाबाजी ने कहा, "बेटा, यह तो भगवत पर तुम्हारा ही चढाया हुआ प्रसाद है, साधू के पास पैसे कहाँ?"

भक्तगण बडे प्रसन्न हुए। उन्हे ऐसे बाबाजी अब तक नही मिले थे, जो भक्तो को घर का माल खिला जाते। बडी विनय से गाँजे की कली लेकर मलने लगे।

तैयार होने पर बाबाजी को भोग लगाने के लिए दिया। बाबाजी होश मे एक दफा खानेवाली तम्बाकू जरा-सी खाकर बेहोश हुए थे, फिर नयी रोशनी की बत्ती सिगरेट मे भी कभी आग नही लगायी। बडे सकोच मे पडे, पर जिरह मे न कटने के जवाब पहले मे सोच रक्खे थे। पूर्ववत् नक्की स्वर से कहा, "गुरुजी की आज्ञा इस समय कुछ दिनो के लिए दम छोड देने की है, बात यह है बेटा कि जो धुआँ मैं मुँह से निकालता हूँ, वह गुरुजी पीते है, जो तुम निकालते हो, निकालोगे, वह हम लोग पीते है, पियेगे; आजकल इस चेले को गुरुजी ने अपना अधिकार दे रक्खा है कि अब अपनी गरमी हमे न पिलाओ, दूसरो की गरमी पीना सीखो।"

ऐसे धूम्रपान की कोई व्याख्या हो भी सकती है, इसकी जाँच पूरी-पूरी कौन करे? बेचारे किसानो ने चुपचाप विश्वास कर लिया। एक-दूसरे को देखते हुए बाबा धर्मानन्दजी की पुन आज्ञा मिलने पर सभय पीने लगे। खूब दम कसकर गाँव गये, और सबको एक अजीब बाबाजी के पधारने की खबर सुनायी। तारीफ

मे कहा, "वावाजी चिलम नही पीते, सवकी चिलम का धुआँ पीते हैं।"

दूमरे ने कहा, "तुम घर मे बैठे हुए चिलम पियो, वावाजी अपने आमन से धुआँ पी लेगे।"

तीसरा वोला, "हाँ भाई पूरे महात्मा हैं, देखो दग-दग कर रहा है चेहरा, लेकिन अभी उमर कोई वहुत जियादा नही।"

"तू तो वैल है पूरा," पहला वोला, "अरे, साधू की उमर का कुछ हिसाव रहता है? हम-तू हैं कि पच्चीम साल मे वाल पक गये? महात्मा को ऐसा न कहना चाहिए। अभी कहो हमारे वावा की वातें कहने लगें।"

"स्वभाव के वादमाह हैं।" दूसरे ने वडाई की।

"वादसाह? वादमाह भी उनके पास आते हैं, और झख मारते हैं।" आँखें काढकर दूसरे को देखता हुआ पहला वोला।

गाँव के छोटे-वडे साधारण भलेमानस ऐसे अद्‌भुत वावाजी के आने की खवर पा भक्ति-भाव मे अपना-अपना कार्य छोडकर मिलने चले।

देखते-देखते चारो ओर से धूनी घेरकर प्रणाम कर-कर गाँव के सभी वर्णो के लोग नजदीक फासले पर वैठे हुए पूरी भक्ति की नजर से वावाजी को देखते रहे। इनमे व्रजकिशोर वावाजी की तरह नवयुवक है, वावाजी की उम्र की वरावरी वह नही कर मकता। सफाई से रहता है। देखकर वावाजी भी इसी की ओर मन-ही-मन औरो की तरफ मे ज्यादा खिचे, ऐमी उसकी आजकल की पसन्दवाली काट-छाँट। वह दो माल तक कॉलिज की हवा भी खा चुका है। वडे गौर से अँगरेजी समालोचना की निगाह मे वावाजी को देखने लगा। राख के भीतर वावाजी की चमकीली तेज आँखें देख-देखकर व्रजकिशोर मुस्किरा रहा था, सोच रहा था कि यह आदमी दूमरो का निकाला हुआ धुआँ कैसे पी लेता है।

महात्माजी आगन्तुक जनो मे परिचय कर कुशल पूछने लगे।

प्रश्न—"यहाँ के कौन जमीदार है?"

उत्तर—"तअल्लुकेदार मुरलीधर, स्वामीजी!"

प्रश्न—"तुम लोगो के सुख-दुख मे शरीक तो होते है?"

लोग एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। फिर स्वामीजी के लिए 'रमता योगी, वहता पानी,' का ख्याल कर उन्मन हो गाँव के एक पुराने भलेमानस वोले, "हाँ, स्वामीजी, आजकल जैसे और जगहो के राजे रियाया की खवर करते हैं, वैसे वह भी है।"

"नही, दिल का भाव ठीक-ठीक साधू से कहा करो, वह तुम्हारी प्रार्थना ईश्वर के पाम तक भेजता है, और जैसी उसकी मर्जी होती है, तुम्हे वतलाता है। साधू मे अपना मतलव छिपाना अपने आपको धोखा देना है। वह जो ईश्वर का मेवक है, उमके जनो की पहले मेवा करता है।" स्वामीजी ने ओजस्वी शब्दो मे लोगो के शका से दवे हृदय को उभाड दिया।

गाँव के लोग, जो अभी तक तिलिस्म के उस्ताद की नजर से स्वामीजी को देख रहे थे, ममझे, उनके सुख-दुख, विशेषकर उनके दुख की जगह स्वामीजी सेवा का मरहम रखना चाहते है। व्रजकिशोर एक वदली हुई भावना से देखने लगा।

धर्मानन्दजी भी साथ-साथ लोगो के मनोभाव पढते जा रहे हैं। अपने-अपने उद्देश की सिद्धि की सबको धुन होती है, सब उसी गरज से दूसरो के पाबन्द होते हैं।

स्वामीजी की इतनी-सी बात से, पार न देखनेवाले निरुपाय पारावार मे पडे हुए गाँव के लोग साक्षात् ईश्वर के पास प्रार्थना पहुँचानेवाले स्वामीजी को जितने अपनाव मे देखने लगे, उसकी वर्णना कोई भी भाषा नही कर सकती, साक्षात् सरस्वती वहाँ मौन है। आज तक समर्थ के खिलाफ खुलकर एक भी आवाज करने की शक्ति उनमे किसी की न थी, वे नव्वाबी युग से अब तक शक्तिमान् का साथ देकर अपनी ऐहिक आशा पूरी करते आये थे—उनके खिलाफ सर उठाने का स्वभाव मर चुका था, आज उनके ठीक प्राणो मे एक सहृदय आवाज हुई। गाँव के अच्छे-अच्छे लोग थे—चौककर एक नया प्रकाश देखा।

"महाराज!" एक बूढे, गाँव के सभी जातियो के मान्य भलेमानस ने कहा, "अगर राजा खुद रियाया के माल व इज्जत पर हमला करने लगे, तो फरियाद किसके पास करें?"

"इज्जत किसे कहते है, जब आप लोग समझेंगे, तब दूसरे लोग भी आपकी इज्जत लेने की हिम्मत न करेंगे।" स्वामीजी ने कहा, "अभी तो एक-दूसरे को बेइज्जत करके अपनी इज्जत बढानेवाला हजार वर्ष से एक-सा चला आता हुआ कायदा आप लोग अख्तियार किये बैठे हैं।"

लोग कुछ समझे नही, समझने की उत्सुक आँखो से देखते रहे।

स्वामीजी फिर बोले, "आप लोग एक दिन मे न समझेंगे। क्योकि ठगने और ठगा जाने की आदत आप लोगो की रग-रग मे भर गयी है। महाजन, जमीदार, वकील, धर्म, समाज और भाइयो से ठगा जाना आप लोगो का स्वभाव बन गया है। आप लोगो के दिल के आइने मे मतलब गाँठने का जो जग लगा है, वह एक दिन मे साफ न होगा, और इसलिए अभी माल व इज्जतवाला चेहरा आप लोगो को न दिखेगा। कुछ दिनो बाद कुछ साफ होने पर देखियेगा। आप लोग कहे, तो इसके लिए कोशिश की जाय।" लोगो ने समस्वर से सम्मति दी। स्वामीजी ने कुछ समय तक ठहरने का वादा किया। लोगो को इससे बडी प्रसन्नता हुई। दूसरे दिन पुन इस प्रसग पर बातचीत करने के लिए गाँव-भर की जनता को पिछले पहर एकत्र होने को स्वामीजी ने आमन्त्रित किया।

सब लोग स्वामीजी का रुख समझकर चलने लगे। ब्रजकिशोर को अपने ब्रह्म-ज्ञान का सच्चा अधिकारी समझकर स्वामीजी ने कुछ समय तक रहने के लिए रोका।

उठे हुए लोग कुछ दूर जा आपस मे स्वामीजी के अन्तर्यामित्व पर आश्चर्य करने लगे कि ब्रजकिशोरवाला हाल स्वामीजी ने जरूर समझ लिया, नही तो रोकते क्यो। फिर गाँव के भाग्य की प्रशसा करने लगे कि ऐसे मौके मे स्वामीजी का आना ईश्वर की इच्छा का खास मतलब रखता है।

एकान्त हो गया। ब्रजकिशोर को देखकर स्वामीजी राख के भीतर मुस्कराये। ब्रजकिशोर इस अद्भुत तरह की बातें करनेवाले, दूसरो की चिलम का धुआँ पीनेवाले स्वामीजी को शून्य दृष्टि से देखता रहा।

"तुम क्या करते हो ?" स्वामीजी ने पूछा।

"अभी-अभी वेकार हो गया हूँ। इससे पहले तअल्लुकेदार मुरलीधर के यहाँ कुछ दिनो नौकर हो गया था।"

"फिर ?"

"फिर एक दिन कमिश्नर साहव इलाके से तीस मील दूर हरखा वन मे शिकार खेलने आये। मुझे हुकुम हुआ, उनकी रसद, जिसमे मुर्गियाँ भी थी, वहाँ लेकर जाऊँ।

"मैं हाउस-होल्ड इन्स्पेक्टर था। मेरे मातहत जितने आदमी थे, सव हिन्दू थे। तअल्लुकेदार साहव के मकान के अन्दर किसी मुसलमान की पैठ नही, पर मकान से वाहर, हिन्दुओ की आँख बचाकर हिन्दू-मुसलमान मे वह भेद-भाव नही रखते। वक्त वहुत थोडा था। मुर्गियाँ खरीदकर लानेवाला कोई न मिला। हिन्दू-नौकरो ने मुर्गी छुने से पहले नौकरी छोडना मजूर किया। तीन-चार मुसलमान नौकर थे। पर वे वगीचे की कोठी मे, खास आदमियो मे थे। उन पर सेक्रेटरी साहव का हुक्म था। कस्वे मे एकाएक वेकार मुसलमान न मिला। दम वजेवाली मोटर भी निकल गयी। मैं हैरान हो रहा था कि किसी ने तअल्लुकेदार साहव से जड दिया कि मैं साहव की मुर्गियाँ लेकर अभी नही गया। अव वक्त पर मुर्गियाँ पहुँच भी नही सकती थी। तअल्लुकेदार साहव ने मुझे वुलाया, और आग हो गये। रह-रहकर होठ चवाते, मुट्ठियाँ वाँधते और तू-तुकार करते रहे—अवे ब्राह्मण के वच्चे, अगर आदमी नही मिले थे, तो तू किस मर्ज की दवा था, तू क्यो नही ले गया, यह काम तेरा था या मेरा—अवे वोल ?—मैंने जो तार कर दिया कि आपके वास्ते रसद और मुर्गियाँ जा रही हैं, इसका क्या जवाव दूं ? मैं इसका क्या जवाव देता ? फिर हुक्म हुआ, इसे कान पकडकर निकाल दो।" व्रजकिशोर के आँसू आ गये—"फिर इसी तरह निकाल दिया गया। यहाँ मा घर देखती थी, वहाँ वहन, वह व्याह के तीसरे महीने विधवा हो गयी है, भोजन पका देती थी। निकाला जाने पर डेरे गया, तो वहन ने कहा, तुम नही गये, अच्छा हुआ, माधव की अम्मा कहती थी, आज रात को जमीदार के लोग मुझे पकड ले जाते। उनके यहाँ ऐसा करना कुछ वुरा नही, कोई वडी वात नही, रोज का काम है। यह गाँव भी उन्ही से है, स्वामीजी, सदा शका लगी रहती है।" युवक उदास आँखो से स्वामीजी की ओर देखने लगा।

स्वामीजी की पलको पर दूरतर भविष्य का निकट छायापात स्पष्ट था।

दोनो वडी देर तक मौन रहे। कितनी करुणा उन पलको पर थी ? व्रजकिशोर को ऐसी मौन सहानुभूति मे प्रकट स्नेह आज तक नही प्राप्त हुआ। उसने आश्वस्त होकर कहा, "स्वामीजी, समय वहुत हो चुका, चलकर मेरे यहाँ भोजन करने की कृपा कीजिए।"

स्वामीजी सहमत हो, मन्दिर मे अपने कपडे रख कमर मे एक दूसरा वस्त्र वाँधकर व्रजकिशोर के साथ चल दिये।

सादर स्वामीजी को वाहर कम्वल पर वैठाल भीतर जा थाली लगवाकर वुलाया। हाथ-पैर और मुँह धोकर स्वामीजी भोजन करने वैठे। भ्रम, कभी न

करने से याद न रही—स्वामीजी के मुँह की राख धोने के साथ धुल गयी। उस कान्तिमान् चेहरे को कुछ विस्मय के साथ ब्रजकिशोर देखता रहा।

रसोई मे उसकी वहन वीणा थी। अनावृत मुख, शुभ्र कुन्द-कलिका-सी निष्कलक, तुषार-हत वाष्प-व्याकुल कमलनेत्र, किसी चित्रकार ने जैसे करुणा की सोलह साल की तस्वीर खीच दी हो, एक नजर स्वामीजी को देखकर, सभय प्रार्थना से पूर्व भोजन की पूर्ति के लिए तत्पर।

कितनी करुणा भारत की झोपडी-झोपडी मे है ? स्त्री आँख की पुतली-सी नाजुक है, हमेशा पलको के दुहरे परदे मे बन्द रहती है, जव किसी साधारण भी अनिष्ट की सम्भावना होती है,—मायका और ससुराल, कार्य सवसे सूक्ष्म—केवल दर्शन, पर वह कठोरतम कार्यों का कारण है। ससार की प्रति प्रगति की सुलोचना स्त्री ही नियामिका है—स्वामीजी खाते हुए सोचते रहे—क्या एक बाजू कतर देने पर चिडिया उड सकती है ?' स्त्रियो की दशा क्या ऐसी ही नही कर रक्खी यहाँ के कलमष मे डूवे, धर्म को ठेका कर रखनेवाले लोगो ने ?

"क्या नाम है इसका ?" स्वामीजी ने पूछा।

"वीणा, स्वामीजी," ब्रजकिशोर ने उत्तर दिया।

वीणा सजीव चचल हो गयी। स्वामीजी चुपचाप भोजन कर, हाथ-मुँह धो, वाहर गये।

चौदह

विजय के प्रयत्न से साधारण जनो की सहानुभूति बादलो के छिन्न, कटे टुकडो की तरह ग्राम्य आकाश घेरकर एकत्र होने लगी। शीतल, सत्-समीर के मन्द-मन्द झोके हृदय का पहला ताप हरने लगे। ऋतु बदल गयी। शिक्षा के जल से उर्वरा भूमि भीग गयी। श्यामल सजल मसृण तृण-वाल एक साथ सिर उठाकर पूर्ण प्रीति से लहराने लगे। हवा के साथ बँधकर एक तरफ झुकना पहले-पहल सीखा। ज्यो तृण-सकुलता वढने लगी, स्थानीय पशु-वृत्ति उसे चलकर जीवन की पुष्टि के लिए त्यो-त्यो प्रवलतर, उच्छृखल हो चली।

देहात के जमीदार लोग किसानो का यह सगठित शिक्षाक्रम देखकर घवराये। प्रकाश मिलने पर स्वभावत लोगो को अँधेरे की स्थिति, दु ख आदि मालूम हो जाते हैं, और उनका पहला वह भय दूर हो जाता है। विजय के ओजस्वी रूप के भीतर जो शिखा साधारण जनो को दिखी, वह इतनी उज्ज्वल पहले किसी के भीतर न दिखी थी, इसलिए देहात के लोग आज तक आत्म-परिचय-वचित रह गये थे; और, ज्यो-ज्यो उन्हे अपने हृदय की ज्योतिर्मयी महिमा-मूर्ति से परिचय मिलने लगा, और सवको एक ही जग-विटप के मनुष्य सुमन होने का ज्ञान-सूत्र

प्राप्त हुआ, उसका पूर्वरूप, जिसमे वह जमीदार के क्रीतदास, ब्राह्मणो के चिर-सेवक और अपने एक दूसरे भाई पर प्रहार करने को उद्यत पुलिस के हाथ के हथियार थे, बदलने लगा, जमीदारो, ब्राह्मणो और पुलिस के कास्टेबिलो-चौकीदारो की त्यो-त्यो त्योरियाँ चढने लगी।

यदि ताल की मछलियाँ जाल से निकल जाने की कोशिश करे, तो धीवर लोग मारा जल सीचकर उन्हे पकडेगे, यह प्राकृतिक नियम है। विजय के कृत्यो से विजित जमीदार और कुछ और-और लोग इसी प्रकार पहले जाल डालकर फिर जल सीचने का उद्योग करने लगे। पहले, जब जबानी डाँट-फटकार बेकार हुई, तो बडे साहब के यहाँ विजय के नाम किसानो को बरगलाने की अर्जियाँ देने लगे, कुछ समय तक इसका कुछ असर न होता हुआ देखकर कानूनी चालो से किसानो को किश्ती मात करने पर तुले। पीछे पुलिस और स्थानीय प्रतिष्ठित ब्राह्मण, क्षत्रिय और कायस्थो का बल था, जो गोल पेदेवाले लोटे की तरह सब तरफ लुढकते है, जरा इशारा चाहिए, उनका भरा जल ढल जाता है, इसकी उन्हे परवा नही, वे खाली रहकर ज्यादा ठनकना चाहते है—आवाज-आवाज पर बोलना।

विजय का दीन दुखियो मे बल था। यद्यपि दिल से उसे सभी मानते थे। दीन जनो मे सामाजिक और व्यावहारिक कमजोरियाँ-ही-कमजोरियाँ रहती है। पडोस के जमीदारो ने यही से अपनी कामयाबी की नीव डालना शुरू किया। गरीब होने के कारण अधिकाश किसान गाँव और पडोस के महाजनो के कर्जदार थे। किसी-किसी का लगान भी बाकी था। जमीदार लोग किसानो की अवस्था जानते थे कि गरीब है, कुछ दे नही सकते, अगर दावा कर देगे, तो रुपये कुछ और अदालत मे व्यर्थ खर्च होगे, और वसूल कुछ न होगा। इसलिए अगली फसल तक धैर्य रखते थे, और फसल होने पर कुल बकाया और हाल का जो कुछ होता था, वसूल कर लेते थे। अगर किसान किसी महाजन का भी कर्जदार हुआ, तो उसकी रास की लाश पर श्वान और गीध की, अपनी-अपनी सुविधानुसार, झपट होती थी, एक दूसरे की आँख बचाकर नोच लेते थे। पर अब के मिलकर देहात की सामाजिक और जमीदारी प्रतिष्ठा कायम करने के स्वार्थ की गन्ध से रोचक निश्चल उद्देश से जमीदार और महाजनो ने किसानो को तग करने की सोची। किसानो का सबसे बडा कसूर यह है कि वे पहले की तरह नही डरते, लगान के अलावा वाजिब-उल्-अर्ज से अधिक जो रकम और परिश्रम किसानो से लिया जाता था—हली, भूसा, रस, पुआल, सिचाई का काम आदि, अब नही देते, और ऐसा देखते है, जैसे परम मित्र हो।

दबे हुए जो होते है, दबाना उनका स्वभाव बन जाता है। और जब न दबनेवाली वृत्ति बढती है, तब दबनेवाली वृत्ति भी अपनी उसी शक्ति से बढती रहती है। फिर जिसमे शक्ति अधिक हुई, उसकी विजय हुई। जमीदारो ने अपने एक बडे स्वार्थ की रक्षा के लिए 'अर्ध तजहि बुध सर्बस जाता' वाली नीति पकडी। वसूल करने के अभिप्राय से नही, तग करने के विचार से बाकी लगान का दावा दायर कर दिया। आसपास के चुन-चुनकर गरीब किसान लिये गये। सम्मन जारी हुए। पर जिन-जिनके नाम आये, उन्हे पता भी न चला, और सम्मन तामील हो गये। किसी मे लिखा गया, सम्मन

नहीं लेना, भग गया। साथ दो गवाह भी हो गये। किसी मे लिखा गया, घर से वाहर नही निकलता, घर मे है, इसलिए दरवाजे पर सम्मन चस्पाँ कर दिया। दो गवाहो के दस्तखत। इसके वाद एकाएक पास-पडोस के उन गाँवो मे, उन्ही-उन्ही किमानो के नाम वारण्ट। सब पकडकर बैठाये गये। गाँव मे खलवली मच गयी। स्त्रियाँ ऊँचे, करुण स्वर से स्वामीजी के नाश के लिए हाथ उठाकर ईश्वर से प्रार्थना करती हुई रोने लगी। कोई विलाप करती हुई अपने महाजन के पास दौडी, कोई गाँव के प्रतिष्ठित धनी सज्जन ब्राह्मण-कायस्थ के मकान की तरफ चली। कोई जमीदार के पैरो पडने लगी। कोई जमानत के लिए चाहिए, नहीं तो सीधे हवालात वन्द किये जायँगे। किसानो मे किसी की हैसियत ऐसी नही, जिसकी जमानत मजूर हो। चारो तरफ से सधा काम, सरकार के लोग, जमीदार, महाजन-सव सधे। वेचारे खेत जोतनेवाले सीधे किसान, अदालत और पुलिस के नाम से डरनेवाले, हवालात के ताप से सूख गये। लगान वाकी था ही, अदालत मे झूठ कैसे कहेगे, जमीदार के कागजात झूठ नही हो सकते। सरकार का लगान वाकी है, इसलिए सजा जरूर होगी। ईश्वर पर विश्वास रखकर, विश्वास के वल पर अनहोनी को सब प्रकार सिद्ध करने की जिनकी आदत है, उनके लिए हवालात के वाद सजा तक की कल्पना कर लेना कोई वडी वात नही। जव लोगो ने सोचा कि पता नही, कितने दिनो तक हवालात मे वन्द रहना पडेगा, और वहाँ भगी का वनाया भोजन भी करना पडता है, नही तो कोडे पडते है, अगर सजा हो गयी, तो लडके-वच्चे मर जायँगे, दीन-दुनिया दोनो तरफ से गये, लौटकर रोटी देनी पडेगी, तव, चिरकाल की सञ्चित अपनी प्यारी कायरता के सुख की याद कर-कर जमीदार से जुदा होने का अपराध पूरे मन से स्वीकार कर, वालको की तरह फूट-फूटकर रोने लगे। गाँव के महाजनो ने जमानत देने से इनकार कर दिया। हर गाँव से एक-एक, दो-दो आदमी स्वामीजी के पास मदद के लिए आये, और अपने दुख का वयान कर रोने लगे। विजय ने सवको समझाकर कहा कि हवालात सवको चले जाने के लिए कहो, पेशी के दिन और-और लोगो को लेकर हम आते है, हवालात मे फाँसी नही हो रही, और अपने हक के लिए और सत्य के लिए लड रहे हो, डरो मत। पर इसका लोगो पर कुछ प्रभाव न पडा। क्योकि हली न देने मे अपना फायदा किमानो को देख पडा था, अव नुकसान सामने है। स्त्रियाँ तथा और-और किसानो के भाई-वन्धु समस्वर से कहने लगे, हमे इसी स्वामी ने चौपट कर दिया, हमे तो अपने जमीदार के राज मे सुख है। हाथ जोडकर सब प्रार्थना करने लगे, अव के कसूर माफ कर दिया जाय, मालिक अब कान पकडते हैं, ऐसा काम कभी न करेंगे— तुम जो राह निकालोगे, उसी से चलेंगे। पर किसी की न सुनी गयी। चपरासी, कास्टेविल, जमीदार और कुछ हर गाँव के प्रतिष्ठित लोग गिरफ्तार किसानो को लेकर थाने की तरफ चले। कुहराम मच गया। रोती-विलखती, अपने जमीदार के पैरो पडती हुई, धूलि-धूसर किसानो की स्त्रियाँ भी गाँव की हद तक आयी, और एक जगह पछाड खाकर ऊँचे स्वर से वार-वार करुणा-मिश्रित प्रार्थना करने लगी।

किसी की एक न सुनी गयी। सब थाने हाजिर किये गये। हवालात की तरफ

देखकर बड़े दुख से उभड-उभडकर सब रोने लगे। हाथ जोड़कर बार-बार अपने जमीदार से कृपा की भीख चाहने लगे। उन्हे हर तरह हारे हुए देखकर, उनसे यह मजूर करा कि कभी अब स्वामीजी को कोई एक मुट्ठी भीख न देगा, जो पास बैठेगा, उसे जुर्माना पाँच रुपया देना होगा, मुकदमा दायर करने में जो खर्च हुआ, उसका दूना लिखकर उस पर अँगूठा-निशान और साथवाले पड़ोस तथा गाँव के म ाजनो की गवाही करा जमीदारो ने उन्ही से किसानो की जमानत भी लिखा दी। सब लोग जैसे यम के फन्दे से छूटे।

दूसरे ही दिन थानेदार साहब सदल-बल आ धमके, और स्वामीजी को गिरफ्तार कर लिया। जमीदारो ने ऐसा ही माया-जाल रचा था। स्वामीजी का चालान हो गया, सुनकर रहे-सहे लोगो की हिम्मत भी पस्त हो गयी। गाँव-गाँव यह आतक फैल गया। गाँवो मे जो साधारण-से पढे-लिखे लोग किसान-बालको को पढानेवाले मास्टर थे, गाँव छोड़कर शहर भाग गये। बालको ने भी पाठशाला जाना बन्द कर दिया। जमीदार और महाजन लोग रास्ते मे मिलने पर आँख दबाकर हँसने लगे।

स्वामीजी का जिला-जेल चालान कर दिया गया। अदालत मे थानेदार को शहादत पेश करने की तारीख मिली। मुकद्दमा राजद्रोह पर था। थानेदार कृपानाथ के गाँव मदद के लिए आये। जितने किसान स्वामीजी के भक्त थे, सबको कृपानाथ ने बुलवाया, और थानेदार की तरफ से साक्ष्य के लिए जाने को कहा। दूसरे गाँव के भी किसान लिये गये। किसी मे यह हिम्मत न थी, जो गवाही देने से इनकार कर देता, फिर थानेदार साहब ने अपनी इच्छा के अनुसार सबको सिखला दिया कि यह-यह कहना।

पेशी के दिन विजय ने देखा, बुधुआ पहला गवाह है। तरह-तरह की बातो से 'एक सद्विप्रा बहुधा वदति' यह उक्ति राजद्रोह के सम्बन्ध मे सबने साबित की। विजय की आँखो से आँसू बह चले, किसानो की दशा के विचार से। विचारक को मालूम हुआ, स्वामीजी को कुछ नही कहना; तब एक साल की सजा कर दी। किसान अपनी पूर्वस्थिति मे दाखिल हो गये।

पन्द्रह

कुछ दिनो बाद, हृदय का उत्सुक उत्स विजय के सुख-पुर की ओर शोभा के रहस्य-समुद्र से मिलने के लिए अजित को भीतर से धकेलने लगा। अजित का जैसा कौतुक-प्रिय पहले से स्वभाव था, वह कल्पना-लोक मे लीन, मित्र की शून्य हृदय की शोभा को, एक चिह्न के सहारे प्रयत्न पर युगो की लुप्त श्री के अन्वेषक की तरह, पत्र-मात्र के आशय से खोजने के लिए चला। अज्ञान, भ्रम, कल्पना, उप-

कथन तथा घटनाओ की कितनी मिट्टी के नीचे ऐसे पत्र की सुहृत् लेखिका अपनी चिर निर्मल धवल धौत शोभा लिये रत्न-प्रभा की तरह, अथाह जल-तल मे शुक्ति की तरुण-मुक्ता-सी, अपने जीवनोद्देश पर यह शेष-पत्र-पुष्पार्पण कर पतझड के समय दारु देह की अदृश्य सुमनावलि की तरह रूप-भार सुरभिवाली यह निरुपमा कहाँ छिपी होगी ? यदि ताप से दह-दहकर क्षीण से क्षीणतर होती हुई अपने ही प्रिय-पद-चिह्न मे लीन हो गयी हो, तो ? उसे मै कहाँ खोजूँगा ? इस प्रकार अनेकानेक काल्पनिक रूप गढता-बिगाडता हुआ, प्रगतिशील जीवन-यान के मानसिक उधेड-बुन मे पडे हुए पथिक की तरह पथ पार करता हुआ अपने उसी वेश मे वह विजय की ससुराल के प्रान्त भाग के एक प्रान्तर मे पहुँचा, और एक पेड के नीचे, रास्ते के किनारे, कुछ लकडी एकत्र कर, धूनी रमाकर ध्यान मे बैठ गया ।

एक स्त्री सिर पर एक भार रखे आती हुई देख पडी । सजग हो, आसन मारकर साधु ने पलकें मूँद ली । खुली, उसरीली उस काफी लम्बी-चौडी भूमि के बाद विश्राम करने की यही एक सुखद छाँह थी । तब तक काफी जाडा नही पड रहा था । साधु को देखकर मनहारिन की आँखो का कौतुक बदल गया । थक भी चुकी थी । अपना हलका भार उतारकर, तृप्ति की लम्बी साँस छोडकर बैठ गयी। बाबा-जी ने अपने फायदेवाली बाते सोचने लगी । बाजार के लोग, चाहे शहर के हो या देहात के, स्वभावत खबरें प्राप्त करने के इच्छुक, कौतूहली होते हैं । कोई नयी खबर बाबाजी से मिल जाय, जैसी अक्सर साधुओ से अब तक उसे मिलती रही है, तो घर-घर सुनाती हुई, स्त्रियो को उभाडकर, आशा मे बाँधकर, अपना माल ज्यादा बेच सकेगी । मुमकिन, कोई पुरस्कारवाली बात बाबाजी से मिल जाय, इस गरज से कुछ विश्राम कर, उठकर बाबाजी के पास जा, हाथ जोडकर दण्डवत् की । आँखो मे हँसती रही । वह बहुत बार बाबाजियो से मिल चुकी है । वे भिन्न-भिन्न अनेक रूपो से उसके सामने आ चुके है । उनमे इन्द्रजाल का भण्डार, ऐयाशी के गुप्त रहस्य, लडके होने के उपाय, चोर-डाकुओ के पते, वशीकरण-मन्त्र और विधाता से न हो सकनेवाली कितनी ही घटनाओ का सघटन प्रत्यक्ष कर चुकी है— जैसे किसी स्त्री के प्रेमी को, जो हजार मील दूर परदेश मे कार्यवश रहता है, रात ही-भर मे प्रेमिका की खबर दे आना, जो अपढ है, और सुयोग न मिलने के कारण पत्र लिखवाने से लाचार· ऐसा ही किसी पुरुष की ओर से पर्दे के साथ पर्त के भीतर रहनेवाली स्त्री के लिए करना, मन्त्र-शक्ति से भरी हुई राख हाथ मे लेकर नाम के साथ फूंक देने पर लाख योजन दूर बैठे हुए दुश्मन का उसी वक्त खात्मा हो जाना; दी हुई रोली का तिलक लगाकर चलने से दूसरो का तिलकवाले को न देख पाना, बाबाजी का दिया हुआ कंकड सिर पर रख, साफा बाँधकर जाने से मुकद्दमा जीत जाना आदि-आदि । जहाँ मुश्किल मुकाम देखते थे, वहाँ बाबाजी लोग अनुपान ऐसे ही बतला देते थे, जो उसके सीधे उपाय के ही अनुसार टेढे होते थे । अत फल न होने पर अविश्वास करने का कारण न रह जाता था । वशीकरण आदि पर तो मनहारिन को स्वय विश्वास है, क्योकि शोभा पर उसने इसका प्रयोग एक बाबाजी से कराया था, और उसके मा-बाप इसी के बाद मरे थे, और वह हाथ भी आ गयी थी । पर चूँकि, बाबाजी के कहने के अनुसार, हाथ आने के

दूसरे दिन गाँव मे न हटायी गयी, इसलिए दूसरे के साथ चली गयी, मन्त्र की शक्ति उसे दूसरी राह-से निकाल ले गयी, क्योकि उमे निकल जाना हो था !

कौतुक से मिली भक्ति से ज्यो ही उस स्वार्थ की पुतली को सामने झुकते हुए अजित ने देखा, त्यो ही आँखें मूँदकर, अपना प्रभाव डालने के उद्देश से, जोर से बोला, "दूर हो, दूर हो, मैं नही बचा सकता तुझे ।"

मनहारिन के होश उड गये । जितने पाप उसने किये थे, छाया-चित्रो की तरह उनकी तस्वीरें आँख के सामने सजीव होकर तरह-तरह की विकृत आकृतियो से उसे डराने लगी और उसने सोचा कि मेरे पापो का हाल बाबाजी को मालूम हो गया। उसका तमाम जीवन पाप करते-करते बीता है। अजित भी उसकी मुरझायी श्री एक बार देखकर, पलके बन्द किये, अपनी ताक मे, चुपचाप बैठा रहा।

"क्यो बाबाजी, क्या देख रहे है आप ?"

"तू क्या नही जानती कि क्या देख रहे है ? फल देख रहे है, जो अब तू भुगतेगी ।"

अजित को फल-फूल का कुछ भी हाल मालूम न था । पर आदमी के पुतले मे वासना के फूलो से भोग के कड़ुवे फल लगते हैं, इसका अनुमोदन किताबो मे उसे मिल चुका था, और उदाहरण भी अपनी ही आँखो कई प्रत्यक्ष कर चुका था। कानपुर के सरसैया घाटवाले रास्ते के दोनो ओर जो साधु बैठे रहते हैं, उनमे एक के पास उसका एक मित्र गया था । साधु के पास प्रणाम करने के लिए जो जायगा, वह जरूर पापी होगा, अपने एक या अनेक कृत पापो के स्मरण से जब उसे चैन नही पडता, तब वह साधु की तरफ दौडता है कि प्रणाम करके अपने पाप का बोझ दूसरे पर लाद दे । साधु इस तत्त्व को खूब समझते है । उस मित्र को उस साधु ने फटकारा, तो उसने सारा किस्सा बयान कर दिया, और ऊपर से पूजा भी चढायी। अजित को एक हाल और मालूम था । एक डॉक्टर थे । वह आध्यात्मिक चिकित्सा करते थे । लखनऊ मे रहते थे । आध्यात्मिक चिकित्सा का नाम सुनकर अधिक-से-अधिक लोग उनके बँगले पर आने लगे । डॉक्टर को रोग बतलाना धर्म है । और, पीडा के प्रशमन के लिए स्वभावत रोगी उस समय सारल्य की मूर्ति बन जाता है । इस तरह, कुछ दिन आध्यात्मिक चिकित्सा करने के बाद, डॉक्टर साहब ने ससार के रोगियो की सख्या मे मालूम कर लिया कि एक विशेष रोगवाले प्रतिशत सत्तर से अधिक है । फिर तो डॉक्टर साहब सिर्फ चेहरा देखकर ही रोग के लक्षण बतलाने लगे । उनके उसी खास रोग के कोठे मे जब सैकडा सत्तर आदमी पडते हैं, तब केवल चेहरे से रोग की पहचान कर रोग के साथ लोगो के चरित्र की कथा कहने लगे, और डॉक्टर साहब को आसानी से सैकडा सत्तर नम्बर मिलने लगे । बडा नाम हुआ । पर डॉक्टर साहब को यह ख्याल न रहा कि उनकी यह चारित्रिक पहचान केवल लखनऊवालो पर ज्यादातर पूरी उतरती है, अब नाम फैल गया है, और बाहर से भी लोग आने लगे है, जो ऐसे मर्ज मे मुब्तिला अक्सर नही होते । लिहाजा उन्होने बडी भारी गलती की । देहात से एक सूबेदार साहब आये । उम्र चालीस साल, खासे तगडे-पट्ठे । पर बदन मे एकाएक पारा फूट आया था, जिसके दाग चेहरे पर भी जाहिर थे । डॉक्टर साहब धाक जमाने के इरादे से चेहरा देखते

ही गालियाँ देने लगे। सूबेदार साहब ने सोचा, यह शायद आध्यात्मिक चिकित्सा-प्रणाली के अनुसार डॉक्टर साहब मेरे रोग को गालियाँ दे रहे है, जैसे किसी के सिर ब्रह्मराक्षस आने पर लोग उस आदमी से नही, ब्रह्मराक्षस से बाते करते है। पर जब सूबेदार साहब को ही वह कहने लगे—'तू ने ऐसा (सम्बन्ध-विशेष का उल्लेख कर) किया है, बडा नीच है, आदि-आदि," तब सूबेदार साहब की समझ मे बात आयी कि यह रोग पर नही, मेरे ही झूठ इतिहास पर व्याख्यान हो रहा है। बस, डॉक्टर साहब को देहाती सूबेदार साहब ने उल्टा सिर के बल खडा कर दिया, और अपने चार सेरवाले चमरौधे उपानहो से चाँद गजी कर दी, फिर मेडिकल कालेज रोग की परीक्षा करवाने चल दिये। वहाँ डाक्टर की पूछताछ से मालूम हुआ, सूबेदार साहब के पिता को यह रोग था, और सूबेदार साहब के पैदा होने से पहले इनके बीज उनमे आ चुके थे।

अजित इसीलिए चारो ओर से चौकस है। किसी प्रकार भी मनहारिन के मन मे कुछ झूठ की शका हुई कि यहाँ उसके चारो ओर अथाह गहराई हो जायेगी, फिर बुद्धि की बल्ली नही लग सकती, कुहरे मे प्रकाश की तरह सत्य-रहस्य उसकी अपनी पृथ्वी से दूर ही रहेगा।

बाबाजी को एक समझ लेनेवाली आवाज पर चुपचाप बैठा हुआ देख मनहारिन ने समझा, बाबाजी जरूर सबकुछ समझ गये, यह दूसरो से कह देगे, तो लोग मुझे जीती गाड देंगे, और अगर मेरे खिलाफ कोई कार्रवाई होती होगी या कोई खुदाई मार पडनेवाली है, तो उसे भी यह देख चुके होगे, नही तो ऐसा क्यो कहते। यह जरूर कोई सच्चे साधु है, कैसा चेहरा जगमगा रहा है! जो होना है, उसके बचाव के लिए इन्ही की शरण क्यो न लूँ?

ऐसा निश्चय कर बडी भक्ति से उसने प्रणाम किया, और हाथ जोडे हुए खडी रही।

अजित समझ गया कि यहाँ दाल मे काला अवश्य है, और पेचदार शब्दो मे फिर कहा, "अगर साधुओ से भी छिपाना है, तो हाथ जोडकर खडी क्यो हो? जाओ। जब तक आ नही पडती, तब तक आदमी की पुतली नही समझना चाहती।"

मनहारिन को ऐसा जान पडा कि अब कुछ हुआ ही चाहता है। घबराकर बोली, "महाराज, पेट पापी चाहे जो करा ले, थोडा है। अब आप ही मुझे बचाने-वाले हैं।"

पूरा विश्वास हो जाने पर कि यह कुछ-या बहुत हद तक बदमाश जरूर है, उस पर अपनी दूसरी दूरदर्शिता का प्रभाव डालने के उद्देश्य से गम्भीर हो अजित ने दूसरी भविष्यवाणी की जिस तरह की विजय से सुनकर वहाँ के जिलेदार पर उसकी धारणा बँध गयी थी, "इस गाँव जिलेदार, उफ्! कितना टेढा आदमी है! समझना है उसका मतलब कोई नही जानता। अरे बच्चे, तू ईश्वर की आँखो मे धूल झोकेगा? उसके बन्दे सबकुछ जानते है। एक पहर से लगातार उसके भूतो से लड रहा हूँ, बिना भूतो को उतार दिये साधु गाँव मे भिक्षा लेने कैसे जाय? पर भूत नही उतर रहे। उसके दिल मे तो कही रत्ती-भर भलाई का ठौर नही,

इसलिए भूत छोड़ भी नहीं रहे।"

अजित आप-ही-आप जोर से खिलखिलाकर हँसा, "तुम्हारे भूत सब बयान कर रहे हैं। अच्छा, ऐसा भी किया! अच्छा, यह भी हुआ!"

यह कहकर मुस्किराती आँखों से मनहारिन की तरफ देखा। उसको जिलेदार पर होनेवाली बातें सुनकर काठ मार गया था। उसे अपने भी पाप जिलेदार के साथ किये हुए याद आ रहे थे। स्वामीजी जान गये। समझकर उनके देखने के साथ बोली, "इसी ने सुना रहा था महाराज, और रुपये का लालच दिया था कि पच्चीस रुपये दूँगा, अगर शोभा को ला दे। बड़ा बदमाश है, इसी ने बाप की चार-पाँच हजार की रकम घर से टाल दी। इसे भी बिगाड़ देता, पर वह खुद कहीं चली गयी। बड़ी नेक, बड़ी भोली लड़की थी महाराज! और पता नहीं, कहीं इसी ने मारकर टाल दिया हो, पर लोग कहते हैं, किसी के साथ भग गयी।"

सिर हिलाकर स्वामीजी ने कहा, "बात तू ठीक कहती है।"

महाराज का मन पा, उनकी कृपा से अपने बचाव की पूरी आशा कर, आप-ही-आप उच्छ्वसित हो मनहारिन कहने लगी, "महाराज, इस गाँव का तअल्लुकेदार, कौन नाम ले मुए का—चार रोज खाना न मिले, पक्का बदमाश है, वही यह सब कराता है, इसी के लिए बेचारी को घर छोड़कर भागना पड़ा।" कहकर एकाएक करुण स्वर से रोने लगी, फिर आप ही आँसू पोंछकर कहा, "और रामलोचन की बेटी तो या अल्लाह! ले ही गयी, कि किसी को पता भी न हो।"

"अच्छा, अब तू जा, कल मिलना, मैं शाम तक इसके भूतों को दो रोज के लिए मना लूँगा।" कहकर स्वामीजी ने पलकें मूँद लीं। मनहारिन उनकी प्रसन्नता से खुश हो, अपनी टोकरी सिर पर रख, गाँव की ओर चली।

सोलह

मनहारिन के पैर तेज उठने लगे। सोचने लगी—कब गाँव पहुँचे, कब महादेव मिले। अपनी ओर से निश्चिन्त हो गयी थी कि खुदाई मार बाबाजी टाल ही देंगे, दूसरों के लिए कौतुक बड़ा। महादेव से वह नाराज थी। महादेव उससे काम भी निकालता था, और शेखी भी बघारता था, जैसे उसका मालिक हो। शोभा के मामले में पच्चीस रुपये देने को कहा था, सिर्फ दो दिये थे, और एहसान भी नहीं माना, कहा कि यह सब तो मैंने खुद किया है, तुझे इसीलिए दो रुपये देता हूँ कि तू बुरा न माने। अब वही महादेव अपने पाप के फन्दे में फँसा है। देखूँ जरा, क्या कर रहा है। अल्लाह की कसम, जो कहीं बाबाजी का नाम बताऊँ। ले अब मजा और देखती हूँ, कौन तुझे अच्छा किये देता है।

सोचती हुई मनहारिन गाँव के भीतर आयी। निकास पर ही जिलेदार महादेव-

प्रसाद का मुकाम, जमीदार का डेरा मिला। चौपाल मे चारपाई पर पडे महादेव-प्रमाद कराह रहे हैं। तीन-चार रोज से कमर मे सख्त दर्द है। कुछ बुखार भी है। चारपाई के एक वगल कच्ची मिट्टी के गमले मे कण्डे की आग मुलग रही हे, थूहड और मदार के कुछ पत्ते इधर-उधर पडे है, जैसे सेक हो रही थी, और ये पत्ते वाँधने के काम मे आये गये थे, तीन-चार साल पहले एक वेवा की अटारी से रात को कूदने से कमर मे इन्हे चोट आ गयी थी, अब एकाएक उभर आयी है।

महादेव का कराहना सुनकर मनहारिन वडी खुश हुई, और वावाजी पर उसे पूरा विश्वास और अचल भक्ति हो गयी। "अरे जिलेदार साहव," चारपाई के नजदीक आ आवाज दी, "क्या हो गया है आपको ? आज पाँचवे दिन मुझे इस गाँव फेरी डालने का मौका मिला है, उस रोज तो आप अच्छे थे।"

"अरे भाई, मर रहा हूँ, और क्या कहूँ।" काँखते हुए महादेवप्रसाद ने कहा।

मनहारिन ने टोकरी वही उतारकर रख दी। इधर-उधर देखा, कोई न देख पडा। पास जाकर धीमे स्वर मे कहा "यह और कुछ नही, तुम्हारे ऊपर भूत सवार हैं। गाँव के किनारे एक वावाजी बैठे उन भूतो से लड रहे है। कहते है—ये सव पापवाले भूत हैं। महादेवप्रसाद के सव हाल बयान कर रहे है, और वह जो कुछ कहते हैं, हर्फ-हर्फ सच्चा है। अभी तुम्हे देखा नही। पर सारा हाल वयान कर रहे है। और एक ही का हाल नही, सवका, चाहे जो जाय। मुझसे कहने लगे, मनहारिन, तू दिल से वडी भली है, तेरे पेट मे छल नही रहता, महादेव जिलेदार ने तेरे रुपये नही दिये, इसका उसे वडा बुरा फल मिलेगा।"

पिछले वाक्य से महादेवप्रसाद को आग लग गयी। पहले जैसा विश्वास हुआ था, वैसा ही अविश्वास भी हुआ कि विलकुल झूठ कह रही है। लछमन तरकारी लेकर मकान के भीतर गया था, उसे आवाज दी। रुख वदला हुआ देखकर मनहारिन ने अपनी टोकरी उठायी, और यह कहकर कि आप समझोगे, मैं सच कहती हूँ या झूठ, वहाँ से चल दी।

फिर घर-घर वावाजी के शाम को आने की वात, महादेव के भूतो से लडना, मन की वात जान लेना, वहुत पहुँचे हुए फकीर होना, शोभा का रत्ती-रत्ती पता रखना, और सव प्रकार के असम्भवो को क्षण-मात्र मे सम्भव कर देना आदि-आदि खूव रँगकर स्त्रियो को सुनाने लगी। वावाजी के दर्शन के लिए तरह-तरह की कामना रखनेवाली स्त्रियो को उद्ग्रीव कर, पूरा विश्वास भरकर शाम से पहले अपने घर चली गयी। वावाजी ने दूसरे दिन मिलने के लिए कहा है, इस न नाँघने-वाले उपदेश पर पूरी भक्ति रखने के कारण दूसरी राह मे घर गयी। वावाजी से उस रोज फिर नही मिली।

चार वजे के करीव, पिछले पहर, अजित गाँव के भीतर गया। उसे गाँव के कई और लोगो ने आसन मारकर धूनी के किनारे ध्यान करते हुए देखा था। गाँव मे जाकर उन लोगो ने भी महात्माजी के आगमन की चर्चा की। मनहारिन पूरे उद्वेग से प्रचार कर ही रही थी। महात्माजी गाँव के किनारे बैठे हुए तपस्या कर रहे हैं, दुपहर वीत गयी है, उन्हे कुछ भोजन न पहुँचाया जायगा, तो गाँव के लिए हानिकर है, इस विचार के, धर्म को प्राणो से प्रिय समझनेवाले कुछ लोग दूध,

मिठाई और भोजन आदि थाली मे सजाकर ले गये, पर स्वामीजी ने गम्भीर होकर कहा, "तुम लोगो की सेवा से मैं बहुत प्रसन्न हूँ, मैं दिन को भोजन नही करता, शाम को तुम्हारे गाँव जाने पर करूँगा, अभी मै एक विशेष कार्य मे दत्तचित्त हूँ, तुम लोग लौट जाओ।"

लोग प्रणाम कर, स्वामीजी की प्रोज्ज्वल यौवन की शिखा को राख मे ढकी हुई कुहरे के भीतर मे सूर्य की सुन्दरता देखकर मन-ही-मन प्रशसा करते हुए चले गये, स्वामीजी के गाँव जाने पर लोग उनके दर्शन के लिए एकत्र होने लगे। सन्ध्या के बाद अधूरी आकाक्षावाली स्त्रियो ने मौका मिलने पर दर्शन करेंगी, सोच रक्खा था। मनहारिन के मुँह से जैसी तारीफ वे स्वामीजी की सुन चुकी थी, उन्हे विश्वास हो गया था कि जरा-सी प्रार्थना कभी भी स्वामीजी की कृपा होने पर अधूरी न रह जायगी। जिसके पति को खबर न थी, और जो स्वामीजी से कोई कामना पूरी कर लेना चाहती थी, पति के आते ही स्वामीजी की अनर्गल तारीफ कर दर्शन के लिए भेज दिया, और लोगो के आने पर खुद भी जायगी, यह आज्ञा ले ली।

एक तरफ गाँव के एक बडे शिवालय मे स्वामीजी ठहरे हुए है। अभी सूर्यास्त नही हुआ। अस्ताचल चलनेवाले सूर्य की किरणो ने शिखिर के शीश पर सुनहला ताज रक्खा हुआ है। खगकुल अपने आवास की डाल पर स्नेह-कलरव द्वारा मातृ-स्वरूपा प्रकृति की रानी की सान्ध्य वन्दना कर रहे हैं। नवीन शस्य और सजल शोभा दिगन्त तक फैली हुई मनुष्यो के जीवन की छोटी-बडी कल्पनाओ की तरह पृथ्वी की गोद पर लहरा रही है। मधुर मोहक स्वप्न की तरह, मनुष्य के मन को अपनी स्थितिवाली सकीर्णता मे भुला, माया-मरीचिका मे दूर —दूरतर ले जाकर सुख और ऐश्वर्य का पूर्ण अधिकारी बना रही है। प्रकृति की इसी प्राकृत अवस्था के कारण आज घोर दु ख मे पडा हुआ मनुष्य कल सुख की कल्पना-मात्र मे उसे भूल जाता है। यहाँ के मनुष्य सब ऐसे ही दिखते हैं। सबके चेहरे पर प्रसन्न ससार की माया, प्रशसा, तृप्ति ही विराजमान है। कल जो तूफान उठा था, जिससे उनके भरे हुए कितने ही जहाज डूब गये थे, आज उस क्षति का कोई चिह्न उनके चेहरे पर नही। वे पहले ही जैसे सुखी, निश्चिन्त हैं। प्रकृति ने, जिसने बाहर से उनका सब कुछ छीन लिया था, आज भीतर से और बाहरवाली विराट् प्रकृति ने, जिसके भोग मे सबका बराबर हिस्सा है, उन्हे सभी कुछ दे दिया है—वे अभाव का अनुभव नही करते। कितने कष्ट हैं यहाँ, कितनी कमजोरियो से भरा हुआ ससार है यह, पद-पद पर कितनी ठोकरें लग चुकी है, पर सब लोग फिर भी समझते हैं—वे अक्षत हैं, वे ऐसे ही रहेगे, तभी पूरी प्रसन्नता से हँसते हैं, और खूब खुलकर बात-चीत करते हैं। वर्षा की बाढ की तरह कितने प्रकार के दु ख-कष्ट उन्हे उच्छ्वसित कर, डुबा-डुबाकर चले गये, पर दु ख-जल के हटने के बाद कुछ ही दिनो मे सूखकर फिर वैसे ही ठनकने लगे। साधु-दर्शन के लिए तन-मन-धन से आये हुए इन लोगो के प्रमाद-स्वर मे तन, मन और धन की ही गुलामी के तार बज रहे हैं। बातें ईश्वर की करते है, पर ध्वनि ससार की होती है कि हम बडे मौज मे हैं—ईश्वर की बातचीत खाते-पीते हुए सुखी मनुष्यो का प्रलाप है।

अजित यही सब, चुपचाप बैठा हुआ, सोच रहा था। लोग स्वामीजी की

तारीफ कर रहे थे कि ज्ञान का क्या कहना है, नही तो स्वामीजी की उम्र अभी सन्यास लेनेवाली न थी। साथ-साथ थोडी उम्र मे योग लेनेवाले शुकदेव, नारद, ध्रुव आदि ऋषियो और तपस्वियो के उदाहरण एक के बाद दूसरा पेश करता जाता, बातचीत का सिलसिला धर्म, इतिहास, योग और दर्शन के भीतर से न टूटता था।

जब अपनी वर्तमान स्थिति, सामाजिक दुर्दशा, राजनीतिक हीनता और धार्मिक पराधीनता पर किसी ने भी प्रश्न न किया, तब घबराकर और अयोग्यो को रत्न-राशि देने पर दुरुपयोग के विचार मे उन्ही की मानसिक स्थिति के अनुकूल अजित उपदेश-मिश्रित बातें कहने लगा।

"आजकल गृहस्थो के घर मे शुद्ध धान्य नही होता, इसलिए साधु को भोजन मे पाप स्पर्श करता है, सस्पर्श दोपवाली कथा तो तुम लोगो को मालूम होगी ?" स्वामीजी ने गम्भीरता से कहा।

लोग एक-दूसरे की तरफ देखने लगे। सुगन्ध पुष्प मे भी कीट होते हैं। वहाँ ऐसा कोई न था, जिसमे किसी प्रकार का भी धब्बा व्यक्तिगत या पारिवारिक न लगा हो, किसी के पिता पर, किसी की माता पर, किसी की बहन पर, किसी के अपने शरीर पर। सब लोग चौकन्ने हो गये, और अपने साथ-साथ दूसरो के चरित्र की चित्रावली देखने लगे, मन मे भरे, तकरार होने पर जिसे गोली की तरह दागते थे। मन प्रशमित हो जाने के कारण सब लोग स्वामीजी की दूरदर्शिता के कायल हो गये।

यद्यपि अजित को लोगो की मुख-मुद्रा से अपने सिद्धान्त की सच्चाई मालूम हो गयी, फिर भी अकारण उसने इधर को रुख नही किया। एक स्थविर मनुष्य की ओर देखकर पूछा, "आप लोग यहाँ कैसे रहते है ?"

"बडे अच्छे रहते है महाराज, आपकी कृपा से कोई दु ख नही।" हाथ जोडकर बडी नम्रता से उसने उत्तर दिया।

'आज यही नम्रता शक्ति-क्षीणता का कारण है।' मन-ही-मन अजित ने सोचा, 'ये अपने दु खो को कहने से भी घबराते है, सहते हुए मर जाना इन्हे स्वीकार है, कितना पतन है यह !'

कुछ इधर-उधर की बाते हुई। शाम हो गयी थी। अजित ने अपने कर्म-काण्ड मे लगने के लिए कहा। लोग उठकर चले।

रात क्रमश घनीभूत होने लगी। अजित का दिखाऊ कर्म-काण्ड पूरा हो गया। सस्पर्श-दोप के विषय पर जैसी बातचीत स्वामीजी ने की थी, आनेवाले लोगो मे से किसी को भी स्वामीजी के लिए भोजन भेजवाने की हिम्मत न हुई। क्योकि कही स्वामीजी ने सस्पर्श-दोपवाला हाल लोगो से बयान कर दिया, तो नाक जड मे कट जायगी, यद्यपि उसकी नाक गाँव के बाकी सभी लोगो के मन के हाथो कटी ही रहती थी—एक-दूसरे की नाक गदोरी पर रखकर दिखाते हुए दूसरे से बातचीत करते हो—ऐसा भाव रहता था।

यह स्पर्श-दोपवाली व्याख्या स्त्रियो के कान तक न पहुँची थी। पहुँचती भी, तो इतना व्यापक अर्थ शायद वे न लगातीं, यद्यपि दूसरो को इस दोप मे पतित

देखने की वे ही अधिक अभ्यस्त थी। इसलिए न लगाती, क्योकि उन्हे स्वामीजी से वरदान लेना था।

कुछ रात वीतने पर गाँव से कुछ स्त्रियाँ स्वामीजी के दर्शन के लिए चुपचाप गयी। जहाँ स्वामीजी टिके हुए थे, वहाँ तक जाने मे कोई भयवाली वात न थी। एक पहर मे कुछ अधिक रात तक स्वामीजी के पास स्त्रियो की भीड रही। उनका चढ़ाव स्वामीजी उन्ही पत्तलो मे धूनी के एक वगल रखवाते गये, और राख उठा-उठाकर हर प्रार्थना की अचूक दवा के तौर चुपचाप देते रहे। वडे भक्ति-भाव से राख आँचल के छोर मे वाँध-वाँधकर स्त्रियाँ लौटती रही।

रात डेढ पहर वीत गयी। चारो ओर गाँव मे सन्नाटा छा गया। लोग घरो मे सो गये। अजित भविष्य के छिपे हुए चित्र को कल्पना-शक्ति मे तपस्वी की तरह प्रत्यक्ष करने का प्रयत्न कर रहा था। पर चारो ओर उसे अन्धकार-ही-अन्धकार देख पडता है। ऐसे समय उसी की कल्पना मानो नारी-रूप ग्रहण कर भक्त के सामने श्यामा की तरह आकर खडी हो गयी।

स्वच्छ-सफेद वस्त्र मे अकेली एक युवती स्त्री को सामने खडी हुई देख अजित की नस-नस मे रक्त-प्रवाह तेज हो गया। इसका क्या कारण, जो इतनी रात को वह युवती स्त्री यहाँ आयी? अपने को सँभालकर दृढ स्वर मे पूछा, "तुम कौन हो?" युवती धीरे-धीरे वढकर उसके निकट आयी, और भूमिष्ठ हो प्रणाम किया।

"महाराज, मेरा नाम राधा है," उठकर हाथ जोडकर कहा, "शोभा मेरी दीदी है, जव मै गयी, उसका पता नही मिला। आप तो जानते हैं, मनहारिन मौसी कहती थी, वताइए।"

राधा के कण्ठ की सहानुभूति से अजित को मालूम हो गया कि यह स्नेह-पीडित होकर शोभा का पता मालूम करने आयी है।

"तुम्हारी कैसी दीदी है?" स्वामीजी ने पूछा।

राधा सिसक-सिसककर रोती हुई धीरे-धीरे कहने लगी कि वह शोभा के यहाँ टहल करती थी, शोभा के पिता-माता का स्वर्गवास हुआ, उसे महादेव के गाँव के तअल्लुकेदार के यहाँ धोके से ले जाना चाहता था, पर राधा को अपने पति से खवर मिली, उसने शोभा से कहा, उसी रात को वह गायव हो गयी—वगीचे-वगीचे न-जाने कहाँ जाकर छिप गयी है, इसके वाद राधा कानपुर कुछ दिन के लिए गयी थी पर वहाँ शोभा का पता न मिलने से जी ऊवा, तो चली आयी, यहाँ आने पर उसे मालूम हुआ कि उसके स्वामी उसे लेने के लिए आये थे। एक-एक वात अजित पूछता गया, और राधा कहती और आँसू पोछती गयी।

राधा का ऐसा प्रेम देखकर अजित अपने को छिपा न सका। कहा, "राधा, मैं सन्यासी नही हूँ, तुम्हारी ही तरह शोभा की खोज करनेवाला उसके पति विजय का एक मित्र अजित हूँ। यदि मैं कभी शोभा का पता लगा सका, तो पहचान के लिए तुम्हे ले जाऊँगा। यह भेद किसी से जान रहने तक कहना मत। अव मुझे वह वगीचा भी दिखा दो, जिसमे होकर शोभा गयी थी।"

वह स्वामीजी नही, शोभा के पति विजय का मित्र अजित है, उसकी शोभा दीदी को खोजता हुआ आया है, सुनकर राधा को शोभा के मिलने का सुख हुआ।

मित्र का मित्र, पुरुष हो, स्त्री, मित्र ही है। कितना स्नेह मिलता है ऐसे मित्र से ! राधा कली-कली से खुल गयी। राजी हो, बाहर-बाहर, गाँव के रास्ते छोडकर वासुदेव बाबा के पास अजित को ले चली। कितना सुख एक साथ चलकर उसे मिल रहा है, अनुभव कर रह जाती है।

सत्रह

कई रोज हो गये, स्वामीजी नही लौटे। वीणा अपने ऊपर होनेवाले ताल्लुकेदार के अत्याचार की रोज शका करती और वीणा के तार की ही तरह काँप उठती है। उसका सहृदय भाई ब्रजकिशोर भी उसके लिए सोच मे रहता है। विधवा कितनी असहाय और अनावश्यक इस ससार के लिए है। वीणा सोचकर, रोकर, आप ही आँचल मे आँसू पोछ लेती है—'क्या विधवा-जैसी दुखी विधाता की दूसरी भी सृष्टि होगी, जो सखियो मे भी खुले प्राणो से बातचीत नही कर सकती, भोग-सुखवाले ससार के बीच मे रहकर भी भोग-सुख से जिसे विरत रहना पडता है, आँख के रहते भी जिसे चिरकाल तक दृष्टि-हीन होकर रहना पडता है ?'

कैसे दो परस्पर विरोधी सग्राम वीणा के जीवन मे छिडे हैं। एक ओर तो मरुस्थल के पथिक का-सा चित्त सदैव व्याकुल है, दूसरी ओर उसके जीवन की अदृश अप्सरा, अपनी सोलहो कलाओ से विकसित, उसके हृदय के तारो को खीच-खीचकर चढा रही है—प्रति-जीवन की रग-भूमि मे जैसे मृदु चरण उतरकर अपनी वासना-विह्वल नयी रागिनी गाया करती है, गाना चाहती है, यह ज्ञान नही कि यह विधवा है— इसके उज्ज्वल वस्त्र पर काले छीटें पडेंगे—जीवो को साँस-साँस पर पैदा हुई प्राण-प्रियता मे बाँधकर चिर-अधीन कर रखनेवाली प्रकृति देह की विटपी को वासन्तिक पृथुल-पल्लव-भार, सुमनाभरण, सौरभ-मद से भर रही है। मनुष्यो के कानून का कोई मूल्य होता, यदि वह पूर्ण के लिए पूर्ण कुछ होता, तो प्रकृति भी मर्यादा को मानकर, उसके सामने आँखें झुकाकर चलती। चिर-अभ्यास से बँधा वीणा का रुचिर मन भीतर के इस अपार उत्सव मे इसीलिए आप-ही-आप सम्मिलित हो जाता है, जब कि यह मन की ही एक स्वतन्त्र रचना है, जहाँ वीणा को उसने ससार के यज्ञ मे श्रेष्ठ भाग लेने के योग्य बना दिया है।

तब वीणा अपने एकमात्र आश्रय स्वामीजी को सोचकर, उनकी निश्चल-निश्छल सहानुभूति मे डूबकर, स्वप्न के भीतर जैसे मन्द पद-चाप प्रणय से हिलते हृदय से साथ-साथ फिरती हुई स्नेह और सौन्दर्य की अपलक आँखो से देखती रहती है। स्वामीजी को वह क्यो प्यार करती है, वह नही जानती, वह प्यार करती है, किसी से कह नही सकती, प्यार न करे, ऐसा नही हो सकता। स्वामीजी के हृदय मे उसके लिए क्यो सहानुभूति पैदा हुई ?—वह विधवा है, इसलिए उसका स्वामी

उसकी दृष्टि ने सदा के लिए ओझल हो गया है—वह कृपा की पात्री है, इस कारण, और स्वामीजी मन ने उसे फिर विवाह कर सुखी होने की आज्ञा देते हैं—इतनी उदारता उसके लिए जब वह दिखा चुके हैं, तब उसके हृदय के देवता उनके लिए अनुदार कब होंगे? जिन्होंने स्वामीजी के भीतर मे उसे इतना दिया था, वे ही उसके भीतर से स्वामीजी को इतना दे रहे हैं।

दिन ढलते-ढलते खबर मिली कि स्वामीजी आ गये। वीणा दूसरो के अश्रुत मधुर स्वर से बज उठी। व्रजकिशोर स्वामीजी के पास गया।

"कोई नयी बात तो नही हुई?" आग्रह से अजित ने पूछा।

"नही स्वामीजी, पर शका है, और कोई तअज्जुब नही, जब हो जाय।" व्रजकिशोर ने दुर्बल कण्ठ के श्लथ शब्दो मे कहा।

"मैं समझता हूँ, तुम अपनी बहन को लेकर मेरे साथ कानपुर चलो, वहाँ एक मकान तुम्हारे लिए ठीक कर दूंगा, खर्च की चिन्ता न करो, खर्च मैं देता रहूँगा, पर एक भेद मत खोलना, मै उन्नाव उतरकर, दूसरी गाडी मे आकर तुम्हे मुसाफिरखाने मे, सादी पोशाक मे, मिलूँगा, वहाँ तुम्हारा बन्दोबस्त ठीक कर मुझे फिर यही लौट आना है पर स्थायी रूप से इस गाँव मे न रहूँगा, तुम कुछ और मत सोचो, मैं तुम्हारी ही तरह एक मनुष्य, तुम्हारा मित्र हूँ। जाओ, आज ही वाली गाडी के लिए तैयार कर लो।"

व्रजकिशोर सूख गया। पूछा, "आपका नाम?"

"मेरा नाम अजित है, पर किसी से कहना मत।"

व्रजकिशोर चला गया। दूसरे दिन वीणा ने कानपुर-स्टेशन पर देखा, स्वामीजी स्वामीजी नही, एक सुन्दर नवयुवक हैं।

अट्ठारह

वर्षा के घुंघराले, काले-काले दिगन्त तक फैले हुए बाल धीमी-धीमी हवा मे लहरा रहे हैं। उसने सारे ससार को सुख के आलिगन मे बाँध लिया है। प्रसन्न-मुख जड और चेतन प्रतिक्षण प्रणय के सुख मे तन्मय है। पक्षियो के सहस्रो वरभग निस्तरग शून्य-सागर को क्षुब्ध कर-कर उसी मे तरगाकार लीन हो रहे हैं। गुच्छो मे खुली-अधखुली किरणो की कलियो-सी युवती-तरुणी-बालिकाएँ, जगह-जगह हिंडोरो पर झूलती हुई, इसी प्रकार जनता के समुद्र को सुहावने सावन, मल्लार, कजली और बारामासियो से समुद्वेल कर रही हैं। सुप्ति के स्वप्न मे भारत जगने का दुःख भूल गया है।

दिन की इस रात मे केवल प्रभाकर जग रहा है। उसी ने इस रूप की मरीचिका को आत्मसमर्पण नही किया। अपने कमरे मे फ्रास के विप्लव पर लिखी हुई

एक पुस्तक चुपचाप बैठा हुआ पढ़ रहा है। ससार की जन-सत्ता के विचार-विवर्तनो पर दूर परिणाम तक वहता हुआ चला जाता है।

इसी समय एक वाहक के हाथ एक पत्र मिला। वाहक की चपरास देखकर प्रभाकर समझ गया, पत्र अदालत के किसी हाकिम द्वारा भेजा हुआ है। वाहक अपनी किताव मे दस्तखत करा, छापा लगाकर, दूसरे पत्र जल्द-जल्द पहुँचाने के उद्देश से चला गया। प्रभाकर ने चिट्ठी खोलकर देखी। सह डिप्टी-कमिश्नर ज्ञानप्रकाशजी ने बुलाया है। घडी देखी, साढे चार का समय। आज ही पाँच बजे मिलने के लिए बँगले पर बुलाया है। कुछ जल-पान कर अपने साधारण पहनावे मे प्रभाकर डिप्टी-कमिश्नर साहव के बँगले के लिए रवाना हो गया।

पहुँचकर देखा, एक तरफ कुछ आदमी बेंचो पर बैठे हुए वातचीत कर रहे है। सामने काफी वडा, कटी हुई हरी घास का मैदान। नौकर टेनिस खेलनेवाला नेट लगा रहे है। प्रभाकर को पहले तो कुछ सकोच हुआ, पर मन को अँगरेजी सभ्यता से रँगकर धीरे-धीरे खिलाडियो मे शरीक होने के लिए, उसी तरफ वढा। वहाँ ऐसा कोई न मिला, जिसकी आज्ञा लेता। पुन डिप्टी-कमिश्नर साहव के वही रहने की सम्भावना दिल को सुवूत दे रही थी।

जब प्रभाकर वहाँ पहुँचा, तब वहाँ के लोगो की खास वातचीत का तार न टूटा था। दो युवतियाँ और तीन युवक बेंचो पर बैठे थे। कुछ ठहरकर, जैसे अपरिचित प्रवेश के लिए भीतर तैयार हो रहा हो, जब मौजूद लोगो ने आने का कारण नही पूछा, एक तरफ, छूत से बच-बचाकर बैठ गया। एक बार देखा तो सबने, पर पूछा किसी ने नही।

उपस्थित लोगो का चलता प्रसग न रुका। एक युवती ने कुछ वेअदव सरल स्वर से पूछा, "हाँ तेज वावू, गवर्नर साहव ने फिर क्या कहा ?" पूछकर आँखो मे हँसती हुई तेज वावू को देखती रही।

वावू तेजनरायन अपने नाम के सार्थक उदात्त स्वरो से, अपनी प्रतिष्ठा के मुख्य प्रचारोद्देश को छिपाकर, गौण गवर्नर साहव से मिलनेवाला प्रसग कह चले, "गवर्नर साहव वडे प्रेम से मिले। अँगरेजी सुनकर दग हो गये। तारीफ भी दिल खोलकर की। कहा, ऐसी अँगरेजी आप वोलते हैं, उच्चारण, स्वरपात सव इतने ठीक कि विवश होकर कहना पडता है कि यह कुइन्स् इँगलिश (रानी के मुँह की अँगरेजी) है, और हिन्दोस्तानवाले अँगरेजी क्या वोलते है, अपनी नाक कटाते है। फिर मेरे प्रवन्ध की तारीफ की।"

"आपका प्रवन्ध कहाँ छपा है ?" युवती ने भौहे टेढी कर परीक्षा के स्वर से पूछा।

"दी न्यू लाइट मे।" तेज वावू ने विनय के गर्व से कहा।

"अच्छा, नाम तो इस अखवार का—अखवार है या मासिक पत्र ?—अभी तक नही सुना।" युवती ने उसी तरह पूछा।

"साप्ताहिक है। हाल ही निकला है। खूव लिखता है।"

"अच्छा, तो यह पत्र भी गवर्नर साहव पढते है!" गम्भीर हो युवती ने अपनी की चोट छिपा ली।

"हाँ, उनके पास सभी पत्र जाते है।" स्वर मे तेज वावू अप्रतिभ हो रहे थे।

"हाँ, फिर ?" युवती ने उत्साह दिया।

"कहने लगे, वहुत अच्छा प्रवन्ध आपने लिखा है। आप जैसा धर्म चाहते हैं, आपको चाहिए कि देशी नरेशो मे, खासकर राजपूताने मे आप इसका प्रचार करें। इससे उनको एक नयी रोशनी मिलेगी। वे आधुनिक वन सकेंगे। फिर शिकार की वातचीत हुई। मुझे साथ ही लिये जा रहे थे। मैंने कहा, मैं अपनी वन्दूक घर छोड आया हूँ, मेरा हाथ उसी मे अच्छा सधा है, वन्दूको मे मक्खियाँ तरह-तरह की होती हैं, इसलिए नयी वन्दूक मे पहले-पहल निशाना ठीक नही लगता। सुनकर गवर्नर साहव हँसने लगे। समझ गये कि इन्हे इधर भी काफी दखल है।"

युवती कुछ सोचकर मुस्किरायी। हँसी को पीकर तेज वावू पर वाढ रखती हुई अपनी सगिनी से वोली, "तेज वावू हैरो के पढे हुए है, वरावर लॉर्ड घराने के लडके इन्हे न्यौते देते रहे, और ये दो हजार खर्चवाले न्यौते का जवाव पाँच हजार खर्च से देते गये !"

"सव आपकी कृपा है !" वडे नम्र भाव से तेज वावू ने उत्तर दिया।

"कहते हैं, वहाँ के वडे-वडे लोग भी आपको नही लुभा सके। कोई वडी वात नही थी, सिर्फ धर्मवाला चोला जरा वदल देना था, वस, लॉर्ड खानदान की एक मिस इनसे सादी करने को एक पैर मे तैयार थी।" चपला कौधकर भाव की गहनता मे छिप गयी। निकलकर फिर पूछा, "आपने तो कुछ नाम वतलाया था ?"

"नही, अव उनकी शादी हो चुकी है, नाम वतलाना जरा सभ्यता के···" तेज वावू गिडगिडाये।

"हाँ-हाँ, खिलाफ होगा।" अपनी सगिनी की तरफ फिरकर युवती वोली, "यह कोई मामूली त्याग नही ! मैं समझती हूँ, वह स्त्री वडी भाग्यवती है, आप-जैसे सच्चरित्र नयी रोशनी के तिलक विवाह के लिए जिसे पसन्द करेंगे।"

तेज वावू तरुणी को प्राप्त करने की प्यासी दृष्टि से देखते रहे। वार-वार आकर-इगित द्वारा उसे समझा चुके है कि विवाह के योग्य वह उसे ही इस ससार मे समझते है, और उनके ये इशारे युवती समझ भी चुकी है।

तेज वावू जज के लडके है। एकाएक उठकर खड़े हो गये, कहा, "सीधे यही चला आया, आज्ञा दीजिए, टेनिस सूट वदल आऊँ। कमिश्नर साहव भी निकलते होगे।"

"सुना है, गिरगिट दिन-भर मे वहुत से रग वदलता है, आप तो आदमी हैं, एक रोज कोट उतारकर कमीज पहने हुए खेल लीजिए, हम लोग खिजाँ को वाहर समझ लेंगी।"

"आपकी जैसी आज्ञा। पर टेनिसवाले जूते नही। विना जूते के· "

"जूते आपको यही मिल जायँगे।" युवती की तरुणी सगिनी हँसी न रोक सकी। दूसरे सज्जन रामकुमार और राधारमण भी मुस्किरा दिये।

रामकुमार मजाक को कायम रखने के विचार से वोले, "आजकल तो नगे

पैर खेलने की सभ्यता है।"

तेज बाबू ने मस्तिष्क मे विशेष जोर दिया। पर उन्हे याद न आया, योरप मे लोगो को नगे पैर खेलते हुए कहाँ देखा है। पर युवती के सामने, इतना योरप-भ्रमण करके भी मामूली-सी बात मे अज्ञ बन जाना अपमानजनक है, सोचकर बोले, "अभी यह प्रथा महिलाओ मे ही कही-कही प्रचलित हुई है।"

"पर आप महिलाओ के पथ-प्रदर्शक जो हैं। उस रोज आपने कहा था," युवती बोली, "कही आपने व्याख्यान मे कहा है, महिलाओ को मुक्त नभ के निस्सीम प्रागण मे रहना चाहिए। क्या आपका यह उद्देश है कि वे बेचारी कभी अपने घोसले मे लौटे ही नही, मुक्त नभ के निस्सीम प्रागण मे उडती ही रहे ?"

तेज बाबू लज्जित हो गये। कहा, "नही-नही, मेरा यह मतलब नही, मैं केवल महिलाओ की मुक्ति चाहता हूँ, और आजकल उन पर जो हृदयहीन अत्याचार हो रहे हैं, उनसे बचाने के लिए जगह-जगह महिला-मन्दिरो की स्थापना की जाय, कहा था।"

"हाँ-हाँ, मैं समझी।" युवती गम्भीर होकर बोली, "गोशालाओ के तौर पर आप महिला-मन्दिर खोलवाना चाहते है, परन्तु वहाँ की आमदनी की तरह, मुमकिन, यहाँ की रकम भी महिलाओ की सेवा से पहले माहिलो के खर्च मे सर्फ हो।"

डिप्टी-कमिश्नर साहब आ गये। 'अलका, तेज बाबू से बातें हो रही हैं' कह-कर, मन-ही-मन मुस्किराते हुए दूसरी तरफ मुडे। बैठे लोग खडे हो गये। मुखातिब होते हुए देखकर प्रभाकर बढा।

अलका बैठी हुई प्रभाकर को एकटक देखती रही।

"कुछ खेल ले, फिर आपसे बातें करे।"

प्रभाकर कुछ न बोला। आत्मसम्मान के साथ सिर झुकाये हुए खडा रहा।

डिप्टी साहब ने पूछा, "आप तो टेनिस खेलते होगे ?"

"पहले खेलता था, अब बहुत दिनो से छूट गया है खेलना, आप लोग खेलिए।" प्रभाकर ने आत्मसम्मान से भरी भारी विनय से कहा।

तेज बाबू इस नये युवक का खेल देखने से लिए उत्सुक हो उठे। उस मण्डली मे सबसे अच्छा वही खेलते थे। उन्हे स्वभावत इच्छा हुई, इस युवक के विपक्ष मे खेलकर इसे हराऊँगा, तो अलका खुश होगी। अलका को वे मन से सर्वस्व अर्पण कर चुके है। बदले मे उसका सर्वस्व चाहते है। अभी अविवाहित है, अलका की उनके साथ शादी होने मे कमिश्नर साहब की भीतर-भीतर इच्छा है, क्योकि अलका सुखी रहेगी। अब अलका को वह रोज अपने यहाँ बुलाते है, और कन्या के समान ही स्नेह करते है। तेजनरायन को कमिश्नर साहब के इस भाव का मौन अन्तःप्रेरणा द्वारा पता है।

तेज बाबू के बुलाने पर कमिश्नर साहब ने भी जोर दिया, प्रभाकर ने बहुत कहा कि बहुत दिनो से खेलने की आदत नही, कुछ बन न पडेगा। पर हराने की गरज से हाथ पकडकर तेज बाबू बडे आग्रह से खीचते हुए कहने लगे, "चलिए, सिर्फ दो गेम खेल लीजिए।"

लाचार हो प्रभाकर अपने साधारण जूते उतारकर खेलने के लिए चला, और, और लोगो ने टेनिस खेलनेवाले जूते पहनकर रैकेट ले लिये। एक तरफ कमिश्नर साहब और तेज बाबू हुए और दूसरी तरफ बाबू रामकुमार और प्रभाकर।

खेल होने लगा। प्रभाकर बडा तेज खिलाडी निकला। अलका को प्रभाकर की सादगी और खेल बहुत पसन्द आया। उसकी खिंची चितवन मे प्रभाकर की प्रशसा के शब्द लिखे थे। तेज बाबू ने बडे कायदे दिखलाये, पर हारते ही रहे। ज्ञानप्रकाशजी को प्रभाकर से जरूरी काम था। पोशीदा बातचीत करनी थी। इसलिए कुछ देर बाद खेल समाप्त कर दिया। तेज बाबू झेंप रहे थे। हार से बातचीत का तार कट चुका था। इसलिए युवती से उस रोज खेल की विशेषताएँ बतलाने से रहित हो, अपनी मोटर पर, केवल एक अप्रतिभ विदा ग्रहण कर चल दिये।

कमिश्नर साहब ने कहा, "हम जरा आपसे बातचीत करने के लिए बाहर जाते हैं, तब तक तुम लोग यही रहो, इच्छा हो, तो अपनी मा के पास चली जाना। लौटकर तुम्हे भेजवा देंगे।"

अलका को ज्ञानप्रकाशजी ने स्नेहशकरजी से कन्या-रूप माँगा था। वह निस्सन्तान है। अलका के लिए उनके और उनकी पत्नी के हृदय मे वात्सल्य-रस सचरित हो आया है, देख कर स्नेहशकरजी ने कहा था—अलका को वह अपनी ही कन्या समझें, जब तक उसकी पढाई पूरी नही होती, तब तक स्नेहशकरजी का उस पर उत्तरदायित्व है। इसी स्नेह मे ज्ञानप्रकाशजी रोज एक बार अलका को मोटर भेजकर बुला लिया करते है। पहले वह कभी-कभी आती थी। अब स्नेहशकरजी ने स्वेच्छापूर्वक आने-जाने मे उसे स्वतन्त्र कर दिया है।

"आप जाइए, मैं शान्ति को छोड आने के लिए जाती हूँ, यही तो घर है, जब तक आप लौटेंगे, लौट आऊँगी।" अलका शान्ति के साथ चल दी। रोज आने के कारण कमिश्नर साहब को अपने मित्र से प्रभाकर के सम्बन्ध मे बातचीत करते हुए उसने सुना था। प्रसग मालूम करने का मन मे कौतुक भरकर चली गयी।

उन्नीस

डिप्टी-कमिश्नर साहब प्रभाकर को मोटर पर लेकर बाहर चले गये। एक खुले मैदान मे मोटर खडी कर दी, और नव्वाबी के समय के एक जीर्ण प्रासाद के पाद पीठ पर बैठकर बातचीत करते हुए अपने उद्देश की पूर्ति मे लगे।

कुछ दिनो मे लखनऊ मे प्रभाकर का नाम है। साधारण श्रेणी के लोग उसे ईश्वर की तरह मानते हैं। कुलियो मे शिक्षा-सगठन आदि उसने जारी कर दिया है। इसलिए दो-एक फर्म के मालिको ने उसके खिलाफ दरख्वास्तें दी है कि वह

उनके खिलाफ कुलियो को उभाडा करता है। ज्ञानप्रकाशजी यह सब दबाने के प्रयत्न मे हैं।

"आप व्यर्थ अपनी जिन्दगी बरबाद कर रहे है। आपको बहुत अच्छी नौकरी मिल सकती है, अगर मैं सिफारिश कर दूँ, और मैं कर दूँगा। आप सिर्फ अपनी तरक्की के रास्ते आ जाइए।"

इतने आग्रह से डिप्टी कमिश्नर साहब को अपनाते हुए देखकर प्रभाकर के होठो पर मुस्किराहट आ गयी। पर धीरे-धीरे गम्भीर हो गया। एक लम्बी साँस छोडी। फिर नजर उठाकर कोई दबाव न डालनेवाली, गान्धार, मध्यम, पचम आदि स्वरो के आरोह-अवरोह से रहित. बिलकुल बराबर आवाज मे कहा, "अच्छी नौकरी मिलने पर भी तरक्की का तो कोई भी कारण मुझे नही देख पडता।"

"क्यो ?" आँखे स्फरित, साश्चर्य कमिश्नर साहब ने पूछा। उनके मुख की रेखाओ पर चाँदनी पड रही थी, जैसे कुछ सोचकर अपनी सदा की सुकुमार हँसी हँस रही हो, कठोर मनोभाववाले की बिगडी हुई सूरत अपने कोमल प्रकाश से दूसरो को प्रत्यक्ष करा रही हो।

प्रभाकर ने कमिश्नर साहब के मुख की ओर नही देखा, केवल उनकी आवाज तोल रहा था। कहा, "नौकरी से जो रुपये मिलते हैं, वे अक मे जितने ज्यादा होते है, देश के आर्थिक विचार से वे दशमिक बिन्दु से उतने ही इधर होते है।"

ऐसा अद्भुत आर्थिक विचार आज तक कमिश्नर साहब ने न सुना था। प्रभाकर का मतलब वह कुछ भी न समझ सके। आश्चर्य की बढी हुई मात्रा मे, एक यथार्थ जिज्ञासु की तरह, पूछा, "किस तरह ?"

"यह तो बहुत साधारण विचार है।" प्रभाकर बोले, "मुझे जो अर्थ मिलता है, उसकी आमदनी का कारण भी मैं देख लूँ, मेरा फर्ज है। देश की समष्टि-रूप आमदनी का हिसाब 'एक' मे लगाइए। आप जानते है, यह सख्या उसी दिन दूसरे के साथ गयी, जिस दिन देश दूसरे के हाथ गया। इस 'एक' की प्राप्ति जब तक नही होती, तब तक आमदनीवाला रुख भी 'एक' से उधर नही हो सकता। देश को अपने हाथ रखनेवालो ने सन्यास नहीं लिया, सन्यास वास्तव मे देशवालो के साथ है, जो दिया हुआ पाते है। दान भी कैसा कि देश के सन्यासियो को पुश्त-दर-पुश्त उसका ब्याज भी देना पडता है। बात यह कि देश की आमदनी से देश का खर्च नही चलता, इसलिए यहाँ के 'एक' को हाथ मे रखनेवाले, 'एक' की सहायता से दो, तीन, चार करते हुए, सम्पत्ति बढाकर, माल तैयार कर, बेचकर, मुनाफा लेकर भी तुष्ट नही होते, वही मुनाफा देश की रक्षा के लिए कर्ज देकर अचल रुपये से चल ब्याज भी वसूल करते है। अब शायद आप समझ गये कि किस तरह देश की आमदनी दशमिक बिन्दु से इधर है। एक बात और कहूँ, जब पाट बेचनेवाला देश पाटाम्बर पहनेगा, तब आमदनी निस्सन्देह दाहिनी तरफ बढेगी, और वैसे पाटाम्बर पहनकर पूजार्चा करने पर इष्टदेव भी भक्तो को बेवकूफ ही समझते है। जब तहसील रुपयो मे बाँध दी गयी, और पैदा हुई रकम मे बराबर घट-बढ लगी रही, बल्कि पैदावार घटती ही रही, और बाजार तत्काल रुपयो मे लगान देनेवाले किसानो के हाथ न रहा, तब समझ लेना आसान है कि आमदनीवाला किस तरफ का पलडा उठा हुआ है।"

डिप्टी-कमिश्नर साहब निर्वात मरुस्थल की तरह स्तब्ध, निस्तृण-तरु शिला-खण्ड-जैसे शून्य-मन बैठे रहे। जैसा ज्ञान उनका अन्तःक्रियाओं में पैदा हुआ, हृदय ने वैसी ही सलाह भी दी—'तुम सरकारी अफसर हो, तुम्हें अपना ही धर्म पालन करना चाहिए। तुम सरकार का नमक खाते हो।' प्रभाकर के निकट इन विचारों को दूसरा ही रूप मिलता। नमकवाली उसकी व्याख्या सुनने लायक होती। पर कमिश्नर साहब के मनोभाव उन्हीं तक परिमित रहे।

बनावटी सारल्य में स्वर को रँगकर प्रभाकर से उन्होंने कहा, "देखिए, हम लोग आपके साथ नहीं, ऐसी बात नहीं, पर कोई काम एक दिन में तो होना नहीं। अभी कई सदियाँ हमें दूसरे देशवालों के मुकाबले सर उठाने में लग जायँगी। तब तक न आप रहेंगे न हम। अगर कुछ भी सुख देश की स्वतन्त्रता का न भोग पाये, तो हाथ-पैर मारना वाहियात ही तो हुआ?"

प्रभाकर फिर मुस्कराया। कहा, "आप बुजुर्ग हैं। मैं आपको उपदेश देनेवाली नीयत से तो कुछ कह नहीं रहा, केवल अपने विचार आपसे जाहिर कर रहा हूँ। जब हम अपने सामने और अपने ही लिए भोग-सुख प्राप्त करना चाहते हैं, तब स्वार्थ की ही वह बढ़ी हुई मात्रा है। देश के लिए ऐसा विचार समीचीन कदापि नहीं। भोग कोई भी करे हमें कार्य करना चाहिए। सुख और पूरी स्वतन्त्रतावाला सुख हमें कार्य में अवश्य प्राप्त होगा, ऐसा मनोवैज्ञानिक नियम है। जब विशद भावों की जल-राशि पीछे से ढकेलती है, तब स्वच्छ तोय-तरंगों की गति में भी मुक्ति का आनन्द है चाहे वह समुद्र में न भी मिले, या उसके कुछ सीकर ग्रीष्म में तपकर शून्य में लीन हो जायँ। इसी सरिता की तरह जीवन की ठीक-ठीक प्रगति में मुक्ति का चिदानन्द प्राप्त होता रहता है। आप देखेंगे, संसार में अणु-अणु इसी मुक्ति की ओर अग्रसर है। यही सृष्टि का अन्तरतम रहस्य भी है। फूल कितना कोमल होता है, पर वह काठ की काया के भीतर से निकलता, कितना अँधेरा पार कर वह प्रकाश के लोक में क्षण-भर को हँसकर मुक्त होने के लिए आता है। इसी प्रकार मुक्ति के यज्ञ में भी मनुष्य अपना मन्त्र पढ़कर भाग लेकर ही रहता है। यही उसका चिरन्तन रहस्य है।"

एक बार इधर-उधर चल दृष्टि कमिश्नर साहब ने देखा, फिर मुस्कराते हुए कहा, "आप दिल के सच्चे हैं। मैं आपको समझाता हूँ। जिन लोगों को वकालत और दूसरे-दूसरे पेशों से नाम मिल चुका है, वे चाहते हैं, लोगों को अपने हाथ की पुतली बना रक्खें, और इस तरह सरकार पर रोब जमायें। आप उनकी बर-गलानेवाली बातों में न आइए। यह देखिए कि वे क्या-क्या कर चुके हैं, और अब क्या-क्या कहते हैं। बस, आपकी आँख खुल जायगी। जब काफी रुपया हो जाता है, तब मामूली लोगों को उभाड़कर, बगैर दूर तक समझे और समझाये हुए, एक नयी राह निकालकर जिस पर कि एक कदम उठाना भी मुश्किल हो, लोग लोगों की आँखों के तारे बनना चाहते हैं और साहबों के बराबर चलना। अगर आपको उन्हीं का रास्ता पसन्द है, तो आप उनकी पहली राह से होकर गुजर आइए, मैं तो ऐसा ही कहूँगा।"

"आप दुरुस्त फर्माते हैं। कोई नेता ऐसा नहीं, जिसके पीछे, पूँछ में, नाम की

वला गोवर की तरह न लगी हो। पर मैं उनके उतने ही त्याग को देखता हूँ, जितना उन्होने देश के लिए किया है। उनके अलावा इस देश के तथा दूसरे देश के सच्चे आदमियो को भी मैं अपना आदर्श समझता हूँ। एक सच्चा आदमी ससार-भर के लिए आदर्श है।"

"फिर मै कहता हूँ, आदर्श को देखने से पेट नही भरता। सरकार ने पेटवाली जो मार हिन्दोस्तान को दी है, अभी सदियो तक लोग पेट पकडे रहेगे। अगर आप उन्ही के भरोसे पर पेट पालते रहे, तो यह कौन-सी वडी वात हुई? वल्कि खुद कुछ पैदा कर उनकी झोली मे डाल सकें, तो आपका यह काम वेहतर होगा।"

प्रभाकर चुप हो गया। सोचा, किसानो के साथ त्यागियो के सहयोग से ज्ञान और अर्थ का सहयोग होता है, और इसी तरह देश की उभय प्रकार की दशा सुधर सकती है, यद्यपि अभी किसानो मे कडे पैर खडे होने की हिम्मत नही हुई, न देश मे त्यागियो का इधर रुख हुआ है, पर यह सव इनसे कहने से फल क्या, यह अपने भाव की वह सूखी लकडी हैं, जो दूसरी तरफ झुक नही सकते या झुकाने पर टूट जायँगे। प्रभाकर को चुपचाप देखकर कमिश्नर साहव ने सोचा कि वात चोट कर गयी। रग और गहरा कर देने के विचार से कहा, "चलिए, आज हमारे यहाँ भोजन कर लीजिए।"

रास्ते मे कमिश्नर साहव वोले नही। सोचा, चारे पर आयी हुई मछली वात-चीत से भडककर निकल जायगी। इसलिए उपदेश की वसी पकडे हुए एकटक चारा खाती हुई मछली पर ध्यान लगा रक्खा। नही समझे कि कभी काँटे मे न फँसनेवाली, वगल से छोटी मछली के चारा खाने के कारण तरेरा हिल रहा है। अपनी-अपनी मौन कल्पना के भीतर दोनो अपने-अपने लक्ष्य की ओर वढ रहे थे।

अलका सामनेवाले कमरे मे वैठी, तस्वीरो की एक किताव लिये हुए उलट-उलटकर अपनी पसन्द के चित्र देख रही थी। इसी समय कमिश्नर साहव वँगले पहुँचे, और वैठक मे प्रभाकर को वैठने के लिए कहकर खुद कुछ देर के लिए भीतर गये। वडे गौर मे अलका ने प्रभाकर को देखा। उसे जान पडा, आज लडाई मे कमिश्नर साहव की विजय हुई, क्योकि प्रभाकर के मुख की प्रभा क्षीण थी। लखनऊ के राजनीतिक आकाश मे इधर 6 महीने से प्रभाकर खूब तप रहा है, और वह गरमी कर्मचारियो को असह्य है, यह खवर अलका को मालूम थी। प्रभाकर को अच्छी नौकरी मे वाँध लेने की उद्भावना सविचार ज्ञानप्रकाश को स्नेहशकर से मिली थी। अलका अपने पिता से यह सलाह देने के कारण नाराज हो गयी थी। तव गूढ-मर्म-वेत्ता पिता ने कहा था, "जो गिरना नही चाहता, उसे कोई गिरा नही सकता, वल्कि गिराने के प्रयत्न से उसे और वल देना होता है।"

प्रभाकर को उपदेश दिये विना अलका से न रहा गया, पर विना वातचीत के कुछ कैसे कहे। प्रभाकर सर झुकाये हुए चुपचाप वैठा था। अलका अधीर होकर स्वगत कहने लगी—'पिजडे मे रहना वडा अच्छा, चारा आप मिलता है, वेचारा तोता वाजू फटकारने की मिहनत से वच जाता है!' कहकर ग्रीवाभगिमा कर विषम आँखो से देखकर कुछ द्रुत दूसरे कमरे मे चली गयी। प्रभाकर को मतलव समझते हुए देर न लगी। इस युवती कुमारी के प्रति उसकी दृष्टि सम्मान के भाव

मे झुक गयी, यद्यपि तब भी वह प्रभाकर ही था।

इसी समय कमिश्नर साहब भी आये। अलका न थी। एक बार इधर-उधर देखकर बैठ गये। सामने की गोल मेज पर प्रभाकर के लिए भोजन का प्रबन्ध किया जाने लगा।

प्रभाकर भोजन कर रहा था, कमिश्नर साहब एक दृष्टि अद्‌भुत मनुष्य को सकौतुक देख रहे थे, और उसे फाँस लाने के सुख मे लीन थे, "आप ग्रेजुएट अवश्य होगे ?" कमिश्नर साहब ने पूछा।

"जी हाँ।" प्रभाकर ने उत्तर दिया।

"माफ कीजिएगा, आपके नाम के साथ सवाद-पत्रो मे आपकी डिगरी नही छपती, इसलिए पूछा।"

प्रभाकर कुछ न बोला। इस पर कोई प्रश्नोत्तर हो भी नही सकते थे। प्रभाकर सोच रहा था, अब बहुत जल्द जेलखाने की नौबत आ रही है।

भोजन समाप्त कर चुका। हाथ-मुँह नौकर ने धुला दिये। पान खाकर डिप्टी-कमिश्नर साहब से विदा होने लगा। स्वभावत कमिश्नर साहब ने पूछा, "तो अब क्या विचार है ?"

"कल कुलियों की हड़ताल का फैसला देखना है कि मालिक लोग क्या करते है," कहकर एक छोटा-सा नमस्कार कर बाहर चला गया। फाटक के पास तक गया, तो पीछे से कोमल स्त्री-कण्ठ की पुकार सुन पडी, "ठहरिएगा जरा।"

अलका तेज कदम प्रसन्न बढती आ रही है। आती हुई बोली, "मैं आपके विचारो से सहमत हूँ, आपको बधाई देती हूँ।"

"आपकी कृपा" कहकर, सविनय सर झुकाकर प्रभाकर बढने को हुआ कि अलका ने उत्कण्ठा से कहा, "आप 'स्नेह-भवन' ऐबट रोड अवश्य आइएगा और आपका पता ?"

प्रभाकर ने बतला दिया।

बीस

अजित ने अपने मित्रो मे ब्रजकिशोर को परिचित कर दिया। बहुत-से उनमे व्यवसायी थे। उन्होने बाजार मे ब्रजकिशोर की दलाली चलवा देने का वचन दिया, और पूरा भरोसा भी कि दो-तीन आदमियो के गुजर को वह महीने-भर मे कमा लिया करेगा। वही अजित को मालूम हुआ कि कई बार उसके यहाँ से खोजने के लिए कानपुर लोग आ चुके, एकाएक उसके पिता को लकवा मार गया है। अजित के चित्त की स्थिति इस सवाद से चिन्ताजनक हो गयी। वह अब के लौट-कर वीणा को आपदो से मुक्त देख सुखी होकर, दूने उत्साह से शोभा की तलाश

तथा तअल्लुकेदार साहब का मुकाबला करना चाहता था। पर लाचार हो गया। ब्रजकिशोर तथा वीणा से पिता की बीमारी का हाल कहकर घर जाने के लिए विदा माँगी।

वीणा मौन, पलके झुकाये, खडी रही। हृदय से बार-बार मिलते रहने की प्रार्थना कर रही थी।

ब्रजकिशोर ने घर तथा पिताजी के समाचार भेजते रहने को अनुरोध किया। अजित ने भी आश्वासन दिया कि वह उनकी ओर सविशेष ध्यान रक्खेगा।

घर जाने पर अजित को ससार के प्रेम का एक शिक्षाप्रद रहस्यमय दृश्य दिखलायी पडा। उसके पिता धनी थे, इसलिए कुटुम्बवाले स्वयसेवक चारो ओर मे टूट पडे, और बडे आग्रह मे सेवा करने लगे। अजित की माता इसी ससार की यथेष्ट अनुभव रखनेवाली महिला थी। उन्हे समझने मे देर न हुई कि अजित के चाल-चलन से नाराज उसे परित्याग करनेवाले उसके पिता की इतनी सेवा क्यो हो रही है। हर स्वयमेवक एक ही उद्देश लेकर घर से चला था। यहाँ ऐसे बहुत-से एक ही भाववाले एकत्र हो गये, तब सेवा मे सुविधा के स्थान पर असुविधा होने लगी। अजित की माता ने पति को सेवको का मर्म समझाकर अजित को बुलाने की आज्ञा माँगी। रोग-ग्रस्त पिता को भी अन्तिम बार के लिए पुत्र को स्नेहाशीर्वाद दे जाने की इच्छा हुई, और अजित को बुलाने की उन्होने आज्ञा दे दी।

पहले कई बार वह कानपुर मे नही मिला। उद्देश से असफल हो जब-जब आदमी लौटे, कुटुम्ब के लोगो ने तब-तब उसके सम्बन्ध मे अद्भुत-अद्भुत खबरे उसके पिता को सुनायी। किसी ने कही अखबार मे पढा था कि वह बगाल के बागियो मे मिला है, और जो इधर यहाँ डकैती हो गयी है, उसमे एक मुखबिर बन गया, और उसने अजित का भी नाम लिया है।

किसी ने कहा, "तब से अजित चम्बल के किनारे खोहो मे पडा रहता है—एक बदमाश वहाँ से छूटकर आया है, वह बतलाता था।"

किसी ने कहा, "पुलिस तीन बार उस पर हमला कर चुकी, पर वह पकड मे न आया, दोनो हाथ दनादन गोलियाँ चलाता हुआ निकल गया।" आदि-आदि।

इससे पिता की व्याधि मे कैसी सेवा हुई, सहज ही अनुमेय है। माता ने निकालने की कोशिश की, पर असफल हुई। सब निकट-सम्बन्धी थे। कुछ लोगो ने खुलकर कह भी दिया कि हमारा घर है, आपको तो सिर्फ भोजन-वस्त्र पर अधिकार है। माता रोकर आँसू पोछ लेती थी। पुत्र का सवाद बिलकुल झूठ है, ऐसा वह नही सोच सकती थी, जबकि उसके ऐसे ही चरित्र का एक प्रमाण उन्हे मिल चुका था।

जब स्वयमेवक लोग रोगी के शीघ्र मरने की प्रतीक्षा मे थे, और माता डरी हुई गृहस्वामी की सतर्क सेवा मे, उसी समय अजित ने दरवाजे पर अम्मा-अम्मा कहकर आवाज दी। माता ने पुत्र को दुखी हृदय से लगा लिया, और विपत्ति की कथा एकान्त मे ले जाकर सुनायी। दूसरे दिन से स्वयसेवकगण मकान खाली कर-कर अपना रास्ता पकडने लगे। इतना एहसान अजित पर रखते गये

कि उसके पिता की सेवा के लिए कोई नही था, अपना बनता काम बिगाडकर वे आते थे।

बहुत दिनो तक, पूरे दो वर्ष अजित को पिता की सेवा करनी पडी। अच्छे-अच्छे डॉक्टर बुलाकर उसने इलाज कराया, पर कोई फल न हुआ। धीरे-धीरे उनका स्वास्थ्य टूटता गया। बहुत पहले ही देहान्त हो चुका होता, अजित की तन्मय सेवा के कारण इतने दिन झेलते रहे। क्षीण से क्षीणतर होती हुई एक दिन सदा के लिए साँस रुक गयी। यथारीति अजित ने क्रिया-कर्म किया।

पिता की बीमारी के समय दवा के लिए अजित को प्रायः कुछ-कुछ रोज बाद कानपुर जाना पडता, वीणा से मिलने को प्राण व्याकुल, उद्ग्रीव रहते थे। रोगी की सेवा से थका अजित वीणा से मिलने पर पूर्ण स्वास्थ्य का अनुभव करता, जैसे प्राणो के अन्त प्रदेश म एक नयी विद्युत स्फुरित होकर नस-नस को शक्त, तेज कर देती हो, फिर दूने उत्साह से सेवा करने को तत्पर हो जाता। स्टेशन पर उतरकर जीवन की हवा पर उडती हुई वीणा के हाथ की पतग की तरह अपूर्व प्रेम से खिचता हुआ सीधे उसी के घर जाता, व्रजकिशोर बाजार चला गया होता था, अकेली वीणा उच्छ्वसित हो, हँसती आँखो द्वार खोलकर स्वागत करती, घर का हाल पूछती, और पलँग पर बैठाल खुद पास जमीन पर बैठकर उसके प्रश्नो की सहृदय झकार मे मधुर-मधुर बजती रहती। दोनो एक साथ हँसते, एक बात पर रो देते। अजित को मालूम हो चला, वीणा उसी की, उसी के हाथ की है, वीणा का हृदय कहने लगा—वह अजित के साथ की, उसी के स्वर से ठीक-ठीक मिली हुई है। अजित चला जाता, भाई के आने पर वीणा अजित के आने की खबर देती, उसके घर के समाचार कहती। व्रजकिशोर को भी मालूम होने लगा, दोनो एक-दूसरे को प्यार करते हैं। नवीन उसके जैसे खयालात बँध रहे थे, नयी जो रोशनी उसे मिल चुकी थी, उसमे दो खिले फूलो का गले-गले मिलकर, एक ही हवा मे, एक ही डाल पर झूमते रहना वह देखना चाहता था। उसे विश्वास था, इस रोशनी से खुला हुआ अजित अपने पासवाली दूसरी कली को भी एक ही प्रकाश दिखा चुका है। इसलिए कभी कुछ कहकर उसने बहन का चित्त नही दुखाया।

एक रोज, पिता के स्वर्गवास के पश्चात्, अपने पथ के पूरे निश्चय से अजित वीणा के यहाँ गया। वीणा उसी के ध्यान मे तन्मय थी।

"तुमसे एक बात पूछूं ?" आसन ग्रहण कर अजित ने प्रश्न किया।

सरल आग्रह मे वीणा प्रश्न सुनने को एकटक देखती रही।

"मैं तुमसे विवाह करना चाहता हूँ, और आज तुम्हारे भैयाजी के सामने प्रस्ताव रखूंगा।"

वीणा खिलकर लज्जा मे जमीन की तरफ देखने लगी।

"क्या तुम्हारी सम्मति मैं जान सकता हूँ ?"

वीणा ने धीरे से सिर हिला दिया।

अजित ने हाथ पकडकर उठाया। वीणा खडी हो गयी। अजित की आँखो को विश्वास की दृष्टि से देखती रही।

उसके हाथ अपने हाथो मे लिये हुए अजित ने पूछा, "अगर तुम्हारे भैयाजी ने

आज्ञा न दी, तो क्या मैं आशा करूँ कि तुम मेरे साथ चलने को तैयार हो ?"

"भैयाजी आज्ञा दे देंगे," वीणा धीमे स्वर, आँखे झुकाकर बोली।

"वीणा!" प्रिया की आत्मा तक पहुँचकर अजित ने कहा, "ईश्वर और तुम्हारी आत्मा को साक्षी मानकर मैंने एक हाथ से नही, दोनो हाथो तुम्हारे दोनो हाथ पकडे हैं, क्या इसमे वडे दूसरे विवाह पर भी तुम्हे विश्वास है ?

"मैं केवल आपको जानती हूँ।"

"अभी कुछ दिनो के लिए मैं देहात जाता हूँ। तुम मेरे और विजय के बीच की सब बातें सुन चुकी हो। साल-भर से अधिक हुआ, मुझे उसका सवाद नही मिल रहा। उसका पता मालूम करने जाता हूँ। शोभा अब शायद न मिलेगी। मैंने वहाँ उसे बहुत खोजा है। तुम सुन चुकी हो, पर वह जैसे पर मारकर कही उड गयी।"

दोनो कुछ देर तक चिन्ता मे मौन खडे रहे।

अजित ने कहा, "अब एक इच्छा पूरी कर लेनी है। जिसने तुम्हारी एक अज्ञात वहन को समार मे लुप्त कर दिया, तुम्हे भी नीच दृष्टि से देखा, जो न-जाने कितनी स्त्रियो की आवरू ले चुका है, उस मुरलीधर को अब के मैं देखना चाहता हूँ। मेरे साथ तुम्हारे रहने की जरूरत हुई, तो तुम्हे चलना स्वीकार होगा ?"

वीण ने अव के भी धीरे से सर हिला दिया।

उसके दोनो हाथ अजित ने हृदय से लगा लिये। मुस्किराकर कहा, "लेकिन तुम्हे यह वेश वदलना होगा।"

लजाकर सर झुका वीणा हँसने लगी।

उज्ज्वल सौन्दर्य का यह लावण्य-भार एक वार, दो वार, अनेक वार देखकर देखने की न-भरी आशा भरकर अजित वीणा से विदा हुआ।

इक्कीस

अजित विजय की खोज मे गाँव पहुँचा। उसके आने की खबर से गाँव मे हलचल मच गयी। पहलेवाले स्वागत मे इस स्वागत मे फर्क था। तव लोगो की समझ मे केवल स्वार्थ की सिद्धि सुराज का मूल मतलव था, अव वह भाव वदलकर स्वार्थ का वलिदान वन गया था। विजय को जेल होने के बाद लोगो की हृदयवाली आँखें खुली, उनके सामने स्वार्थ-त्याग का सच्चा दृश्य आया, तव तक वैसे चरित्र की, जो निर्दोष होकर, तमाम दोषो को मौन नत दृष्टि से क्षमा कर फिर जगकर अपने भीतर के अँधेरे को दूर करने के लिए प्रयत्नपर होने को आत्मा मे प्रोत्साहन देता हुआ कारावास वरण कर लेता है—गाँववालो मे कल्पना करने की भी शक्ति न

थी। वुवुआ तथा और-और लोग उसके विरुद्ध गवाही देकर जब लौटे, तब जमींदार तथा गाँववालो की तरफ लज्जा से देख भी न सके; न जाने कहाँ के प्रायश्चित्त का भार उनके सर पर लद गया, सब सोचने लगे, यदि हमे सजा हो जाती!—कौन से पाप हमारे पहले के थे, जो हम सजा के नाम से इतने घबराये कि हमे ईश्वर के न्याय का भी ध्यान न रहा, और अपने, एक सच्चे हितकारी, देवता-जैसे मनुष्य महात्मा के खिलाफ गवाही दे आये।

केवल इस पश्चात्ताप मे ही इति न हुई। अपनी अक्ल के रस्से मे हर गाँव के जमीदार बोझ की तरह कसकर सबको बाँधने लगे। जितना रुपया वाकी था, व्याज और दर-व्याज-समेत, बुरे तरीके से वसूल करने लगे। पुलिस उनके साथ थी। अदालत मे उनकी वही चित्रगुप्त का खाता था, जिसमे अन्याय कभी लिखा नही जा सकता था, फिर सब असामियो के उस लिखी रकम के नीचे निशान अँगूठा लगा हुआ था। 10 की जगह 25 लिखा है इसकी जाँच की असामियो को तमीज न थी। डिगरियाँ हुईं। माल नीलाम किया गया। हली, भूसा आदि रकम सिवा तिगुनी ली गयी। किसान हैरान हो गये। जब मुसीबत-पर-मुसीबतें टूटने लगी, कोई उपाय बचने का न रहा, और सबने देखा कि जब जरूरत पडती है, बैल की तरह जमीदार के हल मे नह दिये जाते हैं, तब लोगो की समझ मे आया, जेल जाना इससे बहुत अच्छा था, सोचा, स्वामीजी ने जो अदालत तक गिरफ्तार होकर जाने की सलाह दी थी, वहुत ठीक थी, मुमकिन, हाकिम हमारी दशा पर ध्यान देता।

विजय से सहयोग करनेवाले जितने आदमी आसपास के गाँवो मे मुख्य थे, सब-के-सब परेशान कर दिये गये। अब आगे कभी सर उठाने की हिम्मत न रहे, इस सूत्र की प्रचलित प्रथा के अनुसार। लडके कुछ पढ गये थे। चिट्ठी लिखने की तमीज रखनेवाले वहाँ के हर गाँव मे किसानो के कुछ-कुछ लडके तैयार हो चुके थे। वे खेतो, ऊसरो और बाग मे काम करते, ढोर चराते और खेलते हुए बडी सहानुभूति मे अपने मित्रो मे मिलकर स्वामीजी की याद करते। जेल होने के साल-भर तक वे लोग स्वामीजी के लिए दिन गिनते रहे। वह कहाँ, किस जेल मे है, किसी को पता न था। पता लगाया जा सकता है, मालूम न था। स्वामीजी की आशा मे एक साल पूरा हो गया। जब वह एक महीने, दो महीने, तीन-चार महीने, कई महीने तक न आये, तब बालक उदास हो, हताश हो, एक-दूसरे से कहने लगे, "अब स्वामीजी हमारे यहाँ न आयेंगे।"

वीरन पासी भी इस समय जेल मे है। कृपानाथ ने शराब बनाते हुए उसे पकडवा दिया है। जो मास्टर लोग पढाते थे, वे भी अब तक नही लौटे। कोई कानपुर मे खोंचा लगाता है, कोई कलकत्ते मे बनियान और रूमालो की फेरी करता है, कोई किसी ऑफिस का चिट्ठीरसा हो गया है।

अजित को सब हाल मालूम हुए। विजय को सजा हो गयी थी, इसीलिए उसके स्वामीजी के नामवाले पत्र वापस हो जाते थे। अब वह छूट चुका होगा, पर मालूम नही, कहाँ है। सम्भव है, उसे ढूँढकर, न पाकर, कोई दूसरा रास्ता पकडा हो। गाँववालो की हालत तथा विजय पर विचार करते हुए रात-भर उसकी आँख न लगी। स्वामीजी के मित्र आये हैं, सुनकर गाँव के लडको ने आकर घेर लिया, और

अपने स्वामीजी से फिर मिलने के लिए अबाध आग्रह करने लगे, मिला देने की वार-वार प्रार्थना करने लगे। विश्वास देते रहे कि अव वे स्वामीजी को पूरा साथ देंगे, क्योंकि अव वे निरे बच्चे नही हैं, अपने हाथ हल जोत लिया करते है, और स्वामीजी जहाँ कहेगे, वे उनके साथ चलने को तैयार है।

वडे कष्ट मे आँसुओ को रोके हुए अजित सुनता रहा। अजित जहाँ था, वही खुली जमीन पर लडके भी लेट गये। अजित ने घर जाकर सोने के लिए कहा, तो लडको ने जवाव दिया कि आमो के वक्त वे रात-रात-भर कुएँ की पैडी पर पडे रहते हैं।

सुवह को अजित चलने लगा, तव गाँव के लडके रोने लगे। लोगो के रूखे कपोलो से आँसुओ की धारा वह चली। लोगो ने कहा, "महाराज, हम लोग मूरख है, गँवार है, हमने अपने स्वार्थ का विचार किया, ऐसे महात्मा को सजा करा दी, पर वह मिले, तो हम लोगो की कर-जोड दण्डवत् कहिएगा, और कहिएगा कि मूर्खो को माफ कर आप ही उन्हे राह सुझा सकते है, आप अपनी दया दिखाने से मुँह न फेरें, नही तो उन मरो हुओ का कोई भी सहारा न रहेगा।" लोग अपनी-अपनी वात, खास तौर से वुधुआ आदि गवाह जो थे, कहते जाते थे, और रोते जाते थे।

सामने खलिहान मिला। पटवारी लाला मातेश्वरी परसाद वैठे हुए पैदावार लिख रहे थे। जमीदार के सिपाही भी थे। लोग नही डरे। वुधुआ ने कहा, "अव हम तुरुक से मुरुक न वनेंगे, विगड चुका, जहाँ तक हमे विगडना था।"

एक लडके ने कहा, "वह गृद्धराज देख रहे हैं।"

लडके पटवारी को गृद्धराज कहते है।

दूसरे लडके ने कहा, "रघुआ की पाटी मे तीन मन कुल गेहूँ हुआ है, जिसके तेरह मन इमने, वीघे-भर के, लिक्खे है, कल खडा-खडा मैं देख रहा था।"

गाँव के किनारे शून्य साँस भरकर अजित को लोगो ने विदा किया। अजित ने विश्वास दिया, "अगर जल्द स्वामीजी का पता वह न लगा सका, तो खुद आकर उनका छोडा हुआ काम सँभालेगा।"

तीन साल हुए, राधा के गाँव मे खवर फैली, जो महात्माजी आये थे, वह फिर आये है। तीन ही साल मे इस गाँव मे भी एक युग वदल चुका था। स्वामीजी के भक्तो मे वहुत-से स्वर्ग सिधार चुके थे, जो पुराने वडे-वूढे थे। नवीनो मे सनातन धर्म पर, वहुत-सी घटनाओ के कारण विश्वास सुदृढ हो रहा था। नयी सुनी घटनाओ मे पुत्रवाली कई थी, जो स्वामीजी के प्रसाद के कारण फलवती हुईं, ऐसी प्रसिद्धि पा चुकी थी। स्त्रियाँ कहती थीं, भभूत देने को क्षण-भर भी पूरा नही हुआ कि वच्चा पेट मे आया। ऐसी वच्चेवाली ज्यादातर वे ही थी, जिनके सोलहवें साल लडका न होने पर घरवाले वाँझ कहने लगे थे, और जिनके पतिदेव तव तक चौदहवाँ साल पार कर रहे थे, और सहवास घरवालो की पवित्र धर्म-रुचि की ताडना से, रोज करना पडता था। अस्तु, स्वामीजी की उस गाँव मे कहाँ तक इज्जत हो सकती थी, आप स्वय अन्दाजा लगा लीजिए। उनकी प्रसिद्धि उस समय केवल उसी गाँव की दिशाओ मे न वँधी थी। स्त्रियो के व्यक्तिगत व्यवहार ने, स्त्रियो के ही प्रमुख, नजदीक-नजदीक, करीव सभी गाँवो मे विकीर्ण कर दी थी।

सेवा के उद्योग मे झुके हुए लोगो से वार्तालाप करते-करते अजित के होठ जल गये। प्राणो मे उस आग की लपटे उठने लगी, जो अपने प्रकाश मे इस भारतीयता के कुवडे रूप को देखती है। अनिच्छापूर्वक दूसरो की इच्छा मे सहयोग करनेवाले स्वामीजी अव के प्रभाव डालनेवाले पहले रूप मे न थे, थे प्रभावितो की श्रद्धा विगडी हुई सूरत देखनेवाले रूप मे।

एक मेला लग गया। शाम को स्त्रियो का झुण्ड उमडा। पूर्ववत् भभूत देना वरावर जारी रहा। सन्ध्या पार हो गयी। एक पहर रात वीती, धीरे-धीरे दर्शक और प्रार्थियो का आना-जाना वन्द पडा। डेढ पहर तक विलकुल वन्द हो गया। एक चित्त से स्वामीजी राधा को ध्यान कर रहे थे। इतने आदमी आये-गये, उनमे अपना एक न था, वे सव अपने थे। एक राधा थी, जो दूसरे के लिए होकर सवकी थी, इसलिए महात्मा का सुन्दर अर्थ से निकटतम सम्वन्ध था।

पहली ही तरह वैसी ही काली मूर्ति फिर मुस्किराती हुई स्वामीजी के सामने खडी हो गयी। उसकी भी गोद मे एक वच्चा था। स्त्रियो के वाजार मे स्वामीजी की इज्जत वढा रखने की नीयत से, स्वामीजी की ही भभूत से वच्चा हुआ, उस प्रकार वह भी वहाँ की स्त्रियो मे एक मुख्य नायिका थी।

मा ने पहले वच्चे का सर स्वामीजी के पैरो पर रक्खा—काला-काला, तगडा-तगडा, सुन्दर वच्चा देखकर स्वामीजी ने गोद मे उठा लिया, तव खुद प्रणाम किया।

वच्चे को मा की गोद मे देकर सक्षेप मे, अपनी विपत्ति की कथा, विजय का कैद होना, अव तक छूटने की सम्भावना आदि स्वामीजी सुना गये। राधा विस्मय, दु ख और सहानुभूति से, कभी रोकर, कभी ढाढस वँधाती हुई सुनती रही। फिर उसका और वहाँ का हाल स्वामीजी ने पूछा। राधा ने कहा, "जव वह गय, उसके कुछ ही दिनो वाद वह भी कानपुर चली गयी थी, तव से कई वार आ चुकी और उनकी राह देख चुकी है, अव के वच्चे का यही मूडन करवाने के विचार से आयी है। गाँव के महादेव जिलेदार को सदर वुलावा आया था, इसलिए गया हुआ है। वहाँ से कही भेज दिया गया है, कव लौटेगा, क्या वात है, वह नही जानती। पर इतना वह कह सकती है कि कही कुछ दाल मे काला है, तभी उसने कई रोज से मुँह नही दिखाया। यहाँ उसकी और मालिक की काफी वदनामी फैल चुकी है। अव सव लोग जान गये है।" राधा ने यह भी कहा कि मालिक अव राजा हो गये है। अजित ने पूछा, "राधा कव तक यहाँ रहेगी, और कानपुर कव जायगी और कानपुर मे, कहाँ, किस मुहल्ले मे वह रहता है, उसका क्या पता है।" राधा ने वतलाया, अजित ने एक कागज पर लिख लिया। फिर पूछा, "गाँव के मालिक इस वक्त कहाँ हैं।" राधा ने कहा, "वह नही कह सकती, पर उनकी 'लखनऊ और सदर', 'लखनऊ और सदर' यही रफ्तार रहती है।"

मिलकर, खूव वातें कर, लडके से दण्डवत् करा, खुद चरण छूकर, फिर मिलने की अपनी आशा की याद दिला, राधा अजित से विदा हुई।

मुरलीधर का इस समयवाला पक्का पता मालूम कर अजित कानपुर आया। वीणा के घर आ कई रोज की थकावट दूर करने के लिए स्नान-भोजन कर

आराम करने लगा। व्रजकिशोर अपने काम पर गया था। द्वार बन्द कर वीणा पखा लेकर वैठी। अजित पखे की हवा मे सो गया।

जव जागा, तव व्रजकिशोर आ चुका था। उठकर, वीणा से चाय वनवाकर, पीकर, व्रजकिशोर को साथ बाहर वातचीत करने के लिए वगीचे की तरफ ले गया, और वहाँ निश्चिन्त एकान्त मे वीणा के साथ अपने विवाह की आज्ञा माँगी, और शीघ्र एक ऐसे ही विवाह के लिए तैयार होने को कहा। व्रजकिशोर लजाकर वोला, "इसके लिए मेरी राय की क्या जरूरत थी, आप स्वय उससे विवाह कर ले सकते थे, और इससे वडा सौभाग्य वीणा का और क्या होगा ?"

निश्चय के अनुसार, अजित वीणा को साथ लखनऊ ले आ, कुछ दिन तक होटल मे, फिर मुरलीधर के निवास-स्थल से करीव, एक अच्छा-सा खाली मकान किराये पर लेकर, रहने लगा। यहाँ वीणा का नाम शान्ति बदल दिया। कुछ ही समय मे अनेक लोगो से पहचान कर ली। स्नेहशकर की तारीफ शोभा को खोजते हुए पहले सुन चुका था। देखा, उसके मकान से स्नेहशकर की कोठी भी नजदीक पडती है। देखा, मुरलीधर एक किराये की कोठी मे रहते है, और स्नेहशकर के यहाँ एक सुन्दरी कुमारी भी है।

बाईस

कुछ दिनो से राजा मुरलीधर प. स्नेहशकरजी की वगल मे एक किराये की कोठी लेकर रहते हैं। जिस उर्वशी को पहले एक दिन थिएटर-हाल मे उन्होने देखा था, उसे पाने की आशा से सरकारी अफसरो के असुर और देवताओ को एकत्र कर समुद्र-मन्थन शुरू कर दिया। पर असुरो की तरह रज्जु-रूप शेष के फणो की ओर नही पकडा। सोचते थे, नाराज होकर शेषजी ने कही चोट की, तो उर्वशी के उठने से पहले मैं ही उठ जाऊँगा। अत बरावर पूछ की ओर पकडने का ध्यान रखते थे। पर एक गलती उन्होने की। केवल रत्न-प्रभा की आशा रक्खी, जहर के उठाने की सोची ही नही।

स्नेहशकरजी के मकान के दो-तीन इकमजिले मकानो के वाद राजा साहव की कोठी है। यहाँ-वहाँ के दूसरी मजिलवाले मजे मे दृष्टि द्वारा आदान-प्रदान कर सकते हैं। राजा साहव के पडोस मे आने पर स्नेहशकरजी को मतलब मालूम हो गया। उन्होने एक दिन अलका को पास बुलाया, और स्नेह से कहने लगे, "वह जो कोठी है, उसमे मुरलीधर अव आकर टिके है। यह उनका मकान नही। यह वही मुरलीधर है, जिनके कारण तुम्हे घर छोडकर एक दिन निकलना पडा था। इनका मतलव यहाँ आने का अच्छा अवश्य नही, और हो-न-हो लक्ष्य तुम्ही हो।"

अलका अव वह अलका नही। यद्यपि अभी उसे कुछ दिन पिता के पास और

पढना है, पर उसे अपने विचारो पर निश्चय होने लगा है, और पिता भी घूमने-फिरने और मिलने-जुलने मे पहले से उसे अधिक स्वातन्त्र्य दे चले है।

"जैसा आप कहे, करूँ," नम्र-निश्चल पलको से पिता को देखकर पूछा।

"सिर्फ, कुछ सावधान घूमने-फिरने के समय रहना, और इसके मर्ज की दवा कोई कर ही देगा।"

"किसी दूसरे का भरोसा रखना कमजोरी है। जो ऐसे-ऐसे पापो को हाथ वढाते हुए सकोच नही करता, पिता किसी भी समझदार को चाहिए कि उसके हाथ उसी समय काट ले।"

"तुम अधीर होती हो। अपने पापो का फल तत्काल नही समझ मे आता। उसका जहर अवस्था की तरह ठीक अपने समय पर चढता है। तुम जानती हो, सस्कारो के कारण शरीर का अस्तित्व है। नवीन सस्कारो का शरीर बाल्य और शैशव मे वीज-रूप जब तक रहता है, उसका यथार्थ जीवन समझ मे नही आता। पर वे वुरे भावनाओ के पुजीकृत सस्कार यौवन की पूर्णता मे वदलकर प्रत्यक्ष होते ही, गेंद की तरह, मनुष्यो के पद-पद की ठोकरें खाते हैं, उन सस्कारो के उस मनुष्य को ठोकर मारकर ही दूसरे सुखी होते और अपना उत्तरदायित्व निभाते है—विना मारे रह नही सकते—न मारें, तो जीवन के खेल मे गोल खाकर हार जायँ।"

"परन्तु—"

"परन्तु कुछ नही, तुम केवल अपनी रक्षा करती रहो, दूसरे पर प्रहार करो, ऐसा अधिकार तुम्हे नही अलका। स्पर्धा करो, ऐसा भी नही। उसके दौरात्म्य की चोट सहकर, उसे क्षमा कर तुम अधिक शक्ति धारण कर रही हो। इसलिए वही तुम्हारे चारो ओर चक्कर खा रहा है। यदि अव उसी के किसी ताडित केन्द्र मे पृथ्वी की तरह सक्षम होने की रस्सा-कशी करो, तो तुम्हारे ही हृदय के किसी सत्य-हार का सूत्र इस सघर्ष मे टूटेगा।"

"मगर ऐसा होना भी तो प्राकृतिक सत्य है पिता।"

"है। इसीलिए मैं प्रकृति मे कहता हूँ, अपने सत्य की रक्षा करो, यह तुम्हारे हृदय से अपना महत्त्व लेकर निकल न जाय।"

अलका नीरज-नेत्रो से पिता के ज्ञानोज्ज्वल उत्पल पलक देखती रही। 'अच्छा जाओ, तुम्हे सावधान कर देने के लिए बुलाया था', कहकर स्नेहशकर एक पुस्तक देखने लगे। अलका अपने कक्ष मे चली गयी। वहाँ से वह कोठी साफ देख पडती है।

एक दिन अलका ने एक आदमी को उसी मकान से बडे गौर से देखते हुए देखा। अनुमान से निश्चय किया कि वह मुरलीधर ही होगा। सयत हो अपने पलँग पर बैठ गयी। खिडकी खुली रही। मुरलीधर घण्टो तक उस सौन्दर्य की शोभा को देखते रहे। अलका सावित्री की लिखी हाल ही की प्रकाशित 'पत्रिका' नाम की उपन्यास-पुस्तिका, जो उसी रोज मिली थी, पढ रही थी। पुस्तक की असमाप्त कला अलका को बहुत पसन्द आयी। जब आँख उठाकर देखा, वह मनुष्य उसे देख रहा था।

अलका उसकी दृष्टि के ताप से ऐसी जली कि उस दिन से आँचल-वाल आदि का जान-बूझकर सँभाल न रखने लगी। फिर उस तरफ जहाँ तक हो सका, ज्ञान-पूर्वक नही देखा।

इसी के कुछ दिन बाद एक नये परिवार से अलका की घनिष्ठता बढने लगी। अजित और उनकी स्त्री शान्ति एक दिन प.स्नेहशकरजी से मिलने आये। बातचीत मे स्नेहशकरजी बहुत खुश हुए। अजित ने अपना नाम, ग्राम, सब ठीक-ठीक बतलाया, सिर्फ मुरलीधर की मुरली छीनकर बेसुरे राग की सजा देनेवाला मतलब छिपा रक्खा।

शान्ति कभी-कभी अलका के पास जाने लगी। दोनो के सखित्व की शाखा मे स्नेह के वसन्त-पल्लव फूटने लगे।

तेईस

प्रभाकर को देखने के बाद अलका के हृदय-पुष्प की अक्षय सुरभि मन के मारुत-झकोरो से पुन.-पुन उसी ओर बहने लगी। अलका इस सुखकर प्रवाह मे स्वय बह जायगी, ऐसी कल्पना न कर सकी। वह अपने सूक्ष्म तत्त्व मे सुरभि के सिवा और कुछ नही, यह वह जानती है, पिता के पास ऐसे सिद्धान्तो की पुन -पुन आवृत्ति सुन चुकी है, साथ ही वह कह चुके हैं, यथार्थ प्यार जीवो को देने पर वृत्तियो का खिचाव नही रहता, तभी स्वतन्त्र रूप से दूसरो को प्यार किया जा सकता है, स्वार्थ लेश-मात्र मे रहते ऐसा सम्भव नही। अलका के हृदय को विश्वास है, वह किसी प्रलोभन या स्वार्थ से प्रभाकर की ओर नही खिच रही। वह उससे कुछ भी नही चाहती। वह एक सच्चा युवक है, वीर है, त्यागी है, इसीलिए उससे मिलकर बातचीत करने, उसकी बातचीत सुनने को जी चाहता है। पकिल प्रेम मे मनुष्य की आकृति कैसी बन जाती है, वह तेज बाबू मे अच्छी तरह दीख पडती है। पडोस मे भी एक उदाहरण है। ये लोग प्राणो तक पहुँचकर नही, किसी स्वार्थ का परिणाम सोचकर, मतलब गाँठकर चाहते हैं, इसीलिए इनकी चाह चर्म-चक्षुओ की पहुँच तक परिमित और चर्म-देह के सौन्दर्य तक सीमित है। पर प्रभाकर ने तो अच्छी तरह उसे देखा भी नही, आँखें झुकाये हुए आँखो के दर्शन को पहले ही दृष्टि के तत्त्व से बेदखल कर चुका है। चुपचाप अपनी आत्मा से मानकर, और समझ-दार को मनाकर चला गया। क्या अलका ऐसी ही समझदार नही ? वह जरूर है, उसके प्राणो से आवाज आयी।

हाय! इतने तत्त्वो के मार्जित ज्ञान के भीतर, इतनी पति-तपस्या के कारण का क्या यही कार्य है कि एक अपरिचित तपस्वी सबसे प्रिय वस्तु छीनकर चला जाय, और लुटी हुई को किसी तरह भी समझ मे न आये कि यह उसी की दुर्बलता

का प्रवल प्रमाण है ? दूसरे दिन पिता से अलका ने प्रभाकर की बातचीत मे प्रशंसा कर कहा कि ऐसा एकनिष्ठ एक भी मनुष्य उसने बाहरी दुनिया मे नही देखा, और आज वह उसके डेरे पर उससे मिलने जायगी, पिता आज्ञा दें। स्नेहशकर ने आज्ञा दे दी।

अलका ताँगा बुलवाकर चल दी। स्नेहशकर मुस्किराये—साम्य भाव की इच्छा और उसकी पूर्ति जीवन को सबसे पुष्ट खूराक है, यह नही मिलती, तो वैषम्य के ससार मे शान्ति दुर्लभ है।

पूछकर ताँगेवाले ने प्रभाकर के मकान के सामने रोका। अलका उतर गयी। प्रभाकर बैठा था। आज तक ऐसा आश्चर्य जीवन मे उसे दूसरा नहीं देख पडा। ससम्भ्रम जबान से केवल निकला, "आप !"

"हाँ, आप मुझे देखकर आश्चर्य मे है, पर शायद उन स्त्रियो के लिए, जो राह पर भीख माँगती है, आपको आश्चर्य न होगा। आपने सोचा होगा, आश्चर्य भी हमारी पराधीनता के मुख्य कारणो मे से है।"

इज्जत के साथ प्रभाकर ने कुर्सी खीचकर बैठने को दिया। फिर विनयपूर्वक पूछा, "आपका नाम ?"

मुस्किराकर अलका ने जवाब दिया, "मुझे अलका कहते है। उस रोज वहाँ आपने बहुत अच्छा उत्तर दिया !"

"कमिश्नर साहब आपके कोई होते हैं ?"

"ऐसे कोई नही होते, मेरे पिताजी के मित्र है, और उनसे कहकर मुझे कन्या-रूप ग्रहण किया है। पर अभी मैं अपने पिताजी की ही मातहत हूँ। उनसे पढती हूँ। आप क्या मेरे पिताजी से एक बार मिल लेंगे ? उन्हे देखने पर आपको हर्ष होगा।"

"यह मै आपकी ही सदाशयता से मालूम कर रहा हूँ। आपके पिताजी का शुभ नाम ?"

"पण्डित स्नेहशकर।"

"स्नेहशकर ? जिन्होने अँगरेजी मे 'धर्म और विज्ञान' नाम की पुस्तक लिखी है ?"

"जी हाँ, उनकी कई और भी किताबें है।"

"मैं अवश्य उनके दर्शन करूँगा। मेरा सौभाग्य है, जो उनकी कन्या मुझे दर्शन देकर यहाँ कृतार्थ करने पधारी। मैंने उनकी एक ही पुस्तक पढी है, और ऐसे मार्जित विचार की दूसरी पुस्तक नहीं देखी।"

अलका प्रसन्न है। कपोलो पर रह-रहकर मुस्किराहट आ जाती है।

"आप-जैसी सहृदया विदुषियो को भारत की अशिक्षा से ठुकरायी हुई, समाज की उपेक्षित स्त्रियाँ करुणा-कण्ठ मे प्रतिक्षण अशब्द आमन्त्रण दे रही हैं," व्यथा से भरी भारी आवाज मे प्रभाकर ने कहा।

"क्या आपको मेरी सेवा की ऐसे समय जरूरत होगी ? कभी हो, आप मुझे आज्ञा देने मे सकोच बिलकुल न करें। मुझे आपकी आज्ञानुवर्तिता से सुख होगा—" आँखे झुका प्राणो के पूर्ण दानवाले शान्त सयत स्वर से अलका ने उत्तर दिया।

प्रभाकर को जान पडा, यह प्रभा स्वर-मात्र से उसे स्वर्गीय कर दे रही है। नारी-चरित्र का जो चित्र आँखो के सामने आया, चिरकाल तक प्रोज्ज्वल कर रखनेवाली पवित्र शक्ति प्राणो के समीर-कोप मे भर गया, जैसी सभी तत्त्वो के एक वीज-मन्त्र ने अपनी विभूति का क्षणिक ससार समझा दिया हो, और वह ऐश्वर्य से एकमात्र सत्य मे वदलकर स्थायी हो गया हो।

प्रभाकर वोला, "मैं आपकी इतनी उक्ति-मात्र से आपका दासानुदास वन गया हूँ।"

अलका हँस पडी। वोली, "ज्यादा भक्ति अच्छी नही होती। पिताजी कहते हैं, यदि मनुष्य के रूप मे होगे, तो इष्टदेव मे भी भक्त को दोष दिखलायी पड़ेंगे। इसलिए फिर एक रोज मेरे किसी दोप पर आपको मुझसे ऐसी ही घृणा हो जायगी। आप देश-भक्त है, इसलिए भावुकता की मात्रा आपमें कुछ अधिक है।"

प्रभाकर ने भी रसिकता की, "झुकी हुई नजर उठती ही है, आप ठीक कह रही है, पर उसका अर्थ भी बुरा नही लगाया गया। दोष को व्यापक विचार से देखने पर मृत्यु के जीवन की तरह वह गुण हो जाता है।"

"आप तो वडे पक्के दार्शनिक जान पडते हैं।"

"चूंकि विना दर्शन के पग-पग पर चोट खाने का डर है।"

"पर जहाँ पग रखनेवाली गुजाइश न हो?"

"वहाँ रास्ता वनाने के लिए आप लोग हैं।"

अलका लज्जित हो गयी। प्रभाकर भर गया। आनन्द मे निश्चल कुछ देर तक अपने मे लीन वैठा रहा। फिर कहा, "आपकी मुझे जरूरत है। मैं यहाँ के कुलियो की स्त्रियो के लिए एक नैश पाठशाला उनकी खोलियो के पास खोलना चाहता हूँ। आप केवल दो घण्टे, शाम सात वजे से नौ वजे तक, दीजिए। पर आप इतना कष्ट·· "

"हाँ, स्वीकार कर सकूंगी। मेरी दीदी तो ऐसा ही करती है, और इस काम मे उन्हे वडा आनन्द मिलता है। मेरे पिताजी ने मेरी शिक्षा का श्रीगणेश इसी विचार से किया था। उनमे कहकर मैं आज्ञा ले लूंगी।"

"पर मुझे अगर सजा हो जाय, तो आपका काम—"

"आपको सजा न हो, मैं इसके लिए कमिश्नर साहव से कोशिश करूंगी।"

प्रभाकर लज्जित हो गया। जैसे उसका सिर उठा रखनेवाली सारी शक्ति इस एक वात मे सीता की तरह अपमान के भार से पाताल समा गयी। वोला, "मैं आपसे सवसे पहले यही विनय करता हूँ कि आप मुझे बचाने के लिए एक वात भी कमिश्नर साहव से न कहे। देश के इस उद्देश मे आपके भाग लेने पर कमिश्नर साहव समझाने की अपेक्षा ज्यादा समझेगे, और इस समझ से, मेरे जेल जाने पर काम करते रहने की अपेक्षा अधिक फल होगा, और उन लोगो को भी, जो मुझसे कुछ सीखते है, अव से एक गहरी सीख मिलेगी।"

शान्त शिखा-जैसी वैठी हुई प्रभाकर की प्रभाव छोडनेवाली शब्दावली अलका सुनती रही। इस पर कुछ कहनेवाली कायदे की वात थी ही नही। सुनकर श्रद्धा की आँखो एक वार देखा, और पलकें झुका ली।

भाव के भार से ससम्भ्रम अलका को उभाडकर हल्के वातावरण मे ले आने के विचार से प्रभाकर ने कहा, "आप मुझे मिली, यह जेल जाने के फल मे ज्यादा मिला। साधना मे इसमे सिद्धि मैं नही चाहता, मुझे उस पर विश्वास भी नही।"

हल्की हँसी मे अलका के होठ रँग गये। कहा, "साधक से यदि अधिक साधना लेने की मेरी इच्छा हो, तो साधक अपनी तरफ से अवश्य कुछ नही कह सकता।"

"नही कह सकता, अवश्य साधना के खण्डित हो जाने का भय न हो।"

"सिद्धि पाये हुए साधक की साधना विघ्नो मे भी निर्विघ्न रहती है।"

कहकर अलका उठकर खडी हो गयी।

"क्या आप अब जाना चाहती हैं ?" प्रभाकर ने भी उठकर पूछा।

"हाँ," सभक्ति, सहास नम्र अलका ने कहा।

"अच्छा, तो आज्ञा दीजिए कि गणो के साधक को गणेश की सिद्धि के दर्शन होगे," प्रभाकर ने प्रार्थना की।

"मै कल भी इसी समय यहाँ आऊँगी, अगर आपको कोई दिक्कत न हो।"

"नही, मुझे कोई दिक्कत न होगी, बल्कि मैं कृत-कृत्य हूँगा। हां, समय तो नही है, पर क्या आपको आपके घर तक छोड आऊँ ?"

"हाँ, मैं ले चलने के लिए ही आयी थी, मेरे पिताजी को देखिए।" दोनो ताँगे पर बैठकर चले।

चौबीस

"अलका दीदी मुझे बडी अच्छी लगती है, मुझे खूब प्यार करती हैं।" वीणा ने वीणा कण्ठ से अजित से कहा।

"यह तारीफ तो बहुत बार कर चुकी हो।" कुछ सोचते हुए कुछ रुखाई से जैसे अजित ने कहा।

"एक तेज बाबू है, वह इन्हे बहुत चाहते है।"

"हूँ।" अजित सोचता रहा।

"पर यह ऐसा बेवकूफ बनाती हैं कि समझकर भी नही समझता।"

"हूँ।" अजित पेंसिल-कागज लेकर एक नक्शा बनाने लगा।

"पर एक नेता प्रभाकर है, उन्हे यह चाहती है।"

अजित ने एक त्रिकोण बनाया, और हर कोण मे एक बात लिखकर उसकी चाल दूसरे कोण की तरफ की।

"वह आये थे। पिताजी से बडी देर तक बातचीत हुई। अलका दीदी कहती थी।"

अजित ने कहा, "हम लोग बहुत दिनो तक यहाँ नही रह सकते। हमे जल्द

अपना काम ठीक कर लेना है।"

"तो मेरी वात तुमने नही सुनी ?"

"पहले तुम मेरी बात तो सुन लो, फिर तो मुझे तुम्हारी ही बाते जि
सुननी है।"

वीणा मन से नाराज हो खुश हो गयी। अजित ने कहा, "यह देखो,
साडी, शमीज, लेडी मोजे और जूते तुम्हारे लिए कीमती देखकर ले अ
पाउडर, सेण्ट वगैरा तो होगे ही। अपने लिए भी अच्छा अँगरेजी सूट खरी
है। आज चलकर जरा राजा साहब से मिलना है। जितनी अँगरेजी जा
बीच-बीच लडा देना।"

वीणा आनन्द से छलकती, तान मुरकी-सी आगिरश्चरण काँप उठी।
प्रवालोज्ज्वल आँख से प्रिय को देखती हुई बोली, "मुझसे न होगा।"

"होगा क्यो नही, होना ही होगा। और कभी-कभी अपनी उसी
ब्रह्मगिरा-शक्ति का आँख से उपयोग अर्थात् कसकर प्रहार कर दिया कर

अजित ने तमाम अगो से उसे गुदगुदा दिया। खिलकर अजित को
हिलती हुई बोली, "मुझमे हरगिज ऐसा न होगा, अभी से वतला देती हूँ, उ
मैं नही जाती।"

"देखो," अजित ने गम्भीर होकर कहा, "वक्त पर गधे को बाप कह
है।"

"तो आप बाप कहिए, मुझसे न होगा।"

"देखो, धोबी के साथ चाहे कुछ बगावत करे, पर धोबिन के हाथ गधे
सधे रहते हैं, यानी इतने समझदार होते है। किसकी बात पर कान-पूँछ न
चाहिए, इतना वे भी जानते है।"

"तभी तो कहती हूँ, तुम मेरी बात मान जाओ।" हँसकर वीणा दूसर
चल दी। अजित कुछ अप्रतिभ होकर सँभल गया। कहा, "तुम व्यर्थ के लि
चौकती हो। तुम लोगो का यथार्थ तत्त्व योरपवाले समझते है। वे तुम्हारे
महत्त्व मे हुक्का मानते है, जो सहस्रो मुखो से चुम्बित होकर भी चिर पवि
है।"

"अर्थात् ?" कुछ रुखाई से वीणा बोली।

"अर्थात् वशी का फूँकवाला छेद जिस तरह होठ-होठ से लगने पर भी
नही माना जाता, उसी तरह स्त्री का मुख है। कृष्णजी की वशी मे यही रू
वह सोलह हजार गोपियो के मुख इसीलिए चूम सकते थे, और चूमकर प
देते थे, क्योकि उन्हे वशीवाला तत्त्व मालूम था।"

कुछ अप्रतिभ-सी होकर वीणा रोने लगी। अजित आँसू पोछने लगा।
"तुम नाराज हो गयी। मैं जरा नास्तिक हूँ, इसके लिए तुम्हे बराबर क्षम
ही रहना होगा। पर तुम्हारा धर्म तो यही है—जहाँ पति हो, वहाँ सती भ
इसलिए अब साथ चलकर इस यज्ञ मे अपना आधा काम पूरा करो। आज्ञा
मैं ही वेशकारी बनकर देवी को सजा दूँ।" कहकर आँचल का एक भाग
खीचा।

पकडकर कुछ प्रसन्न होकर, वीणा ने कहा, "मैं पहन लेती हूँ।"

"तुम व्यर्थ नाराज हो गयी," अजित ने कहा, "स्वभाव मे जितने भाव हैं, सव रहते हैं। समय पर उनका उपयोग करना किमी पाप मे दाखिल है, यह मेरी समझ मे नही आया, शायद कभी आयेगा भी नही। फिर यह नाटक ऐसा है, जिसकी तुम्ही प्रधान अभिनेत्री वन सकती हो। अव कहो कि मेरा कौन-सा कसूर था?"

वीणा मोजे पहन रही थी। आँखो मे चपल मुस्किरायी।

अजित ने कहा, "वहादुरी तो वहुत पहले मे स्त्रियो को ही मिली हुई है। 'साहस षड्गुणञ्चैव' छगुनी हिम्मत स्त्रियो म पुरुषो मे ज्यादा है, अवश्य 'लज्जा-ञ्चापि चतुर्गुणा' यह भी कहा गया है, पर हिम्मत मे लाज मे ड्योढा वल ज्यादा है, इमलिए जव चाहे, स्त्रियाँ हिम्मत मे लाज को दवा सकती हैं।"

वीणा जूते पहनकर, कपडे वदलने और राग कर लेने के लिए दूमरे कमरे मे चली गयी।

अजित वैठा सोच रहा था कि स्कीम किस तरह पूरी हो।

खूव मजकर वीणा वाहर निकली। एक वार जी-भरकर अजित देखने लगा। मुस्किराकर वीणा ने पूछा, "कही कोई त्रुटि तो नही रही?"

उठकर अजित ने सिर की साडी एक वगल कर पिन लगा दी। मनीवैग दे दिया। ताँगा वाहर खडा था, दोनो वैठ गये।

अजित रॉयल होटल के पते से एक पत्र अँगरेजी मे नीरजा के नाम मे लिखकर पिछले दिन पोस्ट कर चुका था, और एक कमरा किराये पर लेकर, ईंटे भरकर दो-तीन कीमती केन और वॉक्स, कुछ नये कपडे वाहर मे हिफाजत से लपेटकर रखकर वक्त पर भोजन कर, कुछ देर तक अपने अस्तित्व के प्रमाण मजवूत कर चला आया था।

राजा मुरलीधर समय देखकर नीरजादेवी की प्रतीक्षा मे वैठे थे कि आगे-आगे नीरजादेवी और पीछे पीछे उनके सिक्रत्तर साहव आते हुए देख पडे। वेयरा ने खवर दी। आधुनिक कायदे मे महिलाओ को सम्मान देनेवाले राजा साहव ने कुछ कदम वढकर स्वागत किया।

राजा साहव के साथ मोहनलाल भी थे। अजित ने अँगरेजी मे पूछा, "क्या मैं मिस जस्टिम लेले से आपको राजा मुरलीधर साहव के नाम से परिचित करूँ?"

"कीजिए।"

अजित ने वीणा से अँगरेजी मे परिचय कह दिया। वीणा कुछ समझी नही, सिर्फ मर हिला दिया, और मिलाने को वढे हुए राजा साहव के हाथ से हाथ मिलाया।

तमाम वातें अजित ही कहने लगा, मिम साहवा अभी दो महीने हुए विलायत से लौटी हैं। वहाँ पढती थी। लखनऊ घूमने आयी हुई हैं। अच्छी मोटर यहाँ किराये पर नही मिलती। यहाँ के गेट्स् इन्हे वहुत पमन्द हैं। मडकें वडी अच्छी हैं। काफी सफाई रहती है। पार्क खूव वडे-वडे हैं। जस्टिस लेले ने लखनऊ के राजा

और तअल्लुकदारो मे आपकी बडी तारीफ अपनी पुत्री से की है। पहले एक बार वह आये थे, तब राजा साहब के पिता थे, उन्होने जस्टिस साहब की बडी मेहमानदारी की थी।

राजा साहब ने स्वभावत वैसी खातिर करने का वचन दिया।

मौका देखकर अजित ने एक बार सबूट पद धीरे से पटक दिया। सुनकर सिखलाई वीणा ने कहा, "थैंक्स।"

जो दृष्टि कहने का प्रयत्न करती है, पर हृदय से स्वत उठे हुए शब्दो की तरह नही कहती, उसी व्यवहारवाली सकाम दृष्टि से राजा साहब कह रहे थे, 'मैं तुम्हारा हूँ,' और जो दृष्टि छल कर अपने मार्ग से धारा की तरह वह जाती है, उससे वीणा ने उत्तर दिया, 'मैं तुम्हारी हूँ।'

काम मनुष्य को स्थिति से स्खलित कर वहा ले जाता है, जहाँ से उसे एक रोज उसी जगह लौटना पडता है, जहाँ से वह चला था, यदि कभी जीवन मे सुअवसर प्राप्त हुआ, नही तो एक जीवन के लिए इसी तरह मनुष्य पथ-भ्रष्ट होकर नष्ट हो जाता है।

बातचीत कर चलते समय अजित ने राजा साहब से कहा, "रात आठ बजे मिस नीरजा साहबा आपको आने के लिए आमन्त्रित करती है।" राजा साहब ने सविनय प्रस्ताव स्वीकृत किया। अभिवादन आदि करके वीणा और अजित ताँगे पर बैठे।

राजा साहब ने अर्थ लगाया, योरप मे रही है, पूरी छटी है, पर सभ्यता से चुपचाप बैठी रही।

मोहनलाल ने कहा, "जाइए, मिस साहबा का न्यौता है।" कहकर मुस्कराया।

होटल मे सिर्फ अजित का नाम विक्रम लिखा था।

अच्छी पार्टी हुई। राजा साहब को खूब खिला-पिलाकर कुमारी नीरजा ने विदा किया। ड्राइवर और अर्दली सँभालकर राजा साहब को ले गये। प्रात काल उन्हे पता चला, उनके कोट की जेब खाली है। होटल मे पता लगाया, वहाँ कोई न था। पिस्तौल और गोलियाँ चुरा गयी।

पच्चीस

इधर कुछ दिनो से प्रभाकर के प्रस्ताव के अनुसार रोज दो घण्टे के लिए कुलियो की खोलियो मे उनकी स्त्रियो को पढाने के लिए अलका जाया करती है। कन्या का रुख देखकर स्नेहशकरजी ने आज्ञा दे दी है। कमिश्नर साहब को मालूम होने पर कुछ नाराज हुए और डरे भी। अलका ने कह दिया है, यदि आप ऐसी पुत्री

की तलाश मे हों, जो पुन्नाम नरक में आपके लिए स्थायी वास-स्थल तैयार कर सके, तो मुझमे उस प्रयोजन की आशा न रखें। तब से कमिश्नर साहब कभी-कभी वैदिक सम्पत्ति की रक्षा के लिए भी सोचते है।

राजा मुरलीधर बहुत दिनो तक अलका की आशा मे रहे। आशा की नाव के खेनेवाले मल्लाह उन्हे पार कर स्वय पैसे से निराश नही होना चाहते थे, इसलिए अपार सागर मे वे केवल खेते थे, और मास्टर मोहनलाल भी आज तक दस देकर बीस लिखते आये थे, उन्हे देर के लिए दिक्कत न थी, जबकि तअल्लुके की आमदनी सत्य के अस्तित्व की तरह चिरन्तन थी, और नौकरी बालू की भीत। दीर्घकाल तक जब कोई उपाय न मिला, केवल उपाय करनेवालो की संख्या बढती रही, तब आप-ही-आप राजा साहब ने एक दिन महादेवप्रसाद को याद किया। आने पर खुद अपना मतलब समझाया, और अपने कमरे से अलका को पहचान लेने के लिए दिखाया। यह भी कह दिया कि यह असिस्टेण्ट डिप्टी-कमिश्नर साहब के यहाँ अक्सर जाया करती है। महादेव ने अच्छी तरह देखा, फिर राजा साहब की दूर-बीन उठाकर देखा, देखकर दग रह गया।

"कुछ तअज्जुब मे हो," राजा साहब ने कहा, "तअज्जुब की चीज ही है।"

"हुजूर!" महादेवप्रसाद ने एक बार फिर दूरबीन से देखकर कहा, "यह तो वही शोभा है, जो भग गयी थी।"

"ऐं! वह है?" राजा साहब आश्वस्त होकर बोले। जिस स्वर मे दूसरी यह ध्वनि होती है कि हमारी रियाया है, हम जब चाहें, भोग कर सकते हैं।"

"हाँ सरकार, वही है, फर्क कही जरा-सा नही दिख रहा। क्या हुजूर जानते है, यह मकान किसका है?"

"उसी स्नेहशकरा का है।"

"हुजूर वही है यह। स्नेहशकर हमारे यहाँ से कुछ ही फासले पर तो रहते हैं। जरूर इन्होने इसे भगाया होगा। एक सावित्री सावित्री कहकर इनके यहाँ है, वह भी भगायी हुई है, लोग कहते हैं। इसको ले आना कौन बडी बात है?"

कोई बडी बात नही, राजा मुरलीधर के हृदय मे प्रतिध्वनि हुई। अलका अब पढाने के लिए रात को रोज जाती है; यह ताडकर महादेव ने कहा, "मोटर पर आप बैठ लीजिए, कुलियो की खोली के उधरवाला रास्ता आठ-नौ बजे तक एक तरह बन्द हो जाता है, ताँगेवाले को मैंने साधकर मुट्ठी मे कर लिया है, वह भी मदद करेगा, दो सिपाही ले चलें, बस, पकड़कर मोटर पर बैठाल लेंगे, और सदर लेते चले चलेंगे, फिर वह तो वह, उसके देवता अपने काबू मे हैं।" मुरलीधर को बात जँच गयी। आज की रात का निश्चय हो गया।

नौ बजे अलका लौटी। अलका के चल चुकने के बाद प्रभाकर चला। कुछ दूर तक एक ही रास्ता चलकर प्रभाकर को घूमना पडता था। अलका ताँगे पर आती-जाती थी। प्रभाकर पैदल।

ठीक स्थल पर ताँगा रुका। राह निर्जन हो रही थी। दो आदमी आये, और एक-एक हाथ पकड लिया। अलका पहले से जानती थी कि उस पर अत्याचार होगा, इसलिए बहुत ज्यादा नही चौंकी। एक बार मुँह देख लिया। लोगो ने

खीचा। वह चली गयी। मोटर पर लोगो ने वैठाल दिया। मोटर चली, तो हाथ ढीले कर दिये। मालिक की नमक-हलाली के प्रमाण-स्वरूप मालिक की वगल मे ही उसे ला वैठाला था। मालिक ने मुस्किराकर कहा, "वडी मिहनत ली। अव के दोवारा तुम्हे पाने की तैयारी की।"

"वडी मिहनत ली, अव के दोवारा तुझे पाने की तैयारी की।" कहकर जेव से निकाल ठीक छाती पर पिस्तौल दाग दी।

घडाका, खून का फव्वारा, ड्राइवर और सिपाहियो का वेहोश होना और सामने के एक पेड से टकराकर मोटर का टूटना जैसे एक साथ हुआ। अलका पूरी शक्ति से सचेत और सक्रिय थी। मोटर टकराने और मुरलीधर की चीख के साथ पिस्तौल वही फेककर, कूदकर जमीन पर आ गयी। जल्द चलना चाहा। कुछ कदम चली, तो शक्ति की अधिकता से पैर और तमाम देह विजली से जैसे वँध गये। काँपकर गिर गयी।

रात के सन्नाटे मे गोली की आवाज और चीख आते हुए प्रभाकर को सुन पडी। निकट जानकर वह उसी तरफ मुडा। कुछ दूर चलकर देखा, अलका वेहोश पडी थी। सव अगो से सन्न हो गया। मोटर एक पेड से भिडी पडी थी। पडे हुए लोगो का चित्र देखकर उसे कारण तक पहुँचने मे देर न हुई, यद्यपि गोलीवाली वात उसकी समझ मे नही आयी। अलका को घटना के फैलने और लोगो के आने तक निरापद कर देने के विचार से अकेला सँभालकर कुलियो की खोली की ओर उठाकर ले चला। अलका भी मूर्च्छित हो गयी थी। प्रभाकर लिये जा रहा था, इसी समय अलका का होश हुआ।

"छोड दो।" झिडककर तेजी से कहा।

"आप अभी स्वस्थ नही है।"

"मुझे खडी कर दीजिए, मैं इस तरह नही जाना चाहती।" प्रभाकर सँभालकर खडी करने लगा, पर पैर काँप रहे थे।

उसे फिर गिरने से पहले पकड लिया। कहा, "आप मुझे क्षमा करें, आप स्वय नही चल सकती।"

"मुझे यही लेटा दीजिए, और कोई ताँगा ले आइए।" रूखे भाव से अलका ने कहा।

प्रभाकर लाचार हो गया। वही अपने कुर्ते पर लेटाकर कुलियो की खोली की तरफ गया। घटना-स्थल से काफी दूर आ चुका था। एक कुली को रास्ते पर पीपल के पेड के पास जल्द ताँगा ले आने के लिए कहकर लौट आया।

अलका की हालत सुधर रही थी। प्रभाकर धोती के छोर से हवा कर रहा था। इसी समय ताँगा लेकर कुली आया। ताँगे पर सँभालकर प्रभाकर अलका को घर ले आया, और जैसा देखा था, स्नेहशकर से वयान किया। उस समय स्नेहशकर ने प्रसग पर कुछ भी न कहा, सिर्फ उस रात को रहकर अलका की सेवा के लिए प्रभाकर से अनुरोध किया।

रात-भर जगकर प्रभाकर ने अलका की सेवा की। प्रात काल शान्ति उदास होकर सामने आ खडी हुई। कहा, "दीदी, पिस्तौल दे दो, वह इसके लिए मुझमे

नाराज है।"

"पिस्तौल का काम मैंने पूरा कर दिया है।" धीरे से अलका ने कहा।

शान्ति को लेकर आज अजित कानपुर जानेवाला था। पिस्तौल लेने के लिए उसे भेजकर पीछे-पीछे खुद भी आया। स्नेहशंकर भी अलका के पास आकर बैठे थे।

प्रभाकर गुलाब की पट्टी बदल रहा था। उसी समय अजित आया।

देश, काल और पात्र का कुछ भी विचार प्रभाकर को देखकर उसे न रहा, 'विजय! तुम कहाँ रहे भाई?' कहकर उच्छ्वसित बाँहों मे भर, झर-झर-झर-झर बहते आँसुओ के निर्झर से अपने चिर वियोग के दाह को शीतल करने लगा। अलका उठकर बैठ गयी। स्नेहशंकर सविस्मय खड़े हो गये।

"तुम्हे वही किसान फिर बुला रहे है भाई! क्षमा माँगी है, और क्या कहूँ, कितने प्रयत्न किये, पर शोभा शायद सदा के लिए चली गयी!"

छब्बीस

अदालत मे साबित हुआ कि शराब के नशे मे राजा मुरलीधर ने खुदकुशी की है, पिस्तौल और गोली उन्ही की है।

०००

प्रभावती

समर्पण

प्रिय वीवी,

वहुत दिन हुए—अट्ठारह वर्ष,—पन्द्रह वर्ष की तुम नव-वधू होकर घर आयी हुई थी, जहाँ विना माँ के दो शिशुओ की सेवा मे तुम्हे शृगार की साधना का समय नही मिला; तुम्हारे ऐसे हस्त ससार के किसी भी चमत्कार से पुरस्कृत नही किये जा सकते, मैं केवल अपनी प्रीति के लिए वहाँ यह पुस्तक न्यस्त करता हूँ, जानता हूँ, कालिदास भी तुम्हे 'वीणा-पुस्तक-रञ्जित-हस्ते' नही कर सकते, क्योकि तुम तव से आज तक 'शिशु-कर-कृत-कपोल-कज्जला' हो।

लखनऊ
1 3 1936

सस्नेह
—'निराला'

प्रथम संस्करण की भूमिका

निवेदन

ईश्वरेच्छा से **प्रभावती** सहृदय पाठकों के सम्मुख समुपस्थित है। ध्वसावशेषो पर कुछ सत्य और कुछ कल्पना का आश्रय लिया गया है, जैसा ऐतिहासिक रोमास के लिए प्रचलित है। भाषा खडी वोली, खिचडी-शैली मे होने पर भी, कुछ अधिक मार्जित है, प्राचीनता का वातावरण रखने के लिए। अपढ लोगो के वार्तालाप मे अवधी मिली है। उस समय की भाषा का प्रयोग वर्तमान साहित्य मे नही किया जा सकता। प्रधान नायक-नायिकाएँ, उस समय के दो वडे राज्यो—कान्य-कुब्ज और दिल्ली—के आश्रित होकर, वडे पेडो की छाँह मे न उभड पाते हुए पौधे की ही तरह रह गये है या विशेषता प्राप्त कर सके है, पाठक स्वय निर्णय करेंगे। मैं अपनी तरफ से अन्य पुस्तको के नायक-नायिकाओ के मुकाविले यमुना को देता हूँ—सुधी आलोचक देखेंगे। 47वें पृष्ठ की 12वी पक्ति [पाँचवें परिच्छेद के अन्तिम अनुच्छेद के पहलेवाला अनुच्छेद—स.] मे 'दिन भर' की जगह 'रात भर' होगा; इससे भाव और साफ हो जायगा। ऐसी दो-चार तथा अन्य प्रकार की त्रुटियो के लिए पाठक क्षमा करेंगे।

—'निराला'

द्वितीय संस्करण की भूमिका

निवेदन

'प्रभावती' रोमैण्टिक उपन्यास है। कथा भाग जयचन्द कान्यकुब्जेश्वर सम्राट् के समय का। उस वक्त के किले वहुत है, अब ध्वसावशेष। कुछ के वयान चरित-नायको के साथ आये है। प्रभावती और यमुना ऐसे ही

किलेदार की कुमारियाँ है। राजनीति, समाज और धर्म कथा के साथ जिम रूप मे आया है, पाठक स्वय विवेचन कर लेंगे। हिन्दी मे इस उपन्यास की तारीफ हुई है। अभी उस रोज भी डाक्टर रामविलास के लेख मे इसके उद्धरण आये है। भापा और भाव की दृष्टि से पुस्तक मध्यम या उच्च कक्षाओ मे रखने योग्य है। यदि अधिकारी ध्यान दें तो हिन्दी के साथ सहयोग और सराहनीय हो। इति।

दारागज
13 3 45

—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

एक

लवणा एक छोटी बरसाती नदी है। उन्नाव के पास ऊसर से निकली, खजुरगाँव से कुछ दूर गगा मे मिली है। उपनिपदो की तरह सैकडो नाले इससे आकर मिले है। वरसात की शोभा देखते ही बनती है। वस्ती और ऊसरो का तमाम पानी इसमे होकर गगा मे जाता है। पहले इसके तटो पर नमक वनता था। लवणा इसका शुद्ध नाम है, यो इसे लोना कहते है। इसके सम्वन्ध मे एक दन्त-कथा भी प्रचलित है। पर वह केवल कपोल-कल्पित है। वर्त्तमान युग के मनुष्यो को मालूम होना चाहिए कि गगा की उत्पत्ति मे-जैसे इसमे भगीरथ-प्रयत्न न रहने पर भी, खेत काटती हुई, पुत्रो को देखकर भगी, लज्जिता, नग्न लोना चमारिन के गगा-गर्भ मे चिराश्रय लेने की पद-रेखारूप वनी यह नदी वैसी ही आख्या रखती है, यदि वरसाती नदी न होकर बारहमासी होती, तो शायद भगीरथ के रथ के पीछे जैसे, लोना चमारिन के पीछे भी लज्जाकलक-क्षालनार्थ प्रवल वेग से जलधारा बहती होती। इस समय इस प्रान्त की आवादी वहुत वढ गयी है, फिर भी कही-कही लवणा के तट काफी भयावने, हिरन, भेडिये और जगली सूअर आदि के अड्डे हो रहे है। तव, जव कान्यकुब्ज का दोपहर का प्रताप-सूर्य पूर्ण स्नेह की दृष्टि से अपनी पृथ्वी को देख रहा था, इसके तट इतर वृक्षो तथा झाडियो से पूर्ण, अन्धकार से ढँके रहते थे। स्थानीय राजकुमार तथा वीर क्षत्रियो का यह प्रिय मृगयास्थल था।

लवणा उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की ओर प्रवाहित है। इसके प्राय: पाँच सौ वर्ग मील फैले दोनो ओर के हरे छोरो के भीतर भारतीय सस्कृति तथा उदार प्राचीन शिक्षा के अमृतोपम पय को धारण करनेवाले कान्यकुब्ज सभ्यता के युगल सरोज झलक रहे है। दाहिने—दक्षिण ओर, शुभ्र स्वच्छतोया जाह्नवी, मध्यभाग मे लवणा, अपने जीवन-प्रवाह को पूर्ण करती हुई, उत्तर—वायी ओर, मन्दगामिनी सई।

आज इसी भाग का नाम वैसवाडा है। इस समय वैस राजाओ तथा ताल्लुकेदारो की छोटी-छोटी रियासते यहाँ से अवध तक दूर-दूर फैली हुई हैं, और कई जिलो मे भाषा-साम्य भी प्राप्त होता है, फिर भी वैसो की मुख्य राजधानी यही उल्लिखित पवित्र कान्यकुब्ज भूमि है। आज आमो के विशालकाय उपवन एक-दूसरे मे सटे कोसो तक फैलते चले गये है। यदि इस विस्तृत भूखण्ड को शतयोजनायत एक रम्य कानन कहे, तो अत्युक्ति नही होती। उपवन तथा जनाकीर्ण जनपद मुसलमानो के राज्यकाल मे भी समृद्ध थे, देखने पर मालूम हो जाता है। गगा की

उपजाऊ तट-भूमि, धौत-धवल मन्दर-तुल्य मन्दिर, कारुकार्य-खचित द्वार, दिव्य भवन, देववाणी तथा देवसरि का आर्य भावानुसार सहयोग, खुली गोचर-भूमि, सुख-स्पर्श मन्द-मन्द पवन-प्रवाह, अनिन्द्य हिन्दी के मंजे कण्ठ से निकले ग्राम-गीत किसी भी दर्शक भ्रमणकारी को तत्काल मुग्ध कर लेंगे। पर उस समय जब कि आर्य-संस्कृति का पावन प्रकाश यहाँ के निरभ्र आकाश मे फैला था, यहाँ की और ही शोभा थी। कमल की सुगन्ध की तरह लोकोत्तर माधुर्य का वह विकास, वह श्री अपने आधार को छोडकर इतनी दूर तक चली गयी थी कि उसकी वर्णना नही हो सकती। आज वह उपभोग्य नही, किसी तरह अनुभव-गम्य है।

वाल्मीकि की सीता, कालिदास की शकुन्तला, श्री हर्ष की दमयन्ती प्रति गृह को अपनी दिव्य ज्योति से आलोकित कर रही थी, बल्कि बाहर मे होनेवाले आक्रमणो ने इन भारतीय महिलाओ, विशेषकर क्षत्रिय-कुमारियो को आत्म-रक्षा के लिए सजग कर एक दूसरे ही भाव-रूप मे वदल जाने को वाध्य कर दिया था। क्षत्रिय-वीरागनाएँ अश्वारोहण और शस्त्र-प्रयोग मे भी पटुत्व प्राप्त कर रही थीं। एक ओर मुख की जैसी स्निग्ध चन्द्राभा सौन्दर्य के अपार समुद्र को ज्वार से उच्छ्वसित कर रही थी, दूसरी ओर अविचल अपागो की दृप्त द्युति मे पति-प्रेम की वैसी ही कठोरतम तपस्या आत्म-रक्षा के उज्ज्वल गर्व से चिरजाग्रत थी। क्षत्रियो के औद्धत्य के साथ-साथ वामादर्प भी देश के वल के उपमान के रूप से मस्तक उठाये हुए था। बौद्धो का प्रावल्य शरत्काल की क्षुद्र जल-धारा की तरह भारत की धरा मे लुप्त हो चला था। पौराणिक सभ्यता की प्रबल शाखाएँ उज्जयिनी के वासन्तिक विकास से पल्लवित होती हुई अ कुसुमित तथा फलित हो रही थी। इस समय कान्यकुब्जेश्वर भारत के श्रेष्ठ शक्तिधर, कला और कौशल के सर्वोत्तम आधार-स्तम्भ थे, पर महाराज पृथ्वीराज की लोकप्रियता प्रतिदिन बढती जा रही थी, गोराधिपति मुहम्मद कई वार परास्त हो चुका था, अपने उदार क्षात्रधर्म के अनुसार उस जीवनाकाक्षी को कई वार वे प्राणो का दान दे चुके थे। निकट सम्बन्ध, अप्राप्त राज्याधिकार तथा पिथौरा की बढती हुई शक्ति जैसे राजनीतिक अनेक कारणो से हुआ दिल्लीपति तथा कान्यकुब्जेश का वैमनस्य प्रजावर्ग को वहुत दिनो मे ज्ञात था। उल्लिखित यह समस्त कान्यकुब्जभूमि महाराज जयचन्द्र के शासनाधिकार मे थी।

इस समय लालगढ* पूर्ण यौवन मे ओत-प्रोत, सौन्दर्य की उद्दाम वासनाओ मे

* गगा से प्राय ग्यारह कोस उत्तर लालडीह नाम का ऊँचा विस्तृत-स्तूप रूप मे परिणत एक स्थान अनेक प्रकार की जनश्रुतियो के आधार धारण किये प्रत्यक्ष सत्य मे विराजमान है। इससे एक मील उत्तर पुरवा नाम का, उन्नाव जिले का सबसे वडा कस्बा, मुसलमान राज्यकाल का समृद्ध शहर—एक कमिश्नरी, अपने मन्द प्रकाश में भी गत महत्ता का स्पष्ट इतिहास सूचित कर रहा है। इस समय भी यह उन्नाव का एक सवडिवीजन है। लालडीह अब भी पुरवा की सीमा के अन्दर है। यह पुरवा कस्बा, पहले अपूर्व नगरी के रूप से, इसी लालडीह के प्राचीन नाम लालगढ के ठीक उत्तर, मिला बसा हुआ था, गढ के नष्ट होने के बाद पतित से घृणा करनेवाली कमला की तरह हटता हुआ अपभ्रष्ट नाम ग्रहण कर एक मील दूर चला गया है।

चपल हो रहा है। यहाँ के राजा महेन्द्रपाल कान्यकुब्जेश को स्वल्पमात्र कर तथा युद्ध के समय पाँच हजार सेना से सहायता देनेवाले मित्र हैं।

लालगढ चारो ओर से जल से भरी चौडी खाई से घिरा हुआ है। खाई मे विहार के लिए छोटी-छोटी रगीन, मयूर-पारावत, हसादि सुन्दर-सुन्दर पक्षियो के आकार की वनी सजी चमकती हुई किश्तियाँ पडी है। वसन्त से निकलते हुए श्वेत और लाल कमल वीच का गहरा जल छोडकर दोनो ओर, शरत के अन्त तक खिलते और दिक्कुमारियो की आँखो को शीतल और केशो को सुवासित करते रहते है। जल के भीतर की ओर किनारे के ईंटो की मजबूत चारदीवार उठी हुई है जिस पर तीक्ष्ण शस्त्रास्त्र गडे हुए, सूर्य की किरणो मे लपलपाते रहते है। चारदीवार के वीच-वीच छोटे-छोटे, वडी खिडकियो के तौर पर वने वज्रद्वार है जिनसे रानियाँ स्नान तथा जल-विहार के लिए वाहर निकलती है। सामने ईंटो के वने, जल मे उतरने से सुदृढ सोपान, विस्तृत घाट, दोनो ओर मौलसिरी के छायादार विशाल वृक्ष। चारो दिशाओ मे अत्युच्च चार फाटक, आठो पहर सशस्त्र सिपाहियो का पहरा लगा हुआ। वाहर जाने के लिए पुष्ट काष्ठ के वने चार रास्ते, जल से वनकर आये हुए ईंटो के पुल से मिले हुए इच्छानुसार खोले जा सकनेवाले, जिससे किला जल से घिरा सुरक्षित रहे। भीतर गगनचुम्वी भवन, रथ, घोडे और अस्त्र-शस्त्रादि की अलग-अलग शालाएँ, दरवार, रनवास, सेनानिवास आदि। अगरु, चन्दन और कस्तूरी की उठती हुई सुगन्धें। देवार्चना तथा मनोरजन के उद्यान। जल के हौज। प्रतिगृह की भिन्न-भिन्न निर्माण-कला। भारतीय शिल्प और उज्ज्वल कौशल का यह कमलानिवास नील जलराशि के भीतर आकाश के चन्द्र की तरह शोभित है। उत्तर के फाटक के वाहर साधारण जनो की असाधारण अपूर्व नगरी अपनी अनुपम विभूति से आगन्तुको को मुग्ध करती हुई। दुर्ग के फाटको से दूर प्रान्तरो के पार उपवनो की छाया-रेखा।

राजकुमार देव सज्जित घोडे पर सवार, हाथ मे भाला लिये, ढाल-तलवार और तरकस-कमान वाँधे अकेले पूर्व के फाटक से वाहर निकले। प्रकृति की दृष्टि मे नया वसन्त फूट चुका है। वन्य वासन्ती, हरी साडी पहने प्रिय की अपलक प्रतीक्षा कर रही है। कोई मालिनी उसकी लतायित कवरी मे फूल खोसकर गले मे हार पहना चुकी है। कुमार पूर्व की ओर घोडा वढाते, प्रकृति की नयी सज्जा देखते हुए चले जा रहे है। मालूम न हुआ और घोडा आठ कोस भूमि पार कर लवणा के वन मे आ पहुँचा। कुमार घोडा वढाते हुए लवणा को पार कर गये। यहाँ से दूसरे राज्य की भूमि है। पर प्रकृति की शोभा देखते हुए तन्मय, नवीन यौवन स्वप्न मे भूले राजकुमार को यह न मालूम हुआ कि वे शिकार के लिए आये हुए हैं। इसी समय सामने से एक शब्द आता हुआ सुनायी पडा। उसी तरफ घोडा वढाते गये। जव घटना-स्थल कुछ दूर पर रह गया तव सघटित दृश्य देखकर आश्चर्यचकित हो गये—

घोडे की लगाम डाल से वँधी हुई है, राजवेश से सज्जित एक युवक सुअर का शिकार कर भाला निकाल रहा है। भाला कनपटी से गर्दन को पार कर निकल गया है। निस्पन्द पशु शायद मर चुका है। युवक भाला निकाल रहा है। फलक

वडा होने के कारण भाला निकल नही रहा।

ऐसी अवस्था मे स्वभावत कुमार के हृदय मे कौतूहल हुआ। घोडा बढाकर युवक के पास पहुँचे, कुछ पहचाना, पर भ्रम हुआ कि गलत न पहचाना हो, इसलिए सघन वृक्षो का अँधेरा पार कर निश्चय कर लेने के विचार से और अच्छी तरह देखने लगे। यह शिकारी को आत्मसम्मान के खिलाफ जान पडा। 'क्या देखते हो ?" डाँटकर पूछा।

गले के स्वर से कुमार का रहा भ्रम जाता रहा। बोले, "मुझे सशय था, इसलिए आपका निश्चय करने लगा। क्षमा कीजियेगा।"

"अव तो आपका सशय दूर हो गया?" शिकारी ने पूछा, "आपका परिचय?" शिकारी भाला निकालना छोडकर शौर्य से तनकर आगन्तुक को देखने लगा।

"मेरा स्थान लालगढ है, नाम देव! शायद इतना परिचय यथेष्ट होगा।" राजकुमार ने मुस्कराती आँखे झुका ली।

"तो आपका यहाँ कैसे आना हुआ ? यह आपका राज्य नही। इस जगल मे शिकार के लिए आना एक दूसरे राजकुमार के लिए अपमानजनक हो सकता है।"

उत्तर तीखा था, पर राजकुमार विचलित न हुए। उन्होने उसी तरह आँखे झुकाये सरल भाव से कहा, "आपका कहना ठीक है, पर भ्रम तो मनुष्य मे ही होता है। नया वेश बदले हुए प्रकृति को देखता हुआ मैं कुछ मुग्ध-सा हो गया। अपन और पराये इलाके का ज्ञान नही रहा। घोडा अपनी चाल वढाता हुआ नदी पार कर इधर आ गया। एक शब्द हो रहा था, जिसे सुनकर कौतूहलवश मैं यहाँ चला आया, क्षमा कीजियेगा। शिकार करते और भाला निकालते आपको वडा श्रम पडा है, मुझे अभी कुछ भी मिहनत नही पडी। आप आज्ञा दें, तो आपका भाला निकालकर अनधिकार प्रवेश का प्रायश्चित्त कर डालूं।"

'आप तो वडे वाक्पटु मालूम देते है।" शिकारी ने कहा, "अच्छा, आप मेरा भाला निकालिए तो सही।"

पैरो से मृत सुअर को दबाकर राजकुमार भाला निकालने लगे। पहला जोर खाली गया। शिकारी की हँसी स निर्जन वन-भूमि गूँज उठी। लज्जित होकर राजकुमार ने दूसरा जोर लगाया। पहले जोर के वक्त राजकुमार की दृष्टि शिकारी की आँखो से लिपटी हुई थी—सारा बल जैसे उन्ही मे प्रवेश करता जा रहा था—वे देख रहे थे—

एक दूसरी वसन्त-रश्मि उन आँखो मे फूट रही है। प्राणो का प्रति पत्र उसके पात से भिन्न-भिन्न रगो से चमकता जा रहा है। यह जिस दृष्टि की रश्मि है, उसके साकार तत्त्व मे केवल देह को पल्लवित करनेवाला वसन्त ही नही, श्रम का ताप—ग्रीष्म, मस्तक पर कुण्डलायित वँधे विपुल केशो के वादल—नीचे ललाट पर श्रम-कण—वर्षा के जल-विन्दु, मुख पर नवजीवन से स्नात शारद अमन्द द्युति, अगो मे यौवनाग का पुष्टि हेमन्त, व्यवहार मे रुक्ष शिशिर—धनुप-तीर आदि की निष्पत्र डालो का पतझड, सभी ऋतुओ की शोभा वर्त्तमान है। कैसी आँखें! सयन आयत कैसी अचल दृष्टि!—समस्त विश्व के दर्प को जैसे दवाकर वश कर रही है। पृथ्वी के हरे तरगित वृक्षो की सब्ज जल-राशि के भीतर

यह कमला-सी खुली स्वरूपा कुमारी, अक्षत अज्ञान भी कैसे मौन इंगित से, प्रतिक्षण आमन्त्रण दे रही है ! नयनो की मौन महिमा मे भी असख्य गहरे अर्थ छिपे हुए हैं ! विना शब्द के, सौन्दर्य की कैसी कर्मवेधिनी व्याख्या है ! कोमल पद, पीनोरु—दीर्घ मध्य को धारण किये, क्षीण कटि, समुन्नत विशाल वक्ष—वर्म को भेदकर पुष्प मासलता स्पष्ट होती हुई, लम्बित भुजाएँ, कपोत-ग्रीवा, पक्ष्मल रहस्यमयी वडी-वडी तिर्यक आँखें, चितवन वहुत दूर आकाश की ज्योत्स्ना की तरह किसी के तृषित हृदय-चकोर के लिए उतर रही है ! यह वीरवेश इस विजयिनी छवि के रक्षक की तरह ।

पहले सुन्दर आँखो से दृष्टि वँध जाने के कारण, जोर खाली गया—मन और इन्द्रिय दूसरे के अर्थ को छोडकर स्वार्थ मे लगे थे—आँखें और कल्पना अन्यत्र होने के कारण कार्य-शक्ति शून्य-रूप रह गयी थी—हाथ फिसल गया था। इस वार कुमार ने पूरा जोर लगाया। इतनी शक्ति उन्होने कभी खर्च नही की। इतनी शक्ति उन्हे कभी मिली भी नही। मालूम न हुआ कि वह भाला निकालने की शक्ति इच्छानुसार आत्मा से कैसे निकालते गये। चर्र-चर्र करती शरीर को चीरती हुई भाले की उल्टी नोके वाहर निकल आयी। राजकुमार की आँखो मे अँधेरा छा गया। एकाएक जोर ज्यादा लग जाने से ताव आ गया। भाले के सहारे जरा देर ठहर गये, वडे धैर्य से उभडी हुई कमजोरी को दवाया, फिर अपरिचिता कुमारी की ओर वढे। अभिप्राय समझकर कुछ कदम कुमारी आगे वढ आयी और वढाया हुआ भाला हाथ वढाकर थाम लिया। धन्यवाद देने की इच्छा की, पर मुख से शब्द न निकला। गले मे अज्ञात कही की जडता जैसे आकर लिपट गयी। झुकी पलकें भाला लिये खडी रही, जैसे राजकुमार के शौर्य की स्वय पुरस्कृत प्रतिमा हो। खून से रँगे विशाल भाले के नीचे झुकी आयत आँखो को वसन्त की खुली पहली दृष्टि से राजकुमार देर तक देखते रहे।

कुमार की प्रिय मुग्ध दृष्टि से कुमारी के हृदय मे विजय का गर्व चपल हो उठा। पर सयम की शक्ति से उसे अपनी ही सीमा मे उसने वाँध रखा, केवल आँखो की ताराओ मे उल्लास की ज्योति विच्छुरित होने लगी। यही राजकुमार को होश मे लाने की वजह हुई। सँभलकर नम्रतापूर्वक कुमार ने पूछा, "आपका परिचय मुझे अभी नही मालूम हो सका।"

सयमित मधुर चपल उत्तर मिला, "मैं यादव राज-कन्या हूँ, मुझे प्रभावती कहते हैं।"

प्रसन्नता से पलकें झुकाये राजकुमार ने दूसरी आज्ञा माँगी। हँसती देखती हुई प्रभा वोली, "मुझे शिकार उठानेवाले आदमियो के लिए पास के गाँव तक जाना होगा। अगर आप—मैं आपकी सहायता करूँगी—हम दोनो रस्सी से वाँधकर इसे घोडे पर रख लें। फिर आप—" प्रभा रुक गयी।

राजकुमार ने अनुकूलता की। उत्तर इस प्रकार शब्दो मे वँधकर निकला, "आप अकेली है। मुमकिन, घोडे पर शिकार ले जाते आपको कष्ट हो। मैं वाँधकर इसे अपने घोडे पर रख लेता हूँ। आपको किले के पास तक छोडकर लौट आऊँगा।"

"बड़ी कृपा होगी।" नम्र प्रभावती कहकर मुस्कराती रही।

राजकुमार ने सुअर को अपनी रस्सी मे बाँधा। फिर अकेले उसे अपने घोड़े पर उठाकर रख लिया। सँभालकर जीन के कडो मे बाँध, प्रभा को सवार होने के लिए कहकर, बैठ गये। प्रभा अपने घोड़े पर बैठ गयी।

दोनो दलमऊ दुर्ग की ओर चले। दिन का तीसरा पहर पार हो रहा था, वन से निकलकर राह पर आते-आते एक भिक्षुक मिला। राजकुमार को राजपुरुष समझकर दीन दृष्टि से देखते हुए क्षीण स्वर से प्रार्थना की। राजकुमार ने उँगली से अँगूठी निकालकर दे दी।

देखती हुई प्रभावती अपनी मोतियो की एक माला उतारकर भिक्षुक से बोली, "बाबा, इसे लो, बदले मे अँगूठी हमे दे दो।"

वीर-वेश मे सजी कुमारी को खुली प्रसन्नता की दृष्टि से देखते हुए बहुत कुछ मतलब समझकर-जैसे, भिक्षुक ने अँगूठी दे दी और नम्र भाव से मोतियो की यह चमकती हुई माला ले ली। प्रभा घोड़े की लगाम फेर, राजकुमार की तरफ पीठ कर दोनो हाथो अँगूठी ले-लेकर मुग्ध दृष्टि से देखती रही। फिर बीच की उँगली मे डालकर मुस्कराती हुई देखने लगी—उसमे राजकुमार का नाम लिखा था।

जिस समय प्रभा अपनी सुखोद्भावना मे लीन थी, राजकुमार ने भिक्षुक को उँगली के इशारे से पास बुलाया और अपनी एक माला उतारकर देते हुए इशारे से वह माला माँगी। भिक्षुक ने राजकुमार से माला लेकर प्रभावतीवाली दे दी और भरे आशीर्वाद से दोनो को देखता हुआ चला गया। जब प्रभा अपने प्रथम सुहाग के आनन्द से भरकर राजकुमार की तरफ मुड़ी, तब राजकुमार उसकी माला पहन रहे थे। उसे समझते देर न लगी। हृदय की गुदगुदी को दबाकर, जैसे कुछ नही समझी, राजकुमार को घोड़ा बढ़ाने के लिए कहा।

इंगित पा प्रभा का घोड़ा राजकुमार के घोड़े से सटकर चलने लगा। दोनो सवार एक अपूर्व आवेश मे है, आँखो मे अनुभूत एक सुख-स्पर्श नशा छाया हुआ है, जिससे सन्ध्या अपार श्री धारण किये प्रतीत हो रही है, जैसे सौन्दर्य के स्वर्गलोक के दो प्रणयी प्राणी बँधे चले जा रहे है। दोनो मौन है, कुछ बोलकर विषय की गम्भीरता को नष्ट करने की किसी की इच्छा नही। कभी-कभी एक-दूसरे की जाँघ रगड़ जाती है। पुलकित हो दोनो एक ही परिचय से एक-दूसरे को देख लेते है।

घोड़े धीरे धीरे बढ़ रहे है। सूर्यास्त होने को हो गया। सामने मथना नाला आ पड़ा। "कुमार", प्रभा ने आग्रह की दृष्टि से देखते हुए कहा, "यहाँ कुछ देर विश्राम कर लें, कैसी सुखद सन्ध्या है?" प्रभा की इच्छा जानकर कुमार घोड़े से उतर पड़े। सुअर को उतारकर जमीन पर रख दिया, फिर कमर से फेंटा खोलकर प्रभा के लिए बिछा दिया। लज्जित प्रभा कुमार का हाथ पकड़, बैठालकर मुस्कराती, अपने फेंटे से हवा झलने लगी। कुमार ने हाथ पकड़ लिया, "मुझे गरमी नही मालूम दे रही।"

"पर हवा तो जाड़े मे भी चलती है, आप किसी का धर्म रोक दीजियेगा?

अवश्य इस समय जाडा नही।"

"हवा दूसरे कारण से बहती है। उसमे हवा को बहते हुए कष्ट नही होता। पर यहाँ वह बहायी जा रही है। इससे हवा को न हो, पर जिससे वह वाहित है, उसे तो कष्ट हो सकता है?"

'नही। डुलानेवाली को भी कोई डुला रहा होगा, जैसे हवा के बहने का आपने कारण बतलाया।"

कुमार चुप हो गये। प्रभा व्यजन करती रही। कुछ सोचकर कुमार बोले, "पर मुझे इसी वक्त लौटना होगा। तुम्हारे दुर्ग मे तो मैं जा नही सकता?"

"क्या मेरे दुर्ग से तुम निकल भी सकते हो? कुमार, पिताजी के दुर्ग मे तुम पहले के वैमनस्य के कारण न जाओ, मैं आग्रह न करूँगी, पर वहाँ नही, यही से, तुम मेरे अतिथि हो, मै जिस तरह तुम्हे रक्खूँगी, तुम्हे स्वीकार करते हुए आपत्ति न होनी चाहिए।"

राजकुमार ने प्रभा का व्यजन रोक दिया और स्वस्थ हो लेने के लिए बैठने को कहा। वसन्त के सान्ध्य क्षण, एकान्त प्रान्तर मे परिचय के प्रकाश मे स्पष्ट एक दूसरे को देखते हुए मौन, देर तक बैठे रहे।

दो

गगा के उत्तर-तट पर दलमऊ* महानगर धवल धामो के मसृण दलवाले विशाल पुष्प-जैसा खिला हुआ है। ऊपर वासन्त की दिगन्तव्यापिनी ज्योत्स्ना प्लावित

* दलमऊ या डलमऊ रायबरेली जिले का प्रसिद्ध कस्बा है। यह रायबरेली का एक सब डिवीजन भी है। शहर के दाहिना तरफ गगा के बिल्कुल किनारे से उठा हुआ, एक छोटी पहाडी की तरह के काफी ऊँचे मिट्टी के स्तूप पर चारो ओर से दो मील तक दृढ दीवार से घिरा एक प्राचीन दुर्ग है, जो इस समय गत गौरव के समाधि रूप मे परिणत है। प्रचलित लोककथाओ के अनुसार इस पर गोप-राजाओ का अधिकार था। ये भी कान्यकुब्जेश्वर के मातहत सरदारो मे थे। आज गोप-वश अपना यादव-क्षत्रिय के रूप से परिचय देता हुआ इस किले को प्राचीन इतिहास का एक केन्द्र मानता है। बाद को यह किला मुसलमानो के अधिकार मे आया। पश्चात् अग्रेजो ने इस पर कब्जा किया। इसकी इमारते इस समय नष्ट हो चुकी हैं। फिर भी परिचय के लिए यथेष्ट चिह्न वर्तमान हैं। इसके ऊपर से दूर तक फैला हुआ गगा का दृश्य, उतरकर जल और स्थल से मिला हुआ आकाश बडा सुहावना मालूम देता है। किले के यौवन-काल मे शहर की बडी आबादी थी। गगा के किनारे होने की वजह से व्यवसाय का भी बहुत बडा केन्द्र था। पहले रेल तथा अच्छे मार्ग न होने से भारत का अधिकाश व्यवसाय जल-पथो से होता था। इनमे गगा का पथ सर्वश्रेष्ठ था। प्राचीन उक्ति के अनुसार यह स्थान दालिभ्य-क्षत्र है। दालिभ्य ऋषि ने वही तपस्या की थी। बाद को दालिभ्य का [illegible] शायद दलमऊ हो गया, फिर अग्रेजी डलमऊ बना।

हो रही है, वैभव के समय साक्षात् लक्ष्मी की स्नेह-दृष्टि जैसी। माता की गोद पर शिशु जैसा शहर सुख की मृदुल छाँह मे बाँहे खोले ऊर्ध्व दृग हो रहा है। कलकल-हासिनी स्वच्छ जलवाहिनी जाह्नवी एक ध्वनि के अनेक अर्थों की ओर इगित करती हुई तरगित हो रही है। इस अर्थ-गौरव को न समझनेवाले साधारण पुरुषो के चरणो पर चढी पुष्पाजलि जैसे अनेक घाट मुक्त हो रहे है। अनेक भावो मे क्षुब्ध जीवन के प्रवाह मे ऐसी ही बहती रहने की मधुर इच्छा लिये हिलते-हल्के हृदयवाली तरुणी कुमारियाँ, प्रवास-पति की प्रिय-मिलनातुरा युवतियाँ, पति-युक्ता-मुक्ता कामिनियाँ और अनुकरणशीला बालिकाएँ घी के दीपक जला-जलाकर गगा-वक्ष पर प्रवाहित कर रही है। नगर के अगणित मन्दिरो से सान्ध्य आरती के मृदग, मुरज, मजीरादि दूर प्रान्त तक के हृदय को ध्वनित कर रहा है। व्यवसाय, देव-दर्शन और स्वास्थ्य-लाभादि अनेक कारणो से आयी हुई नावें आरोहियो को लि सन्ध्या की इस अपार शान्ति मे लीन है। पश्चिम ओर विशाल दुर्ग नगर की रक्षा का भार लिये सक्षम सेनापति जैसा खडा है। वहाँ से दूर तक फैली गगा की विपुल नील शोभा पार्थिव ऐश्वर्य के प्रिय जडजाल से जैसे चिरकाल के लिए प्राणो को बाँध लेती है।

शिकार को लिये श्रमित अश्व की मन्द गति से राजकुमारी दुर्ग के द्वार के भीतर गयी। सेवक, देर के कारण विचार मे पडे, देखकर प्रसन्न हो गये। एक ने लगाम थाम ली। प्रभा महल की ओर चल दी।

नीलिमा के हृदय मे अकुरित, प्रेम का पूर्ण चन्द्र जिस दृष्टि से अपने विश्व को देखता है प्रभा की वही दृष्टि पारिपार्श्विक दृश्यो पर पड़ रही है। स्पर्श से एक जादू जग रहा है। प्रभा के प्राणो की कली दलदल और रग-रग से भरकर, पूरी उभरकर खुल चुकी है, जिसके पास भी उसकी सुगन्ध पहुँची, समझकर उसी ने मालूम कर लिया, फिर पास की दूसरी डालो मे खिली कलियो के लिए समझना क्या? वे मौन भले रहे—दूसरी बातो मे बहला दें,—कली के पवन-स्पर्श का प्रसग न छेडे, पर वे जानती है। उमडती हुई ज्वार को देखकर हर एक समझदार कह देगा कि वह चन्द्रचुम्बित हो रही है। वहाँ ऐसी कई सखियाँ थी। प्रभा की प्रसन्नता से ऐसा ही निश्चय उन्हे हुआ, पर सभ्यता के विचार से मौन कुमारी-प्रणय का परिचय उन्होने नही पूछना चाहा। वे नगर के प्रतिष्ठित घरो की युवतियाँ थी जो स्नेहालाप तथा कला-चर्चा के लिए सन्ध्या-समय आया करती थी। डेढ-दो घण्टे रहकर चली जाया करती थी। आँखो की स्निग्ध ज्योति से बहलाकर सयत सभ्य कण्ठ से प्रभा ने कहा, "आप लोग मुझे आज क्षमा करे, आज मैं शिकार के पीछे बहुत थक चुकी हूँ।"

उनमे एक चपला साहित्यिका ने हँसकर पूछा, "तो क्या शिकार हाथ नही आया?"

भरकर, वैसे ही जल्द हँसती हुई प्रभा बोली, "आया है, पर बडे परिश्रम के बाद।"

कहकर नहाने के लिए चली गयी।

बातो मे एक दूसरी को चढाती-उतारती, छोडती-बाँधती मुक्ति की ज्योति,-

स्वरूपा देवियाँ अपने-अपने गृह की ओर चलीं।

एक दासी ने प्रभा के अस्त्र खोलकर वस्त्र बदलवा दिया। उसे यमुना को बुला देने की आज्ञा देकर प्रभा स्नान-कक्ष को गयी।

यमुना प्रभा की अन्तरग सखी है। दासी होकर भी उसके पूरे मन पर अधिकार कर लिया है, इसका कारण प्यार है। उम्र मे वह प्रभा से कई साल बडी है, पर स्नेह और सहानुभूति मे बिल्कुल बराबर। स्वभाव आकाश की चिडिया का जैसा है, जिसने प्रभा के रगो मे अपने को बहा दिया है, कलरव और आनन्द जिसके अस्तित्व को पूर्ण किये हुए है।

खबर पा यमुना प्रभा के पास गयी। उसके खुले आनन्द का पूरा वेग लगते ही प्रभा की पलकें झुक गयीं, हृदय की बात कहते हृदय संकुचित होने लगा, भीतर की प्रिय छवि को निकालते अग बाधक हो गये। यमुना के लिए इतना इशारा काफी था। हँसकर बोली, "आज आपकी तबियत अच्छी नही मालूम देती। गूँजती मक्खी जैसे फूल के लिए उडी पर फूल न मिलने पर उदास लौट आयी।"

प्रभा मुस्करायी। बोली, "और तुम्हारे गालो मे तीन पजे कसे, तब बेचारी को कुछ रस मिला।"

"होगा," यमुना बोली, "कि फूल पर बैठने की वजह गूँज बन्द हो रही है।"

प्रभा पुलकित हो गयी। फिर अज्ञात कही के सकोच ने जैसे दबा लिया। बदलकर बोली, "वह गाना, उस दिन नया सीखकर सुनाया था, आज फिर सुना, यमुना!"

प्रभा हृदय न खोल सकी। कितनी लाज लगती है? कैसे कहे कि ऐसा-ऐसा हुआ, उन्हे ले आ, कोई कष्ट न हो। कहने मे बडा स्वार्थ है, उन्हे प्रतीक्षा करते देर हो रही है-- शका भी है, पर कह नही सकती।

इतिहास न मालूम हो सका, पर आकार और इगितो मे उसका तत्त्व-रूप यमुना समझ गयी। स्वामिनी सखी के सकोच मे हर्षित हुई, पर दूसरे ही क्षण अपने अतीत और वर्त्तमान के चित्रो मे तन्मय हो गयी, उनकी स्मृति, दुख की रूखी छाया की तरह, उसके देह और प्राणो को निश्चेष्ट, जडीभूत करने लगी। उसी दुख के स्वर मे फूटकर वह उसी के आवेश मे-जैसे गाने लगी—

"दुख के दिन नयन नवाय रहौ।
बेमन मन को समुझाय कहौ॥
को जानति, जागति पीर कौन,
सखि, इहि समीर मे बहति मौन,
राजा की कन्या रहित भौन,
दासी बनि, गुनि गुन, दुसह सहौ॥
बीते वहु दिन जब लगी अगिनि,
धनि, जागि बनी जीवन-जोगिनि,
री रहति तहूँ पिय-धन सो गिनि,
तिय-तन निसिदिन तिन तोरि दहौं॥"

गाने की करुण ध्वनि प्रभा की रग-रग को सजग करने लगी। दुःख की ही शक्ति

सुख के पर्दे के पार जा सकती है। वहाँ धनी और निर्धन, राजकुमारी और सेविका का भाव नही, वहाँ हृदय हृदय से बाते करता है। प्रभा की उच्चता उस गाने के भाव मे वहकर उसी प्रवाह की जल-समता मे आ गयी। हृदय भेद खोलकर हृदय से बराबर हो जाने को उतावला हो चला, दु ख के जो घात सगीत के भीतर से मिले थे, उन्होने दु ख की भेदात्मिका रुकावटो को तोड दिया। प्रभावती उठकर यमुना के गले लिपट गयी। सखी को पास बैठाकर स्नेह-स्वर से प्रेम की कथा सुनाने लगी।

सुनकर यमुना चपल पुतलियो से देखती हुई स्निग्ध किरणो से प्रभा को नहलाकर बोली, "राजकुमार को प्रतीक्षा करते देर हो गयी। मैं उन्हे अच्छी जगह छोडकर अभी आती हूँ, आगे के प्रबन्ध करूँगी, तब तक वे कुछ आराम कर लेंगे।"

प्रभा की दृष्टि मे कुमारी उत्कण्ठा लिखी रह गयी।

बातचीत के अनुसार आवश्यक चीजे यमुना ने ले ली।

तीन

पण्डित शिवस्वरूप गगापुत्र चौपाल मे चौके के अन्दर चने चबा रहे है। दलमऊ का हर गगापुत्र अपने को दालिभ्य ऋषि का एकमात्र वशधर मानता है और प्रचार भी करता है, पर शिवस्वरूप महाराज औरो मे ज्यादा पुष्ट और आवाज-वाले होने के कारण जातीय श्रेष्ठता मे सदा विजय प्राप्त करते है। विशेष पढे-लिखे नही, सकल्प शुद्ध नही आता, गुन-गुनाकर दान छुडवा लेते है, पर पण्डितो से बातचीत पडने पर दालिभ्य ऋषि के प्रचण्ड पाण्डित्य के माहात्म्य-कीर्तन मे मातृ-भाषा के प्रखर स्वर से दूसरो को स्तम्भित करके छोटते हैं। गऊ के खुर के प्रमाण से कुछ अधिक जगह शिखा ने घेरी है, लम्बी डेढ हाथ, साढे तीन पेंच के बाद बँधी हुई दण्ड पर गौरव की ध्वजा की तरह फहराया करती है। ललाट सदा भस्म मण्डित, उम्र अभी बहुत नही, केवल चालीसवाँ साल पहुँचे हैं। पत्नी पच्चीसवे साल परलोक सिधार गयी, तब से कुलीन-वशीया कन्या के अभाव के कारण दालिभ्य ऋषि के महोच्च कुल को दोबारा कलड्कित नही किया। पहली स्त्री भृगुठौरा या भिटौरा (फतहपुर) के पास की, सीधे भृगु के वश की थी। घर मे माता हैं और स्वय आप। घाटो मे लडाई सनातन प्रथा है। इसलिए मारने या मार सह लेने के दृढ अभिप्राय से दोनो वक्त कसरत करते है।

किसी-किसी युवती की पुरुष-विशेष को चराने की आदत होती है। महाराज शिवस्वरूप किले के नीचे ही एक बगल रहते हैं। यमुना अनेक कार्यो से उधर आती-जाती है, इनसे प्राय मुलाकात होती है। यमुना नीच है, उसे छूना न

चाहिए, इसकी छाया से उनके ब्रह्मचर्य का फूल कुम्हला जायगा—उन्हे खुले
देख ले, तो नजर लग जाने का भय है, आदि अनेक धार्मिक विश्वास अपने
और भाषा से जाहिर कर चुके हैं। यमुना त्यो-त्यो इन्हे दबाने की भावन
बदलती गयी। भिन्न-भिन्न आकार, इगित और ध्वनियो द्वारा वह इन्हे विश
दिला चुकी है कि इनकी उच्चता और ब्रह्मचर्य पर उसकी पूरी श्रद्धा है।
दिनो से हँसती-आँखो, झुके-सिर पालागन करके आशीर्वाद भी पाने लगी है।
एक दिन शिवस्वरूप महाराज अपना नाम लेकर अभय भी दे चुके है कि
नाम के प्रताप से, दालिभ्य ऋषि का सच्चा खून जबकि उनके शरीर मे है, उ
मनोमल अवश्य धुल जायगा। दोनो की ऐसी ही भावना उत्तरोत्तर दृढ होती
रही है। ऐसे समय यमुना को कार्य की पूर्ति के लिए उनसे मिलने की आवश्य
हुई।

यमुना जल्दी मे है, महाराज शिवस्वरूप चने चबाने मे जल्दी नही
सकते।

चौपाल मे पहुँचकर महाराज को देखते ही एक साँस मे यमुना कह
"बडे धनी आदमी थे—मन्त्री के लडके है—मैंने कहा ऐसा जजमान अपने
राज के हाथ क्यो न लगाऊँ, पर आप चने चबा रहे है! जाऊँ रामनाथ मह
के यहाँ! अच्छा पायलागी महाराज!" यमुना लौटी कि महाराज शिवस
उसी वक्त शार्दूल-विक्रीडित गति से बढे और फौरन यमुना की कलाई पकड
"अरे, सुन भाई!"

झटके से हाथ छुडाकर कुछ पल महाराज को देखती रहकर यमुना बे
"चने चबाकर न कुल्ला करना, न हाथ धोना आकर छू लिया!"

अब महाराज शिवस्वरूप को होश हुआ। इधर-उधर देखकर पैर पकड
शब्द न निकला।

"अच्छा-अच्छा, न कहूँगी किसी से, पर भूल मत जाना महाराज?"
हुई यमुना बोली। हाथ जोडकर शिवस्वरूप महाराज गिडगिडाने लगे, "अ
सुनो, यह लो अपना दान" स्वर्णमुद्रा देती हुई : महाराज शिवस्वरूप ल
दृष्टि से देखकर कई लपेट लगाकर मुर्री मे रख लेने के बाद . "और ये कपडे
कर मेरे साथ आओ, जजमान नहाने जायँगे तब इन्हे बदलेंगे, फिर इन्हे पह
राजसी पोशाक मे हैं, अच्छी जगह जल्द रखकर आओ, मैं आकर सब ठीक
लूँगी।"

महाराज उसी क्षण भीतर जाकर जल्द-जल्द दो शब्दो मे माता को स
कर, कपड़े रखकर लौट आये। उन्हे साथ लेकर यमुना राजकुमार के सकेत-
को चली।

"अच्छा महाराज," रास्ते मे सोचते हुए यमुना ने पूछा महाराज कुछ
पीछे, कन्धे पर लट्ठ रक्खे, आगे और कितना क्या-क्या मिल सकता है,
हिसाब जोडते जा रहे थे, आवाज पाते ही भक्तिभाव से गर्दन बढाये हुए
जरा कैंची-निगाह देखकर यमुना मुस्करायी, "हाँ, यह तो बताइए, भुजवे के
और हमारे दिये चने मे तो छूत नही, फिर चबाकर छू जाने मे कैसी छूत है?

"हे—जमुना ! सब ढोग है !" यमुना की वायी वाँह पकडकर हिलाते हुए, "रामनाथ है, रामनाथ-वामनाथ जितने हैं—सब, किसके घर का नही खाते ? वेसन के लड्डू मे चना नही है ? जजमान परसते हैं, सब खाते है और जजमान खाते वखत छू-छूकर परसते है !" यमुना के कान के पास मुँह ले जाकर, "हलवाई की वनायी पूडी नही खाते ? अव छून कुछ सरग मे आती है ? एक लोग-दिखावा है—यह जाँघ खोलो तो लाज, वह जाँघ खोलो तो लाज !"

मुस्कराती, हटने के इरादे मे यमुना जल्द-जल्द वढनी गयी। वह आज मामूली दासी के रूप मे नही, सजकर आयी है। राजकुमारी की प्यारी सखी के रूप मे राजकुमार से मिलेगी—मिलायेगी। एक वार अपनी सजावट का विचार कर फिर मुस्करायी। फिर महाराज की तरफ मन लगा। वोली, "अच्छा महाराज, वात ही तो है, खुल जाय तो ?"

"तो कोई सिर काट लेगा ? कहेगे, ढोगी था !"

यमुना खिलखिलाकर हँसी। वोली, "गऊ-हत्या नो हत्या-हरन से कट भी जाती है !"

"हाँ," गम्भीर होकर शिवस्वरूप महाराज ने कहा, "इसका कोई पराच्छित नही है। एक वर्म छोडने की वात है !"

यमुना को पूरा विश्वास हो गया कि इससे वडा वेवकूफ दूसरा न मिलेगा। वोली, "पैरो पडनेवाली वात लेकिन खराव है।" महाराज ने भी सोचा कि वहुत वुरा हुआ। यमुना डरकर कि कही पकड न ले, फिर वोली, 'लेकिन मैं किसी से कहती थोडे ही हूँ ? वराँभन का सराप, कही लग जाय !—ऐं महाराज ?"

महाराज उदास स्वरो से वोले, "वस नास हो जाय, कोढ हो जाय, कही जलम-जलम जम के दूत नर्क मे घसीटें, जो कुछ न हो जाय, थोडा है !"

"हाँ महाराज, जो कुछ न हो जाय, थोडा !" कहकर यमुना मन-ही-मन आगे के प्रवन्ध पर विचार करने लगी।

स्थान निकट आ गया था। वोली, "महाराज, किसी से इनके आने की वात कहना मत।"

महाराज ने गम्भीर होकर सर हिलाया।

यमुना ने पूछा, "कोई पूछेगा, तो क्या कहोगे ?"

"कि कोई नही आया।"

"उनके घोडा भी है। पैसे मिलेंगे। आदमी तुम्हे लगाना होगा। कोई पूछे कि यह किसका घोडा है, तो क्या कहोगे ?"

"कहेगे हमारा है, मनवा के राजा ने वाप के सराद मे दिया है।"

मन मे सोचकर, मुस्कराकर यमुना वोली, "अच्छा, आगे उस पेड के नीचे खडे रहो, मैं उन्हे ले आती हूँ, फिर साथ ले लेना, मैं साथ न जाऊँगी, वही मिलूँगी—गली से होकर जल्दी पहुँचूँगी, वडी राह से जाना।"

कहकर यमुना चल दी। महाराज शिवस्वरूप पेड की छाँह मे लाठी के सहारे पंजो के वल वैठे अनिमेप दृष्टि मे उधर ही देखते रहे।

जहाँ रामलीला के समय रावण-वध होता है, उसी जगह इकले आम के नीचे

प्रभा ने कहा था; यमुना सीधे उसी तरफ गयी। निश्चय हो गया। घोडा खडा देख पडा। बगल मे राजकुमार बैठे थे। एक स्त्री को आते देखकर उठकर खडे हो गये। छाँह से बाहर पूर्ण ज्योत्स्ना के नीचे, कीमती वस्त्र और अलकारो से सजी हुई यमुना राजकुमार को देखकर, हृदय मे ललित अजलि बाँध जरा सिर झुकाकर मधुर कविता की लडी-सी खडी रह गयी। उसे आदाब बजाते समझकर, राजकुमार प्रसन्न पदक्षेप से उसके पास चलकर आये।

मधुर कण्ठ से यमुना बोली, "हमारी कुमारीजी देर तथा श्रम के लिए क्षमा चाहती हुई जल्द बुला रही हैं—आज्ञा हो तो, ले चलूँ।"

राजकुमार के मुडते ही द्रुत-पद यमुना घोडे के पास पहुँची और डाल से लगाम खोलकर हाथ मे दे दी। चतुरा सेविका से प्रसन्न होकर, प्रिया की खबर लानेवाली यह सबकी चुनी हुई सेविका होगी—अनुमान कर, पुरस्कृत करने के अभिप्राय से राजकुमार ने अपनी मोतियो की एक माला उतारी और मौन स्नेह से यमुना के गले मे डाल दी।

मृदुल खिलखिल मे निर्जन प्रान्त गूँज उठा। राजकुमार चकित हो गये। यह आचरण सेविका का नही। उसी समय मधुर कण्ठ से पूछा, "कुमार, यमुना की याद है?"

"यमुना!" राजकुमार की ध्वनि और दृष्टि से निकला हुआ वेगपूर्ण आश्चर्य असयत हो गया। द्रुत-पद बढकर वे यमुना के पास आये। पेड के नीचे, पल्लवो से छनकर यत्र-तत्र मुख पर चाँदनी पड रही थी। अच्छी तरह देखकर पहचानकर सविस्मय ससम्भ्रम बोले, "यमुना देवी!"

यमुना अनेक विगत स्मृतियो से बँधी हुई निश्चल खडी रही, पर जिस साहसी हृदय का उसने पहले परिचय दिया था, जिस नैपुण्य से वह अकेली भी विजयिनी थी, उसकी जिस वीरता की बैसवाडे मे घर-घर चर्चा थी, जिसे जीवन के सत्रहवे साल ही अलौकिक कीर्ति प्राप्त हो चुकी थी, जिसे गृह-देवियाँ अपना आदर्श मानकर पूजती थी, यह वही यमुना है—वे सब भाव सयत हृदय मे बँधे हुए है, जैसे उनसे भी महत्ता मे यह वृहत् और ऊँची है।

"देवी!" ससम्भ्रम राजकुमार बोले, "आप दोनो की बहुत दिनो तक खोज की गयी, पर पता नही लगा।"

"हाँ कुमार, उस युद्ध मे विजय पाकर तुम्हारे वन्दी सेनापति को छुडाकर मैं महोवा गयी थी। मुझे भय था कि यहाँ रहने पर भेद खुल जायगा, मेरे और भी कई उद्देश्य थे।"

"सेनापति क्या यही है?"

"नही।" कुछ सोचकर बात टालने को मुस्कराकर बोली, "शृगार के समय वीर-रस की चर्चा तुम्हे अच्छी लगती है—फिर इस प्रथम समय?" मधुर मुक्त नारी-कण्ठ हँसकर गूँज गया।

राजकुमार सहज सिर झुकाये खडे रहे। यमुना बोली, "आप मेरे कुल के पति-पद मे मुझसे छोटे है, यद्यपि पति आपके पिता के अधीन, आपके सेनापति थे, यह पुरस्कार मैं नही ले सकती, आगे एक महाराज आपको ले जाने के लिए मिलेगे,

उन्हे दीजियेगा। कुमार, मेरा भेद प्रभावती से न खोलियेगा, न घर लौटकर किसी दूसरे से। मैंने यह वात अपनी सखी से छिपा रखने के कारण ही सखी के प्राण-प्रिय से प्रकट की है और इसलिए भी कि सखी के प्रिय को, परिचय के पश्चात्, वैमनस्य की जगह किमी प्रकार की शका न हो—उनके परिचित यहाँ भी है।"

"आप यहाँ किस रूप से है ?" आँखे झुकाये विनीत कण्ठ से राजकुमार ने पूछा।

"किस रूप से ?" हँसती यमुना वोली, "उसी से, जिससे द्रौपदी को विराट-नगर मे रहना पडा था।"

"पर आपका नाम यहाँ क्या है ?"

"यही। क्योकि यह बहुत प्रचलित नाम है। यही इस नाम की तरुणी और वालिकाएँ मेरे अलावा और दो सौ होंगी। कुमार, चलिए।"

राजकुमार ने हाथ जोडकर सम्मान प्रदर्शन किया। वढकर, "अच्छा-अच्छा" कहकर आँचल छुडाती हुई यमुना वोली, "पर वहाँ इस सम्मान-प्रदर्शन की ओर खास तौर से विचार रखियेगा, क्योकि, मिलाप गगा पर होगा, नाव मे,—मैं साथ हूँगी, और सखी होकर भी मैं दासी हूँ, काम छोटे-मोटे करने पडेंगे। सम्मान की ऐसी जरूरत भी नही—सवसे घनिष्ठ सम्बन्ध तो सखीवाला है ?" कहकर यमुना ने कुमार का एक हाथ हिला दिया। फिर वोली, "और वहाँ सेविकाओं-वाली मेरी अपभ्रष्ट भाषा पर हँसियेगा मत।"

"मेरे प्रणाम का एक अर्थ यह भी था कि मैं आपके पैदल चलते घोडे पर न चलूंगा। आप आगे-आगे चलें मैं पीछे-पीछे चलता हूँ।"

"हाँ जरूरत पडे, तो मन्त्रीपुत्र कहकर परिचय दीजियेगा, महाराज से, मैंने ऐसा ही कहा है।" आगे चलती हुई यमुना ने कहा, "और दोष भी नही, मैं 'पुत्र' का शब्द और धातु से निकला अर्थ लेती हूँ।" राजकुमार हँस दिये।

चार

इस बीच कुमार के स्वागत के कुल प्रवन्ध प्रभावती एक-एक याद करके कराती रही। दासियो को अभी तक यही मालूम था कि चैत की पूनो है, राजकुमारी नौका-विहार के लिए जायँगी। किले की बगल मे, घाट पर नाव लाकर लगा दी गयी। दासियो ने नाव के नीचे और छत पर गद्दे विछा दिये, कामदार चादरें लगा दी। रेशमी तकिये, गुलाव-पास, इत्रदान, पानदान, सोने के पात्रो मे मदिरा, क्षुद्र-मर्मर की पतली प्यालियाँ, हलका आसव, गन्धराज के गजरे, सजी फूलदानियाँ, मृदग-मजीरा, वीणा आदि वाद्य, नूपुर गुच्छ, ढाल-तलवार, तीर-कमान वल्लम-साँग आदि अस्त्र-शस्त्र तथा अन्यान्य आवश्यक सामान यथास्थान सजा दिये।

पाचक अनेक प्रकार के पक्वान्न, मिष्ठान्न, सामिष-निरामिष भोजन, चवेना अचारादि रख आया। मल्लाहो को खवर कर दी गयी कि नाव खाली वहती हुई जायगी, पतवार दासियाँ सँभालेगी, ये लोग पिछली रात दूसरी नाव लेकर आठ-दस कोस का रास्ता जल्द तै करे, वहाँ विश्राम होगा, फिर गुन खीचकर ले आवेगे।

दासियाँ प्रभावती को सजाने लगी। प्रति अग नीलमो, हीरो और मोतियो मे जगमग हो गया। वसन्ती रग की, सच्चे कामवाली, रत्नजटित साडी तथा आभरणो की झुलसनी स्निग्ध द्युति के बीच पृथ्वी की प्रभावती आकाश की शशिकला से अधिक सुन्दरी, अधिक शोभना हो गयी। मस्तक पर अर्द्ध-चन्द्राकृति, सोने के लता-भुजो से आयत, लम्बित चूडामणि,—ऊपर श्वेत कोमल पक्ष, मध्य मे नीलम, दोनो ओर कन्नियो पन्नो के फूलो मे वडे से छोटे, क्रमानुसार हीरे; नाक मे एक ओर मणि विन्दु, पद्मराग की कण्ठी, ऊँचे पुष्ट वक्ष पर शुभ्र मुक्ताओ की हारावलि, हाथो मे मणि-युक्त विविध भुज-वन्ध, कङ्कणादि, कटि मे रिणिन्-कारिका, मग्नावृत्ति, श्लथ किङ्कणी, पदो मे नूपुर, पायल आदि, मुक्त केश, वासित, अधरो मे ताम्बूल-रक्त राग, आयत सलज्ज आँखो मे क्षीण प्रलम्ब कज्जल-रेखाएँ। पुतलियो मे चपल रहस्य-हास्य, प्राणो मे मृदु-मृदु प्रणय-स्पन्द।

अभ्र की सजी नाव की सहस्रो लता-पुष्पाकृति वत्तियाँ जल गयी। जल मे मुक्त-पुच्छ मयूर लहरो मे हिलता सचल दिखने लगा। खिडकियो के रगीन रेशमी द्वितीय-वन्धनी-रूप (})-कटे पर्दे चमकने लगे, उनकी जरी की लहरे और सच्ची झालरे चकाचौंध करने लगी। वीच-वीच मालाकृति मोतियो की लडियाँ, तरुणी के वक्ष पर, ज्योतिश्चुम्बिनी, साभरणा सद्य परिणीता तरुणी की कलि-मालाएँ बन गयी। जगह जगह लाल, नीलम और हीरे रगीन द्युति की रेखाओ से आकाश के तारो मे भले लगने लगे।

प्रभा के पिता कान्यकुब्जेश के कार्य से वाहर थे। माता की आज्ञा वह ले चुकी थी। मुकुर देखकर अपने कक्ष मे वैठी हुई यमुना के सन्देश का पथ देख रही थी। दो दासियाँ यमुना की सहायता के लिए और दी गयी थी।

यमुना भी जल्दी कर रही थी। राजकुमार के अस्त्र खोलवाकर वस्त्र वदलवा दिये। घोडे के लिए प्रवन्ध कर दिया। फिर लाये हुए वासितवसन उत्तरीय, चन्दन कुकुम और पुष्प-माल्यादि दासी से लिवाकर महाराज को साथ लेकर गगातट पर गयी। कुमार को सविधि स्नान-पूजन से निवृत्त कर गगाजी को पुन माला चढाने की ध्वनि-पूर्ण सलाह दी। साथ-लिया अर्थ महाराज को दान करा वही प्रसाद-रूप किंचित जल-पान करा दिया। फिर दासियो को इशारा करके भेज दिया और महाराज को भी, प्रतीक्षा मे कष्ट होगा, समझाकर, सरल स्वर से कल तक लौटने की वात सुझा दी,—क्योकि समागत यजमान को अपर मित्रो से मिलना होगा, सम्भव, वहीं रह जाना हो। फिर अपनी वात की याद दिला दी कि भूलने से भला न होगा। महाराज भक्तिपूर्वक स्वीकार करके, आशीर्वाद देते हुए चले गये।

प्रभावती को खवर मिली कि यमुना तैयार हो चुकी है। इन दो दासियो के साथ अपने मन की तीन और लेकर प्रभावती उतरने के लिए चली।

राजकुमार साधारण पहनावे मे थे, पट्टवास और उत्तरीय। चाँदनी मे भी रग

कुमार चुपचाप रूप की सुधा पी रहे है देखकर यमुना प्रसन्न होकर वोली, "कुमार, हमारी आशा यहाँ से पूरी न होगी। प्रिय से मिलने के लिए कुछ परिश्रम करना होगा, अपनी सखी की तरफ स मैं हूँ। हमे शहर पार करके श्मशान-भूमि मे मिलना होगा। प्राय: कोस-भर पैदल चलना है।"

"आपकी जैसी आज्ञा," कुमार सँभलकर वोले।

"आइए," यमुना आगे-आगे चली। "आगे बस्ती है, आवश्यक बाते उधर कहूँगी।" दोनो मौन चलते गये।

राजकुमार के मन को अनेक प्रकार की धूप-छाँह से युक्त भिन्न-भिन्न रम और अलकारो की कल्पनाएँ अपने आप उठ-उठकर समावृत करती रही। कभी प्रिय को एक ही अश्व पर वैठकर, लडते हुए, शत्रु-सैन्य को परास्त कर वढते हुए ससार के राज्य को पार कर जाते हैं, कभी किसी एकान्त वन के सघन लता-भवन मे आलिंगित विश्राम करते है, कभी निभृत कक्ष के रत्न-दीप प्रकाश मे प्रियालाप मे वँधे रहते हैं, जैसे इस मधुर स्वर का कभी अन्त न होगा—ससार का समस्त समुद्र स्थिर है, केवल दो वुदवुद अतल से कलरव करते हुए अनन्त ऊर्ध्व को उमड रहे है, जैसे समस्त पृथ्वी सुप्ति के अन्धकार मे डूवी हुई है केवल दो परिचित प्रहरी वार्तालाप करते हुए वैठे है सृष्टि से स्नेह-सौन्दर्य की रक्षा के लिए। फिर होश मे आते है, फिर विगडे हुए को वनाने के लिए माया-मरीचिका की सृष्टि करते है, भ्रान्त मृग की तरह फिर दूर, दूरतर हो जाते हैं। पैर जैसे अपने आप यमुना का अनुसरण कर रहे हो।

नगर का पथ धीरे-धीरे पार हो गया, यमुना विगत अनेक स्मृतियो को गौरव-स्वरूपी अपनी महिमा को धारण किये, मौन, सहज-पग आगे-आगे चली जा रही थी। नगर पार कर उपवन के पथ को एक जगह रुककर, साथ पार्श्ववर्तिनी हो गयी।

गम्भीर स्वर से वोली, "कुमार, आपके सौभाग्य का यह सबसे वड़ा लक्षण है कि प्रभा ने आपको वरण किया।"

कुमार स्वीकृति की सूचना-जैसे मौन रहे।

यमुना कहती गयी, "इनके पिता की इच्छा वलवन्त से विवाह करने की थी।"

"फिर ?" राजकुमार की सारी वृत्तियाँ एक साथ सचेत हो गयी।

"प्रभा मेरे प्रसग से वलवन्त को घृणा करती थी। वह मुझे नही जानती, पर मेरा इतिहास जानती है। मेरी इच्छा का वलवन्त ने विरोध किया था। यह स्त्री होने के कारण प्रभा सहन नही कर सकी। उसने अपने पिता से खुलकर कुछ कहा नही, पर वलवन्त से विवाह का अवसर आ जाने पर वह अवश्य अपनी पूर्ण स्वतन्त्रता का परिचय देती।"

यमुना कुछ रुक गयी। राजकुमार के सौन्दर्य के नशे पर इसका और प्रभाव पडा।

सँभलकर यमुना कहने लगी, "वलवन्त को महीने के लगभग हुआ, कान्यकुब्जेश

की ओर से इधर के अधीन राजाओं से कर लेने तथा यज्ञ में आमन्त्रित के विचार से दलमऊ आये थे। महेश्वरसिंह से बातचीत हुई थी। बलवन्त प्रभावती को देखना चाहते थे, पर सभी अस्वस्थता के बहाने नहीं मिली।"

"तो इस विवाह में महेश्वरसिंह अनर्थ कर सकते हैं।"

"पर वीर और वीरांगना को अनर्थ से ही अधिक प्रेम होता है, यदि वह अनर्थ किसी सत्य-प्रेम का विरोध है। आप क्या—"

"जी नहीं, आपका आदर्श मेरा रक्षक है। बलवन्त ने आपको यहाँ देखा था ?"

"पहले मैंने सोचा था कि मैं न जाऊँगी। पर फिर सोचा, अगर न गयी, तो प्रभा को शंका होगी। कई कार्यों में वह मुझे ही सामने करती है। उसे विश्वास है। मैं जानती थी, जितने नशों में दृष्टि ढँक जाती है, उन सबमें ऐश्वर्य-बड़प्पन का मद बड़ा है। इसमें आदमी की मुखाकृति प्रायः नहीं देख पड़ती, वस्त्र और अलंकार, प्रशंसा और सम्मान परिचय देते हैं। कुमार, बालों को कुछ विशृंखल कर, प्रभा को सलाह देकर कि जब समय होगा, अपने मन की कर लेना, पर अभी से बुद्धि से रहित होना ठीक नहीं—उसे विश्वास दिला दो कि उसके लिए तुम्हें पिता का प्रस्ताव मंजूर है, नहीं तो ऐसा न हो कि कान्यकुब्ज का प्रियपात्र होने के कारण तुम्हारे पिता के इष्ट में अनिष्ट पैदा करे। प्रभा की ओर से मद्य और फल आदि लेकर मैं गयी थी, कुछ बातें भी कीं, कुशल पूछी, पर वह मुझे पहचान नहीं सका। वह उस यमुना को पहचानता था जो राजकुमारी थी, उसे नहीं जो दासी है। अगर कुछ पहचान आयेगी भी, तो वह अपनी आँखों को ही धोखा देते हुए समझेगा। दुष्यन्त ने जो अपनी प्रिया को और असली रूप में नहीं पहचाना वहाँ वास्तव में यही भाव चित्रित है। उसने अँगूठी पहचानी थी।"

कुमार ने सोचते हुए पूछा, "देवी प्रभावती को आपके विगत इतिहास से जो प्रेम है, उसकी कभी आपसे चर्चा करती हैं।"

हँसकर यमुना ने कहा, "कई बार कर चुकी हैं। कहती हैं, विवाह वास्तव में गौरव का वही है। पर, यमुना के पति के साथ निरुद्देश्य होने पर, कभी-कभी दुःख भी करती हैं और तरह-तरह की मनोहर कल्पनाएँ। इच्छा है कि उसी के रूप से विवाह करें। उसी रूप से उन्हें विवाह का आनन्द मिलता है। मैं कहती हूँ कि बेचारी, बहुत सम्भव है, किसी वन में दमयन्ती की तरह पति से छूटकर भटकती-फिरती हो या जानकी जी की तरह किसी रावण के यहाँ पड़ी पति की चिन्ता में गल रही हो, तो बिलकुल मुरझा जाती हैं, जैसे उन्हीं पर सब बीत रहा है। तब मैं कहती हूँ, हाय, मैं ही वह यमुना क्यों न हुई कि तुम्हारे गले से लिपटकर कहती कि प्रभावती, दुःख न करो बहन, मैं आ गयी। तब नाराज होकर 'चुप रह, तू क्या जाने कि वह क्या और कौन हैं' डाँट देती हैं।"

राजकुमार उच्च स्वर से हँस पड़े।

यमुना कहने लगी, "एक दिन अपने-आप कहा, यमुना, तू उन यमुना देवी को नहीं जानती, इसलिए सीताजी और दमयन्ती की मिसाल दिया करती है, पर तू बेचारी और जानती कितना है—तेरा क्या कुसूर!—वे आज की पूरी क्षत्राणी हैं, किसी किरात से डरनेवाली नहीं। बहुत ऊँचे दरजे की लड़ाई जानती हैं। उनका

कोई अपमान थोडे कर सकता है ?"

पेडो की आड से बाहर निकलने पर नाव प्रतीक्षा करती हुई देख पडी, प्रभावती वीणा बजा रही थी। यमुना सयत हो गयी। कुछ ही देर मे खुले श्मशान-घाट ले जाकर खडी हुई। सेविकाओ ने सात रगो से भिन्न पोरो के तौर पर रजित तख्ता नीचे से निकालकर डाल दिया। उसी से प्रभावती तट पर उतरी। कुमार और यमुना कुछ दूर-दूर खडे थे। हाथ जोडकर कुमार को नमस्कार कर प्रभावती सामने खडी रही, प्रति-प्रणाम कर यमुना को देखकर कुमार मन मे मुस्कराये। यमुना गम्भीर होकर टल गयी और एक सेविका का नाम लेकर शीघ्र सामान ले आने के लिए कहा।

जल, आरती, फूल-मालाएँ, रोचना, ककण आदि सजे रक्खे थे। सेविकाएँ एक-एक ले आयी। प्रभा ने जल से हाथ लगाकर पैर प्रक्षालित कर दिये, फिर अप्सरा के पल्लवोपम उसी उत्तरीय से चरण पोछे, फिर बाये हाथ से पूजित पदो को दबाकर दाहिने से तीन बार अँगूठो की धूल-जैसे उठाकर नेत्रो मे लगा सिर पर रक्खी। फिर आचमन करने लगी।

यमुना सयत है। बार-बार उठते आवेश को सहज भाव से दबाने की कोशिश कर रही है। प्रभा ने पदो पर, फिर मस्तक पर फूल चढाकर रोचना लगाकर गले मे गन्धराज की माला डालने लगी कि यमुना का सान्द्र कण्ठ सुन पडा, 'साध्वी वीरागना भव।'

'यमुना और सस्कृत!'—प्रभा का भाव भग हो गया। माला पहनाकर निगाह फेरकर कुमार के दाहिनी बगल देखा, यमुना निष्पात पलको से किसी महामहिमा मे डूब खडी थी—कोई भाव वहाँ न था—वह किसी को भी न देख रही थी। अज्ञात प्रेरणा से सकुचित होकर प्रभावती कुमार के हाथ मे ककण बाँधने लगी। कार्य समाप्त होने पर यमुना प्रकृतिस्थ हुई, कुमार के हाथ मे ककण देखकर आँखो मे मृदु मुस्करा दी।

अब प्रभा आरती करने लगी। सबके हृदय मे मधुर भाव ओत-प्रोत हो गया। फिर यमुना ध्यान-मग्न हो चली। दासियाँ, श्मशान-भूमि, आकाश चन्द्र, ज्योत्स्ना, तारे, गगा और सारी प्रकृति निष्पन्द! पूजिका की भावमयी आँखो और भ्रू-पलको का वह अनुपम भक्ति-रूप राजकुमार स्तब्ध होकर देख रहे थे। मन से भासित होता था—आरती उसी की आरती कर रही है, 'नि सशय', स्तब्ध प्रकृति तथा अन्य मौन मन कह रहे थे।

यमुना स्थिर कण्ठ से कहने लगी, "कुमार, वह देवी प्रभावती की सूझ है। उन्होने श्मशान मे आपको वर रूप से वरण किया है। सुन्दर, यह विश्व देवी की दृष्टि मे केवल श्मशान है यदि यहाँ उनके साथ आप नही। उनकी दृष्टि मे आप ही उन्हे लुब्ध करनेवाले सौन्दर्य की एकमात्र सृष्टि हैं। इस श्मशान मे आपको शिव मानकर आपके गले मे उन्होने वरमाला डाली है। वे पृथ्वी-रूप से गुण-सुगन्ध-भूषित हो रही है। जल-रूप उन्होने आपके चरण धोकर आपको अन्त करण का समस्त रस अर्पित कर दिया है। आपको माला पहनाकर, सुरोचित कर स्पर्श-जन्य अपना समीर अश दे चुकी है। आरती द्वारा तथा नयनो की ज्योति से

आपके वरस्प को देखती और पूजती हुई अपना ताप-तत्त्व और अब मौन रहती हुई भी मन से आपके स्नेहाभिषेक मे मधुर मुखर, आपको अपना आकाशतत्त्व भी दे चुकी है। परन्तु यह वह दान है, जो दोनो पक्ष मे अपेक्षित है। इनके लिए हुए पच-तत्त्वो के बदले आप अपने भी पच-तत्त्व इन्हें दीजिए। तभी इनकी पूर्णता होगी। आपमे पच-तत्त्व स्वरूपा शक्ति आकर मिली है, आप पच-तत्त्व-स्वरूप पुरुष को देखकर सम हूजिए। यही आपकी भूमि है, यही रस जल, यही पच-प्राणो को समीर, यही ज्योतिर्मयी दिव्य-दृष्टि—दर्शन शोभा और यही शब्दो की आकाश रूपा। आप इन्हे रोचित कर माला पहनाकर प्रति-नमस्कार द्वारा प्रीत कीजिए।"

सेविकाएँ अर्घ्य आदि लिये खडी थी। कुमार ने बायें हाथ से मस्तक का पश्चाद्भाग थामकर दाहिने से, सुललित रोचना लगा दी, अक्षत छिटके और दोनो हाथो मे, प्रेम के दिव्य भाव से, प्रिय को माला पहना दी। प्रति-नमस्कार करने लगे, प्रभा ने दोनो हाथो बँधी अजलि पकड ली।

यमुना प्रभा को आगे, पश्चात् कुमार को कर नाव पर ले चली। लज्जित-पद चलती प्रभा यमुना के भाषण-कौशल पर सोच रही थी। पर यमुना पहले ही सँभल चुकी थी। सुनाकर स्वगत कहने लगी, "आज पण्डित गगाधर महाराज मिल गये। जब राम की किरपा होनी है तब क्या कोई काम बिगडता थोडे है? बाहर निकली नही कि महाराज खडे थे, सगुन देखकर मैं गोडो गिरी—'महाराज, भले मिले।' कहने लगे—'क्या है यमुना, खैर तो है?' मैंने कहा—'महाराज एक पण्डित तत्-तत् करते थे, पाँच मिलाकर कहा था, मैंने पान, सुपारी, कत्था, चूना, लौंग याद कर लिया,—कहते थे इन ही मे हर जीउ बना है, फिर वह पाँचो तत्-तत् समझा दिया, पर महाराज, मैं वह तो भूल गयी, 'पान-सुपारी-कत्था-चूना-लौंग' याद रह गया है।' महाराज हँसने लगे। बोले—'वे पच-तत्त्व है, तत्-तत् नही।' 'वह सब लिख दो, अच्छी तरह।' मैंने कहा। फिर मैंने ब्याहवाली बातें पूछी, मैंने कहा, सब लिख दो। लिखा लिया। फिर दिन-भर पढती ही तो रही? याद हो गया। फिर नाम बैठाकर अपनी तरह से कह दिया। मैंने कहा, महाराज किसी स्त्री को अगर कहा जाय कि पति को मानो भी और खूब लडाका भी हो, तो सस्सकीरत मे कैसा कहेंगे? मैंने सोच लिया था कि आखिर कुमारीजी का ब्याह है, कुछ कहे बिना कैसे बनेगा, पुरोहितजी होगे नही। पण्डितजी ने बताया, इसकी सस्सकीरत है—'साध्वी वीरागना भव'।"

'लडाका' के पास राजकुमार फट पडे—किसी तरह जब्त न कर सके, प्रभा भी खिलखिला दी—'चुप रह, तुझसे कोई कैफियत तलब करता है?' 'नही, मैंने कहा सायत' कहकर यमुना चुप हो गयी।

जरा देर मे जरा समाँ वदल गया। चारो ओर हँसी-खुशी छा गयी।

राजकुमार चुपचाप देवी यमुना मे दवे वैठे है, मन-ही-मन उस विजयिनी प्रतिभा की प्रशसा करते हुए। राजकुमार को पान के लिए पूछते हुए प्रभावती को सकोच हो रहा है। वैठी माला की लडी हाथ मे लिये नीची-निगाह देख रही है। मन वार-वार यमुना की सहायता चाहता है। नारी अपनी महिमा नही छोड सकती, प्रभा को देखते ही यमुना समझ गयी। जो कार्य क्रमशः होते है, उनका भी उमे ज्ञान है। सव क्रम प्रभा यमुना को सुना चुकी है। अपने चातुर्य के कारण यमुना प्रभावती का दाहिना हाथ है।

किसी विशिष्ट विषय के वाद, दूसरी वातचीत चलने पर भी मौका देखकर अनुकूल वात की जाती है, यह मर्म छिपी राजकुमारी यमुना कितना समझ सकती है और राजकुमारी प्रभावती को वार-वार समझकर ही अपना सकी थी इसका उल्लेख अनावश्यक है। प्रथम प्रगाढ भक्ति-भाव का उसी ने रुख वदला, अव इस प्रतीक्षा मे है कि वह उपहासवाला आनन्द भी कुमार-प्रभा तथा सेविकाओ के मन से निकल जाय; प्रतिक्रिया के भरे मुहूर्त मे नवीन रचना शुरू करेगी।

यह वही क्षण है।

नाव की छत पर वैठक है। राजकुमार और प्रभावती को यमुना ने सामने-सामने वैठाया था। चार सेविकाएँ चार कोने मे वैठी हैं, इन्ही मे यमुना राजकुमारी के दाहिनी वगल। एक पीछे पतवार सँभाले हुए, एक सामने गति-निरीक्षण करती हुई। नाव अपने आप वहाव मे वही जा रही है।

यमुना ने एक सेविका से मदिरा, हल्का आसव, घृतपक्व, चवेना और भूना मांस ले आने के लिए कहा। दूसरी, तीसरी और चौथी को राजकुमारीवाली वीणा, मृदग और नूपुर-मजीरे ले आने की आज्ञा दी।

सेविकाओ ने वैसा ही किया। यमुना उठकर पूरव को—वहाव की ओर मुँह किये राजकुमार और प्रभावती के वीच, कुछ फासले पर, आ वैठी और दोनो के पान और भोजन सजाकर सामने रख दिये; फिर प्याली मे मदिरा ढालकर उठाकर राजकुमार के हाथ मे दे दी। देवी की इच्छा समझकर मुस्कराकर, नीची-नजर राजकुमार ने प्याली पकड ली। फिर होठ काटकर मुस्कराती हुई प्रभावती की ओर देखकर उसकी भी रत्न-जटित प्याली आसव से भरकर दी। ढीले हाथ प्रभावती अपनी प्याली लेकर राजकुमार को भरी हँसी की नत दृष्टि से देखने लगी। राजकुमार तव तक लिये ही वठे थे। यमुना ने राजकुमार से कुछ आगे आने के लिए प्रार्थना की। फिर वायें से प्रभावती और दाहिने से कुमार का प्यालीवाला हाथ पकडकर दोनो की प्यालियाँ मिलाती हुई वोली, "पीने, गाने और विहार न करने मे भी अकेली हमारी राजकुमारी आपके साथ होगी, आप ऐसी जगह कभी इनको छोडकर न जायँगे, आज के अमृतजल देनेवाली नीचे गगाजी, ऊपर मयूख-वर्षी चन्द्र, एक दूसरे के लिए प्रेम वहानेवाली आप दोनो और रगीनी भरनेवाली

सुरा-सुन्दरी गवाह हैं। कुमार, मन में कौल करके पान कीजिए।"

कुमार ने प्याली खाली कर दी। प्रभा ने भी पात्र रिक्त कर दिया। दोनों एक-एक टुकड़ा मांस लेकर खाने लगे। यमुना दूसरे दौर की तैयारी करने लगी।

दोनों की उचित मात्रा हो चुकने पर यमुना ने पूछकर पात्र, प्याली और तश्तरियाँ उठवा दीं। दोनों के मुँह धुलवा दिये। रंगीन दृष्टि से दोनों एक-दूसरे को देखते हुए, यमुना के दिये पान लेकर खाते हुए, एक दूसरे की आत्मा में बैठने लगे। आँखोंवाली लाज दूर हो गयी।

नाव धीरे-धीरे बहती जा रही है। वसन्त ऋतु, शीतल समीर, चाँदनी रात, गंगा-वक्ष ज्योति में झलमल, नाव पर राजकुमार और राजकुमारी पहली रात और इसे वे दोनों शराब की आबदार आँखों से देखें तो कितना सुन्दर होगा?

यमुना ने प्रभावती को वीणा बढ़ा दी। एक दूसरी सखिका से मृदंग की ओर इशारा करके राजकुमार को देने के लिए कहा, स्वयं नूपुर-गुच्छ ले लिये।

वीणा चढ़ी हुई थी, मृदंग लैस किया हुआ था। तारों में पहले तीन-चार बार प्रभावती ने अलाप ली। फिर देश पर त्रिताल की एक गति बजाने लगी। हाथों में नूपुर-गुच्छ लिये-लिये यमुना ताल द्विमात्रा, मात्रा, अर्द्धमात्रा तथा दीर्घ रणन से झंकृत करती रहीं। कुमार देव सोलह-मात्रा पर मृदंग के बँधे बोल लघु थपकियों में निकालने लगे। गति द्रुत से द्रुततर होती गयी, मृदंग में परन पर परन, छन्द पर छन्द उठते गये। तरुणी तरुणी की ही मुखर रागिनी से जैसे दिशाएँ मधुर-मधुर गूँजती रहीं। सखिकाएँ निश्चल गति-वादन-एकता में डूबी। व्यथापूर्ण मादक देश की मींड़े, तान आदि, युगल प्रेमियों के प्राणों में क्या काम करती थीं, वर्णनातीत है। प्रायः आधी घड़ी तक गति बजती रही। ताल पर वीणा बन्द कर, ध्यान में डूबी प्रभावती कुछ काल तक बैठी रही। आसव और राग का रग-रग में मधुर उन्माद भरा था। कुमार क्षीण वीणा-स्वर और नूपुर-निक्वणों से मिले अपने हृदय के ही सान्द्र रव-जैसे मृदंग के जलद-मन्द्र से तृप्त होकर निकले। प्राणों में सुरा का *समररंग।*

यमुना ने दोनों को फिर पान दिये। कुछ देर तक मौन रहकर प्रभा ने यमुना को गाने के लिए कहा। ध्वनि में संकोच था। आप-ही-आप आज यमुना 'तू' से 'तुम' के आसन पर चढ़ गयी है। आज वह वैसी तुच्छ होकर निकटवर्तिनी नहीं, राजकुमार के दिये सम्मान की मौन प्रेरणा और कार्यों के ममत्व ने उसे उच्च कर दिया है।

यमुना ने प्रभा को ही पहले गाने के लिए कहा। क्योंकि आज की सभा उन्हीं के हाथ है, इसलिए नेतृत्व उन्हें ही लेना चाहिए, ज्यों-ज्यों यमुना समझाती गयी, प्रभा को संकोच जकड़ता गया। राजकुमार कुछ कह नहीं सकते, क्योंकि यमुना को 'आप' कहना पड़ेगा। बार-बार देखकर रह जाते हैं। कभी यमुना का गाना सुना न था, वे गाती भी बहुत अच्छी होंगी, सोच-सोचकर मन से उत्सुक हो रहे थे। जैसे समझकर यमुना बोली, "मेरे लकटे-दादरे पहले हो जायेंगे, तो आपकी बहार जो बिगड़ जायेगी, इसके बाद न हो लीपे-पोते में करकट कर लिया जायगा, तब तक दो-चार बढ़िया-बढ़िया ब्याहवाले गीत गाइए। जिसका ब्याह, वही

गावनहार, मुझे बहुत अच्छा लगता है।" राजकुमार सिर गडाकर मुस्कराये। प्रभा मुस्करा दी—न रहा गया। जैसे सकोच दूर हो गया। एक स्वतन्त्र आनन्द की धारा बहने लगी। सिमटकर वीणा उठा ली। कुमार ने मृदग गोद पर रख लिया। प्रभावती स्वर पर झकारे भरती रही, फिर एक चौताल और एक झप गाया। तीन ताल की भी दो चीजें हुई। सभ्य सँभले गले पर राजकुमार मुग्ध हो गये। पुन कुछ देर विश्राम रहा। फिर यमुना को गाने के लिए प्रभा ने कहा। नूपुरो के गुच्छे पास की सेविका को देकर स्थिर होकर यमुना खिची तीन ताल की वागीश्वरी गाने लगी—मृदग की लहरो पर मात्रा-मात्रा से रागिनी वह-सी चली। प्रभा स्वर भरती रही। सेविका ताल-ताल पर नूपुरो के गुच्छे हिलाती रही—

"किहि तन पिय-मन धारो ?—री कहु
उठत न दृग लखि, पग डगमग, सखि,
किमि निज सुगति सँवारो ?—री कहु
मौन पौन मे डसत बिखयधर;
फैलति ज्वाल, होत तन जरजर,
सबद सुनत काँपन हिय थरथर,
किमि सर खर निस्वारो ?—री कहु"

गीत समाप्त कर, देर हुई जान, यमुना ने दोनो से भोजन कर लेने की प्रार्थना की। कुछ विश्राम भी जरूरी है, समझाकर दोनो को नीचे ले गयी। आसनो पर बैठाल भोजन और पान मँगाकर कुछ सुरा दोनो को और पिलायी। भोजन के समय अनेक प्रकार के प्रेमालाप सुनाती रही—आज की रात, कहते है, आज पति-पत्नी को सोना न चाहिए – अवश्य सोना सम्भव नही, इसलिए कहा गया है, क्योकि तमाम रात भी बातचीत के लिए पूरी नही पडती—आदि-आदि। भोजन के पश्चात् दोनो के हाथ धुलवाकर पान खिला दिये। फिर खिडकियो के दूसरे पर्दे खिचवाकर अपना तथा दासियो का भोजन छत पर मँगवा लिया।

नाव बहती हुई प्राय आठ कोस का फासला पार कर गयी। भोजन समाप्त कर अपनी-अपनी बारी से पतवार सँभालने तथा सिरा देखने के लिए यमुना ने दो-दो दासियो का समय नियत कर दिया। छत पर यमुना के इधर-उधर फिस-फिसाती हुई विश्रामवाली सेविकाएँ सो रही।

रात का पिछला पहर आ गया। यमुना सचेत पडी दूर-दूर की कल्पना मे लीन है। कुछ-कुछ ठण्डक पड रही है। सब गर्म वस्त्र ओढे हुए है। इसी समय कुछ दूर पर मोह से फिरी बडी नाव आती हुई देख पडी। सामने और पीछे की दोनो दासियो ने कहा, कोई बडी नाव आ रही है। यमुना उठकर बैठ गयी। गौर से देखने लगी। सामनेवाली दासी ने कहा, "सुबह के धोखे मे जल्द खोल दी होगी, या मल्लाहो ने सोचा होगा, ठण्डे मे गुन खीचकर दलमऊ मे आराम करेगे।"

नाव नजदीक आ चुकी थी। यमुना नीचे उतर गयी। द्वार से 'कुमारजी' कहकर प्रभा को आवाज दी। प्रभा जग रही थी। राजकुमार भी जगते थे। प्रभा ने बुलाया। उठकर बैठ गयी। राजकुमार भी बैठ गये। यमुना ने कहा, "एक नाव आ रही है। मुझे जान पडता है, बलवन्त की नाव है।" प्रभावती निकलकर देखने

लगी। नाव बहुत करीब पहुँच चुकी थी। राजकुमार छत पर चले गये।

"यमुना!" प्रभा यमुना को पकड़कर रो दी।

"छि! कोई हिम्मत हारता है? मैं समझ गयी, जल्द भारी गहने उतार डालो—नाव दाहिने करो जहाँ तक हो,"—यमुना ने पतवारवाली को आवाज दी—"वे दाहिने से गुन खींचकर आ रहे हैं," प्रभावती को समझाया—"मौका अच्छा न जान पड़े, तो कूदकर तैर जाना, कुमार के लिए चिन्ता नहीं," धीरे-धीरे जल्द-जल्द यमुना कहती गयी—"हाँ, पिताजी साथ होंगे।" प्रभावती जल्द-जल्द गहने उतार रही थी। नाव आ पहुँची—"कौन है?" आवाज आयी। धीरे-से एक खिड़की से प्रभा के गंगा में बैठने का शब्द हुआ। ध्यान लगाये यमुना और दासियों ने सुना। राजकुमार किनारे बिस्तर के नीचे से अस्त्र निकाल रहे थे। नाव भी आनेवाली नाव के काफी बायें हो चुकी थी। पूछने के साथ ही बिना यमुना की सलाह कुमार ने कह दिया, "देव कुमार लालगढ़।" प्रभा डुबकी लगाकर दूर निकली, चित्त होकर जरा साँस लेकर फिर डुबकी लगाती गंगा पार करने लगी।

कुमार ने देखा—बलवन्तसिंह सामने खड़ा है। 'अच्छा दोस्त!' बलवन्त ने ध्वनि में गुस्ताखी की। बलवन्त लालगढ़ के खिलाफ था। कुमार की आँखों में क्रोध आ गया। सजी नाव अपना परिचय दे रही थी—यमुना बलवन्त का इशारा समझ गयी, ऊपर कुमार की बगल से कहा, "और तुम्हारी बहन साथ है।"

"बाँदी!"

"नीच कुल-कलंक!" यमुना ने भाला मारा। बलवन्त बैठ गया। पीछे खड़ा सिपाही बिंधकर गिर गया। "खबरदार कुमार, मैं जाती हूँ, पार जाने तक, किसी को बढ़ने न देना। सखी सती होंगी या तुम्हें छुड़ायेंगी। वे पिता से बचने के लिए गयी हैं। लो तीर-कमान," कहती यमुना कूद गयी। 'कुमार ने यमुना पर चलाया भाला रोका।' बात कहती, वार से पहले यमुना कूद गयी थी। 'पकड़ो' बलवन्त ने आवाज दी, पर वह कहीं उभड़ी हुई न देख पड़ी। तैयार कुछ लोग बायीं ओर देखते रहे। कुमार ने आवाज के साथ ही दूनी गरज से कहा, "बलवन्त, यहाँ हम अकेले हैं, पर वीरसिंह को तुम अच्छी तरह जानते हो।"

"मारो।" कई वार एक साथ हुए। कुछ सँभले, कुछ न सँभले। अकेले यमुना देवी को पार जाने तक न बचा सके। कई चोटें खाकर कुमार मूर्च्छित हो गये।

नाव को बलवन्त ने अपने अधिकार में कर लिया। महेश्वरसिंह के सामने दासियों के बयान सुनकर क्षोभ से जल गया। महेश्वरसिंह भी अत्यन्त रुष्ट हुए। पर उपाय न था। नाव अब तक दूर निकल आयी थी। पार जाकर प्रभावती जंगल में छिप गयी होगी, सोचकर चुप हो गये। दिल धड़क रहा था। बलवन्त बड़े गर्व से उन्हें देख रहा था, जैसे उनके अपराध की क्षमा न हो। कुमार देव बन्दी अवस्था में नीचे मूर्च्छित लिटा दिये गये।

यमुना कूदकर, डुबकी लगाकर किनारे की तरफ नहीं गयी। सीधे बलवन्त की नाव की तरफ गयी। बलवन्त की नाव इतनी निकट थी कि वह एक डुबकी से नाव के पीछे पहुँच गयी। यह स्रोत के अनुकूल जाना था। उसने सोच लिया था

कि इतने निकट से कटकर पार के लिए जायगी, तो कुमार बचा न सकेंगे—बलवन्त की नाव के कुछ ही फासले से होकर जाना होगा, मुमकिन है, पकड जाय। यह सब क्षणमात्र मे सोचकर बलवन्त की नाव की बगल मे, पतवार के पास निकली और धीरे से पतवार का सहारा लिये साथ चलती रही। जब कुमार घायल और गिरफ्तार हो चुके, प्रभावती की नाव पास के लट्ठे मे बाँध दी गयी, दासियो के बयान हो चुके, तब एक बार सोचा कि कुछ दूर चलकर, नाव छोडकर सावधानी से दलमऊ की तरफ जाकर, दौडती हुई, इस नाव के पहुँचने के पहले पहुँचे और महाराज को बचावे। पर प्रभावती की विवशता की याद आयी, पतवार छोडकर डूबकर बहती-तैरती हुई उसी किनारे जा चढी।

सात

प्रभावती दूर बहकर लगी। जब किनारे आयी, तब दोनो नावे एक साथ बँध चुकी थी। राजकुमार उठाकर ले जाये गये थे। यमुना का कोई निशान न था। दासियाँ दूसरी नाव पर थी। देखकर शका बढी, किनारे-किनारे, कुछ पीछे रहकर चलने लगी। वस्त्र निचोड लिया था, देह के ताप से वह सूख चला था। ठण्डक कुछ थी—नहा जाने पर अधिक हो गयी, पर हृदय और मस्तिष्क मे इतनी गरमी थी और स्थिति इतनी अस्वाभाविक कि जाडे का स्वाभाविक बोध न रहा।

प्रभावती की इच्छा कुमार को छोडने की न थी, पर पिता की कल्पना कर वह विचलित हो गयी। पिता के प्रति यदि पुत्री की दृष्टि वह अन्त तक न रख सके, तो एक अनर्थ होगा। पुन पिता ऐसे पिता नही जो अपने राज्यार्थ को पुत्री के स्नेह-स्वार्थ के मुकाबले कमजोर होने देंगे, यदि बलवन्त ऐसी विवाहित अवस्था मे भी, कुमार देव को नीचा दिखाने के अभिप्राय से, उसे स्वीकार करना मजूर करेगा, और यदि पिता इस विवाह को विवाह करार न देकर उसको सम्प्रदान करना चाहेंगे तो उस अवस्था मे आत्महत्या या वीर नारी की तरह सती होना ही पथ होगा, पुन बाहर बचने-बचाने की जितनी आशा है, उतनी बँध जाने पर नही, ऐसे अनेक प्रकार से युक्ति, भय और दबाव के कारण वह कुमार को छोड-कर कूदी थी। अब चलती हुई सोच रही थी कि अगर कही रह गयी होती, तो कुमार के साथ दुख मे भी रहने का सुख प्राप्त हुआ होता। फिर बिगड़कर बदले के लिए तुलकर सोचने लगी। बलवन्त का बहुत शीघ्र युद्ध के लिए आह्वान न कर सकी, तो सारी शिक्षा व्यर्थ है, जिस तरह इसने दल-बल के साथ एकमात्र का अपमान किया है, इस तरह की कायरता से नही,—बराबर की लडाई लडकर ऐसी उधेडबुन मे चली आ रही थी। काफी दूर चली आयी। नाव, कुमार, यमुना और बलवन्त की बातो म भूली थी—पैर आप उठते जा रहे थे, ऐसे समय यमुना

सामने मे आती हुई देख पडी। किनारे से प्रभा को आते हुए यमुना ने देख लिया था जब वह खुद किनारे लग रही थी, और प्रभा के लिए उसे परिश्रम न करना पडा, इससे आश्वस्त भी हुई थी।

यमुना ही इतनी देर तक मन शक्ति से जल मे रह सकी। किनारे चढकर कपडे निचोडे। अग जकडे जा रहे थे। धैर्य से बढती गयी। कुछ चलकर दौडने लगी।

आगे प्रभा मिली। "कुमार!" करुण स्वर मे पूछकर लिपट गयी।

"सयत होओ!" 'तुम' से प्रभा के प्राणो को यह पहली प्रिय सहानुभूति मिली। इससे उसके बडप्पनवाला भाव दूर हो गया। राजकुमारी प्रेम के पथ पर उतना ही अधिकार रखती है जितना एक साधारण युवती, इस सम्बोधन की सहृदयता ने उसे समझा दिया और इस ज्ञान से उसकी गति विश्व की सभी गलियो मे फैल गयी, उसने यमुना की सहानुभूति मे जो विस्तार देखा, वहाँ सबकुछ था—राजकुमार थे, यमुना थी और था छाँह मे प्रेम का मधुर आलाप। केवल बडप्पन न था, और जैसे इस अकृत्रिम सुख का कारण यही हुआ। प्रभा ने पलकें मूँद ली।

यमुना बोली, "आगे सब बातें कहूँगी, जो कुछ हुआ, वह बडी चिन्ता का विषय नही। अभी हमे कुछ स्वस्थ हो लेना है। यहाँ से जल्द निकल चलना है, कल यहाँ बहुत गहरी खोज हो सकती है। चलो, कछार के पार बस्ती की ओर चले।"

दोनो कछार पार करने लगी।

"अब क्या होना चाहिए?" प्रभा ने पूछा।

"तुम्हारे पास अभी कुछ गहने है?"

"हाँ, जल्दी मे सब नही उतार सकी, इन्हे फेंक दूँ?"

"नही, इनका होना अच्छा हुआ, हमे खर्च की जरूरत पडेगी। अब इधर का रास्ता तो बन्द ही है। दूसरी जगह मे काम होगा। हाँ, आओ, गहने उतारकर साडी के एक छोर मे, फाडकर, बाँध लूँ, आवश्यक चीजें खरीदनी होगी और ठिकाने तक पहुँचने का प्रबन्ध करना है।"

"कहाँ चलेंगे?"

"कान्यकुब्ज।"

प्रभा गहने उतारने चली। हारो का कवच उतार डाला था, पर कण्ठी बँधी रह गयी थी। ऐसे ही बाँहो मे, नाक-कान और हाथो मे गहने रह गये थे। यमुना एक-एक उतारने लगी। नाक का हीरा रहने दिया। कहा, "फिर जरूरत पर उतार डालना।"

"अब तो जी सँभल गया होगा, वहाँ क्या हाल रहा—राजकुमार कहाँ हैं?"

दोनो चलती जा रही है। प्रभा आग्रह से भरी हुई। यमुना ने एक गहरी साँस ली।

"नही, इस ओर से जाना ठीक नही। तुम्हारी साडी बहुत-भडकीली है। लोगो को शका होगी। कल खोज हुई, तो पकड जाने की सम्भावना है। फिर इधर साधारण गाँव-हैं। सवारियाँ मिलें, न मिले। यहाँ हीरे भी कैसे बिकेंगे?

थोडा-थोडा खर्च, मजिल दो मजिल का रथ-रव्वे का किराया कैसे दिया जायगा ? हमे उतरकर किनारे से चलना चाहिए। आगे कोस-भर मे नाव-घाट होगा। ज्यादा किराये पर नाव करके प्रयाग चलें। रास्ते मे एक हीरा बेच लेंगे।"

यमुना लौट पडी। प्रभावती के साथ-साथ यन्त्र की तरह, "तू मेरी बात का जवाब नही देती।" स्नेह की रुखाई से पूछा।

"देखो, सवेरा होता है। अब ये बाते न करो। कुमार के लिए चिन्ता न करो। कह दिया, वे बन्दी कर लिये गये है। हमारा काम है, उन्हे जहाँ तक जल्द हो, छुडावें।"

कुछ देर प्रभावती मौन रही। फिर कहा, "यमुना ! आज तुझे ऐसा देखा कि जितना समझा था, सब बदल गया। पहले तू ऐसा न बोलती थी !"

"तुम्हारी शिक्षा इतनी नही हुई कि तुम मुझे पहचान सकती। तुम बडे घर की थी, पर छोटे ही घरो के लोगो ने तुम्हे कुछ सिखाया है। जिन्हे बदले मे अर्थ देकर अपने को तुमने बडा समझा, मन-ही-मन उन्हे दबाया, मै वैसी ही छोटी हूँ, पर तुमसे अधिक पढी हूँ और अधिक शक्ति रखती हूँ, यही तुम्हे समझना था; मैंने आज समझा भी दिया, तुम्हारी शिक्षा को मुझे पूरा करना है, जैसे कहूँ, करती चलो, मुझे तुम प्राणो से प्रिय पहली सखी मिली। जिन देवी यमुना को तुम प्यार करती हो, उन्हे मैं भी करती हूँ। तुमने उन्हे नही देखा, मैंने देखा है। हमारे लिए उनकी शिक्षा बडी गहन है। मैं तुम्हे बताती रहूँगी। फिलहाल चुप रहो।"

प्रभा पैरो मे लिपट गयी, "सखी, मुझे क्षमा करो। मेरा इससे बडा उपकार कौन करेगी ? मेरे लिए तो तुम्ही यमुना देवी हो। मैं छोटो से घृणा नही करती। क्षमा करो स्वभाववश जो कुछ कहा हो।"

यमुना ने प्रभावती को उठा लिया। कहने लगी, "हमारी जाति, धर्म और देश की रक्षा की जो समस्या पुरुषो के सामने है, वही हमारे सामने भी है। आज क्षत्रिय अपने दर्प से आप चूर्ण हो रहे हैं। बार-बार बाहरी घात होते जा रहे है, पर उन्हे सँभालकर उल्टा जवाब वे नही दे सकते। महाराज पृथ्वीराज अवश्य इस प्रतिरोध-वीरता के लिए सक्षम है, पर वे भी राजनीतिविशारद नही। मेरे गुरुदेव उनका समर्थन नही करते। उनमे बहुत बडी रुक्षता है। वीर कैमास को मारकर उन्होने बडा ही घृण्य कृत्य किया है। वीर-वरेण्य सिर्सा सरदार मलखान को घेरकर अनुचित रीति से उन्होने मारा। महोवे के ऊदल और ब्रह्मानन्द आदि वीर उनके इसी अनौचित्य को न सह सकने के कारण, अल्पसख्या मे बडी शक्ति का विरोध करके भी, विजय पाते हुए, डरपोक परमाल के भाग जाने मे भगी सेना से निस्सहाय होकर मारे गये। यदि पृथ्वी चाहते. तो इन वीरो से स्नेह-सम्बन्ध जोड सकते थे। पर सम्पूर्ण दोष उनका भी नही। कान्यकुब्ज से पृथ्वी और भीमदेव का बडा जटिल सम्बन्ध हो गया है। महोबा कान्यकुब्ज का करद-मित्र था। क्षत्रियो मे स्पर्धा मे दबाने का जो भाव बढा हुआ है, यह उन्हे ही दबाकर नष्ट कर देगा, यह प्राकृतिक सत्य है; मेरे गुरुदेव कहते थे, मुझे भी वह सत्य जान पडता है। वर्णाश्रम-धर्म की प्रतिष्ठा मे बौद्धो पर विजय पानेवाले क्षत्रिय कदापि इस धर्म की

रक्षा न कर सकेंगे, क्योकि साधारण जातियाँ इनके तथा ब्राह्मणो के घृणाभावो से पीडित हैं। ये आपस मे कटकर क्षीण हो जायँगे। तब जो शक्ति बढी हुई देख पडती है, वह विजय प्राप्त करेगी। हमारे यहाँ मुसलमानो के अनेक हमले हो चुके है। वे विजयी भी हुए है। उनका हौसला बढ गया है। आश्चर्य नही, हिन्दू सस्कृति पर मुसलमानो की विजय हो। उनमे हमसे अधिक एकता है। फिर हमारे लिए कौन-सा धर्म रह जाता है? क्या हम चुपचाप अपने ऐसे पुरुषो का अनुकरण करती रहे? मैं ऐसा नही समझती, यह ठीक है कि हमारी न चलेगी, पर तो भी हमे अपने लिए सचेत होना है। सती-धर्म स्त्री को पवित्र करता है। जिससे प्राणि-मात्र प्रीत हो, गुरुदेव कहते है, वही सती ब्राह्मण है, जिसमे समस्त जाति प्रीत हो, शक्ति पाये, वह क्षत्राणी। हमे प्रजा की सेवा के लिए अपना सवस्व दे देना होगा, मन, बुद्धि, चित्त, अहकार और स्थूल शरीर से, इस क्षात्रईर्ष्या मे अमृत सीचकर प्रजा की प्रीति लेनी है—उन्हे जीवन देकर आदर्श सिखलाना है, फिर ईर्ष्यादग्ध या वीरगति प्राप्त पति की चिता मे जलकर पति-ब्रह्म मे लीन होना, इस एक उद्देश्य के अनेक कार्य हैं। कुछ सीखकर तुम्हे जीवन मे परिणत करना तो है।"

हृदय मे एक प्रकार बल पाती हुई प्रभा साश्चर्य यमुना को देखती विचार करती चली। धूप फैलने लगी। कुछ दूर पर नाव-घाट देख पडने लगा।

आठ

वह और ही युग था। एक ओर गाँव मे गरीब किसान छप्परो के नीचे, दूसरी ओर दुर्ग मे महाराज धन-धान्य और हीरे-मोतियो से भरे प्रासादो मे, फिर भी उन्ही के पास फैसले के लिए—न्याय के लिए जाना और उन्हे भगवान् का रूप मानना पडता था।

ब्राह्मणो ने यह शिक्षा दी। यदि राजा दरिद्र को भगवान् का रूप न मानता—उसके लिए अपना सर्वस्व न देता, तो कौन-सी हानि होती मालूम नही, पर अधीन दरिद्र की ओर मे हुई त्रुटि का फल मालूम है—राजा अपनी अपूर्व भगवद्भक्ति के प्रमाण के रूप मे उसे साकार से निराकार तत्त्व मे लीन कर देता था।

इससे वेतन पाने न पानेवाले दरिद्र सभी देशवासी उसके सिपाही थे। राज-भक्ति के प्रदर्शन मे उन्हे लडना पडता था। उधर जरा-जरा-सी बात पर लडाई क्षत्रियत्व की सूचना थी। देशवासियो को, यहाँ तक कि किसानो को भी हल की मूठ छोडकर भगवद्धर्म का पालन करना पडता था।

गाँवो मे वर्णाश्रम धर्म की धाक थी। राजवश के क्षत्रियो को छोडकर और सभी जातियो को चाहे वृद्ध की बगल से बच्चा आ निकले, यदि ब्राह्मणवश का

हो, चारपाई छोडकर उठना पडता था, गाँवो मे दिन-भर यह कसरत जारी रहती थी।

राजनीति सब समय एक-सी है। राजा या राज्य की ऐश्वर्य-सत्ता का भोग करनेवाले कभी वृहत् अंश साधारण की भलाई के लिए नही छोड सकते। यह भोग अपनी सार्वकालिका महिमा मे एक-रूप है, परिवर्तन भोग के उपायो मे हुए हैं। यहाँ व्यक्तिवाद भी है। शक्ति का विकास होने पर दूसरे अशक्तो मे मनुष्य भिन्न हो जाता है। यह भिन्नता समाज, शासन और अध्यात्म मे सब जगह, बडे-बडे मनुष्यो मे प्रत्यक्ष होती है। पर किसी समय यह कुछ दूर तक सह्य होती है, किसी समय सम्पूर्ण असह्य। उस समय भारत जिस भिन्नता मे था, वह साधारण जनो की आत्मा मे असह्य थी। जिस तरह वनो के प्राण शून्य मे प्यासी पुकार भरते हुए वारिवर्षण कराते है, उसी तरह भारत की जनता की मौन करुणा-ध्वनि ने दूसरी-दूसरी सत्ताओ को शासन के लिए बुलाया। ससार के सभी अधिकार उच्च-से-उच्च होकर बुराइयो से भरकर चूर्ण-विचूर्ण हो गये है। क्षात्र-शक्ति के लिए यह जरूरी हो रहा था। चिरकाल से क्षत्रियो की युद्ध-ज्वाला भारत को दग्ध कर रही थी। कृषि, जनपद तथा जीवन अकारण युद्ध के कारण नष्ट हो रहे थे। साधारण जनो के दृश्य बडे करुणोत्पादक थे। उन दृश्यो की छाया आज भी है, पर आज पतितो के उन्नत होने की माया महत्त्व रखती है। इसी तरह एक महत्त्व के बिना किसी शासन की प्रतिष्ठा नही होती—यही, दोनो के प्राणो को पुकार के अनुकूल मिला आश्वासन या खाद्य है।

समान धर्मवालो का मैत्री-सम्बन्ध मे बँधना स्वाभाविक नियम है। कान्य-कुब्जेश्वर के सरदार भी एक-एक गोष्ठी मे बँधे थे। प्राय. पास-पडोस के रहनेवाले, एक-एक दो-दो दुर्गो के मालिक आपस मे मिले रहते थे। इनकी तकरार भी इन्ही मे होती थी। तब इनमे भी दो दल हो जाते थे या दो दलो मे वैमनस्य चलता था, कुछ तटस्थ रहते थे। मार-पीट, लडाई-दगे यहाँ तक कि युद्ध भी होते थे। न बडे राजाओ को युद्ध से फुरसत थी, न इन्हे। ऐसा ही गाँव-गाँव तथा टोले-टोले मे था। खासतौर से सुनायी भी न होती थी। महाराज अपने लडे हुए सरदारो की इसलिए न सुनते थे कि उन्हे कर तथा सम्मान, दोनो ओर से मिलता रहता था। उनके स्वार्थ मे बाधा न लगती थी, फलत ऐसे झगडो का आपस मे फैसला होता था, या पुश्त-दर-पुश्त शत्रुता चलती थी, या महाराज के कान भरकर बदला चुकाने की सोची जाती थी। कोई बडी बात हो जाने पर अधिक सरदारो के रुख देखकर महाराज साधारण न्याय करते थे। दलमऊ और लालगढ का वैमनस्य ऐसा ही बहुत साधारण था। दलमऊ के सरदार ने कान्यकुब्जेश्वर के यहाँ बलवन्तसिंह की पृष्ठपोषकता की थी—लालगढेश के विरुद्ध गवाही दी थी, यमुना और वीरसिंह के मामले मे, बलवन्तसिंह से मैत्री-सूत्र सुदृढ करने के लिए और अपनी तरफ लालगढ के सीमान्त के एक दूसरे सरदार को लेकर पक्ष पुष्ट करने के लिए। बलवन्तसिंह का बढता राज-सम्मान भी पक्ष-ग्रहण का एक कारण था। इस प्रकार लालगढ के दो सीमान्त मे दो शत्रु थे। प्रभावती का बलवन्त से विवाह करके महेश्वरसिंह चाहते थे कि साधारण-सा कारण भी मिले, तो सम्मिलित शक्ति से बदला चुका लें। इसी

वीच यह वैवाहिक अनर्थ हुआ। वलवन्तसिंह कुमार देव पर अधिक अत्याचार न कर सकता था, कारण लालगढ से उसका पहला वैमनस्य सावित था। उसने सोचा कि देवसिंह को कैद मे रखकर महेश्वरसिंह से ऐसा साक्ष्य दिलवाये कि वे अपनी कन्या प्रभावती का उसी से विवाह करना चाहते थे, देवसिंह को पता चला तो उसने महेश्वरसिंह तथा वलवन्तसिंह को पहले के वैमनस्य के कारण नीचा दिखाने के लिए वलात् प्रभावती से विवाह कर लिया। इस विवाह मे दो सरदारो की इज्जत इसने धूल मे मिलायी, देखकर, मूछो पर ताव देना हुआ चलेगा, तो यह एक वरावरवाले के लिए कैसे वरदाश्त कर जाने की वात होगी —ऐसी और-और वाते भी सोची, ताकि फैसले मे लालगढ की जो वेइज्जती हो, थोडी, और मार-पीट हमलेवाली वात दव जाय, वल्कि देव का ही चढ जाना सावित हो। यह निश्चय कर देव को अपने यहाँ स्थल-मार्ग से ले जाने का निश्चय किया।

नाव पर विवाह के साक्ष्य मिल चुके थे, दासियो ने जो-जा कुछ देखा था कह दिया था, यह मालूम हो चुका था कि प्रभावती वचने के विचार से नाव से कूदी थी। ऐसी वही हुई लडकी का वह जाना अच्छा—घृणापूर्वक सोचकर महेश्वरसिंह ने वडे मित्र-भाव से वलवन्तसिंह से उसके सम्वन्ध मे आगे का कार्यक्रम पूछा। वलवन्तसिंह ने यह सलाह दी कि पिता की आज्ञा न माननेवाली लडकी की मनुष्य द्वारा कोई सजा नही हो सकती, पिता के लिए यह उचित है कि उसकी सदा उपेक्षा करे, कभी भी आश्रय न दे।

कुमार देव काफी जख्मी हो चुके थे। कई सिपाहियो के पहरे मे वन्दी थे। वार-वार होश मे आकर वेहोश हो रहे थे। रक्त-स्राव अभी तक वन्द न हुआ था। कोई मरहम-पट्टी भी न हुई थी।

एक दिन पहर होने से पहले ही सव लोग दुर्ग पहुँच चुके थे। वलवन्त का जोरदार आतिथ्य हो रहा था। नाव के सव लोग गत प्रसङ्ग से मौन थे। अभी शहर मे अच्छी तरह खवर न फैली थी। महाराज शिवस्वरूप प्रात कृत्य से निवृत्त होकर कसरत मे जुटे थे जव महेश्वरसिंह वगैरह आये थे, उन्हे नाली मे दण्ड करते हुए पचास-पचास के वाद कितनी गोटे सरकायी, यह भी न मालूम था। इसी समय दुर्ग के भव्य कक्ष मे वलवन्त के पास वैठे हुए महेश्वरसिंह को दासियो की वतायी महाराज शिवस्वरूप की वात याद आयी। अपने खवास को कुछ प्रश्न पूछ आने के लिए भेजा। यह भी वलवन्त को खुश करने की एक उद्भावना थी। आत्मप्रसाद पा वलवन्त ने सीना कुछ तानकर गर्दन उठायी।

खवास ने दरवाजे पर 'शिवस्वरूप महाराज हो' की आवाज लगायी। महाराज दूसरो की निगाह से वचकर दहलीज मे दण्ड कर रहे थे। यजमान आया जानकर गर्व से एक उँगली से माथे का पसीना काँछते हुए वाहर आये। घोडा वाहर ही वँधा हुआ था। खवास को देख कुछ खिचे।

खवास ने गर्व से पूछा, "रावजी पूछते है, कल कौन तुम्हारे यहाँ आया ?"

"हमारे यहाँ कल पच्चीसो यजमान आये, कुछ गाँव के, कुछ जात्री।"

"शाम को भी कोई आया था ?"

"दुपहर लौटे हम निकले तो गेगासो से पहर रात गये घर आये।"

"यह घोडा किसका है ?"

"हमारा, मनवा के राजा ने बाप की वैतरनी मे दिया है।"

खवास मुस्कराता लौट गया। महाराज को शका हो गयी। दौडे किनारे गये। सक्षेप मे हाल मिल गया।

फाटक से होता हुआ खवास महेश्वरसिंह के सामने आकर खडा हुआ। उस समय एक दूसरी बातचीत चल रही थी। खत्म होने पर महेश्वरसिंह ने पूछा। नौकर यथाक्रम प्रश्नोत्तर कहता गया। महेश्वरसिंह और बलवन्तसिंह का क्रोध बढता गया। अन्त मे बडे कष्ट से हँसी को रोककर खवास ने घोडे के मिलने का कारण कहा। बलवन्त के बदन मे आग लग गयी। मनवा के राजा का इससे बढकर अपमान न हो सकता था। महाराज शिवस्वरूप को सिर्फ मनवा का नाम मालूम था, वहाँ बलवन्त राज कर रहे हैं या ज्ञानवन्त, वे न जानते थे; उन्होने अपनी समझ से काफी दूर के राजा का नाम बताया था। महेश्वरसिंह तथा कुछ सिपाहियो को साथ लेकर गुस्ताख को सजा देने के लिए बलवन्त महाराज के मकान को चले। मन मे सोच रहे थे कि ब्राह्मण अवध्य है, उसे क्या दण्ड दिया जाना चाहिए। दान लेनेवाले ब्राह्मण की यह तेजी महेश्वरसिंह को भी अक्षम्य जान पडी। यह उनका भी अपमान था। खवास रास्ता दिखाता हुआ लिये जा रहा था। दरवाजे पर पहुँचकर देखा, द्वार बन्द थे, वहाँ कोई न था।

माता को किनारे मे होकर (यजमानो के) गाँव रहने की सलाह देकर उसी वक्त घोडा साजकर पाई-पूंजी-समेत महाराज लम्बे पडे थे।

नौ

जहाँ भारत के राजा पारस्परिक विरोध मे पागल थे, वही कमजोरियो को समझने के लिए मुहम्मद गोरी तत्पर हो रहा था। सारे देश मे उसने डेरे डाल रक्खे थे। गुप्तचरो का जाल बिछा रहा था। कोई खजर बेचता हुआ खबर पहुँचा रहा था, कोई दूसरी तरह खरीद-फरोख्त करता हुआ, कोई ऊँट और कोई घोडे बेचता हुआ—जो शाहवाले घोडो से कमजोर नस्ल के होते थे, कोई केसर लिये हुए, कोई कच्ची तलवारें, तथा अन्यान्य वस्तुएँ। किसकी कितनी सेना है, युद्ध कौशल कैसे हैं, किस-किस राजा की आपस मे मैत्री है, आचार-व्यवहार कैसे है, जनता के लिए राजा क्या-क्या भाव रखते हैं, प्रजा प्रसन्न है या पीडित, पूरे ब्योरे के साथ ये खबरे शहाबुद्दीन के पास पहुँच रही थी। कई बार हार खाकर भी वह ज्यो-ज्यो यहाँ की बिगडी राजनीति का अध्ययन करता जा रहा था, उसे विजय की आशा बँधती जा रही थी। पजाब से सिन्ध तक उसका राज्यविस्तार हो गया था। पर भारत के किसी भी दूसरे प्रदेश के राजा को यह बुरा नही लगा, किसी ने इसके लिए

मुहम्मद के विरोध की चर्चा नही की। सब अपनी ही सीमा को स्वाधीनता की हद मानते थे, धर्म का भी बुरा हाल था। मुहम्मद ज्यो-ज्यो सोचता था, उसकी दृष्टि मे आशा के रगीन फूल त्यो-त्यो खिलते जाते थे—हृदय का रुद्ध प्रवाह वेग से भारतधरा को प्ला'वित करने के लिए वह चलता था—इस्लाम की दूर-दूर तक फैली महाशक्ति का विश्वास उसे बार-बार नये जीवन से बाँधकर भर देता था, उसके प्रयत्न पहले से और क्षिप्र गति धारण कर लेते थे, अर्थ-सग्रह और सैन्य-शिक्षा के लिए और दत्तचित्त हो जाता था।

इसी समय, कान्यकुब्ज से कुछ दूर, एक सुन्दर निर्जन स्थान पर, धीरसिंह धूनी रमाये बैठे हैं। पीपल की छाँह, इधर-उधर कुछ और वृक्षावली, सामने पक्का कुआँ—किसी धनी ने पथिको के उपकार के लिए बनवाया है, दिन का तीसरा पहर, सुनहली धूप छनकर आती हुई, जैसे वृक्षाकृति तरुणियाँ नये कोपलो की वासन्ती, गुलाबी और लाल साडियाँ पहने रग खेलने के लिए तैयार हो और प्रिय सूर्य की पिचकारियो से स्वर्ण मिश्रित, साडी के अनुरूप ही रग, उन पर चल रहा हो— उनकी साडियाँ और चमक रही हो, और गलती-स्वर्ण-रेणुओ मे हँसती, पलकें झुकाये, प्रेम की सुखद-मन्द समीर मे अल्प-अल्प डोल रही हो। सामने सजा एक घोडा बँधा है। राजपरिच्छदधारी, शस्त्रास्त्रो से सुसज्जित, राज-पुरुष के तौर पर एक पच्चीस-छब्बीस साल का युवा स्वामीजी के सामने बैठा वार्तालाप कर रहा है। स्वामीजी की उम्र पैंतीस साल के लगभग होगी। सामने गीता की पुस्तक खुली रक्खी है। नक्शा हाथ मे लिये देखते और उत्तर देते जा रहे हैं।

"फिर कहाँ जाना होगा, धीरसिंह ?" राजपरिच्छदधारी युवा ने स्वामीजी से पूछा।

"अभी कही नही।" गम्भीर दृष्टि से नक्शा देखते हुए धीरसिंह ने कहा।

"क्यो ?"

"उस पाख की तीजवाली जो चिट्ठी गुजरात और कान्यकुब्ज के रास्ते पकडी थी, वह हमारे महाराज के हक मे बुरी थी। हालाँकि हमे तुम्हें भी कुछ न बताना चाहिए, पर तुम्हे सब राहें सुझा देना हमारा धर्म है जबकि तुम छोटे भाई की तरह सच्चे दिल से मिले। महाराज की तरफ से उस चिट्ठी का उत्तर हमे यहाँ मिलेगा। उत्तर मिलने की तिथि लिख दी है।"

"धीरसिंह, तुम्हारे साथ कितनी बातें मालूम हुईं। अब मुझे हरएक मुसलमान व्यापारी पर शका होती है। तुमने कितनो को मौत के घाट उतारा ? अच्छा किया, नही तो भेद न खुलता। हमारा मतलब समझने के लिए कितने भेदिये लगे हैं ?"

"हाँ, बहुत-सी खराबियाँ हममे पैठ गयी है;—खैर तुम पढते जाओ, धीरे-धीरे समझोगे, हाँ, देखो, रामसिंह," धीरसिंह ने नक्शा एक बगल किया, रामसिंह झुककर देखने लगा, "यही वह मुकाम है। जिस तिथि तक भीमदेव ने उत्तर पाने के लिए लिखा था—उत्तर अवश्य नही पहुँच सकता—उसके बाद वह दूसरा दूत रवाना करेगा, सम्भव है, दूसरे रास्ते से करे, यह भी कि अलग-अलग राहो से दो-तीन भेजे, पर,—पर अब हमे पीछे न पडना चाहिए, पहली खबर तो मिल ही

चुकी है, बादवाली रोकी नही जा सकती, कुछ फायदा भी नही। अगर रोकने के लिए महाराज लिखेंगे तो चला जायगा, कान्यकुब्ज के और और लोगो को भी साथ ले लेगे।"

"अच्छा धीरसिंह!" धीरसिंह के मुखातिब होने पर रामसिंह ने कहा, "इस नक्शे के साथ तुम पकड जाओ तो?"

"तो क्या होगा? कहेगे कि देश का मानचित्र साधुओ को रखना पडता है, इससे घूमने की सुगमता रहती है, और विद्यार्थियो को भिन्न देशो की ज्ञानप्राप्ति की सहूलियत होती है।"

"धीरसिंह!" शका के स्वर मे रामसिंह ने कहा, "वह एक सवार आ रहा है।" दोनो निगाह उठाकर देखने लगे।

"तुम तैयार हो जाओ," धीरसिंह ने कहा, "इस रास्ते के आनेवाला हमारा अपना आदमी नही हो सकता। या तो गुप्तचर होगा या सवादवाहक। फन्दा ठीक कर लो। न उतरा तो पीछे लगकर अवश्य पकडना।"

"कोई भला आदमी न हो!"

"भला आदमी हुआ, तो कुछ छीनकर छोड देना। समझेगा, डाकू थे। हरकारा हुआ, तो खबर मालूम होगी।"

"फिर यह जगह छोडनी होगी, महाराज का हाल कैसे मालूम करोगे?"

"तर्क मत करो। रास्ता नही बन्द होता।"

रामसिंह तैयार हो गया। घोडा सजा था। बैठकर आगे के रास्ते धीरे-धीरे बढाया। अगर आता सवार उतरकर स्वामीजी से बातें करता, तो स्वामीजी उससे समझते, बढने पर आगे वह था।

सवार तेजी से बढता हुआ स्वामीजी को पार कर निकल गया। रामसिंह की बगल से निकला तो फन्दा डालकर फाँस लिया। घोडे की चाल तेज होने के कारण वह गिर गया। घोडा कुछ कदम बढकर खडा हो गया। साधारण सिपाही था। घबराकर मिन्नतें करने लगा। रामसिंह ने परिचय पूछा। उसने प्रभावतीवाला हाल बतलाया और कहा कि बलवन्त और महेश्वरसिंह के पत्र कान्यकुब्जेश्वर के पास लिये जा रहा था। तब तक रामसिंह ने देखा कि उसी रास्ते मे आगे धूल उड रही है। कोई आता है जानकर उससे पत्र लेकर कहा, "उस दूसरी राह से सीधे वापस चले जाओ। घोडा बेचकर अपने मालिक से कहना कि डाकुओ ने लूट लिया है। रास्ते मे चिट्ठियो का हाल किसी से कहा तो खैर न समझना।"

यह कहकर रामसिंह कन्नौज के रास्ते हवा हो गया।

कुछ रत्न वही गगा के किनारे एक पेड के नीचे यमुना ने गाट दिये थे। लुट जाने पर फिर सम्पन्न होने के विचार से। कुछ साथ लेकर चली थी। प्रयाग पहुँचकर सन्ध्या समय फिर ऐसा ही किया। कुछ ही रत्न खर्च के लिए लिये। एक पण्डा के यहाँ ठहरी।

प्रभा के हृदय मे तीव्र व्याकुलता थी। दिन-रात राजकुमार पर मन रक्खा रहता था। एकान्त मे यमुना समझाकर शान्त कर देती थी।

प्रभा को पण्डाजी के यहाँ छोडकर यमुना राज-परिच्छद, अस्त्र-शस्त्र तथा दो घोडे खरीदने के लिए बाजार गयी। एक नौकर प्रयाग मे कर लिया था, वह साथ था। घूम-घूमकर घोडो का बाजार देखने लगी। इसी समय एक अजाने आदमी को कुमार देव के जैसे घोडे को लिये खडा देखा। चकित होकर इधर-उधर देखने लगी। कुछ दूर, राजकुमार की शिकारवाली पोशाक पहने महाराज शिवस्वरूप को खडा देखा। आश्चर्य बिल्कुल नही, हर्ष अत्यधिक हुआ। कारण समझने की उसे देर न हुई। महाराज के बच जाने और दूसरी जगह विदेश मे काम निकालने की बात सोचकर बडी खुश हुई। पहले महाराज को अपना नौकर भेजकर डरवाना चाहा, पर बात फैल जाने की शका कर खुद चली। महाराज कभी अपनी पोशाक देखते थे, कभी गर्व के साथ आकाश। इसी आकाशदर्शन के समय यमुना ने खोद-कर कहा, "क्या देखते हो ?"

चौंककर महाराज एक चौक उछल गये। ऐसे घबराये, जैसे पकड गये हो। उसी निगाह से देखा। फिर यमुना को पहचानकर वैसे ही खुश भी हुए। उँगली के इशारे बोलने को मनाकर यमुना उन्हे एकान्त मे ले गयी। आने का कारण पूछा। महाराज ने भगने का किस्सा बयान कर प्रयाग मे रिश्तेदार के यहाँ बचने के इरादे से आये हुए है, कहा। यमुना ने सोचा, इस रूप मे प्रभा के सामने पिछौटा खडा कर दूँ। सोचकर मुस्करायी। फिर समय को देखकर अनुचित होगा, सोचकर आवाज मे झिडकी देती हुई बोली, "तुम यहाँ शिकार की पोशाक बाजार मे पहनकर आये हो, लोगो को समझते हुए देर भी न होगी कि तुम चोर हो ?"

महाराज घबरा गये। "अरे भाई" कहा, "हम तो दबाव मे बचने के लिए आये थे।"

"लेकिन बच भी गये, तो कहाँ जाओगे ?"

"अब तो तेरा ही सहारा है।" कहकर देखने लगे।

"अच्छा तो घबराओ मत, राजकुमारी यहाँ हैं। हमारे साथ रहो, भोजन पकाया करना।"

महाराज खुश हो गये। यमुना ने घोडा बेचने को मना कर दिया। फिर उन्हे साथ लेकर दो अच्छे घोडे और शस्त्र-परिच्छद आदि, साधारण तथा राजसी, प्रभा के लिए कुछ तरह के, खरीद लिये। फिर उन्हे प्रभा के पास ले गयी।

उनका हाल मालूम कर, उन्हे देखकर प्रभा मुस्करा दी।

पूछने पर, जैसा सिखलाया गया था, महाराज ने यमुना के पण्डाजी को अपने पूरे परिचय के साथ अपने यजमानों का अधूरा परिचय बतलाया, और अपने रिश्तेदार को वैसा ही समझाकर, प्रभा के पास आ गये।

शाम को यमुना गाडी रकम उखाडकर नौकर तथा पण्डाजी को पारिश्रमिक, दान, पुरस्कार आदि देकर, तैयार हो गयी। राजकुमार का घोडा और परिच्छद-वर्म आदि प्रभा के लिए महाराज से खरीद लिया, प्रभा ने वही पोशाक पहनी और उसी घोडे पर सवार हुई। खरीदे हुए अनुरूप परिच्छद महाराज और यमुना ने पहिने और अपने-अपने घोडे पर सवार हुए। सुवह होते-होते एक-साथ प्रस्थान किया।

एक जगह रात को स्वल्पमात्र आराम कर तेज घोडे वढाते हुए यमुना के इच्छित मार्ग से जा रहे थे। सवसे पीछे होकर, धीरे-धीरे घोड़ा वढाते हुए वायी कलाई के पेंचदार पोले कंकण का मुँह खोलकर यमुना ने एक चिट्ठी निकाली, और पढकर, उसी तरह रखकर फिर घोडा वढाया। इधर-उधर देखती, कुछ समझने की कोशिश करती जा रही थी। दूर से कुआँ, पेड और परिस्थिति देखकर सवारो को वही रुकने के लिए आवाज दी। पास पहुँचकर प्रभा तथा महाराज से वोली, "ठिकाने पर पहुँचने से पहले महात्मा के दर्शन हुए, यह शुभ लच्छन है। हमे कुछ देर यहाँ ठहरकर चलना चाहिए।"

भापा पर प्रभा मुस्कराकर घोडे की चाल धीमी करने लगी। महाराज गम्भीर होकर वोले, "तू ठीक कहती है। अव सव सिद्ध हे।"

स्वामी धीरानन्द की धूनी करीव आ गयी। सवारो ने घोडो को रोक दिया। उतर पडे। यमुना ने अपने घोडे की लगाम डाल से वाँधकर थामे खडी प्रभा के घोडे को भी लगभग वाँध दी। महाराज भी निवृत्त होकर यमुना की वगल मे हाथ जोडकर खडे भक्तिभाव से स्वामीजी को देखने लगे। स्वामीजी एकाएक यमुना को देख रहे थे। आवेश मे जैसे उठकर खडे हो गये। यमुना भी आवेश मे थी। प्रणाम की याद न रही। प्रभा यमुना का अनुगमन करने के विचार से मौन, पक्ष्मल आँखें झुकाये खडी रही।

होश मे आ यमुना वोली, "सखी, स्वामी को माथा टेककर परनाम करो और मन चाहे हुए वर की कामना करो।" उसी वक्त महाराज से कहा, "महाराज, इस भेप की महिमा है, आओ, हम लोग भी स्वामीजी को दण्डवत् करें, —दुखिया है, महात्माजी की किरपा का सहारा है।" यमुना ने सिर टेककर प्रणाम किया। सिर मे धूल लगी रह गयी। महाराज दोनो हाथ फैलाकर पेट के वल लम्वे हो , दण्डवत् करने लगे।

फिर उठकर धूल झाडने लगे, देख-देखकर स्वामी मुस्कराते रहे। तीनो धूनी के सामने वैठ गये।

रामसिंह कुछ दूर आगे वढकर आते हुए सवारो के निकल जाने की प्रतीक्षा करने लगा। पर वडी देर हो गयी, वे न निकले। कई थे। स्वामीजी अकेले। शका की कोई खास वात न होने पर भी, क्योंकि विरोधी शक्ति को प्रवल देखने पर स्वामीजी, स्वामीजी वने रहेगे और उधर से उपद्रव की सम्भावना भी नही सोच-

कर रामसिंह से लौटे विना रहा न गया। वे पत्र भी स्वामीजी को दिखाने थे यद्यपि उनमे अपने काम की कोई वात न थी।

प्रभा, यमुना और महाराज से कुछ परिचय पूछे विना स्वामीजी लगातार भगवद्धर्म और भागवत का व्याख्यान करते जा रहे थे। महाराज मुँह फैलाये स्वय अवाङ्मनमोगोचरम् हो रहे थे, यमुना स्वामीजी की भगवद्धर्म व्याख्या की खाली जगह रहस्यमयी 'हाँ' द्वारा भर देती थी, प्रभा प्रसन्नचित्त पद्मासन से शान्त वैठी हुई सुन रही थी। इसी समय रामसिंह भी आ गया और एक तरफ घोडा वाँधकर, स्वामीजी को देखकर मुस्कराते हुए—समझकर दण्डवत् करके एक वगल मे वैठ गया।

स्वामीजी की व्याख्या समाप्त हुई तव मौका देखकर वोला, "स्वामीजी मुझ पर वडी विपत्ति है। घर से ये चिट्ठियाँ आयी है। आपके आशीर्वाद से मेरा दु ख दूर हो जायगा। देखिए, मुझ पर विना मेघ के ही वज्रपात हो गया है।" कहकर छीनी हुई चिट्ठियाँ वढा दी। मुहरे उसने तोड डाली थी। लिखावट एक ही तरफ थी। सामने वैठे हुए न देख सकते थे। स्वामीजी चिट्ठी लेकर पढने लगे। यमुना गौर से आगन्तुक को देखती रही। पढकर स्वामी ने समझ की दृष्टि मे यमुना को देखा, फिर रामसिंह को चिट्ठियाँ देते हुए कहा, "हाँ, विपत्ति तुम पर वहुत है, पर धैर्य रक्खो, वज्र नही गिरा सिर्फ वादल घिरे हैं, हवा से कट-छँट जायँगे, हवा ईश्वर की कृपा मे वहनेवाली है, मै दिव्य दृष्टि से देख रहा हूँ।"

चिट्ठियो को फेंटे मे रखकर रामसिंह ने प्रणाम किया। कहा, 'महाराज, आज्ञा हो तो अव चलूँ।"

"अभी रुको," सन्यासी वोले, 'ये आगन्तुक जान पडते है। क्यो ?" यमुना की ओर देखा।

"हाँ स्वामीजी, हम इस रास्ते से कभी नहीं आये," उसी वक्त यमुना ने जवाव दिया।

'इन्हे पहले अच्छी जगह छोड दो; यह उपकार तुम्हारे लिए भी उपकार होगा।"

रामसिंह मतलव अच्छी तरह समझ न सका। वैठ गया। इसी वीच और इससे पहले और भी इक्के-दुक्के पथिक, ग्रामीण, व्यापारी तथा सिपाही आये और दण्ड-वत् करके चले गये थे।

प्रभा ने यमुना की तरफ देखा। यमुना ने वैठी रहने का सकेत किया। शाम हो रही थी। गो-धूलि को कुछ ही समय रह गया था। यमुना ने नेत्रपल्लवी द्वारा स्वामीजी से पूछा कि वह दूसरा मनुष्य यदि परिचित है तो नेत्रपल्लवी जानता है या नही। उसी तरह स्वामीजी ने उत्तर दिया कि नही जानता। यमुना ने फिर पूछा कि एकान्त मे वाते करने की फुर्सत होगी या नही। उत्तर मिला, कुछ और ठहरो, चिन्ता न करो।

फिर स्वामीजी ने रामसिंह से कहा, "कष्ट तो होगा, पर सज्जन ही सज्जनो का उपकार करते है। साधु का दिया भोजन-पानी इनके लिए उचित नही जव तक इन्ही के धन का प्रसाद न हो। इनसे दाम लेकर इस ओर तीन कोस पर वाजार

है, मिष्ठान्न ले आओ।"

भोजन कुछ बँधा था। पर यमुना ने टोका नही। दाम निकालकर दे दिया। रामसिंह घोडे पर चढकर तरह-तरह के विचार लडाता हुआ चला गया।

ग्यारह

सन्ध्या हो गयी। एकान्त मे आवश्यक बातें करने की यमुना की प्रार्थना स्वामीजी ने मजूर कर ली। महाराज शिवस्वरूप, किसी आध्यात्मिक विषय पर परामर्श होगा सोचकर गम्भीर हो गये। प्रभा ने यमुना के एकान्त आलाप को अपने अभीष्ट का कारण समझा।

अन्धकार ने दिशाओ को ढंक लिया। यह वैसा ही अँधेरा है जिसमे यमुना देवी और वीरसिंह जनता की दृष्टि से छिपे हुए है, जिसमे मच्चे वीरो का इतिहास—सैनिको की कीर्ति सेनापति और राजा के अधिकार मे चली जाती है—इर्द-गिर्द की जनता कुछ दिन नाम जपकर भूल जाती है।

इसी अँधेरे मे हृष्ट-पुष्ट, सचेत, विजयी युवा वीरसिंह और यमुना साथ-साथ दूर एकान्त के लिए चले जा रहे है। इसी तरह दूर एकान्त मे चले आये है, और कार्य-बन्धनो मे पडे दूर एकान्त में रहते है। फिर भी किसी को एकान्त का दु ख नही। प्राणो मे मिलकर एक है। हाय रे देश! कितने फूल इस प्रकार सामयिक प्रवाह मे चढकर दृष्टि से दूर अँधेरे मे बहते हुए अदृश्य हो गये, पर किसी ने तत्त्व-रूप को न देखा, सब बाहरी चहल-पहल मे भूले रहे, इतिहासवेत्ताओ के सत्य के भुलावे मे आश्वस्त।

यह अँधेरा चिरन्तन है। दोनो इसका मर्म समझते है। दोनो ने इसे प्यार किया है, इसलिए दोनो असाधारण होकर साधारण हैं। देश अँधेरे मे है, प्रकाश देख नही पाता, वे स्व-प्रकाश दोनो इसीलिए अँधेरे मे रहकर देश को प्रकाशित करना चाहते हैं जहाँ तक मम्भाव्यता उनके द्वारा पहुँचे।

ऐसे ही अँधेरे मे वीरसिंह नियत समय पर दलमऊ जाकर यमुना से मिलते रहे। ऐसे ही अँधेरे मे दोनो ने सूर्य से भी प्रखर आलोक मे एक-दूसरे को देखा, आज ऐसे ही अँधेरे मे दोनो फिर एक-दूसरे के साथी है। अँधेरे का मित्र कितना दुर्लभ है—अँधेरे का मित्र कितना महान्!

दोनो दूर निकल आये। दोनो मौन है। सामने खेतो के बीच पेडो की छाया मे सन्यासी-रूप महावीर वीरसिंह खडे हो गये। उसी छाया मे प्रलम्ब, पुष्ट, शोभना, श्याम, यमुना ने भुजो मे भरकर, केवल एक सम्बोधन किया। वीरसिंह नीरव, स्वर के अविनश्वर आवेश मे बँधे, वैसे ही बाँधकर खडे हो गये। देह की शिरा-शिरा श्लथ हो चली। आप-ही-आप दोनो एक ही इच्छा से जैसे बैठ गये। यमुना

के हाथ को आप-ही-आप वीरसिंह के हाथ ने ले लिया। भाषा इस भाव के प्रकाशन मे अक्षम, तिरोहित हो गयी। कुछ काल ऐसा ही बीता।

"यह दूसरी कौन है ?—बल्कि हाल मालूम हो चुका है।" सँभलकर वीरसिंह ने पूछा, हाथ मे हाथ लिये रहे।

"देवी प्रभावती, दलमऊ की राजकन्या, कुमार देव की परिणीता धर्मपत्नी, क्या हाल मालूम हुआ ?"

"वह रामसिंह अपना आदमी है। दो पत्र अभी उसने हरकारे से छीने हैं। बलवन्तसिंह और महेश्वरसिंह के नामाक्षर है। देव पर दोषारोप है कि गान्धर्व विवाह प्रभावती को बलात् किया, महेश्वर और बलवन्त को पिछली शत्रुता के कारण नीचा दिखाने के अभिप्राय से। प्रभावती विवाहिता हो जाने की वजह पति के विरोध मे साक्ष्य न देगी। महेश्वरसिंह कन्या का बलवन्त से विवाह करना चाहते थे, यह सूचना प्रसिद्ध हो चुकी थी। बलवन्त ने देव को नाव पर वन्दी किया। अब अपने साथ ले जा रहे हैं। उधर के सरदारो से कर लेकर जल्द राज-राजेश्वर की सेवा मे उपस्थित होगे।"

"हूँ।" यमुना कुछ देर सोचती रही, फिर बोली, "हम लोग गगा तैरकर बचे। घोडा महाराज के यहाँ था—वे महाराज, शिवस्वरूप गगापुत्र हैं, दासियो से साक्ष्य मिल चुका था, दूसरे दिन पूछताछ की गयी, अवसर पा महाराज घोडे पर चढकर भागे, प्रयाग मे सम्बन्धी थे—वहाँ गये; हम लोग वही थे; वही से आवश्यक पूर्ति करके चलना सोचा था, उनसे मुलाकात हुई, साथ ले लिया। कुमार को बचाना है।"

"तुम्हारे द्वारा असम्भव, मुझमे सम्भव होगा ?"

"नही, सहायता के लिए कहा।"

"युद्ध करने का विचार है ?"

"युद्ध उचित नही अगर सीधे काम हो जाय।"

"तो समय के लिए शक्ति-सचय करना है ?"

"हाँ।"

"अच्छा, जैसी आज्ञा होगी।"

अँधेरे मे मुस्कराकर यमुना ने प्रिय का हाथ खीचा, "समय की स्थिति कैसी है ?"

"अत्यन्त चिन्ताजनक।"

"गुरुदेव ने बहुत पहले कहा था, ये विचार बदल नही सकते और पूरा परिवर्तन मन-सम्भूत, जाति का ही पूरा परिवर्तन है, इसलिए समय-सापेक्ष।"

वीरसिंह मौन सुनते रहे।

"क्या कुछ आशा भी है ?" यमुना ने पूछा।

"देखा, केवल प्राण-पण पर विश्वास है और कुछ नही। विरोध की वायु से देश समाच्छन्न है। पृथ्वीराज की वीरता पर बडे राज्य की हर राजकुमारी मुग्ध होती है, जामवन्ती के बाद, इच्छन कुमारी, शशिवृता, इन्द्रावती, हसावती आदि का यही भाव रहा, अब कान्यकुब्ज राजकुमारी सयोगिता ने भी उन्ही की कामना

की है। तुम जानती हो, इन विवाहो के कारण किस प्रकार विरोध वढा। इस वार दोनो शक्तियो के नष्ट होने की सम्भावना है।"

"वीर-पूजा मे भी वडप्पन का अभिमान भर गया है। मुझे पद्मावती का चरित्र महाभारत-भर मे इसलिए अच्छा लगता है कि उन्होने कर्ण को केवल वीर समझकर वरा। कितनी विशालता उनके हृदय मे थी! आज वीरत्व के कमल पर पडती हुई चन्द्रकला-रूपा कुमारियाँ उसे विकसित नही और संकुचित करती जा रही है, कीर्ति-लोलुपता के कारण वे समझ नही पाती। आज वीरत्व की पहचान नही, दम्भ का परिचय है—केवल राज-सत्ता का अभिमान, इसलिए प्रेम का मूल स्रोत खो गया है, ये वरे हुए वीर को वरकर कीर्ति को वरती है, जो स्त्री है।"

यमुना का मर्म समझकर वीरसिंह नत-मस्तक, अँधेरे मे बैठे रहे। फिर स्थान आदि के सम्बन्ध मे यमुना ने राय ली, वीरसिंह वतलाते रहे। यह भी कहा कि लालगढ-नरेश कान्यकुब्ज मे थे। कुछ अपर अलाप हुए। आवेश को सँभालकर यमुना ने मिलते रहने की प्रार्थना की। स्थिर होकर वीरसिंह प्रिया का हाथ लेकर खडे हो गये, यमुना भी खडी हो गयी। उसी तरह चलते-चलते वीरसिंह ने कहा, "तुम्हारे प्रिय ऋण को!"

"ऋण क्या है?"

"क्या कहूँ!"

"तुम दुखी होते हो?"

"मैं दुखी तो था ही, पर तुम—?"

"इसमे बडा सुख मैं नही चाहती। पति के पास भारत की किसी भी वडी राजकुमारी का मुझसे ऊँचा आसन नही।"

फिर धीरे-धीरे, बँधी चलती हुई बोली, "सयोगिता की वडी प्रशसा सुनी है, इच्छा है—देखे, वीरा है।"

स्थल कुछ दूर रह गया। दोनो अलग हो गये। जब पहुँचे तब रामसिंह न आया था। आने पर जल-पान करा, अपनी ही जगह पर छोड आने के लिए स्वामीजी ने आज्ञा दी। प्रभावती को अच्छी तरह देख लिया।

बारह

गोमती की उपनदी सरायन के तट पर प्रसिद्ध दुर्ग मणिपुर अवस्थित है। इसे अव मनवा कहते हैं। इसके राजा वलवन्तसिंह अपनी कार्यदक्षता के कारण पूर्वी प्रदेशो के लिए कान्यकुब्जेश के दक्षिण हस्त हो रहे हैं। इधर की राजकीय व्यवस्था के यही सवसे वडे अधिकारी, इसलिए सम्मान्य है।

मनवा चारो ओर से ऊँची चारदीवार द्वारा घिरा हुआ है। वीच की प्रशस्त

भूमि मे पृथक्-पृथक् आवास तथा प्रासाद शोभन क्यारियो के रूप मे निर्मित है। यहाँ की कारीगरी मे गुम्बदो की अधिकता है। सूर्य और चन्द्र की रश्मियो मे सैकडो सुवर्ण-कलश, एक-एक श्रेणी मे एक-एक पत्र और मध्य मे छ दलो के फूल की आकृति लिये, आकाश मे पूर्ण पारिजात की तरह झलमला रहे है; ऊपर हल्के-पद खडी, कभी रवि और कभी शशि का एक बगल वालो मे हीरा लगाये, नीलिमा विना शब्द के जैसे पथिक को अपने शुभ्र विकास का परिचय दे रही हो। विलास की सहस्रो तरगें दुर्ग से दूर-दूर तक ग्रामीणो को आश्चर्य की शक्ति से प्लावित कर रही हैं। ऐश्वर्य के मधुर आतक मे नत-मस्तक सभी जैसे हृदय से उसे वरण कर रहे हो। उसके विरोध मे आने की शक्ति उनमे नही, जैसे स्वीकार कर रहे हो वे भी यही चाहते है, ईश्वर, धर्म और पूजार्चन मे जैसे यही काक्षित स्वर्ग उनके हृदय मे छिपा हुआ हो।

सन्ध्या हो रही है। आकाश मे पीली किरणें पीलू गा रही हैं। ससार की परिवर्तनशीलता की प्रमाणस्वरूपा सरायन ताल-ताल पर मन्द नृत्य करती वहती जा रही है। राजकुमारी रत्नावली सोपान पर मखमल के विछे सुकोमल आसन पर वैठी तन्मय हो रही है, अगो से प्रिय-करुणावेश अज्ञात अपरिचित प्रिय की ओर प्रवाहित है—साक्षात् कमलिनी जैसे ध्यान कर रही हो।

राजकुमारी की वही उम्र है जव प्रिय की तलाश मे दृष्टि एक दूसरा रूप, एक नया आलोक पाती है। प्रति अग की कला आप विकसित हो अपनी आकुलता प्रदर्शित करती है। यौवन त्रिभुवन पर विजय प्राप्त करने को समुद्यत होता है। वाणी शब्द-शब्द पर वीणा-झङ्कार करती है। चमत्कार अपना पूर्व प्रसार पाता है। छल और कौशल चपल हो उठते है। लावण्य वँधकर रह जाता है।

दासियाँ यत्र-तत्र आज्ञा की प्रतीक्षा मे खडी हैं। एक वाहर से भीतर, घाट पर, आयी और हाथ जोडकर वोली, "कुमारीजी, एक भिक्षुक दर्शन कर कुछ निवेदन करना चाहता है।"

वैसे ही ध्यान-नेत्रो मे दासी को देखती हुई रत्नावली ने भिक्षुक को ले आने की आज्ञा दी।

यह वही भिक्षुक है जिसे राजकुमार देव ने अपनी माला देकर प्रभावाली वदली थी। भीख माँगता हुआ यहाँ पहुँचा है। कई अच्छे घर रास्ते मे मिले पर डरकर मालावाली वात नही कही। मालिको से कुछ मिलने के वदले माला के छिन जाने का डर अधिक था। यह सोच रहा था कि कोई सहृदया वडे घर की युवती या तरुणी मिले तो उसके गले मे पुरस्कार-स्वरूप डालकर मुद्राओ से उचित विनिमय की प्रार्थना करे, अधिक मुद्राएँ हुईं तो अधिकाश वही रखकर धीरे-धीरे लेता रहे। इस योग्य उसे कोई नही मिली। यहाँ की रत्नावली पर विश्वास है। वडी देर मे वाहर खडा हुआ था। एक दासी से पूछकर, रत्नावली की परिचारिका जान, पैरो पडकर कुवूल करा लिया है कि वह राजकुमारी के पास पहुँचा देगी। राजकुमारी के पास जाने का कारण नही कहा। रत्नावली की आज्ञा पाकर दासी भिक्षुक को सरायन के घाट पर ले गयी। घाट पर वैठी राजकुमारी को देखकर भिक्षुक ने पहले हाथ जोडकर कुछ विनय-शब्द कहे, फिर झोली से माला निकाल-

कर दीनता से मुस्कराते हुए गले मे डाल दी, और भिक्षुक के पास उसकी कोई शोभा नही, बल्कि उससे असहाय प्राणो का भय है, राजकुमारी ही उसकी योग्यता रखती है, बदले मे थोडा-थोडा-सा धन समय-असमय ले-लेकर अपने बुढापे के दिन भगवद्भजन मे वितायेगा, इस आशा से आया हुआ है, समझा दिया। भावनामयी कुमारी दया के पुष्प-सी खुली रहती है। भिक्षुक को जीवन-पर्यन्त के लिए अभय मिला। कुछ धन उसी समय लाकर देने के लिए उसने सदय आज्ञा की। सफल-मनोरथ हो भिक्षुक 'मनोवाञ्छाएँ पूर्ण हो'—आशीर्वाद देकर वाहर गया।

सन्ध्या होते-होते वन्दी कुमार देव को लिये हुए बलवन्त की वाहिनी पहुँची। दुर्ग मे सन्नाटा छा गया। अपने जो-जो रक्षक थे, उन्हे बलवन्त ने देव का सच्चा वृत्तान्त न कहने की पहले आज्ञा कर दी थी। रथ की चाल से, हिलने के कारण देव के घावो का रूप और भयानक हो गया था। दुर्ग के एक अच्छे प्रासाद मे उन्हे स्थान दिया गया। सेवक तथा रक्षक नियुक्त कर दिये गये। फाटक मे आज्ञा कर दी गयी कि कुमार देव पर सदा दृष्टि रक्खी जाय, वे किसी कारण वन्दी हैं। चिकित्सा के लिए भी राजवैद्यो द्वारा प्रबन्ध करा दिया गया है। खजाना जमा हो गया। सिपाही हथियार खोलकर विश्राम करने लगे। कुछ देर मे खबर हुई, कल फिर महाराज के साथ कर-ग्रहण के लिए वाहर जाना होगा।

बलवन्तसिंह ने रनवास मे विश्राम करते, अपने प्रबन्ध पर सोचते, राज्य के इधर के समाचार मालूम करते हुए यह निश्चय किया कि यद्यपि दलमऊ से कान्यकुब्जेश को सूचना दी जा चुकी है, फिर भी यह और अच्छा होगा कि वहाँ से भी उन्हे एक उससे भी पुष्ट, रचनात्मक, प्रमाण के तौर पर सूचना दे दी जाय, और उनकी मन तुष्टि के लिए लाये हुए धन का भी अधिकाश भेज दिया जाय, इस तरह कुमार देव के घायल होने और वन्दी करने का अपराध पूरी तरह से जाता रहेगा, उल्टे दोषारोपण दृढ होगा।

इस विचार से वही वृत्तान्त उन्होने बडे नम्र भाव से महाराजाधिराज जयचन्द को लिखा। राज-कार्य से वे स्वय सेवा मे उपस्थित होकर निवेदन नही कर सके—बार-बार स्मरण दिलाया, अपना भविष्य कार्यक्रम लिखा और इस समय कुमार देव की चिकित्सा करा रहे है, इस दयालुता का भी दबे शब्दो मे उल्लेख किया।

रानियो के पूछने पर कुमार देव का यथार्थ हाल उन्होने न बताया। उस सम्बन्ध मे दूसरा प्रबन्ध बाँधकर बहला दिया। फिर गर्व मे पहले के अपमान की याद दिलायी। रानियाँ चुप हो गयी। आराम करते हुए राजकार्य मे शीघ्र फुर्सत पाकर बलवन्त कन्नौज जाने की सोचने लगे। यदि इस बार वार पूरा बैठ गया, तो मुमकिन है, महेन्द्रपाल अधिकार के स्वत्व से वचित किये जायँ—तब राज्य का आस-पास के सरदारो मे किस प्रकार विभाजन होगा आदि-आदि प्रासगिक बाते सोचते रहे। प्रात काल पत्र और कोष बहुत-सा रक्षको के साथ भेजकर अपना दल लेकर कर के लिए वाहर प्रस्थान कर गये।

रत्नावली पर यमुना देवी का सबसे अधिक प्रभाव था। सत्य और तपस्या की

ओर मे वह उसी का छोर पकडे हुए थी। जब देवी यमुना की घटना हुई थी, तब वह एक बालिका थी, पर ऐसी जिमे सारी स्मृतियाँ याद हो। वहाँ और कोई भी नशा ऐसा न था जो उसके हृदय को किसी दिव्य शक्ति से स्पन्दित करता। राजकुमार देव वहाँ के है जहाँ के वीरसिंह थे। एक साथ रत्नावली का हृदय सुहृत्-कल्पनाओ से उच्छ्वासित हो उठा—कितने स्वप्न एक साथ खुलकर राज-कुमार से लिपटने लगे। कोई भी ससार मे प्यार करने के लिए है, तो वह वही है। आज तक वह न समझ सकी थी।

आज एकाएक समझ की कली पूरे जोर से चटक गयी। अभी उसने देखा नही, केवल सुना है। वे घायल होकर आये हैं, जरूर एक को बहुतो ने घेरा या धोखे मे घायल हुए है। उस देश के एक का एक क्या बिगाड सकता है। राजकुमार अविवाहित है।

एक के बाद एक सुधर भावनाएँ फूटने लगी। कुमारी राजकुमार को देखने के लिए व्याकुल हो गयी। घायल की सेवा-शुश्रूषा उसका धर्म है। उस कार्य मे कोई रोक क्या हो सकती है ? बलवन्त उसका भाई है, वह सच्चे मार्ग पर उसकी गति को रोककर भी नही रोक सकता। वह अपना रास्ता आप पहचानेगी। दासी को देख आने के लिए भेजकर मालूम किया, राजकुमार जग रहे है।

जितने स्वप्नो से वह राजकुमार को सजा रही थी, उतने मे खुद भी सजी जा रही थी। दो सेविकाएँ साथ लेकर राजकुमार के महल को चली। रात को वैद्यो ने घाव को साफ कर ओपधि लगा दिया था। कुमार यथेष्ट अशान्ति के बाद घोर निद्रा मे सो रहे थे। जगे, तब चिन्ता-स्नायुओ का प्रवाह प्रभा की ओर स्वभावतः बहा। कुछ देर पार्श्व-वर्तन करने के बाद उसी के ध्यान मे अन्तर्हित हो गये। एक तन्द्रा सी आ गयी। स्वप्न देखने लगे—प्रभा की भावना भरी-आँखो मे आँसू हैं; वह उन्हे खोजती हुई जहाँ पहुँची है—वह एक वन है, वहाँ कोई नही, कोई राजकुमार को घायल कर हाथ-पैर बाँधकर डाल गया है, प्रभा मुक्त हाथो से उनके बन्धन खोल रही है, अपने हृदय की सम्पूर्ण सहानुभूति मे उनकी पीडा को प्रशमित करती हुई, अपने सर्वस्व का अर्पण कर उनका सर्वस्व ले रही है।—उन्ही की तरह उसे व्यथा है।

सुखकर स्वप्न के भीतर से राजकुमार की पलकें खुली। देखा—अपूर्व सुन्दरी तरुणी हृदय की समस्त प्रीत दृष्टि से देती हुई, देख रही है, उनके पलँग के मध्य-भाग मे बैठी हुई, निस्सकोच, सुगन्धि से कक्ष भरा हुआ, दो परिचारिकाएँ दो ओर से मन्द-मन्द व्यजन करती हुई। राजकुमार ने अच्छी तरह देखा। यह प्रभा न थी। वन न था। होश मे आये।

तरुणी को देखकर मर्यादा के विचार मे उठने लगे। हृदय पर हाथ रखकर उसने रोक दिया, "मैं सेविका हूँ, लेटिए, कष्ट होगा।"

राजकुमार उडी दृष्टि से देखते रहे। कई भाव व्यजित हो रहे थे। समझकर तरुणी बोली, "मैं देवी त्रियामा की छोटी बहन रत्नावली हूँ। वे यमुना नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ इसी नाम मे वे पुकारी जाती थी।" कहकर राजकुमारी देखती रही।

यह हृदय का सम्प्रदान उतना ही निश्छल था, जितना प्रभा की ओर से हुआ था। मनुष्य मे क्या शक्ति थी कि वह इसे रोक देती ?

राजकुमार की दृष्टि से खुलते हुए प्रभा की याद के कितने मर्म रत्नावली की दृष्टि से विनय कर रहे हैं, वह नही समझी।

तेरह

वलवन्तसिंह का भेजा हुआ कर पहुँच चुका। महेश्वरसिंह स्वय आकर मिले, और उनकी जवानी कान्यकुब्जेश को जैसा मालूम हुआ, वलवन्तसिंह का पक्ष उससे और दृढ हो गया, विशेषत उनका मौन, प्रमाण हुआ। महाराज जयचन्द अपने मन्त्रणा-कक्ष मे वैठे विचार कर रहे है। उच्च द्वितल सौध का वृहत् प्रकोष्ठ, ऊँचा रत्नासन, स्वर्ण-मण्डित वहुचित्रमाला प्रकोष्ठाच्छद, कारुखचित, विशाल स्तम्भाधार, मसृण पद-सुख-स्पर्श ईरानी कालीन जिस पर सरदार वैठे हुए। रत्नाधारो पर सुगन्धित तैल के दीपक जल रहे हैं। सामने प्रशान्त गगा प्रवाहित। उदार स्वच्छ आकाश द्वारो से देख पडता हुआ है। दूर नक्षत्रो की नील ज्योति आती हुई। सरदार सिर झुकाये अपने स्वार्थ की चिन्ता मे लीन। एक ओर महेश्वरसिंह वैठे हुए। केवल महेन्द्रपाल अनुपस्थित है, न वुलाये जाने के कारण।

स्वतन्त्रता खोकर मनुष्य किस प्रकार सरदार होता है, इसके प्रमाण कभी संसार मे विरल नही हुए। तव व्यक्तिवाद और प्रवल था। इसलिए हर व्यक्ति, जिस तरह भी हुआ, सिर देकर या लेकर, सरदार होने के प्रयत्न मे था। यह सिर लेने और देने का अभ्यास-अध्यास पडोस से ही शुरु होता था, हो भी सकता है, इसी तरह उत्तरोत्तर फैलता हुआ मनुष्य को एक वृहत् वृत्त मे सरदार के रूप से स्थित करता था। आज एक वैसा ही दृश्य उपस्थित है। जो लोग अपनी क्षुद्रता के कारण महाराज जयचन्द को सिर झुकाकर वडे हुए थे, वे समय समझकर, और वडे होने की चिन्ता मे लीन है। शक्ति मे छोटा होकर वडे से लडना राजनीति नही—किसी प्रकार का विरोध नही; वडे की हर वात मे, गीत की ताल पर वजते वाजे की तरह, साथ रहना चाहिए, तभी सिद्धि प्राप्त हो सकती है, उसकी वात मे ताल या वेताल वात है, इसका निर्णय वाजा नही कर सकता। राजनीति, विराजमान होने की पद्धति ऐसी ही है। हमेशा रही, हमेशा रहेगी। इसकी साधनिका है—जीव को भोजन मिलना चाहिए, भोजन से वैर जीवन का नाश—आत्महत्या है। वहाँ सव सरदार इस कला के पण्डित है। जिधर राजदृष्टि हुई, उधर शून्य क्यो न हो, उस दर्शन के अनुरूप सव सम्यक् सृष्टि-तत्त्व देखते है। आज महेन्द्रपाल पर महाराज क्रुद्ध हैं, इसलिए सरदार अनुरूप कैसे हो ?

महेन्द्रपाल स्वय ऐसे सरदार थे। वहुत जाल डाले जा चुके थे, जाल काटकर,

निकल चुके थे। कभी सोचा न था कि जल मे रहने मे एक दिन जाल मे आना होता है। दूसरो की तरह उनका भी अभ्याम था, 'फाँसेंगे, फँसेंगे नही।'

आज दूसरे उन्हे फँसता देखकर फाँसने के विचार मे हैं। इसमे स्वास्थ्य-लाभ की सम्भावना है। लालगढ वेदखल किया गया, तो पडोसवालो को उसका हिस्सा मिलेगा। जो पडोस के नही, उन्हे धन-रत्न। दोप पिता-पुत्र दोनो पर है। एक वार वैर सावित हो चुका है। उसमे वलवन्तसिह की मानहानि हुई थी।

"आप लोग वलवन्त के विषय मे क्या कहते है?"

"महाराजाधिराज की ही आज्ञा यथार्थ आज्ञा है।" खजुआ के सरदार ने सिर खुजलाते भक्ति-भाव मे उठकर हाथ जोडे।

"महाराज राजेश्वर की आज्ञा हमारे लिए ईश्वर की आज्ञा है। ईश्वर की कोई अपनी जिह्वा नही।" महेश्वरसिह हाथ जोडे विनयपूर्वक कहकर सवको देखते हुए वैठ गये।

कुछ सरदारो ने एक साथ उठकर महेश्वरसिह के कथन मे तिलार्द्ध झूठ नही, इसकी दोहाई दी।

"हमे वलवन्त का मौन रहना महत्तायुक्त सच जान पडता है।" महाराज जयचन्द ने कहा।

"वलवन्त जैसे मनुष्य!" शिवराजपुर के सरदार वोले।

"इसमे महेन्द्रपाल की चाल है।" महाराज जयचन्द ने कहा।

"महाराजाधिराज इसमे सन्देह नही; वे वडे चालाक आदमी है।" एक सरदार ने कहा।

प्राणो को वल मिला। महेश्वरसिह वोले, "महाराजाधिराज के डर से मैं नही कह सका, वरना लोगो से ऐसे प्रमाण मिले हैं। महेन्द्रपाल अपने पुत्र से कहकर यहाँ सफाई के लिए चले आये थे।"

"हाँ, यह वहुत वडी मानहानि है। दूसरी वार स्पर्द्धा की।" गम्भीर होकर महाराज वोले।

"महाराज, उनकी तो आदत पड गयी है। वलवन्तसिह को महाराज की ओर से सम्मान मिला है, वे ऐसे है भी! यह महेन्द्रपाल देख नही सकते।" एक ने कहा।

दूसरा वोला, "किसी गाढे समय मे देखो, कट जायँगे, वस प्रशसा के सामने हैं।"

"शशिवृत्तावाली लडाई मे वहुत कहने मे गये थे, लडे नही, हमारी सेना की आड मे रहे। पूछने पर कहा, 'सहायता के लिए हैं।' दाहिना पक्ष टूटा तो भागती सेना के साथ भाग खडे हुए।" तीसरे ने पुष्टि की।

"हम तो वहुत दिनो से देख रहे है, युद्ध की वात पर महेन्द्रपाल हमेशा कटते है।" महाराज जयचन्द ने कहा और सोचने लगे।

"स्वार्थी है और पूरे विश्वासघाती।" महेश्वरसिह ने गले मे जोर देकर कहा।

"इस तरह औरो का स्वभाव विगडता है।" एक ने मदद की।

"ऐसे मनुष्य को उचित शिक्षा न दी गयी, तो सरदार राज-धर्म का पालन न

करेंगे, केवल स्वार्थ की चिन्ता मे रहेगे।" महाराज ने कहा।

"महाराज सत्य आदेश करते है।" कई कण्ठो से एक ध्वनि हुई।

"इसका कठोरतम दण्ड देना है, अगर विधान की रक्षा पर दृष्टि की जाय।" महाराज गम्भीर हो गये।

सभा चुप हो रही। न्याय की कार्यावली पूरी न होने तक, दोष के प्रमाण धर्माधिकरण के सामने न आने तक महेन्द्रपाल को वन्दी कर रखने की आज्ञा हुई।

जयचन्द जानते थे, जितने प्रमाण मिले हैं, प्रकाश्य रूप से इतने ही कठोरतम दण्ड के कारण वन जायँगे, लोगो को विश्वास हो जायगा, पुन ऐसे अपराध के लिए सरदार शकित रहेगे।

चौदह

प्रभा-यमुना आदि के रहने का जहाँ इन्तजाम हुआ, वह पूर्व की आढत है। वहाँ व्यापार होता है। पर यह जासूसी के सुभीते के लिए एक प्रदर्शन-मात्र है। यहाँ वीरसिंह के मित्र-वर्ग रहते हैं। ऊपर का दोमजिला यमुना आदि के लिए खाली कर दिया गया। यथावकाश, एकान्त मे यमुना भविष्य के कार्यक्रम पर वीरसिंह से वातें कर लेती है।

महाराज शिवस्वरूप रोटी पकाते, सुवह-शाम शहर घूमकर सम्वाद एकत्र करते हैं। आज रात साढे सात वजे भोजन से निवृत्त होकर कन्नौज के प्रधान रास्ते से टहलते हुए जा रहे है कि निगाह एक छज्जे पर गयी, एक निरुपमा सुन्दरी खडी राज-पथ के लोगो को देख रही थी। दृष्टि से सौन्दर्य का घनिष्ठ सम्वन्ध है। नयी कली से वँधे भौंरे की तरह महाराज कुछ देर तक दूसरा ज्ञान भूलकर देखते रहे—कैसी सुघर, गोरे, जरा लम्वे मुख पर वडी-वडी आँखें!—पलको की छाँह मे कह रही है—हम ससार मे मुक्त हैं, कोई वाधा हमे रोक नही सकती।

होश मे आ, देर करने के अभिप्राय से, महाराज दूकान मे पान लेने लगे। फिर वेगम धीरे-धीरे आगे वढे, पीछे किसी ने पीठ छूकर कहा—'सुनिए।' जरा घूमकर देखा, एक स्त्री है। कहने से पहले उस स्त्री ने कहा, "उस मकान मे मेरी मालकिन आपको वुलाती हैं।"

महाराज डरे। पर यमुना का उपदेश याद आया, धीरे-धीरे साथ हो लिये। दासी जीने से कमरे मे ले गयी। कमरा उसी प्रकार सजा है, जैसे सुरभि के लिए दल केशर पराग आदि से फूल। इक्कीस-वाईस वर्ष की युवती सुगन्धित दीपो के प्रकाश को मन्द करती हुई वैठी है। महाराज को द्वार पर आते देख मुस्कराकर

उठकर खडी हो गयी और झंकृत सरस पदो से बढकर हाथ पकड ऊँचे रेशमी चादर बिछे गद्दे की ओर ले चलने लगी। पहले महाराज जरा खिचे, युवती इतने से समझ गयी। महाराज को साथ ही यमुना की बात याद आयी, बढ गये।

बैठालकर युवती ने दासी को इशारा किया। वह चली गयी।

युवती ने पानो की तश्तरी महाराज की ओर बढायी।

महाराज ने हाथ जोडकर खिचते हुए कहा, "हम पर तो दूरै मे दया करो।"

"अच्छा," युवती महाराज की भाषा मे प्रान्तदेश का निश्चय कर हँसती हुई बोली, "आँख लडाते वक्त दूरी का ख्याल न था।"

महाराज ने जनेऊ निकालकर कहा, "यह देख लेव।"

युवती को वर्ण, स्थिति, स्वभाव और साक्षरता का ज्ञान हो गया। गुदगुदाई हुई-सी महाराज को देखती रही।

महाराज ने सोचा, इनको विश्वास नही हो रहा। सफलता पूर्वक बोले, "छानवे की कसम, कही बिना जाने पान नही खाते।"

युवती वैसी ही हँसती आँखो देखती हुई बोली, "लेकिन हमारे हाथ के तो पान-पानी दोनो चलते है।"

सादगी से महाराज बोले, "यह हमारा नही जाना।"

"अरररररर!" जैसे भूली बात याद आयी, बोली, "हे भगवान्, ब्रह्महत्या का पाप मुझे बदा था!"

चोटी से महाराज के प्राण निकल गये! घबराकर पूछा, "बरमहत्या कैसी?"

युवती ने एक लम्बी साँस छोडी। फिर अनमनी होकर बोली, "आज महाराजाधिराज कान्यकुब्जेश्वर के यहाँ मैं बुलायी गयी हूँ। सिपाही शायद ले जाने को आ गये। मेरी दो ही दासियाँ यहाँ रहती हैं। बाकी वहाँ की। उन्होने सिपाहियो से आपका हाल कह दिया हो, तो वे आपकी जान ले लेंगे!"

महाराज काँपने लगे। स्वर भग हो गया। युवती ने शान्त होने का इशारा किया। फिर उठकर जीने के द्वार बन्द कर आयी। हँसकर कहा, "जब तक द्वार न खोलूंगी, वे भीतर न आ सकेंगे।" महाराज घबराये हुए देखते रहे।

"मैं तुम्हे दिल से चाहती हूँ! जरूर बचाने की कोशिश करूँगी।" खिलकर पूछा, "तुम्हारा नाम?"

वैसे ही घबराये स्वर से महाराज बोले, "सिवसरूप।"

युवती ने कहा, "कल तो इसी रास्ते पर किसी को बरमदत्त बतलाया था।"

महाराज ने पैर पकड लिये। बोले, "वह झूठ था।"

युवती ने कहा, "मैं जानती हूँ। मैं तुम्हारी परीक्षा ले रही हूँ, तुम्हारा सारा हाल जानती हूँ।"

फिर कुछ सोचते हुए पूछा, "खास स्थान कहाँ है?"

महाराज—"दलमऊ।"

युवती—"यहाँ कैसे आये?"

काँपते-काँपते महाराज सारा हाल कहने लगे। निविष्टचित्त युवती सुनती रही। किस्सा खत्म होने पर, महाराज को उठने का इशारा किया। पानी लेकर हाथ-मुँह धुलाया। फिर पान खाने को इंगित किया। मन्त्र से चलते हुए जैसे महाराज आज्ञा पूरी करते गये, अनिमेष करुण दृष्टि से देखते हुए।

युवती मुस्करायी। बोली, "मैं तुम्हे चाहती हूँ।"

महाराज आशा से बँधे देखने लगे।

युवती ने कहा, "मान लो, मैंने तुम्हे बचा दिया, तो मुझे प्यार करोगे ?"

जल्दी से महाराज बोले, "मैं तुम्हारा गुलाम बना रहूँगा।" पगडी उतारकर पैरो पर रखने लगे। युवती ने रोक लिया। कहा, "घबराओ मत। मतलब तुम्हारी समझ मे आयेगा, मैं कहती हूँ।"

महाराज कृतार्थ दृष्टि से युवती को देखने लगे। युवती कहती गयी, "देवी यमुना और प्रभावती से मेरा प्रणाम कहना।" महाराज को समझाकर, सँभलकर फिर बोली, "मैं तो यमुना को भी प्रणाम कर सकती हूँ, क्योकि नर्तकी से दासी का कुल ऊँचा है, क्यो महाराज ?"

"हाँ, क्यो नही," गम्भीर होकर महाराज बोले। हँसकर युवती कहने लगी, "कहना कि बलवन्तसिंह कुमार देव के साथ मनवा पहुँचकर दवा के लिए वही छोडकर तहसील के लिए फिर निकल गये है। चलते वक्त एक पत्र उन्होने महाराजाधिराज कान्यकुब्जेश्वर को लिखा था। पत्र के साथ कुछ कर भी वसूल किया हुआ भेजा था। पत्रवाहक कर जमा कराकर, यहाँ के लिए कहना कि गाना सुनकर रहने के लिए आया था। उसके साथ और दो-तीन आदमी थे। पहले से शराब पिये हुए थे। आपस मे बातचीत करने लगे। महाराजाधिराज के पास पत्र नही पहुँचा सके थे। दूसरे दिन पहुँचाना चाहते थे। कहना कि गायिका का नौकर उनके पीछे खडा बातचीत सुन रहा था। उसने गायिका से वे बाते कह दी। गाना सुनकर पत्रवाहक के साथी चले गये, वह रह गया। गायिका ने उसे और अच्छी शराब पिलायी और नशे मे कर कुल बाते पूछ ली। जब वह सो गया, तब उसकी चिट्ठी निकाल ली। पत्र यदि महाराजाधिराज के पास पेश हुआ होता, तो राजा महेन्द्रपाल के वध की आज्ञा निकल चुकी होती। कोशिश होनी चाहिए कि महाराजाधिराज के पास जल्द-से-जल्द अनुकूल प्रमाण पेश हो।"

फिर सोचती हुई बोली, "मैं चिट्ठी देती, पर मैं खुद भी कोशिश मे हूँ।"

एक के बाद दूसरा, इस तरह महाराज के मन मे अनेक भाव आये-गये। ऐसा सजीव पट-परिवर्तन जीवन मे न देखा था। युवती को आश्चर्यपूर्वक देखते हुए उठे, वह स्थिर बैठी रही, "फिर आइयेगा", गुंजित स्वर से बोली। महाराज कुछ कदम बढे तो फिर बुलाया, और खडी हो गयी। कहा, "सिपाही जो खडे है ?" घबराकर महाराज पीछे हटे और उसे पकड लिया, "आप कैसे प्रेमी है ?" नर्तकी युवती ने पूछा, "अभी तक मेरा नाम भी आप नही मालूम कर सके।" महाराज बेवकूफ की तरह देखने लगे। "मेरा नाम विद्या है," कहकर उसने पीछे के ज़ीने से सस्नेह उन्हे उतार दिया।

महाराज सीधे डेरे पहुँचे । दूसरे दिनो से देर हो गयी थी । यमुना प्रतीक्षा कर रही थी । महाराज को देखकर प्रसन्न हुई । पूछा, कोई घटना तो देर करने की नही घटी ? महाराज गम्भीर होकर वोले, "वडे काम की वात है ।" प्रभावती सजग हो गयी । यमुना ने सक्षेप मे असली वात कहने के लिए कहा ।

महाराज जैसे ईश्वर का स्मरण करते हुए वोले, "जिसके राम रखवारे हैं, उसका कोई क्या विगाड सकता है ? वे कहो तो सुई के छेद से हाथी को निकालें !"

महाराज और कुछ इसी तरह कहनेवाले थे कि यमुना से न रहा गया । वोली, "अरे भले आदमी वात तो वताओ !"

"वीच मे न टोक, यह कह कि तेरे वडे भाग रहे जो प्रात काल उठकर वराँभन का मुँह देखेगी । है, चिडिया का मरना, लडको का खेलवाड ! वडी समझदार वनी घूमती है । पडी होती आजवाले चक्कर मे तो मक्कर भूल गये होते ।"

यमुना तमतमा उठी कि दे गाल पर एक चाँटा । तव तक मधुर धीमे स्वर से प्रभावती ने कहा, "महाराज, भाग तो हमारे थे ही जो तुम मिले, अव यह वताओ कि क्या वात है ?"

"हम वाजार मे टहल रहे थे कि एक औरत ने कहा कि उस मकान की मालकिन आपको वुलाती है । हे यमुना, जिधर निकलो, सव देखती है ।" महाराज ऊपरवाला होठ जरा सिकोडकर निगाह नीची कर मूँछे देखने लगे । प्रभावती ने मुश्किल से हँसी को रोका । महाराज कहते गये, "कसरती वदन और रियाज की वातें ही और है । तू तो यमुना हमारा सुभाव जानती है, उसके मरने के वाद दस-पन्द्रह तो व्याह आये होगे, लेकिन हमने कहा कि उन उढरिहो की लडकी का व्याह कर दालिव ऋपि के कुल को कलक लगाना है ।"

यमुना और प्रभावती दोनो अधीर हो गयी, पर महाराज के क्रम मे परिवर्तन असम्भव है, सोचकर वैठी रही । महाराज कहते गये, "पहले तो हमारी इच्छा हुई कि कह दे कि न जायेगे । फिर हमे यमुना की वात याद आ गयी कि आने-जाने और वातचीत मे कही अटको मत, तो हम चले गये । जीने के ऊपर गये तो पूरी अप्छरा वैठी थी । उठकर हमारा हाथ पकडकर गद्दे पर ले जाकर वैठाला, फिर हमारा नाम पूछा । हमने कहा, सिवसरूप महाराज—"

"नाम वता दिया ?" यमुना ने तेजी से पूछा ।

"अरे यह तो हम अपने मन मे वता रहे है । हमने कहा, सिवसरूप महाराज, समय पडे की वात है कि अव वात करना भी मोहाल हो रहा है । हमने कहा, हमारा नाम है वरमदत्त । उसने पूछा, अस्थान कहाँ पर है ? हमने कहा, सुनो सिवसरूप महाराज, तुम वही हो, जो जुन्नी करके दूसरे के जजमान नहवाते थे, किसी के भी अस्थान को अपना अस्थान वताते थे, आज यह तुमसे पूछ रही है । हमने कहा, प्रयागराज । तो वोली कि हम दलमऊ नहाने गये थे । हमने कहा कि हाँ, तव हम मामा के यहाँ आये थे, हमने वहाँ तुमको देखा है । सुनकर पैरो पर

माथा रख दिया। फिर बोली कि मैं महाराजाधिराज की सभा मे नाचती हूँ। हमने आसिरवाद दिया कि तुम्हारी तडक्की हो, अरे हाँ भाई, जजमान है। फिर उसने पूछा कि देवी परभावती को जानते है आप, वह जो दलमऊ के सरदार की लडकी है ? हमने कहा, हाँ, उनको देखा है, वे हमारे रिश्तेदार के जजमान है। उसने कहा, उनका यह हाल है।"

फिर महाराज ने वह हाल और उस तवायफ का नाम बतलाया।

सोलह

गगा पार कर चार सवार उत्तर-पूर्व की ओर बढते जा रहे है। समय दिन डेढ पहर हो चुका है। चारो मौन है। दृष्टि पर एक स्थिर प्रतीक्षा झलक रही है।

आगे के सवार ने कोमल कण्ठ से कहा, "उधर मे भी तीन-चार सवार आ रहे है, शायद।"

"हाँ।" दूसरे ने अच्छी तरह देखते हुए कहा।

"हम लोग दस कोस से ज्यादा आ गये होगे।" पहले ने कहा।

"कम नही।" दूसरे ने बरछी तौलते हुए कहा।

"दुश्मन हो तो बड़ा अच्छा मौका है।" पहले ने दूसरे को फिरकर मुस्कराती आँखो देखते हुए कहा।

"हाँ, उस बार विवश होना पडा था।" दूसरे ने बरछी कमर से लगाते हुए कमान निकालकर कहा।

तीसरे ने चौथे से पूछा, "आप घबराते तो नही ?"

"अरे भय्या, हमारी गरमी गगाजी ही बुझा पाती है।" कहकर चौथे ने बनी भग की एक गोली जीभ पर रख ली और पेंचदार गिलास का ढक्कन खोलकर पानी के साथ उतार दी। फिर पेच बन्द कर गिलास रखते हुए, तीसरे से पूछा, "अभी और है, आपो को चाही ? विजया है भय्या, वार खाली न जायगा, दूना हौसला बढाती है।"

"नही महाराज, हमे तो विजया के नशे मे रही सूझ भी नही रहती।" कहकर तीसरा आते हुए सवारो की तरफ देखने लगा।

पहले प्रभावती, उसके बाद यमुना, उसके पीछे वीरसिंह और वीरसिंह के पीछे महाराज शिवस्वरूप, कुमार देव के उद्धार के लिए मनवा जा रहे है। देव से महेन्द्र-पाल का सारा सवाद भी कहना है।

"इधर से बलवन्तसिंह या उनके सिपाहियो के आने की सम्भावना अधिक है। सम्भव है, पत्रवाला दूत पत्र खो जाने पर घबराकर बलवन्तसिंह मे मिला हो और पत्र खोने का झूठा सवाद कहा हो, देर होने पर कुमार और महेन्द्रपाल की दृष्टि

मे कान्यकुब्जेश्वर के पास प्रमाण पहुँच न जाय, ऐसा विचार कर वलवन्त स्वय चल दिये हो।" वीरसिंह ने यमुना से कहा।

"हाँ, सम्भव है।" यमुना देख रही थी, सवार अव वहुत निकट आ गये थे।

प्रभावती एकाग्र थी। इससे पहले वीरसिंह के सम्वन्ध की कल्पनाओ मे पडी थी। यमुना ने जो परिचय दिया था, वह और विस्मयोत्पादक था।

"लेकिन हम·· " पहचानकर यमुना ने कहा, "वही है।"

"कुछ परवाह नही, प्रभा का वायाँ देखना दूर से, मैं दाहिने हूँ। महाराज, जिसका हथियार घटे, अपना दे देना, घवराना मत।" वीरसिंह के कहते ही यमुना ने घोडा वढाया। वीरसिंह दाहिने आ गये।

"वलवन्त, अगर वलवन्त है!" प्रभा ने आवाज दी।

वलवन्त ने अच्छी तरह देखा न था; विचार मे थे। केवल आते हुए राजपूत सोचा था। प्रभावती को न पहचाना, पर यमुना और वीरसिंह को देखकर घृणा से भर गया।

"उस रोज नाव पर अवसर नही मिला मुझे वलवन्त, मैं ही प्रभावती हूँ, तैयार हो, देखा जाय द्वन्द्व किसका रहता है।" कहती हुई प्रभावती ने भाला मारा।

वलवन्त ने वचने के लिए जल्द घोडे को वायें फेरा, पर वार वडा तेज था। भाला एक वगल से दाहिनी जाँघ पार कर जीन छेदकर कुछ घोडे के भी जा चुभा। वलवन्त के साथी उसी वक्त रास फेककर भग खडे हुए, वे यमुना और वीरसिंह को जानते थे।

वलवन्त होश मे था, पर घायल, डरा हुआ। वीरसिंह ने भाला निकालकर सँभालकर उतार लिया। वही लेटाकर यमुना को दूर ले जाकर कहा, "अव तो चलने की सूरत वदल गयी। मैं इनको यहाँ मे अपने एक केन्द्र मे ले जाता हूँ, दूसरे रास्ते से। भगे सिपाही कही से मदद लेकर जल्द आ सकते है। वे हमे पहचान गये हैं। सम्भव, मनवा जाकर कुमार देव पर अत्याचार करें। तुम्हे वचकर भी जाना है और जल्द भी। महाराज को हमारे साथ कर दो। हम दोनो इन्हे सँभाल लेंगे। चिन्ता न करना। सचेत रहना।"

प्रभावती, देवी की तरह, स्पर्द्धा से खडी वलवन्तसिंह को देख रही थी। लौटकर यमुना ने कहा, "इन्हे प्रणाम करो वहू, यही तुम्हारे जेठ वीरसिंह हैं।" प्रभावती वीरसिंह को भक्तिपूर्वक प्रणाम करने लगी।

वलवन्त को देखकर यमुना की आँखें सजल हो आयी। तेज रक्तस्राव हो रहा था। पत्तियाँ लेकर रस निचोडकर घाव वाँधने लगी। फिर करुण दृष्टिपात कर वोली, "भाई, तुम सच्चे भाई न हुए! वहन को अपराधिनी समझा, पर क्षमा करना। राज-दर्प से ईश्वर तुम्हारा भला करें।"

महाराज वडे ताव से वलवन्त को देख रहे थे। यमुना की वातचीत से विलकुल मूढ हो गये।

महाराज को वीरसिंह के साथ निश्चित होकर रहने के लिए कहकर यमुना प्रभावती को लेकर प्रस्थान कर गयी।

सत्रह

मनवा के किले से कुछ दूर, सरायन नदी के तट पर, एक एकान्त स्थान मे, बबूल की डालो से घोडे बाँधकर, यमुना और प्रभा बैठी हुई है। रात डेढ पहर बीत चुकी है। प्रभावती अपनी आदर्श-देवी यमुना के सामने सिर झुकाये बैठी उनके उज्ज्वल चरित्र की कल्पना मे लीन है।

"दीदी," प्रभा बोली, "मैंने तुम पर बडा अन्याय किया है, पर वह अज्ञानकृत है, इसलिए क्षमा करना।"

"बहन," प्रभा का हाथ हाथो मे लेती हुई सस्नेह यमुना ने कहा, "ऐसे अपराध तो, मुमकिन, ज्ञानकृत भी अब तुम्हे करने पडे। पर भ्रम तो भ्रम ही है? उसके लिए क्षमा की क्या आवश्यकता है?—जगह भी नही। पारस्परिक व्यवहार का जब जो सम्बन्ध रहता है, तब वह पारस्परिक व्यवहार के अतिरिक्त और कुछ नही ठहरता, इसलिए वह अपने रूप मे ही अनित्य है, फिर अनित्य के लिए क्या क्षोभ और क्या क्षमा? मैं तुम्हारी दासी थी, फिर भी तुम्हारे मन मे मेरा ही आदर्श था—मैं ही वहाँ आराध्या बनकर रही, यह कम प्राप्ति नही, और देखो कि इस तरह जीवन का रहस्य जीवन मे किस तरह रहता है। जिसे लोग नही मानते, उसे ही लोग मानते है। जो दासी है, वही देवी है।"

यमुना आकाश की ओर देखने लगी। फिर स्थिर कण्ठ से बोली, "अब हमे चलना चाहिए।"

प्रभावती उठी। वहाँ के रास्ते यमुना के परिचित थे। बचकर चलती हुई चारदीवार के एक कोने पर आकर खडी हुई। प्रभा को नाले के पास प्रतीक्षा करने के लिए छोड आयी थी। चारदीवार के चारो ओर रात को पहरेदार लगते थे। सन्तरी घूमता हुआ आया तो एक स्त्री खडी हुई देख पडी।

"कौन?" सिपाही ने आवाज दी।

"मैं एक दुखी स्त्री हूँ।" यमुना ने कहा।

सिपाही बढकर पास आया।

"तुम क्या चाहती हो?"

यमुना खिलखिलाकर हँसने लगी। "क्या चाहती हूँ?—मै खून चाहती हूँ।" अट्टहास।···"इस पुरी मे पाप बहुत बढ गया है! एक यमुना थी, राजा की लडकी थी, इसी पुरी मे रहती थी, बडे लाड-प्यार से पली थी, एक वीर से उसने विवाह किया, चूँकि वह राजा न था, इसलिए उसका भाई नाराज हो गया, उसे देश-निकाला दिलवा दिया, अब गली-गली ठोकरें खाती फिरती है। क्यो सिपाही, तुम सिपाही की तरफ हो या राजा की तरफ?"

पहले सिपाही ने सोचा था, पागल है, अब सशय मे पडा।

"क्यो पहरेदार? चुप क्यो हो? डरते हो।"

"तुम्हे उसके लिए स्नेह है ?"

"मैं उसके लिए जान दे सकता हूँ।"

"अच्छा, और नजदीक आओ, अच्छी तरह पहचानो तो, मैं कौन हूँ।"

सिपाही अच्छी तरह देखने लगा। फिर राज परिवार को दी जानेवाली सशस्त्र सलामी दी। यमुना ने भी हाथ उठाकर अभिवादन द्वारा सिपाही का सम्मान किया।

कहा, "बैठ जाओ, तुमसे कुछ बातें करूँगी।"

सिपाही चारदीवार के सहारे बैठ गया। एक ओर यमुना भी बैठ गयी।

"कुमार देव को भाईजी यहाँ कैद कर लाये हैं, यह तो तुम जानते होगे ?"

"जी हाँ।"

"वे घायल हो गये थे, अब अच्छे है ?"

"जी हाँ, बहुत कुछ अच्छे हो गये हैं।"

"रतन अच्छी तरह है ?"

"जी हाँ, कुमार की सेवा उन्होने बडी तत्परता से की।"

यमुना सोचने लगी।

"भाईजी का क्या हाल है ?"

"वे कर लेने के लिए गये थे, तब से नही आये।"

"क्या आज उनकी कोई खबर यहाँ आयी है ?"

"जी नही।"

"अच्छा, देखो, कुमार से मिलने की हमे जरूरत है। तुम पर किसी को सन्देह न हो पायेगा, विश्वास करो और अगर होगा भी, तो हम तुम्हे अपने साथ ले लेंगे, और अच्छी नौकरी देंगे, यों भी तुम्हे पुरस्कार देंगे, तुम हमारी मदद करोगे ?"

"आपके साथ मुझे स्वर्ग का सुख होगा। आपकी आज्ञा पूरी करना मैं अपना सबसे बडा अवसर मानता हूँ, फिर जहाँ आप ऐसी दीनता से मेरी मदद चाहती हैं, वहाँ मेरे लिए इससे बड़ा मान और कोई नही, मैं कैसे भूल जाऊँगा ?"

यमुना कुछ काल तक स्थिर रही, शान्त दृष्टि से सिपाही को देखती हुई। पूछा, "कुमार किस जगह रक्खे गये हैं ?"

"इसी बैठक मे," उँगली उठाकर सिपाही ने बगलवाले प्रासाद की ओर इंगित किया।

"तो एक काम करो। रात काफी हो गयी है। प्रासाद के अधिकाश जन सो गये होगे। शका की कोई बात नही। मेरी एक सखी हैं, वे वहाँ बैठी हैं। मैं बुला लाती हूँ। मैं गयी या वे, कुमार से मिलकर लौट आयेंगी।"

सिपाही ने स्वीकृति दी। यमुना प्रभा के पास गयी और वृत्तान्त समझाकर बुला लायी।

रास्ते मे कहा, "चारदीवार पर चढना होगा।"

प्रभा मुस्करा दी। दीवार के पास आकर यमुना ने सिपाही से पूछा, "आज का सकेत क्या है ?"

"वज्र," नम्रता से सिपाही ने उत्तर दिया।

काँटा लगा कमन्द, जिसमे रस्सी की सीढी वनी थी, हाथ मे लेकर यमुना वोली, "आओ, मैं काँटा फेकती हूँ। ऊपर चढ जाओ। फिर खीचकर उतरकर वाये हाथवाले भवन मे जाना। सकेत तुम्हे मालूम हो चुका है। लोग देख भी लेगे, तो दासी समझेगे।"

शिवजी का स्मरण कर प्रभा चढी, फिर उतर गयी।

अट्ठारह

प्रभावती, धीरे-धीरे, सँभलती हुई चली। हृदय को भरकर लहराते हुए नये उच्छ्वास पुलकित कर राजकुमार की ओर प्रेरित कर रहे है। उत्सुकता शीघ्रता कर रही है, पर धैर्य और वोध वाँध रहे है। आनन्द को चरणो की गति से निकलने की वाधा मिली, तो दृष्टि से छलकने लगा। वहाँ के समस्त दृश्य रँगे हुए, जैसे राजकुमार की तरह आदर देने को खडे है। एकान्त मे देह से लिपटते हुए हवा के झोके प्राणो को उभाडते हुए, दवाव को दूर करते हुए, पहले से ही प्रिय का मधुर सन्देश कह रहे है।

प्रभावती चलती गयी, उस भवन के पीछे से वगल मे आयी, वगल से सामने। सामने मन्द-क्षेप सोपान पर चढने लगी। निराभरण, भावभारा, दोलितान्त करण; खम्भो की आड से प्रकाश की ओर वढती गयी, खम्भो की तीन कतारे पार कर एक वगल से देखा—राजकुमार मुद्रित-नयन पडे हुए है। उनके पार्श्व मे एक दूसरे आसन पर एक सुन्दरी वैठी हुई है। मुख राजकुमार की ओर, पीठ सोपानो की तरफ। सुगन्ध दीपक की कई शिखाएँ जल रही है, तरुणी कुछ देखने मे तन्मय है।

प्रभा धीरे-धीरे एक वगल हटती गयी, वहाँ से सुन्दरी का दक्षिण पार्श्व अच्छी तरह दिखने लगा। प्रभा ने अनुमान किया—'यह दीदी यमुना की छोटी वहन रत्नावली होगी। वेष-भूषणो से राजकुमारी लगती है।' स्तब्ध खडी रही।

भिखारी से खरीदी मोतियो की माला पहने हुए सुन्दरी हृदय पर रहनेवाला उसी का क्षुद्र हीरक-पान पूरे आश्चर्य से देख रही थी। उसके दूसरी ओर 'देव' लिखा था। ये कुमार देव थे, यह सुन्दरी मालूम कर चुकी थी। यह माला कुमार 'देव' की है, यह अव मालूम हुआ। यमुना की घटना से प्रेम-वैचित्र्य मे पडकर कुमारी एक कवियत्री की तरह उस देश के अज्ञात युवक को भी प्यार करती थी, राजकुमार को एकाएक प्राप्त कर उसने अपना सौभाग्य ही माना था। आज माला देखकर ऐसा मालूम हुआ, जैसे देवता पहले से प्रसन्न होकर हृदय मे आ विराजे हो। भरकर हृदय के अन्त.पुर से निकली और कुमार को देखने लगी।

एकाएक कुमार ने भी पलके खोली, दृष्टि कुमारी की माला पर गयी। समझकर जैसे उसने कहा, "यह माला आपकी है। मैंने एक भिक्षुक से खरीदी है।"

राजकुमार ने मन्द स्वर से कहा, "मैंने एक दूसरी माला के लिए, वदले मे यह माला दी थी।" कहकर प्रभावनीवाली माला की लडी पकडकर उठायी। झुककर रत्नावली पान पढने लगी। 'प्रभावनी' लिखा था।

एक वार सारा समार रहस्यमय मालूम दिया। जिसने उसके हृदय को इतने स्वप्नो से रँगा था, इच्छा-प्राप्ति का इतना वडा विश्वसनीय प्रमाण दिया था, उसी ने एकाएक साबित कर दिया कि वह सोची हुई सारी कविता, वह पाया हुआ समस्त प्रमाण झूठा था, यमुना का घटना-क्रम उसके जीवन का घटना-क्रम नही वन सकता, यमुना को जहाँ सफलता मिली, उसे वहाँ पूरी असफलता हुई। कुमारी स्तब्ध वैठी सोचती रही। वह प्रभावती की जगह ले, कितना पतन उसके स्त्रीत्व का सावित होगा!—वह देवी यमुना की वहन कहलाने योग्य न रहेगी। छि! छि!!

प्रभा के लिए राजकुमार के अकृत्रिम भाव का इससे अधिक पुष्ट और क्या प्रमाण होगा? प्रभा का सारा आनन्द सरोवर की लहरो की तरह हृदय के तटो मे वँधा रहा। इससे अधिक सुख परिणीता के लिए क्या होगा?

रत्नावली निश्चय के साथ गम्भीर हो गयी। जीवन का जो उपाय एक को उठाता है, वह दूसरे को गिरा देता है; कमल सूर्य को पाकर खिलता है, पर यह नियम जूही के लिए नही। जूही रात्रि के अन्धकार मे हँसती है।

राजकुमार शून्य दृष्टि से रत्नावली को देख रहे थे।

एक ही क्षण म जैसे रत्नावली की कुमारी-सुलभ भावनाएँ वदल गयी। स्थिर सहृदय कण्ठ से पूछा, "कुमार आप क्यो कैद किये गये, अभी तक मैंने आपसे नही पूछा, आपकी हालत अच्छी नही थी, इसलिए।"

"प्रभावती मुझे चाहती थी, पर उनके पिता वलवन्त से उन्हे व्याहना चाहते थे।" कुमार धीरे-धीरे कह रहे थे। रत्नावली ने पूछा, "भाई साहव तो कई विवाह कर चुके है, फिर भी इन्ही से आग्रह क्यो?"

"राजनैतिक कारण कह सकते है।" कहकर कुमार चुप हो गये।

"फिर?" साग्रह राजकुमार को देखती हुई रत्नावली ने पूछा।

"फिर विवाह की रात नाव पर मैं कैद हुआ। यमुना देवी वही प्रभावती के पास थी। हमारी नाव जा रही थी, वलवन्त की नाव, जिस पर महेश्वरसिंह भी थे, आ रही थी। पिता के सम्मान के विचार से प्रभावती गगा मे कूद गयी। अपशब्द कहने पर वलवन्त पर क्रोध से यमुना देवी ने भाला चला दिया। वे वच गये, पर एक सिपाही घायल हो गया, सम्भव, काम आ गया हो। फिर प्रभावती की रक्षा के विचार से वे भी गगा मे कूद गयी। वार मुझ पर हुए। मैं घायल हो गया। फिर नही मालूम।" राजकुमार धीरे-धीरे कहते हुए चुप हो गये। रत्नावली चित्रार्पित-जैसी स्थिर वैठी इस प्रसग पर सोचती रही। अपने पर वडी ग्लानि हुई।

कुछ काल वाद, राजकुमार की शान्ति मे विघ्न न हो, इस विचार मे, परिचारिकाओ को भेज देने लिए, उठी, रात अधिक हो चुकी थी, इसका भी ख्याल था और भावी कार्य-क्रम की रचना का भी।

रत्नावली के उठते ही प्रभावती जल्द-जल्द सोपान से नीचे उतरकर एक वगल खडी हो गयी। रत्नावली धीरे-धीरे उतर रही थी। सामने छायाकार अज्ञात किसी को देखकर चौकी। चाँदनी निकल आयी थी। रत्नावली चोर के भय से त्रस्त न हो, इस विचार से प्रभा चाँदनी मे आकर खडी हो गयी।

"कौन हो ?" रत्नावली ने पूछा।

"इधर आओ, शब्द न करो, यमुना देवी ने सवाद भेजा है !"

देवी यमुना को इस समय सहायता की जरूरत होगी, यह कल्पना कर रत्नावली वढ गयी। पास जाकर देखा, स्त्री है। फिर पूछा, "तुम कौन हो ?"

"मैं यमुना की दासी हूँ।"

"तुम्हारा नाम ?"

"आभा।"

"आभा ?"

"जी।"

"प्रभावती को तुम जानती हो ?"

"जानती हूँ।"

"इस समय वे कहाँ है ?"

"कान्यकुब्ज मे।"

"तुम आयी किस तरह ?"

"दीवार के ऊपर से, रस्सी की सीढी से होकर।"

"सिपाही ने नही देखा ?"

"देखा है, पर देवी यमुना के नाम से आने दिया।"

"यहाँ किससे तुम्हारा काम है ?"

"आपसे।"

"या राजकुमार से ?"

"आपसे न मिलती तो राजकुमार से होता।"

"क्यो ?"

"इसलिए कि लाचारी होती। कुमार के घाव भर रहे हैं। यमुना देवी और प्रभावती के जीवित रहने का सवाद हर्ष का कारण होता, घावो को क्षति पहुँचती है।"

"क्या काम है ?"

"महेश्वरसिंह स्वार्थवश बलवन्त से प्रभावती का विवाह करना चाहते थे। लालगढ के महेन्द्रपाल से पहले का वैमनस्य आपको मालूम है। बलवन्त के कहने से महेश्वरसिंह ने यह प्रमाण दिया है कि जवरन कुमार देव ने प्रभावती का हरण किया, जब वे नाव मे विहार कर रही थी। ऐसा खास तौर से बलवन्त को नीचा दिखाने के लिए किया। प्रभावती का विवाह बलवन्त से हो रहा है, यह प्रसिद्धि फैल चुकी थी। महेन्द्रपाल कैद कर लिये गये है। उपयुक्त प्रमाण न पहुँचे तो जल्द उनके शिरश्छेद की आज्ञा निकलेगी। सम्भव, किला भी जब्त किया जाय।"

"हाँ, यह तो ठीक है।" सोचती हुई रत्नावली बोली, "कुमार देव के स्वास्थ्य

पर इसका भी बुरा प्रभाव पड़ेगा।"

"जी।"

"अच्छा, आओ, मेरे साथ रहो।"

"जी नहीं, मुझे आज ही यहाँ से जाना है।"

"तुमसे वहाँ कहाँ मुलाकात हो सकती है, मैं दीदी को एक बार देखना चाहती हूँ।"

"स्थान का निश्चय नहीं। इसलिए ठीक तौर से नहीं कह सकती। उनसे आपका सवाद कह सकती हूँ।"

स्थिर दृष्टि से प्रभा को देखती हुई—"तुम उनके पास से आयी हो, इसका क्या प्रमाण है?" कुछ तेज गले से राजकुमारी ने पूछा।

तत्काल प्रभा अँगूठी निकालकर दिखाती हुई बोली, "यह, प्रभावती को मिली कुमार की अँगूठी देते हुए उन्होंने कहा था, पहचान के लिए यह काफी है।"

हाथ में लेकर चाँदनी में चमकते अक्षर पढ़कर, स्थिर भाव से देती हुई रत्नावली बोली, "हाँ, ठीक है। पर, तुम्हारी दृष्टि और जबान दासी की नहीं जान पड़ती।"

प्रभावती चौंकी। सँभलकर बोली, "मुझे उन्हीं से शिक्षा मिली है।"

"क्या गंगा पार करते समय वे कोई दासी भी ले गयी थी?"

"नहीं, बाद को मिली।"

"अच्छा!" साँस छोड़कर रत्नावली बोली, "मेरा प्रणाम कहना, और कहना, चिन्ता न करें।"

चलकर प्रभा ने देखा, जिस सीढ़ी से वह उतरी थी, वह नहीं है। दीवार इतनी ऊँची है कि वह चढ़ नहीं सकती। चारों ओर घूमकर, देखकर, लौट आयी।

कुछ देर तक खड़ी सोचती रही। किधर से निकले, कुछ समझ न सकी। राजकुमार के पास उन्हीं के हित के विचार से नहीं जाना चाहती। उनकी हालत भी अभी तक ऐसी नहीं हुई कि वे खुद उस विपत्ति में कुछ प्रतिकार कर सकें। अन्त में निश्चय किया कि रात का संकेतचिह्न मालूम ही है, कुमार के मकान के सामने से जो रास्ता गया है, उसी से बाहर निकलेगी, पकड़ गयी तो जो होगा, होगा। चल दी। रात का तीसरा पहर था। कई जगह सिपाहियों ने टोका, पर 'रत्नावली की दासी और वज्र' सुनकर सबने छोड़ दिया। ईश्वरेच्छा से वह रास्ता सरायन के घाटवाले फाटक की ओर गया था। फाटक से बाहर निकलकर घाट के बायीं ओर से अपने स्थान की तरफ चली। सरायन का किनारा देखे रही। बढ़ती हुई अपनी जगह पर आयी। देखा, सिर्फ उसी का घोड़ा बँधा है। बड़ा आश्चर्य हुआ। दीदी प्राण रहते छोड़ जानेवाली न थी। निश्चय किया, कोई बड़ी घटना हुई है। पर मालूम करने का उपाय न था। थक गयी थी। पलकें मुँदी आ रही थी। आशा थी कि दीदी कहीं गयी होगी तो सुबह तक लौट आयेंगी। प्रतीक्षा करनी चाहिए। इसी विचार से हरित तृण-संकुल तट पर धीरे से लेट रही। आँख लग गयी।

उन्नीस

बलवन्त को घायल अवस्था मे ले चलना असम्भव था। आड मे एक नाले के भीतर उन्हे और महाराज को छोडकर, पालकी या डोली जो कुछ मिल जाय, लेने के लिए वीरसिंह गाँव की तरफ गये थे। महाराज एकान्त मे धार्मिक भावना से विचलित कर अपनी तरफ खीचने का प्रयत्न करने लगे। भाव मे भरकर बोले, "वह महाराज सिवसरूप हम ही हैं। देश-निकाला दिलवाय दिह्यो। बरामन का सराप आखिर पडा न ?" बेबस बलवन्त पलकें मारते सुनते रहे। महाराज कहते गये, "हमारे पास चार भलेमानुस आते हैं, चार नगालुच्चौ आते हैं। मगर हम किसी की बात नही कहते। मान लेव, आपँ एक ठकुराइन ले आओ तो अब हम कहते फिरैं कि मनवा के महाराज ठकुराइन भगाय लाये रहे। ऐसें उस मामले को समझौ। अब तो आय गया आपकी समझ मे कि महाराज का कसूर नाही रहै ?"

बलवन्त की पीडा बढी थी। चुपचाप पडे सुन रहे थे। इसी समय दूर गर्द उडती देख पडी। ये बलवन्त के वही भगे आदमी हैं, बलवन्त को बचाने और बदला लेने आ रहे है, महाराज ने निश्चय किया। नाला काफी गहरा था। वहाँ मे आदमी और घोडे न देख पडते थे। पर आनेवाले बगैर खोजे छोड न देंगे, वीरसिंह भी नही है, अकेले महाराज किसका-किसका मोहरा लेंगे, अभी भगने का समय है, फिर पछताना हाथ रहेगा, ऐसा सोचकर महाराज घोडे पर सवार होकर उल्टी तरफ भागे।

जब वीरसिंह डोली-कहार लेकर आये, तब न वहाँ महाराज थे, न बलवन्त। बहुत-मे घोडो की टापें बनी थी, मालूम हुआ कि घोडे कान्यकुब्ज की ओर गये है। डोली-कहार वही से विदा करके वीरसिंह मनवा की ओर चले। चिन्ता से मस्तिष्क और हृदय भारी हो रहा था। इतनी उलझने पड गयी थी कि कोई उपाय न सूझ रहा था। घोडा बढाते, थके हुए, तरह-तरह के विचार करते चले जा रहे थे। मनवा दुर्ग का नक्शा उन्हे मालूम न था। यमुना दुर्ग के भीतर न जायगी, वे जानते थे, उसका रहना वही किसी एकान्त मे नैश काल-भर के लिए सम्भव है, उन्होने निश्चय किया। पहले जो बातचीत हुई थी, उसका रूप उनके न रहने के कारण बदल गया होगा, उन्होने स्थिर किया।

इस प्रकार कल्पना करते मनवा पहुँचे। घोडे को दूर एक डाल से बाँधकर, परिच्छद उतार, साधारण पहनावे मे यमुना की खोज मे चले। काफी रात हो चुकी थी। नाले मे फिरते हुए इधर-उधर बहुत देखा, पर कुछ पता न चला। धीरे-धीरे चाँदनी फैल चली। दुर्ग के दीवार के पास दो आदमियो को अस्पष्ट देखा। दोनो के परिच्छद की भिन्नता से सन्देह हुआ। अपना साकेतिक शब्द किया। यमुना समझ गयी। चिन्ता भी बढी। प्रभावती को गये देर हो चुकी थी, अब तक उसे लौट आना था। सन्तरी से जल्द लौटने को कहकर उत्कण्ठा मे शब्द के सीधे चली। यह शब्द दूसरे का नही हो सकता। इसी से वीरसिंह कभी-कभी रात को दलमऊ मे उसे बुलाते थे। देखा, वीरसिंह ही है।

"क्या है ?" साश्चर्य यमुना ने पूछा।

"सब ठाट उलट गया।" वीरसिंह मन्द स्वर से बोले।

यमुना शंकित पदक्षेप से सरायन की ओर बढती गयी।

"भाई साहब का क्या सवाद है ?" सोचते हुए पूछा।

'उनके साथियो ने उन्हे छुडा लिया, महाराज का पता नही, भगे या कैद कर लिये गये। जो सिपाही कट गये थे, वे कई सहायक लेकर लौटे, जान पडता है। मुझे डोली लेकर आते देर हो गयी। वहाँ देहात मे हमारा अपना आदमी माल खरीदने के बहाने रहता है। उससे मालूम हुआ, वह उसी समय कान्यकुब्ज मे लौटकर आया था। हम लोगो के कुछ बाद चला था। कहा कि रामसिंह पकड लिया गया है;—उसे मालूम न था—दलमऊवाली चिट्ठियाँ उससे गिर गयी या किसी तरह चुरा ली गयी। वहाँ की हमारी सारी व्यवस्था अब तक बदल चुकी होगी। रामसिंह के प्राणो की शका है, राजा महेन्द्रपाल भी अब शायद नही बचाये जा सकते। बलवन्त की जगह आकर देखा, घोडे की टापें कान्यकुब्ज की ओर बनी है।"

यमुना खडी हो गयी। एक गहरी साँस छोडी, "यहाँ प्रभावती भी नही लौटी, देर हो गयी। सन्तरी के बदलने का समय आया, विपत्ति की सम्भावना यहाँ भी दीख रही है।"

"वैसी नही, समझदार तो है प्रभा ?"

"समझदार तो है, पर अनभ्यस्त है, ऐसे कुयोग का सामना नही किया कभी।"

"कुछ बात नही, एक अभिज्ञता होगी, ऐसा खतरा नही, सिपाही से मिलकर और मेल कर लो कुछ देकर।"

"शायद ही वह मुझसे पुरस्कार ले।"

"समझाकर दो, बदले मे या सहानुभूति मे प्रभा की सहायता करे जो कुछ उससे हो, और काँटा निकाल लो, सदर से भी निकल सकती है, बहुत सम्भव है आवेश मे कुमार के पास रह जाय, और जिस कार्य के लिए गयी है, उसकी पूर्ति तो यहाँ से हो भी नही सकती—उतना समय ही नही रहा। मैं तुम्हे लेने आया हूँ। वहाँ तुम्हारे बिना न बनेगा। जल्द चलना है।"

"अच्छा।"

यमुना सिपाही के पास गयी। कुछ स्वर्ण-मुद्राएँ निकालकर, इन्कार करते हुए को समझाकर दी, और यथासाध्य सन्देशवाहिका की सहायता के लिए कहा। फिर काँटा निकालकर उतर गयी, पत्र पर, कागज लेकर, साकेतिक एक चिट्ठी, चाँदनी मे लिखी और प्रभा की उतारी जीन के सामने खोसकर वीरसिंह के साथ, थके घोडो से भी जितना रास्ता तय हो—विचार कर गोमती पार कर कान्यकुब्ज की ओर चली।

"चाचा !"

राजा महेन्द्रपाल कैदखाने के एक वगल वैठे हुए तरह-तरह के विचारो मे गर्क थे। अभी तक कैद होने का कारण मालूम नही हुआ। कमरे मे स्वल्पमात्र प्रकाश है। यह कौन-सा भतीजा साथ रहने के लिए आया, पहचानने के लिए आँखो मे जोर लगा रहे थे कि रामसिंह ने फिर कहा—

"चाचा!"

"कौन ?"

"मैं आपका खुशनसीव भतीजा हूँ!"

"खुशनसीव भतीजा !"

"जी हाँ।"

"खुशनसीव कैसे ?"

"ऐसे," रामसिंह ने दण्ड-प्रणाम करके कहा, "आपके शुभदर्शन हुए।"

राजा महेन्द्रपाल ने गौर से देखा, पर पहचान न सके। कभी देखा है, ऐसा भी न मालूम हुआ। पूछा, "तुम्हारा नाम ?"

रामसिंह गिडगिडाता हुआ बोला, "महुए के पेड और फल की तरह यह वदकिस्मत वही नाम रखता है जो श्रीमान् का है।"

"मजाक करते हो ?"

पैर छूकर रामसिंह ने कहा, "चाचा, मजाक करता होऊँ तो·· क्या कहूँ वाहर होते तो अपनी पतोहू से पूछ लेते !"

"वेवकूफ, पतोहू तेरा नाम क्यो वताती ?" राजा महेन्द्रपाल हँस दिये।

"चाचा, आपकी पतोहू ने ही तो मुझे यहाँ भेजा है। वडी सती है। वोली, जाओ, चाचाजी तो कैद मे रहे और तुम गुलछर्रे उडाओ ?—तुम न रहोगे तो क्या होगा ?—तुम्हारे चाचाजी वच जायँगे, तो सवकुछ है !"

"तू वडा वेवकूफ है रे !" राजा महेन्द्रपाल स्नेह से रामसिंह को देखने लगे।

"लेकिन चाचा, वात तो ऐसी ही है।" रामसिंह शून्य दृष्टि से महेन्द्रपाल को देखने लगा।

"तू कैसे फँसा ?" महेन्द्रपाल ने करुणा के स्वर से पूछा।

"फँसा कहाँ चाचा ? उसी ने कहा फँस जाओ। मैं परोहन खोजने गया था—"

परोहन सुनकर चौककर खिचते हुए महेन्द्रपाल ने पूछा, "तू धोवी है ?"

"धोवी होता तो तुम्हारे पास इस कैदखाने मे पहुँचता चाचा ? चौहान हूँ। तुम्हारी पतोहू धोविन है। कोई-न-कोई परोहन रोज खोती है। मैं खोज लाता हूँ—"

"क्या वकता है, वे-सिर-पैर की !"

"चाचा, वाद को समझियेगा। सव वातें सिर-पैर की हैं। सुनते जाइये। जहाँ

न समझ मे आये, समझ लीजिये कि वाद को समझियेगा। ऊँची वात है। फिर ऐसे ही परोहन खोज रहा था कि दो चिट्ठियाँ मिली। एक थी राजा महेश्वरसिंह की, एक राजा वलवन्तसिंह की। दोनो मे था कि राजा महेश्वरसिंह की लड़की प्रभावती से कुमार देव ने जवरदस्ती गान्धर्व विवाह कर लिया है। पर महेश्वरसिंह अपनी कन्या वलवन्त से व्याहना चाहते थे। चूँकि महेश्वर और वलवन्त मे आपकी पहले की लागडाट थी, इसलिए अपने लडके को सिखाकर आप सफाई के लिए यहाँ चले आये। पर आपका मतलव था कि ताक मे रहकर देख मौका पाते ही जवर-दस्ती गान्धर्व विवाह कर ले। फिर तो प्रभावती पति का विचार कर सती-भाव मे अचल रहने के लिए चूँ भी न करेगी। ऐसा ही हुआ। महेश्वर और वलवन्त जव वसूली के लिए पूरव गये तव पूर्णमासी को—यही जो वीती है—जासूसो ने पता पाकर कि प्रभावती चाँदनी मे नौका-विहार करेगी, कुमार देव कुछ साथियो के साथ आये, एक दूसरी नाव पर चढकर प्रभावती की नाव पर पहुँचे और जवर-दस्ती विवाह कर लिया। वेचारी अवला विवश हो गयी। फिर तो पति हो ही चुके थे। उनके साथी सव विदा हो गये और देव प्रभावती के साथ विहार करते हुए वहाव मे वहते गये। इसी समय ईश्वर की कृपा से उधर मे वलवन्त और महेश्वरसिंह आ पहुँचे। कुमार देव और वलवन्त मे तकरार हो गयी। कुमार घायल हो गये। उनकी सेवा-शुश्रूषा के लिए वलवन्त उन्हे अपने यहाँ लिये जा रहे हैं। उनका जो अपमान यह दोवारा किया गया, इसका महाराजाधिराज ही उचित विचार करें। यह हाल उन दोनो चिट्ठियो मे था। चिट्ठियाँ महाराजाधिराज के पास पहुँच गयी होतीं तव तो चाचा, तुम्हे मरे कई रोज हो गये होते!" कहकर महेन्द्रपाल की टाँगें पकडकर रोने लगा।

महेन्द्रपाल के चेहरे पर हवाइयाँ उडने लगी।

फिर उन्हे गौर से देखता हुआ वोला, "फिर महेश्वरसिंह आये। महाराजाधिराज से सारा हाल कहा। उन्हे मालूम हुआ कि वे चिट्ठियाँ नही पहुँची। हरकारे को किसी ने मालदार समझकर लूट लिया, सोचा, होगा। फिर चाचा, तुम्हारी पतोहू ने उन चिट्ठियो को पढा तव तुम गिरफ्तार हो चुके थे। पढकर वोली, महेन्द्र, तुम्हे धिक्कार है जो तुम यहाँ वैठे हो! चाचा, मेरा नाम लिया न, जो तुम कहते थे, न लेगी? फिर वोली, जाओ अपने चाचा के पास और कहो कि तुम महेन्द्र वच जाओ, मैं अपना सिर कटवाता हूँ। मैं यहाँ वलवन्त और महेश्वरसिंह की सारी कारस्तानी अच्छी तरह धोये देती हूँ। मैंने कहा, तुम्हे धोने मे क्या देर होगी, तुम तो अपने आपको धोये वैठी हो, लेकिन मैं चाचा के पास जाऊँगा कैसे? वोली, ये चिट्ठियाँ किसी सिपाही के सामने गिरा दो चलते-चलते, फिर खडे रहो, जरा दूर कुछ खाते-पीते देखते-सुनते हुए, फिर देख लो, क्या हाल होता है। फिर तो चाचा देखते हो कि क्या कमाल हुआ?"

महेन्द्रपाल पस्त हो गये। रामसिंह देखने लगा, कि वे शिथिल हो गये हैं। वोला, "चाचा तुम्हे सफाई पेश करने की फुरसत न दी जायगी, वस आज ही कल हो रहा है, जव भी कत्ल की आज्ञा निकल जाय।"

निस्तेज राजा महेन्द्रपाल कान्यकुब्ज का प्रचलित ढग जानते थे। विचार

किस तरह पारस्परिक ईर्ष्या के कारण मन्त्रणा-भवन में ही हो जाता है, किस तरह सफाई पेश करने का मौका न देते हुए हमेशा के लिए अभियुक्त को संसार से विदा कर देते हैं, इसके अनेक रूपों में राजा महेन्द्रपाल प्रतिस्पर्धियों के मामले में पेश आ चुके थे; बोले, "तुम ठीक कहते हो। जो कुछ मेरे सम्बन्ध में कहा है, सही मालूम देता है। पर, तुम हो कौन ?"

रामसिंह हँसा। कहा, "चाचा, मेरा परिचय तो आपको मिल चुका है। इससे ज्यादा आपकी समझ में न आयेगा। अच्छा, यह तो बताइए, कहीं किसी लड़की पर, जब वह तेरह साल की थी, रात को बदमाश उठा ले गये थे और एक नर्तकी के यहाँ बेचा था, आपकी कृपा-दृष्टि थी ? लिखाने-पढ़ाने और गाना सिखाकर होशियार कर देने की उदारता आपने दिखायी थी ?"

"हाँ।"

"इसके लिए आपने यथेष्ट धन भी खर्च किया था ?"

"हाँ।"

"क्यों ?"

राजा महेन्द्रपाल चुप रहे।

"फिर उसका क्या हुआ ?"

"फिर वह महाराजाधिराज के यहाँ नाचने आयी ?"

"अपनी इच्छा से ?"

राजा महेन्द्रपाल चुप रहे।

"वह किसकी लड़की थी ?"

राजा महेन्द्रपाल त्रस्त दृष्टि उठाकर रह गये।

"बतलाइए चाचा !"

महेन्द्रपाल लज्जित हो गये।

"उसे जो बदमाश लेकर भगे थे, उन्हें आप जानते थे ?"

महेन्द्रपाल झूठ न बोल सके।

रामसिंह मुस्कराया। कहा, "उसी ने आपको बचाने के लिए भेजा है। यद्यपि वह आपकी पाली हुई नर्तकी, लड़की है, पर मेरे सम्बन्ध से वहू है।"

"तुम्हारा मतलब सिन्धु से है !"

"हाँ, सिन्धु से। महाराजाधिराज के यहाँ से उससे बुरे तौर से आप फायदा नहीं उठा सके, इसलिए इस समय वह सच्चे तौर से आपके उद्धार के लिए कटिबद्ध हुई है।"

राजा महेन्द्रपाल कृतज्ञता के भार से सिर झुकाये हुए बैठे रहे।

शीशे की पतली पाती में लपेटी, चवन्नी से कुछ बड़े आकार के गोल काठ पर पक्के रंग से खींची एक तस्वीर गाल के भीतर से निकालकर, पर्त खोलते हुए रामसिंह ने पूछा, "अच्छा, चाचा, वीरसिंह कोई आपके यहाँ था ?"

"हाँ, था।" आशा से उमड़कर महेन्द्रपाल ने कहा।

"बड़ा बदमाश आदमी था ?"

महेन्द्रपाल फिर बैठ गये।

"अच्छा चाचा, देखिए तो, यह किसकी तस्वीर है ?" गोल काठवाला टुकडा रामसिंह ने महेन्द्रपाल को दिया। प्रकाश की ओर करके देखते ही महेन्द्रपाल बोले, "हाँ, वीरसिंह की है।"

"अच्छा दे दीजिए।" लेकर रामसिंह अन्यमनस्क हो गया। उसे वीरसिंह ने कभी अपना परिचय नही दिया। यमुना के आने के बाद उसे सन्देह हुआ था। वह हृदय से वीरसिंह का भक्त था, वीरसिंह को भी वह आचार्य मानता था। आज दोनो सूरतो के एक हो जाने से उसे जैसे जीवन्मुक्ति का आनन्द मिलने लगा। स्नेह, श्रद्धा तथा क्षोभ एक-साथ उमडने लगे।

"तुम परोहन खोजने की बात कहते थे, सिन्धु का परोहन कहाँ है ?" बैठे-बैठे महेन्द्रपाल ने पूछा।

"वह आदमियो को परोहन कहती है।" अन्यमनस्क भाव से कहकर रामसिंह सोचने लगा।

इक्कीस

महाराज शिवस्वरूप घोडा बढाते हुए कान्यकुब्ज से पूरबवाले गगा के घाट पर आये। सन्ध्या होने को कुछ समय रह गया। पार कर एक लक्ष्य से बढते हुए विद्या के मकान के सामने आकर घोडा रोका। कुछ मजूर बाजार मे खडे थे। एक को बुलाया और दाम देकर जल्द घास और दाना आदि ले आने के लिए कहा, फिर जमकर वही की एक सराय मे उतरे। परिचय आदि देने का पहले से अभ्यास पड चुका था, दबे नही। घोडे के आराम और दाने-चारे का प्रबन्ध कर, स्वय भी कुछ जलपान कर निश्चिन्त चित्त से झूमते हुए विद्या के जीने पर चढने लगे। देखा, विद्या उदास बैठी है।

महाराज को देख उठकर स्नेह-सम्भाषणपूर्वक पास बैठाला, यथा-साध्य भाव को बदलने का प्रयत्न करती हुई।

"बडा धोखा हुआ," महाराज अनेक भावो से विद्या को देखते हुए बोले।

"क्या ?" सोचती हुई, धीरे स्वर से विद्या ने पूछा।

"आज मालूम हुआ कि प्रभावती की दासी जिसका नाम यमुना है, वही बलवन्तसिंह की बहन यमुना है।"

"हाँ," विद्या अपने स्वल्प निश्चय को मन मे दृढ करती हुई बोली, "मुझे तो बहुत दिनो से मालूम था।"

"और उनके पति वीरसिंह को भी आज देखा। देखा तो पहले था, जब प्राग-राज से आ रहे थे—साधू बने बैठे थे—क्या कहै, माथा टेकना पडा, पर कोई दोख नही, भेख की पूजा है, पर आज पहचाना। बडी बिपत रही।" कहकर महाराज

ने लम्बी साँस छोडी।

विद्या और सचेत होकर देखने लगी। महाराज अपनी यात्रा आगमन तक सारा हाल बयान करने लगे।

दरवाजा बन्द करा विद्या ध्यान लगाकर सारा विवरण सुन रही थी। देर तक महाराज ने उसका वर्णन किया। कोई बात न छूटी। अनेक प्रकार के भाव विद्या के मुख पर प्रतिफलित हुए, जिनका मतलब महाराज की समझ मे प्रेयसी के विभिन्न सौन्दर्य के रूप मे ही आया।

रात एक पहर का वक्त हुआ, ऐसे समय दासी ने आकर कहा, "महाराजाधिराज के यहाँ से धावन आया है, महाराजाधिराज याद करते है।"

आज विद्या के गाने का दिन न था, एकाएक महाराजाधिराज के स्मरण करने का कारण उसके लिए शुभफलप्रद हो सकता है, सोचकर मन मे मुस्करायी। महाराज से कहा, "मुझे महाराजाधिराज के यहाँ जाना है, आप यही विश्राम कीजिए, मैं अधिक-से-अधिक डेढ पहर रात रहने तक लौटूंगी।" फिर हँसती आँखो देखती हुई, "आपको कुछ गाने-बजाने का शौक है।"

"हाँ," महाराज गम्भीर होकर बोले।

"क्या बाजा बजाते है ?"

"बीन बजाता हूँ, अरे भाई, हमको काम कौन है ? हम किसी राजा से घटकर थोडे हैं।"

"घटकर क्यो है ? आप तो ईश्वर के यहाँ से महाराज होकर आये हैं ?"

महाराज प्रौढ भाव से हँसे। चपल चलती हुई विद्या बोली, "अब मुझे जरा सजना है। फिर जल्द मौका निकालकर एकान्त मे मेरा आपका गाना-बजाना होगा—मैं गाऊँगी, आप बजायेगे, फिर आप गायेंगे, मैं बजाऊँगी, बडा आनन्द रहेगा। देखूँ मैं आपकी चेली होती हूँ या आप मेरे चेला ?"

विद्या दूसरे कक्ष मे चली गयी। महाराज मन-ही-मन सकोच कर रहे थे। सोच रहे थे, ससार कुछ नही, धर्म ढकोसला है, कही भी यहाँ का जैसा आनन्द नही, विद्या के साथ एकान्त मे जो सुख होगा, वह स्वर्ग मे दुर्लभ है। प्रभावती के साथ आने का यह सबसे बडा लाभ हुआ। आगे-पीछे कोई है ही नही। माँ गाँव मे पडी रहेगी। उसे कोई कष्ट न होगा। मुझे भी और क्या चाहिए।

महाराज इसी प्रकार की कल्पनाओ के स्रोत पर बह रहे थे कि विद्या सजकर सामने आ खडी हुई। महाराज आश्चर्य से देखने लगे।

फर्श पर अँगूठे की रगड से नूपुरो की रणन गुंजाकर मधुर स्वर मे अप्सरा ने पूछा, "यहाँ रहते हुए आपको कोई चिन्ता अवश्य नही।"

"कुछ नही, चिन्ता तो हम बहुत पहले छोड चुके है। वहाँ सराय मे घोडा बँधा है, कोई खोल तो न ले जायगा ?"

"मेरे नौकर को लेकर सराय से घोडा और सामान ले आइए। मैं जाती हूँ।"

नीचे रथ सजा था। साजिन्दे बैठे थे। बीच विद्या बैठ गयी। रथ राजमहल की ओर चला।

बाईस

मणि-फलित सहस्रो दीप के आलोक से प्रमोद-भवन झलमला रहा है। देहरी, द्वार, खम्भे पटाव से लेकर समस्त वस्तुएँ, राजासन आदि भारत की श्रेष्ठ कारीगरी के आदर्श। चारो ओर से द्वार मुक्त। एक ओर शुभ्र जाह्नवी की जलधारा रात्रि की नीलमसिरेखा-सी प्रतीत होती हुई। अपर तीन पार्श्व प्रकृति के अन्य शोभन दृश्य नैश अन्धकार की अस्पष्टता से स्पष्ट करते हुए। मुक्त हवा सुगन्धियो से भीगी बहती हुई। भीतर और बाहर की समस्त दृश्यावली, तारकाखचित आकाश तक, जैसे इस महाशक्ति को मानकर नत होती हुई आज्ञापूर्ति के लिए सन्नद्ध है—महाराजाधिराज के मनोरंजन के लिए उद्यत। सारे फर्श पर मृदु-स्पर्श बिस्तर लगा। पान और पात्र राजासन के सामने मणिपीठ पर रक्खे हुए। प्रवेश-द्वार पर सशस्त्र सिपाहियो का पहरा।

महाराजाधिराज की आज्ञानुसार सेवको ने केवल नर्तकी को छोडने के लिए कहा था; इसलिए साजिन्दो को सिपाहियो ने बाहर प्रतीक्षा करने के लिए कहा, जब तक संगीत के लिए संगत की आज्ञा से पुकार न हो। केवल विद्या नूपुरो के मधुर रव से विलास के उस आकाश और सौध को रणित करती हुई कक्ष के भीतर गयी। पूर्ण प्रौढ महाराजाधिराज जयचन्द बैठे हुए विचारमग्न, सेविकाएँ चवर ढुरती हुई। एक बगल विद्या हाथ जोडकर खडी हो गयी। आँख उठाकर महाराजाधिराज मुस्कराये। नम्र, मुस्कराहट मे उत्तर देती हुई विद्या पात्र पूर्ण कर मधुर भंगिमा से हाथ बढाकर खडी हुई, महाराज ने ले लिया, और चवर ढुरने की आवश्यकता नही, हाथ के इशारे से सूचित किया। समझकर चपल भाव को हृदय मे दबाकर दासियाँ सिर झुकाये हुए, महाराज को दाहिने रखकर बगल से बढती हुई कक्ष के बाहर हो गयी।

एक पात्र स्वय भरकर प्रेयसी को पास बैठा, प्रौढ महाराजाधिराज ने उसके सुकुमार होठो से लगाया, एक बाँह मे उसे आवृत करते हुए। मुस्कराकर विद्या ने पी लिया। एक पात्र उसने पुन तैयार कर पिलाया। सुरा का तडित प्रवाह अगो को प्रभावित करने लगा। आज्ञा हुई, स्वल्पझंकृत वीणा से तानें अलापो। पास सजी रक्खी हुई महाराजाधिराज की वीणा विद्या ने उठा ली। दो-एक बार मीठी झंकार कर वाद्य मे अलाप लेने लगी। मर्मज्ञ महाराज एक दृष्टि मे स्वर की परीक्षा कर मुग्ध होते रहे।

अलाप समाप्त कर विद्या ने एक पात्र और पिलाया और फिर दूसरी रागिनी मे अलाप लेने लगी। महाराजाधिराज निपुणता पर मन मे निछावर हो गये।

फिर बिना वाद्य के ताल-युक्त भाव-नृत्य करने के लिए कहा।

विद्या उठी। बायें हाथ से क्षुद्र स्वच्छ शीशा और दाहिने मे प्याला लेकर नृत्य करने लगी। महाराजाधिराज के अज्ञात एक दूसरे भाव से आज उसका हृदय उद्वेलित था, उसके नृत्य और भाव के प्रति प्रदर्शन पर उसकी तरगे उठ-उठकर राजेश्वर मे आवेश भरने लगी। सुरा-सुन्दरी स्वय जैसे नृत्य कर रही हो। नर्तित-

पद ताल पर बढती हुई भावपूर्ण विविध भगिमाओं से विद्या महाराज को आसव पिलाती रही। नशे मे यह दृश्य कान्यकुब्ज के समस्त ऐश्वर्य से कान्यकुब्जेश्वर को बढकर प्रतीत होने लगा।

प्रसन्न होकर बोले, "तुम्हारी जो इच्छा हो, माँगो।"

विद्या प्रसन्न होकर बोली, "महाराजाधिराज की कृपा-दृष्टि से बढकर भी कुछ?"

"नही, माँगो।"

"सेविका तो कृपा-दृष्टि ही चाहती है!" कहकर, हाथ बाँधकर विद्या मराल-ग्रीवा बनकर नम्र-दृष्टि ये मन्दस्मित खडी रह गयी।

उठकर, उसकी ललित अजलि खोलकर, मुग्ध प्रौढ महाराज आयत तिर्यक आँखें देखते हुए बोले, "तुमने प्रार्थना कभी नही की, सदा यही शब्द कहे!"

"हाँ, याद आयी," आँखें फेरकर विद्या बोली, "मेरा एक बीनकार कैद कर लिया गया है।" फिर खिलखिलाकर हँसी। "महाराजा राजेश्वर के सिपाही और सरदार बडे विचित्र मालूम होते है!" फिर एक तरफ मुँह फेरकर बोली, "रास्ते मे उसे दो चिट्ठियाँ पड़ी मिली थी। एक सरदार महेश्वरसिंह की लिखी थी, एक सरदार बलवन्तसिंह की। क्या शादी का झगडा था? महाराजाधिराज के नाम थी। मैंने उससे कहा, तू किसी सिपाही को दे आ जाकर। वह डर रहा था। मैंने भगवानदास को साथ कर दिया। लौटकर भगवानदास ने कहा कि मारे डर के उसने सिपाही के हाथ मे चिट्ठियाँ नही दी, सामने डाल दी। फिर सरदार को चिट्ठियाँ दिखाकर सिपाही ने उसे गिरफ्तार कर कैदखाने मे डाल दिया।" खिलखिलाकर बोली, "अब महाराजाधिराज को समझ लेना चाहिए कि बहुत जल्द हमारी पल्टन महाराजाधिराज पर चढाई करनेवाली है!"

महाराज जयचन्द हँसे। बोले, "हाँ, वे चिट्ठियाँ हमे मिली है। पर वह तुम्हारा साजिन्दा है, यह किसी को कैसे मालूम होता? तो तुम उसकी मुक्ति चाहती हो?" मन मे उसकी माँगने की क्षुद्रता पर मुस्कराये।

"हाँ, महाराजाधिराज की बडी कृपा और क्या होगी कि बेचारे निर्दोष मनुष्य की आज ही मुक्ति हो जायेगी।"

"उसका नाम क्या है?"

"महेन्द्रपाल।"

"महेन्द्रपाल?"

"हाँ।"

"राजा महेन्द्रपाल भी कैद मे हैं।"

"यह मुआ कहाँ मर गया राजा महेन्द्रपाल! यह रागी महेन्द्रपाल है।"

"अच्छा, मुक्ति का परवाना लिखो। हम मुहर देते हैं, कर लो—वह देखो पत्र, मसिपात्र और लेखनी सब वहाँ रक्खे है। लिखो।"

विद्या ने लिखा, "रागी महेन्द्रपाल को निर्दोष जानकर मुक्ति दी जाती है।" फिर उस पर महाराजाधिराज की मुहर कर दी। दिखा दिया। नशे मे महाराज जयचन्द ने नही देखा। उसने 'राजा' 'रागी' की लिखावट मे भेद न रक्खा था।

ईकार को आकार ही रक्खा था। यथासमय महाराजाधिराज की आज्ञा पर विदा हुई।

तेईस

रात का तीसरा पहर अभी पूरा नही हुआ, वैसे ही सजी हुई विद्या हाथ मे दीपक लिये अकेली काराद्वार पर उपस्थित हुई। महाराजाधिराज की इस नर्तकी से कान्यकुब्ज के सैनिक तुष्ट रहते थे। इसका एक कारण था, अधिक उपार्जन-सम्मान पानेवाली अपर नर्तकियो मे जैसे विद्या मे अहकार न था, स्नेह के विचार से यह महाराजाधिराज के अधिक निकट पहुँची हुई थी, सिपाहियो से सरदारो तक सभी को यह रहस्य ज्ञात था। बात सबसे बडी जो थी, वह यह कि राज्य-विभाग के हर एक मनुष्य को विद्या मीठी मुस्कान से स्नेहसिक्त कर देती थी; उसका ऐश्वर्य स्नेह था। सिपाही दर्प से लडता, स्नेह से नम्र होता है।

रहस्यमय स्नेह की दृष्टि परवाने के साथ कारा-कर्मचारी के सामने बढी, खडा सिपाही भी देख रहा था। कर्मचारी ने कहा, "राजा महेन्द्रपाल की मुक्ति का आज्ञा-पत्र है।" परवाने को देखते हुए रख लिया। सिपाही काराद्वार खोलने लगा।

विद्या सभग अगो से नम्र होकर बोली, "आपकी आज्ञा हो तो मैं राजा महेन्द्र-पाल को रास्ता दिखाकर ले आऊँ, आपके किसी सिपाही को कष्ट देना नही चाहती।"

जहाँ अन्य स्वार्थ का लेश नही रहता वहाँ भी सुन्दरी युवती की दृष्टि और स्वर का प्रसाद लोग चाहते है। कर्मचारी को इस निरुपमा नर्तकी की इच्छा-पूर्ति मे केवल दृष्टि और स्वर का प्रदान न मिल रहा था, आकाक्षा और दूर, उसकी प्रशसा मे होनेवाली भविष्योन्नति के ध्रुव-नक्षत्र पर थी, मार्ग न रोकने के लिए सिपाही को आज्ञा दी। सिपाही स्वय भी हृदय से ऐसी कामना कर रहा था, ससम्भ्रम विद्या को भीतर जाने के लिए हाथ बढाकर सम्वर्द्धित किया। विद्या भीतर गयी।

नूपुर-गुच्छ की श्रुति-मधुर रणन निश्चेतन कारागृह मे प्राणो से प्लुत नवीन जीवन का सचार करने लगी। ज्योतिश्चुम्बी भौरो की गूंज जैसे कमलो मे फुल्ल होने के कारण हुई।

राजा महेन्द्रपाल की अभी-अभी पलकें लगी थी, रामसिंह देर से खर्राटा भर रहा था। दोनो चौंककर एकाएक बैठ गये। रुक्ष प्रकाश मे आँखें तिलमिला गयी। मलकर अच्छी तरह देखने लगे।

देखकर, "आप आ रही हैं!" रामसिंह ने अभिनन्दन किया। अचपल दृष्टि विद्या धीरे-धीरे बढती हुई रामसिंह के पास आकर खड़ी हुई।

पहचानकर, "सिन्धु !" कहकर राजा महेन्द्रपाल आश्चर्य से देखने लगे।

"हाँ।" कहकर विद्या स्थिर दृष्टि से रामसिंह को देखने लगी। देखते-देखते आँखें सजल हो आयी।

"तुम्हारा अनुमान ठीक था, विद्या ! यह लो, ये वही हैं।" कहकर रामसिंह ने धीरसिंह का वह चित्र मुँह से निकालकर विद्या को दिया। धीर भाव से विद्या ने ले लिया।

राजा महेन्द्रपाल इस अभेद्य रहस्य के प्रति नि शब्द देखते रहे।

"आचार्य को सूचित कर दूँगा यदि समय प्राप्त हुआ, कि शिष्य ने पूर्णरूप से आचार्य को आत्मा मे मिला लिया है।" सयत धीर शब्दो मे रामसिंह बोला।

विद्या मौन खडी रही। केवल कुछ बूँदें आँसुओ की, शरत् की शेफाली के पत्रो से ओस-जैसे पृथ्वी पर टपकी।

"चिन्ता क्या है ! इस जीवन मे न मिले तो फिर मिलेगे, विद्या ! जाओ।"

देखकर विद्या फिर स्थिर खडी रह गयी।

"कार्य हो गया ?" रामसिंह ने धीर मन्द स्वर से पूछा।

"हो गया।" विद्या ने एक हाथ उठाकर प्रिय के स्कन्ध पर रखा। दूर रखा दीपक पार्श्व से दोनो के मुखो को प्रकाशित करता रहा।

"अच्छा अपना उद्देश्य पूर्ण करो।"

विद्या फिर खडी रही।

"चाचा," रामसिंह ने मजाक के स्वर मे कहा, "देखिए, मार्गाचलव्यनि करा-कुलितैव सिन्धु !" फिर विद्या का हाथ पकड़कर द्वार की ओर ले चलते हुए, "चाचा, इनके साथ जाइए, आप मुक्त कर दिये गये।" फिर दीपक लेकर हाथ मे रखते हुए, "चाचा को अच्छी तरह दिया दिखाकर ले जाओ, नही तो बुढापे मे कही गिर पडेंगे तो दाँत टूट जायेगे, फिर तुम्ही को सेवा करनी पडेगी। अच्छा, चाचा, चरण छूता हूँ।"

मन्द-चरण विद्या, साथ-साथ राजा महेन्द्रपाल काराद्वार से बाहर हो गये। प्रकाश मे एक दृष्टि से रामसिंह विद्या की छवि-गति देखता रहा। कारा का द्वार फिर बन्द हो गया। फिर फिरकर विद्या ने नही देखा। सीधे अपने घर की ओर राजा महेन्द्रपाल को ले चली।

वहाँ कुछ भोजन कराकर उसी समय घोडे पर चढकर सुबह होते-होते दूर निकल जाने के लिए कहा, और सक्षेप मे सारा हाल समझाकर बतला दिया कि अनुकूल कारणो के प्रकट होने के पूर्व वे प्रकाश मे न आये, उनके लिए अच्छा न होगा, और उसे निकालकर भी पालन करने की अपनी कृपा का इसे ऋण-शोध-रूप समझें। राजा महेन्द्रपाल प्रभात होते-होते विद्या के दिये एक घोडे पर, निशा के कलक की ही तरह, अदृश्य हो गये।

महाराज शिवस्वरूप विद्या के पलँग पर बेखबर सो रहे थे। अब तक क्या हुआ, नही मालूम। ऐसी सेज इस जीवन मे पहले-पहल मिली थी। जब जगाये गये तब विद्या अपनी बडी-बड़ी कुल वस्तुएँ प्रात काल ही नौकरो को आपस मे बराबर बाँटकर चले जाने के लिए देकर, अलकारो की एक गठरी बाँधकर,

आवश्यक कुछ सामान और लेकर, महाराजवाले घोडे के साथ अपना घोडा सजवाकर, पुरुष-वेश मे भागने के लिए तैयार हो चुकी थी। आँखें खोलकर प्रेयसी को पुरुष-रूप मे देखकर महाराज ने आश्चर्य से पूछा, "क्या है ?"

"तुम्हारे साथ भागने को तैयार हो गयी।"

"कहाँ ?"

"यहाँ-वहाँ जहाँ चाहो, उठो जल्द।"

चौबीस

प्रात काल आँख खुली तो प्रभा के पास एक अपरिचित मनुष्य को बैठा देखा। अब मन मे किसी प्रकार का आवेग न रह गया था। एक निश्चय की प्रतिमा बन गयी थी। जिस यमुना ने उसकी सेवा की, उसकी बहन को प्रसन्न करके, स्वेच्छा से अपना स्थान उसे देकर वह उस सेवा का सहृदय बदला चुकायेगी। अब राजकुमार के भविष्य की भी उसे चिन्ता नही रह गयी। कारण, इससे अधिक राजकुमार के भविष्य के लिए वह कुछ न कर सकती थी। अब केवल एक कर्त्तव्य उसकी दृष्टि मे रह गया हैं, वह यह कि वह राजकुमार की दृष्टि से दूर पृथ्वी मे कही अदृश्य हो जाय, जिससे उनके गले मे रत्नावली के हार पडने मे कोई सशय न रहे। वह उसे प्यार करते हैं, इतनी स्मृति उसके लिए बहुत है। पत्नी को इससे अधिक और चाहिए भी क्या ? दीदी अवश्य किसी कर्त्तव्य मे विवश होकर गयी हैं। अब उनसे भी मिलने की ऐसी क्या आवश्यकता है ?

उठकर बैठते ही, उस अपरिचित मनुष्य को देखते-देखते, उसके मस्तिष्क मे ये भाव चक्कर लगा गये। मन्द गति के सरायन के तट पर चलकर हाथ-मुँह धोया। सोचा, स्वतन्त्र जीवन का यह पहला कार्य हुआ। 'क्या शान्ति मुख पर विराज रही है ?'—अपरिचित मनुष्य एकटक देखता रहा।

प्रभा उसी जगह आकर बैठ गयी। जीन पर दृष्टि गयी। चिट्ठी निकालकर पढने लगी। कुछ शका हुई, पर स्थिर होकर वह चिट्ठी उसी तरह रख दी, फिर उस अज्ञात मनुष्य की ओर रुख किया, "तुम कौन हो ?"

"कलवाला सिपाही, जिसके पहरे पर आप चारदीवार के भीतर गयी थी।"

"तुम्हारा नाम ?"

"महादेवसिंह।"

"फिर क्या हुआ ?"

"फिर कोई आया था, कुमारीजी उनके साथ चली गयी। आपको आने मे देर हो गयी। मेरी बदली का समय आ गया था, रस्सी यो भी निकाल देनी पडती।"

"हाँ, तुम्हारी बदली की मुझे याद न थी। तुम उन्हे कुमारीजी कैसे कहते हो ?"

"वे हमारे ही यहाँ की कुमारी है, मैंने उन्हे बचपन से देखा है।"

"उन्होने तुमसे क्या कहा ?"

"आपकी रक्षा के लिए कहा, स्थान बतलाया कि उस जगह घोडा बँधा है। मैं पहरे से छूटकर हर फाटक पर खडा होता था कि अगर कोई अडचन आपको पडे जब आप फाटक पार कर रही थी। मैं जल्द बढकर दूसरे फाटक पर आ जाता था। आप जब घाटवाला फाटक पार कर गयी, तब मैं एक बार डेरे गया, फिर यहाँ लौटा, घडी-भर की देर हुई होगी। देखा, आप सो गयी है।"

प्रभा मुस्कुरायी; कहा, "तुमने मेरी पूरी रक्षा की, महादेव, तुम मेरे लिए साक्षात् महादेव हुए।"

महादेव नम्र हो गया।

"तुम मुझे पहचानते हो ?" मधुर कण्ठ से प्रभा ने पूछा।

"पहचानता हूँ, कुमारीजी ने चलते समय बतला दिया था।"

प्रभा गम्भीर हो गयी। ईश्वर की कृपा सोचकर मन मे कृतज्ञ हुई कि इस नाम के साथ प्रिय पति का नाम सम्बद्ध है, पुन स्मरण मे आने के लिए, भरकर बोली, "महादेव, यहाँ तुम्हे कोई कष्ट तो नही ?"

"कुमारीजी, जहाँ सिपाही को, सच्चे सिपाहियो की जगह, गिरा देनेवाली चालें, छल देख पडता है, जहाँ पेट भरने के अलावा जीने-मरने का प्रश्न प्रति क्षण उमे नही हल करना पडता, वहाँ सिपाही, सिपाही नही मजदूर बन जाता है। यह उसके लिए सिर ऊँचा रखने की बात नही।"

"झुके सिर के लोग सुखी नही, इसकी साक्षी वे स्वय भरते रहते है। पर, कुमारीजी, अब आपको जल्द यह स्थान छोडना चाहिए।"

प्रभा सोचने लगी। कुछ क्षण वातावरण स्तब्ध रहा। ज्यो-ज्यो प्रभा गहन से गहनतर क्षेत्र मे प्रवेश करती गयी, निकलकर स्थिर दृष्टि सिपाहियो पर रखते हुए पूछा, "तुम मेरे साथ रहोगे ?"

सिपाही खुश हो गया। बोला, "आपके साथ मुझे अच्छा सुख होगा।"

"और लोग तुम्हारा साथ देंगे ?"

"मेरे गिरोह के बीस आदमी है, उन पर मुझे विश्वास है, वे देगे।"

"अन्याय के समक्ष, मैं उन्हे धर्म के रास्ते रोटियाँ देने के लिए कहती हूँ।"

"आप लोगो पर हमे पूरा विश्वास है।"

"अब मैं अकेली नही हूँ।" प्रभा की आँखे सूर्य का प्रकाश भर रही थी। सिपाही का हृदय शौर्य से तन गया।

"मुझे आप पर, कुमारीजी पर जैसा विश्वास है।"

"ठीक, मैं उन्ही के चरण-चिह्नो पर चलती हूँ। जाओ, साथियो को ले आओ। पर तुम लोग इसी राज्य के हो या दूसरे के ?"

"इसी के।"

"तुम पर अत्याचार हो सकता है, यदि छुट्टी के बाद न लौटे, या मेरे साथ

रहने का कारण खुल गया।" पलक मारते सोचकर, "पर चिन्ता नही। मैं शीघ्र शक्ति बराबर कर लूंगी, मैं कहाँ तुम्हारी प्रतीक्षा करूँ ?"

"कुछ आगे और, गोमती-सरायन का सगम है, गोमती के किनारे, एकान्त है, कोई देखेगा भी तो यहाँ का आदमी सोचेगा।"

सिपाही चलने को हुआ। प्रभा ने पुन. सोचकर कहा, "सुनो, यह जितना अर्थ विलास मे खर्च होता है, इसका चौथाई भी तुम्हे नही मिलता, समझते हो ?"

"जी, हाँ।"

"यह अर्थ तुम्ही देते हो ?"

"जी।"

"बलपूर्वक तुमसे लिया जाता है ?"

"जी।"

"बलपूर्वक ले लेने मे अधर्म है। यदि अक्षमो को उदारता से बाँट दिया जाय ?"

"कुछ नही।"

"तो यही हमारा उद्देश्य होगा। हम इसी तरह शक्ति बढायेगे। जब तक समर्थ न हो, कर वे वसूल करेंगे। फिर देखा जायगा। व्यवस्था ईश्वर की है। मनुष्य तो अपने लाभ के नियम बनाता है। हमारा लक्ष्य ईश्वर है, कार्य दुखो का दूरीकरण, उचित उपाय मे। उस अर्थ-ग्रहण मे दोष नही, जिससे भूखे अन्न पायें, यही व्यवस्था स्थित होती है। क्या कहते हो ?"

"आप ठीक कहती है।"

"अच्छा, बलवन्त तहसील के लिए गये थे, कर लेकर लौटे नही, किसी कार्य से जल्द कान्यकुब्ज जा रहे थे, उनके वसूल किये कर का क्या हाल है ?"

"मालूम नही, वह उसी तरफ से सीधे, सम्भव है, कान्यकुब्ज जाय, या जाता हो।"

"हाँ," प्रभा गम्भीर हो गयी, "कर के साथ एक गांव से दूसरे गांव तक गांववालो की सहायता रहती है, यो पांच-सात आदमी से ज्यादा नही रहते—क्यो ?"

"जी, हाँ।"

"अच्छा फिर सोचा जायगा। तुम लोग जल्द जाओ। छुट्टी लेने की क्या आवश्यकता है जबकि निश्चित समय पर फिर हाजिर होना नही ?—ऐसे ही चले आओ।"

सिपाही डेरे की तरफ गया। प्रभावती घोडा साजकर सगम की तरफ चली।

गगा के उत्तर पार एक दूमरी आढत मे घोडे छोडकर वीरसिंह और यमुना पैदल कान्यकुब्ज आये, देखा, रामसिंह के कैद होने की वैसी हलचल नही जैसी राजा महेन्द्रपाल के छुटकारे के बारे मे है। लोग कह रहे है, यह मारी सिन्धु की, की हुई कारस्तानी थी, वह राजा महेन्द्रपाल को चाहती थी, लेकर भाग गयी, एक दूसरे बेवकूफ धोवी को उनकी जगह फँसा गयी। वे चिट्ठियाँ राजा महेन्द्रपाल की छीनी हुई थी, उन्होने उनमे काम निकालने के लिए सिन्धु को दी थी।

वीरसिंह को यह ममझते देर न हुई कि चिट्ठियाँ जवकि रामसिंह के पास थी और उन्ही चिट्ठियो के कारण वह गिरफ्तार हुआ है, तव सिन्धु से रामसिंह का भला-बुरा कोई मम्वन्ध जरूर रहा होगा और नर्तकी सिन्धु रामसिंह की मर्जी के खिलाफ राजा महेन्द्रपाल को छुटा न सकती थी। पुन कुछ पहले महाराज शिवस्वरूप को मिली विद्या नाम की एक नर्तकी के समाचार यमुना से वीरसिंह को मिल चुके थे। निश्चय किया, यह विद्या ही सिन्धु है, विद्या नाम की कान्यकुब्जेश्वर की कोई नर्तकी नही, इसकी राजा महेन्द्रपाल के वश की ओर सहानुभूति है यह प्रमाण मिल चुका है। शिवस्वरूप महाराज के कहने के अनुसार, यह उनकी जान-पहचान की है। कुछ हो, आगे मालूम हो जायेगा। वीरसिंह ने यमुना से सलाह ली।

यह सव पता वीरसिंह ने रामसिंह के अड्डे पर सन्यासी-वेश मे रहकर लगाया। वहाँ धोवी और धोविनें रहती थी। वे सब पछाँह के रहनेवाले थे। सन्यासी-वेश वीरसिंह का नाम वावा अमरनाथ था—यहाँ इस ममय इसी नाम से वे मशहूर है। रामसिंह जैसे कुछ साथियो को उन्होने सिखलाकर तैयार किया था। ये लोग इनकी तपस्या का प्रचार कर रहे थे, और कह रहे थे कि वावाजी की निगाह मे वडे-छोटे, ऊँच-नीच का भेदभाव नही, वे सभी को सम देखते है, मन्त्र देते है। इससे कुछ धोवी पहले-पहल फँसे। फिर उनकी देखा-देखी उनकी विरादरी के और दीक्षित हुए। फिर वावाजी ने सलाह दी कि कान्यकुब्ज मे चलकर वसा जाय तो फायदा ज्यादा होगा। धोवियो का एक गिरोह इस तरह कान्यकुब्ज मे आकर वसा। रामसिंह साथ आया। यह यहाँ रहकर कार्य की सिद्धि करने का एक उपाय हुआ। रामसिंह इनमे धोवी वनकर ही रहता था। आपस मे वडी प्रीति थी। कभी-कभी वावाजी आते थे। वडी आवभगत होती थी। इस वार यमुना को साथ लाकर धोवियो से परिचित कराते हुए कहा कि छँगुनियाँ की भौजी है, देवर को देखने आयी है। धोविनें वडे स्नेह से मिली, बहुत रोयी कि छँगुनियाँ पकड लिया गया है। यमुना भी रोयी। फिर सब ढाढस वँधाने लगी कि अव के सरदार के कपडे लेकर जायँगी तो कहेगी, कर नही तो डर क्या है।

अन्यत्र पृथ्वीराज की तरफ से काम करनेवालो मे, रामसिंह अपने सच्चे नाम से प्रसिद्ध था, वावा अमरनाथ को लोग धीरसिंह जानते थे। पूर्व मे धीरसिंह की वीरता की वडी ख्याति थी। वह लापता भी था। धीरसिंह भी चौहानो मे अज्ञात-

कुलशील महोबिया होकर मिला था। उन्हे सशय न हो, इसलिए मशहूर कर रक्खा था कि वीरसिंह ने कान्यकुब्ज मे, ऊदल से मित्रता कर ली थी और महोबे की लडाई मे लडता हुआ काम आ गया है। वहाँ रामसिंह के गिरफ्तार होने का कोई राजनीतिक कारण न मालूम हुआ।

नेत्रपल्लवी द्वारा यमुना से सबकुछ कहकर समझा दिया। निश्चय हो गया कि रामसिंह सिन्धु से मिलकर स्वेच्छया राजा महेन्द्रपाल को मुक्त करने के लिए कैद हुआ है, क्योंकि रागी महेन्द्रपाल की मुक्ति के लिए कान्यकुब्जेश ने आज्ञा दी थी, सिन्धु ने उसे अपना बीनकार कहकर उनसे परिचय दिया था, फिर उनकी आज्ञानुसार आज्ञा-पत्र लिखते हुए, 'रागी' को अस्पष्ट 'राजा' के रूप मे रहने दिया था।

छब्बीस

बलवन्त को लेकर सिपाही उसी दिन कान्यकुब्ज नही पहुँच सके। रास्ते से एक गाँव मे रह गये। घाव भीगने पर पीडा बढ गयी थी, मरहम-पट्टी करनी थी। दो दिन बाद पालकी पर लेकर गये। पहलेवाले सिपाही बलवन्त के थे; बाद को उनकी मदद के लिए आये हुए गाँव के जन।

बलवन्त की खबर कान्यकुब्ज मे घर-घर फैल गयी। पर उनका असली रूप बदला हुआ था। घायल होने के कारण मे राजा महेन्द्रपाल ही लपेटे हुए थे कि वीरसिंह छिपे तौर से राजा महेन्द्रपाल की मदद के लिए रहता है, उसी ने उन्हे अधिक सिपाहियो के साथ घेरकर घायल किया है, उन्हे न जाने कहाँ ले जाना चाहता था, घायल हो जाने पर एक नाले मे ले जाकर रक्खा था, तब तक उनके बहादुर सिपाही, जो उन्हे बचाने के लिए भाग गये, गाँवो से बराबर की मदद लेकर जल्द लौटे, पर वीरसिंह और उसके साथी उन्हे छोडकर डरकर भाग गये। एकान्त मे अपने सिपाहियो को बलवन्तसिंह ने ऐसा ही कहने के लिए सिखाया था। मदद के लिए गये हुए गाँववालो को असली कारण मालूम न था।

बलवन्तसिंह कान्यकुब्जेश्वर के प्रासाद मे बहुत अच्छी जगह रक्खे गये, और अच्छे से अच्छे राजवैद्य उनकी औषधि के लिए नियुक्त किये गये।

उसी दिन सन्ध्या समय सवाद मिला कि राजा बलवन्तसिंह का वसूल किया हुआ कर जो कान्यकुब्ज के लिए आ रहा था, मार्ग मे लूट लिया गया, साथ के अधिकाश सिपाही घायल हो गये है। उन्ही मे मे भागे हुए एक ने कहा। किसने लूटा, यह उसे मालूम न हुआ था, क्योकि, कर के साथ घिरे दो-चार सिपाहियो के गिरते ही भविष्य-फल का निश्चय कर वह भगा था।

एक के बाद दूसरे, सभी आरोप राजा महेन्द्रपाल पर उत्तम रूप से चलाये

गये। कान्यकुब्जेश्वर का धैर्य जाता रहा। सरदारो को बुलाकर उन्होने सलाह ली। सरदारो ने कहा कि भगे हुए महेन्द्रपाल अब लालगढ मे आश्रय नही ले सकते। इसी तरह अपने दल के साथ लूटते-खाते फिरेंगे, जब तक इसका दमन होता है, तब तक इस अक्षम्य अपराध का दण्ड भी उन्हे दिया जाय, अब सशय की बात नही रही।

सुनकर, देर तक विचार करने के पश्चात् महाराजाधिराज कान्यकुब्जेश्वर ने आज्ञा की, इस अपराध का दण्ड वध है। पर महेन्द्रपाल अधिकार से बाहर है, इसलिए साल-भर यह आज्ञा जारी रहेगी, उन्हे पकडकर देनेवाले को पुरस्कार-स्वरूप पाँच गाँव भूमि निष्कर दी जायगी, और कान्यकुब्ज से राजा महेश्वरसिंह के नायकत्व मे दस सहस्र सेना लालगढ लूटने के लिए भेजी जायगी। लूट की सारी वस्तुएँ, अस्त्र और अर्थ कान्यकुब्ज-कोष मे जमा होगे, इससे कर लूटने की क्षति की पूर्ति होगी, और देवसिंह को, पिता के अवैध कार्य की सहायता करने के कारण, सदा के लिए कान्यकुब्ज-भूमि से बहिष्कृत होने का दण्ड दिया जाता है। लालगढ के पूर्व और दक्षिण के चार पत्तन राजा महेश्वरसिंह को दिये जाते है और बाकी उत्तर और पश्चिमवाले समस्त राजा बलवन्तसिंह को।

आज्ञा यथाविधि लिखी जाकर महाराजाधिराज की मुहर और नामाक्षरो मे चिह्नित हो गयी।

इसी समय सरदार भीमसिंह ने कहा, आज मेरी धोबिन के साथ एक औरत आयी थी, वह उन चिट्ठियो के सन्देह पर पकडे गये छँगुनियाँ धोबी की भावज थी। उस धोबी को बुलाकर उससे पूछताँछ कर ली जाय, वह निर्दोष हो तो उसे बन्दी रखने से क्या फल होगा? महाराजाधिराज तक इन धोबियो की पुकार पहुँचेगी नही, और वह वैसे ही पडा सडता रहेगा। वह है भी राजनीतिक बन्दियो के कारागार मे।

मुस्कराकर महाराज जयचन्द ने उसे ले आने की आज्ञा दी।

कुछ देर बाद, आधी बाँह की तनीदार मिर्जई पहने रामसिंह सिपाहियो की रक्षा मे हाजिर किया गया; महाराजाधिराज को देखकर जमीन पर माथा टेककर उसने प्रणाम किया और उडी निगाह से देखने लगा।

"तू कौन है?" भीमसिंह ने पूछा।

"महाराज, छँगुनियाँ धोबी।"

"क्या करता है?"

"महाराज अपना काम करता हौ, आप लोगन के कपडे धोता हौ।"

"तुझे चिट्ठियाँ कहाँ मिली?"

"महाराज, बाईजी से।"

भीमसिंह ने महाराजाधिराज की ओर देखा। इशारा पाकर फिर पूछा, "कैसे बाईजी से चिट्ठियाँ तूने ली?"

रामसिंह रोनी सूरत बनाये आँखें मलता हुआ, वैसी ही आवाज मे बोला, "मैं का जानौं, का लिखा है? मुझसे कहा कि भगवानसिंह सिपाही के सामने डाल दे, उनको छूकर देगा तो मारेंगे; मैं इनाम देऊँगी? मैं उनके कपड़े लेने गया था।

जैसा कहा, वैसा ही किया। भगवानसिंह ने चिट्ठियाँ उठायी, मैंने दूर से सलाम किया। फिर पढकर मुझे पकड ले गये। रात को बाईजी गयी थीं, मुझसे बोली, ऐसे ही छुट जायगा घबरा मत।" लोग हँसने लगे। रामसिह छोड दिया गया।

सत्ताईस

बाबा अमरनाथ कुछ समय तक धोबियो के यहाँ रहे, फिर अपने सगठन की पर्यालोचना करके पहले अड्डे मे चले गये।

रामसिंह सीधे मकान गया। कुछ धोबी दरवाजे पर बैठे थे। बहुत खुश हुए। एक बुड्ढे ने सस्नेह कहा, "छँगुनियाँ रे, कहाँ मरा था ? सरदार भीम बाबा से कितना रोयी बहोरिया तेरे लिए, और तेरी भौजी भी आयी है, गयी थी उसके साथ, बेचारी रोती रहती है जब से आयी।"

रामसिंह ने बडो के पैर छुए, राम-राम की, कहा, "धोबी की जात, गँवार, चहै जो फँसाव ले चाचा!"

कहकर भीतर गया। कौन भौजी आयी है, जानने की उत्सुकता बढी। यमुना आँगन मे खडी थी। रामसिंह यमुना को देख चुका था। निस्सन्देह भक्ति-भाव मे पैर छुए, कहा, "भौजी तुम्हारी किरपा से बच गया। यहाँ आते तुमको बडी तकलीफ हुई होगी। भय्या का मेरे ऊपर बडा स्नेह है, नही तो तुमको आने न देते! मुझको गँवार जानकर भौजी सब धोखा देते हैं!"

धैर्य रखने मे इतना कष्ट यमुना को कभी नही पडा। कन्धे पर हाथ फेरती हुई बोली, "देवर राजा, अपने भाग बचे, अपना भाग फूलो-फलो, हमैं भी आँखो देखे का सुख है।"

और-और धोबिने मिली। उसकी भौजी जो भीम बाबा के यहाँ यमुना को ले गयी थी बोली, "रण्डी के पाले पड गये, मजा चखा दिया।" फिर एक दूसरी की तरफ मुखातिब होकर बोली, "ऐ, नही बडा सीधा है, छक्का-पजा नही आता," फिर रामसिंह से बोली, "गुरु महाराज आये थे, तेरी भौजी को वही साथ ले आये है।"

यमुना ने रामसिंह को गुड और रोटी खाने को दिया। वैसे ही छप्पर के नीचे पजो के बल बैठकर बायें हाथ मे रोटी पर गुड रक्खे, दाहिने से तोड-तोडकर रामसिह खाने लगा। खाकर, पानी पीकर, हाथ-मुँह धोकर, अपने गधे पर चढकर बिरहा गाता हुआ बाहर चला।

शहर पार कर दो-तीन घण्टे तक वैसे चला गया। दूर से वीरसिंह का अड्डा दिखायी पडने लगा। धुनी के धुएँ से उनके रहने का विश्वास हो गया। धीरे-धीरे बढता हुआ हँसता वीरसिंह के पास पहुँचा। कोई न था। गधे को वही साँदकर

चरने के लिए छोड दिया और गम्भीर होकर धीरसिंह के पास बैठा।

"कैसे छूटे ?" धीरसिंह ने मुस्कराकर पूछा।

"जैसे गया।'

"यानी ?"

"यानी अपनी जो अक्ल लडाकर गया था वही अन्त मे लडाकर जीती।"

"सिन्धु से कैसे जान-पहचान हुई ?"

"जिस तरह वह क्षत्रिय की लडकी से नर्तकी बनायी गयी।"

"क्या मतलब तुम्हारा ?"

"वही जो तुम्हारा है।"

"मैं नही समझा किस क्षत्रिय की लडकी थी और किस तरह नर्तकी बन गयी।"

रामसिंह एक दृष्टि मे धीरसिंह को देखता रहा।

धीरसिंह यह भाव-परिवर्तन पढ रहे थे।

"क्या तुम सच कहते हो धीरसिंह ?"

दो चिनगारियाँ एकाएक धीरसिंह की आँखो से निकल गयी। पर धैर्य से स्वर को बाँधकर रामसिंह को स्थिर देखते हुए उन्होने कहा, "खुलकर कहो, तुम्हारा क्या मतलब है।"

रामसिंह कुछ आवेश मे आ गया, बोला, "जो मनुष्य राजनीति को धर्मनीति के इतना महत्त्व देता है, खान-पान, आचार-व्यवहार जिसकी धर्मनीति के उपाग भी नही, वह राजनीतिक स्वार्थ के लिए एक लडकी को हर लेना बुरा न समझेगा, यह तुम मानते हो ?"

दूर तक समझकर, मुस्कुराकर धीरसिंह ने कहा, "नही।"

रामसिंह कुछ सयत हो गया, पूछा, "क्यो ?"

"इसलिए कि लडकी के हरण मे राजनीतिक स्वार्थ भले हो, राजनीतिक उन्नति भी है, तुम कह सकते हो ? धर्म के उपागो के न मानने की बात को इसी तरह तौलो, उससे धार्मिक पतन न होगा, राजनीतिक और धार्मिक एक बडे लक्ष्य की पुष्टि होगी।"

रामसिंह का विचार था, सिन्धु के भागने मे वीरसिंह का हाथ है, कम-से-कम वीरसिंह इस दुष्कृत्य को जानते है, पर जब सत्य की मूर्ति की तरह स्थिर देखा, तब अपने आप यह विश्वास पैदा हो गया कि वीरसिंह को यह प्रसंग ज्ञात नही, साथ-साथ सरल भक्ति का उद्रेक हुआ; पहली वृत्ति जाती रही। विनयपूर्वक कहा, "मुझे क्षमा करो, मैं तुम पर दोषारोपण कर रहा था। पर तुम वीरसिंह हो, यह मुझे मालूम हो गया।"

"हाँ, तुमने मालूम कर लिया, यह तुम्हारी बातो से सूचित था। पर कैसे मालूम किया, रामसिंह ?"

"तुमसे मिलने से पहले मैंने चित्रकला सीखी थी। सिन्धु तब लडकी थी; पढती थी; नाम विद्या था। हम एक ही गाँव के रहनेवाले है। विद्या की सुन्दरता की गाँव भर मे तारीफ थी। कुछ दिनो बाद असमर्थ पिता-माता की सहायता के लिए

दिल्ली गया और पिथौरा की सेना मे भर्ती कर लिया गया, लौटकर जव गया, तव सुना, एकाएक विद्या लापता हो गयी है। कारण कुछ भी मालूम न हो सका। इसके वाद तुम्हारा साथ हुआ, क्रमश' घूमते-फिरते हम लोग यहाँ आये। एक दिन कपडो के लिए मैं सिन्धु के यहाँ गया।"

रामसिंह रुक गया। अपने को सँभालने लगा। कुछ देर वाद कहा, "तव वह पूरी सिन्धु वन चुकी थी। मैंने नही पहचाना। देर तक मुझे देखती रही। पहले दिन कुछ नही वोली। कपडे दे दिये।—पता लगाया। वहाँ क्या पता लगता ? दूसरी वार वोली, छिगुनियां, तू कभी-कभी आया कर, कपडे लेने हो या नही, मैं तुझे इनाम दिया करूँगी। मुझे शका हुई। साथ-साथ विद्या का वह मुख आँखो मे उठ-उठकर सिन्धु के इस मुख से मिल जाने लगा। वडी इच्छा हुई कि पूछूं, पर कायदे के खिलाफ न गया। एक दिन उसी ने कहा, छिगुनियां, ईश्वर ने यहाँ भी मुझे धोखा दिया, रामसिंह को न दिया उसका साँचा भेजा। मैंने पूछा, रामसिंह कौन है ? उसने कहा, कोई नही। उसकी आँखे भर आयी। अव मुझसे न रहा गया। मैंने पुकारा, विद्या ! वह सहस्र प्राणो से उच्छ्वसित होकर मुझमे लिपट गयी। मैंने कहा, विद्या, मैं सुन चुका हूँ, हताश न हो। फिर क्या, वह राठौर की लडकी है, मै चौहान हूँ, वचपन मे मैं उसे प्यार करता था, मेरी ओर भी वह खिची थी, ईश्वर ने मिला दिया। फिर अपने भगाये जाने, वेश्या के यहाँ रहने, नृत्य-गीत सीखने और राजा महेन्द्रपाल की कृपा पाने का हाल उसने वयान किया। यद्यपि महेन्द्रपाल उसके भगानेवाले होकर नही, मदद करनेवाले होकर मिले थे, फिर भी कान्यकुब्जेश्वर से सम्वन्ध जोडने के कारणो को मिलाती हुई वह समझती है कि यह सव उन्ही का बिछाया जाल था। मैंने उसे पत्नी के रूप से स्वीकृन किया है। तुमसे छिपाकर मैंने तुम्हारी एक छोटी तस्वीर खीची थी, उसने तुम्हे देखा न था, क्योकि वह यही रक्खी गयी थी, तुम्हारी तारीफ सुनी थी। तस्वीर देखकर उसने सशय किया था कि धीरसिंह नही, तुम वीरसिंह हो। प्रभावती को लेकर यमुनादेवी के आने पर उसका सशय वदलकर निश्चयात्मक हो गया था। मेरे कैद होने के दो मुख्य कारण थे। एक तुम्हारी तस्वीर दिखाकर राजा महेन्द्रपाल से मालूम करना कि तुम्ही वीरसिंह हो या नही, दूसरा उन्हे मुक्त करना। विद्या को उन्हे मुक्त करने की धुन थी। यद्यपि राजा महेन्द्रपाल ने उसे पतित कर दिया था, फिर भी चूंकि वडे व्यय से उन्होने उसे शिक्षा दिलायी थी और कान्यकुब्जेश्वर से उसके जरिये कोई फायदा अव तक न उठा पाये थे और इस तरह वह कोई उपकार उनका करती भी नही, इसलिए उन्हे वचाकर हमेशा के लिए उनके ऋण को मुक्त कर देना चाहा था। इस तरह मैं वँधा।"

"मैं समझा।" सोचते हुए वीरसिंह वोले, "यहाँ महाराज पृथ्वीराज का संवाद आया है, दूसरे केन्द्र से। कहा गया है कि पूरी तैयारी के साथ नैमिषारण्य मे ठीक एक पक्ष वाद सव लोग मिलें, पर चतुरता से रहे, छुपे हुए।"

"क्या कारण है ?" रामसिंह ने उत्सुकता से पूछा।

"जान पडता है, पृथ्वीराज शिकार खेलने के वहाने छिपकर वहाँ जायेंगे सयोगिता से मिलने के लिए। इसके सिवा इधर इनके राज्य म आने का कोई

कारण नही मालूम देता। सयोगिता के चलने की खबर हुई, तो आने का यही कारण समझना चाहिए।"

"पर अब मेरा जी ऊब गया है। मै इस तरह की राजनीति से विद्या के साथ सुखपूर्वक जीवन विताना अच्छा समझता हूँ। मुझे इन राजो से घृणा हो गयी है। व्यर्थ के लिए जान देना है। कुछ न होगा, विद्या का प्यार स्वर्ग है। मैंने जो सचाई तुम्हारे साथ रहकर पायी थी, विद्या उसी की कीमत मिली। कुछ अच्छा नही लगता। दिन-रात उसी की चिन्ता लगी रहती है। कभी रास्ता नही चली। कहाँ भटकती होगी। रास्ते की ठोकरे खाती फिरती होगी। यह सब मेरे ही लिए हुआ। कितने सुख से रहती थी, पर उस सुख को ठुकरा दिया। मुझे वह कह गयी थी कि अब इस धोखे की राजनीति मे न रहना, यह महापाप है। मुझे बडा सशय यह है कि राजा महेन्द्रपाल फिर उसे धोखा न दें। कारागार से वह महेन्द्रपाल को साथ लेकर गयी है। मेरी उससे ऐसी बात हुई थी कि वह एक पक्ष बाद मुझे नैमिषारण्य मे मिलेगी, वीरसिंह अब मैं छुट्टी चाहता हूँ; केवल कभी-कभी तुम्हारे दर्शनो को आऊँगा, यो मैं इधर से निराश हूँ।"

"गिरे दिन को सुधारने मे कष्ट होता है। रामसिंह, बने दिन आप सुधरते जाते है। हताश न हो। हम एक साथ हँसेंगे, एक साथ रोयेंगे। काम बिगडता जा रहा है, इसलिए छोडना ठीक नही, बनाने की ही चेष्टा रहनी चाहिए। एक दिन शरीर भी क्षीण होता हुआ छूट जायगा, इसलिए आत्महत्या ठीक नही। अभी हमे तुम्हारी जरूरत है। जब न होगी, तब तुम्हे भी हमारी न होगी, दर्शनो को भी नही। सुखपूर्वक काम करो। क्षत्रिय होकर छाँह मे मरोगे।" रामसिंह सुनता रहा। वीरसिंह ने अपना सारा हाल मनवा जाने का बयान किया। फिर कहा, "बहुत सम्भव है, महाराज शिवस्वरूप आश्रय के लिए वहाँ से भगकर विद्या के यहाँ गये हो और विद्या उन्हे साथ लेकर भगी हो। ऐसी हालत मे वह राजा महेन्द्रपाल के साथ न जायगी। शिवस्वरूप को उसने अपना विद्या नाम ही बतलाया था। शिवस्वरूप के कथनानुसार वह उन पर भक्ति करती थी। उसने एक भेद भी खोला था, जिससे विश्वास के दृढ होने की सम्भावना है। फिर शिवस्वरूप मनवा का रास्ता न जानते थे, इधर का देख चुके थे। भगनेवाला पहचानी राह से ही भगेगा, जहाँ तक होगा। इधर, मालूम नही, विचार क्या हुआ। तुम पता लगाकर यमुना देवी को लेकर जल्द मनवा की तरफ जाओ, या जैसी उनकी सलाह हो करो, वहाँ मशहूर कर दो कि भावज के साथ घर जा रहे हो। हम एक पक्ष के भीतर तुम्हे नैमिषारण्य मे मिलेगे।"

बातें करते-करते पश्चिमाकाश अरुण हो आया। रामसिंह भक्तिपूर्वक प्रणाम कर गधे की खोज मे चला।

प्रभा के कहने पर भी प्रात काल जव रत्नावली उठी और राजा महेन्द्रपाल के बचाने की याद आयी, तब एक साथ कई विरोधी भावनाएँ उसकी राह रोक-रोककर खडी होने लगी। वह वहाँ किमी को तो नही पहचानती, अकेली क्या करेगी वहाँ जाकर?—पुन वह कुमारी है, वहाँ उसकी वरावरी के अनेक नरेश हैं, अगर किसी को मालूम हो गया और उस समय की प्रचलित प्रथा के अनुसार किसी ने उसका हरण किया तो? उधर राजा महेन्द्रपाल के लिए जितनी शका की गयी है, वह उतनी हद तक, मुमकिन है, न भी की जा सके, केवल स्नेहवश की गयी हो। अगर वहाँ जाया भी जाय तो सवसे वडा प्रमाण उसके पास जो वह भिक्षुक हैं, वह पहुँच से वाहर है, वह कहाँ रहता है, उसे नही मालूम, उसका पता लगाना होगा, इसमे देर होगी। कुमार देव से कुछ कहना ठीक नही, कारण उत्तेजना वढने पर नये पुरते हुए घावो को क्षति पहुँच सकती है।

इस प्रकार के निश्चय और अनिश्चय मे रत्नावली वही रह गयी। कुमार मे भी कुछ नही कहा। उसी तरह उनसे मिलती हुई उनकी सेवा मे दत्तचित्त रही। केवल मन मे निश्चय कर लिया कि कुमार देव प्रभावती के हो चुके है, अव धोखा खाये हुए जीवन को इस तरह का धोखा न देना ही ठीक होगा। इसके लिए चिन्ता तक व्यर्थ है। निश्चय के भीतर से एक दर्द उठता था, पर सँभलकर रह जाती थी। चित्त की एकाग्रता दूसरे दिन से एक विशृङ्खलता मे वदल चली।

इसी दिन कुछ सिपाही इस्तीफा देकर चले गये। वलवन्त के आने की राह न देखी। इसी दिन खवर भी पहुँची कि वलवन्त घायल हो गये है। पर विवरण उल्टा था। जैसा कान्यकुब्ज मे कहा गया था, उस रूप मे। वीरसिंह के हाथ वलवन्त के घायल होने का कारण रत्नावली ने वही प्रभावती वाला समझा। इससे भी उसे विश्वास हुआ कि वीरसिंह और यमुना की सहायता से राजा महेन्द्रपाल को मुक्ति मिल सकती है यदि वे ऐसे ही वुरे रूप मे फँस गये है।

तीसरे दिन वहाँ महाराज शिवस्वरूप और उनकी धर्मपत्नी विद्यादेवी यजमान कुमार देव को आशीर्वाद देने के लिए पहुँचे। उन्होने मार्ग की सुनी खवर सुनायी कि सिन्धु नाम की कान्यकुब्जेश्वर की कोई नर्तकी छल से राजा महेन्द्रपाल को छुडवाकर साथ लेकर भाग गयी है। इसमे रत्नावली को विशेष रूप से सन्तोष हुआ, घवराहट की वजह जाती रही।

रत्नावली ने वडे आदर से महाराज को रक्खा। कह दिया कि कुमार को प्रभावती तथा राजा महेन्द्रपाल का कोई सवाद न सुनाये, कुछ दिनो वाद सव हाल उन्हे आप मालूम हो जायँगे। महाराज ने मिलते समय इस आशा की पूरी-पूरी रक्षा की। उन्हे पहचानकर कुमार उच्छ्वसित हुए, तव स्वाभाविक वुद्धिमत्ता से उन्होने दोनो हाथो के पजे उठाकर आश्वस्त किया कि चिन्ता न करें, गगाजी की कृपा से सव कुशल है।

तीन दिन वाद कान्यकुब्ज से भेजा वलवन्त का पत्र मनवा के सेनापति के नाम

गया, जिसमे लिखा था कि कान्यकुब्जेश्वर महाराजाधिराज ने विचार कर यह आज्ञा जारी की है कि राजा महेन्द्रपाल को एक साल के अन्दर पकड देनेवाले को निष्कर पाँच गाँव जागीर दी जायगी और कुमार देव सदा के लिए कान्यकुब्ज भूमि मे निर्वासित किये गये। हरकारे ने भीतरी और-और बातें भी बताईं। लालगढ के किले को लूटने और उस भू-भाग के बँटवारे की खबर भी उसने दी, यह भी कहा कि यह भेद अभी गुप्त रखा गया है, केवल सरदारो को मालूम है, राजा महेश्वर-सिंह दस हजार सेना लेकर परसो चलेंगे, आज्ञा जारी हो चुकी है। जिस समय दूत सेनापति से बातें कर रहा था उस समय महाराज शिवस्वरूप गगाजली लिये वहाँ बैठे थे, कान्यकुब्ज से गगाजली भर ले गये थे जब पानी घटता था, तब सरायन का भर लेते थे। सेनापति को जनेऊ और गगाजल देकर आशीर्वाद करने गये थे। उन्हे निर्लिप्त ब्राह्मण जानकर सेनापति ने चिट्ठी के अलावे दूसरे प्रसग खुलकर कहने के लिए कहा था।

सब सुनकर सज्जित होकर सेनापति आज्ञापत्र हाथ मे लिये कुमार देव के पास पहुँचे। पीछे-पीछे गगाजली लिये धीर पदक्षेप से महाराज।

बिना काँटे की सद्य स्फुट उज्ज्वल केतकी की कली-सी सौरभ भार से व्याकुल भी पुष्ट वृन्त पर सँभली हुई कुमारी रत्नावली मधुर-मधुर हँसती कुमार से बातें कर रही थी। जो हृदय दे चुकी है, वह लौट नही रहा, फिर भी पूरी शक्ति से अपने को सँभाले हुए है, भीतर की शुभ्र प्रेम की किरणें दर्द के बादलो मे रगो से फलित हो रही है। कुमार अपने गत जीवन की एक भी बात नही कहते, कायिक क्लेश के साथ मानसिक दु ख को केवल सहते जा रहे हैं। रत्नावली समझती है और समझकर मलिन हो जाती है। दोनो ओर से रूप अपने अलौकिक प्रकाश मे फूट-फूटकर अपनी ही सत्ता मे विलीन हो रहा है। रत्नावली व्यावहारिक हँसी से होंठ रँगकर, अब आप बहुत जल्द अच्छे हो जायेंगे, आज आपके लिए छेने की रसेदार तरकारी बनाऊँगी, कल मैंने एक नया गाना सीखा है—आपको सुनाऊँगी, इस तरह की बातो से कुमार का दिल बहला रही है। सयत स्वर के भीतर भी दर्द के तार कभी-कभी झकार भरकर और सँभलने के लिए सचेत कर जाते है। कुमार बहुत थोडा बोलते हैं। कुछ दिनो से एक दृष्टि से रत्नावली के पृथुल हृदय पर शोभित हार को देखते हैं। रत्नावली इसे प्रभावती की याद सोचकर गम्भीर हो जाती है।

इसी समय सेनापति आकर आज्ञापत्र लिये सामने खडे हुए। भगिमभ्रू, तिर्यक पक्ष्मल दीर्घ तारक आँखो को उठाकर सेनापति पर रखती हुई क्या है, रत्नावली ने पूछा। सेनापति निवेदन करने लगे। अविकृत भाव से पडे हुए कुमार ने आज्ञा सुनी।

रत्नावली कुछ देर तक निश्चल पलको से बैठी रही। फिर पास की दासी को, छ-सात और जो उच्चपदस्थ नायक सेनापति से नीचे काम करनेवाले थे, उन्हे बुला लाने के लिए भेजा। सेनापति को आसन डलवा दिया। सेनापति रत्नावली की बदली हुई चेष्टा देखते हुए निश्चेष्ट से आसन पर बैठ गये। देखते-देखते बुलाये हुए नायक भी आकर एकत्र हुए, रक्षित आसनो पर कुमारी का इगित पाकर, बैठे।

आसन से खडी होकर एक दृष्टि सरदारो पर डालकर रत्नावली ने राजा

महेन्द्रपाल और कुमार देव पर निकली हुई राजाज्ञाएँ कह सुनायी। उसके बाद झुलसती दृष्टि से सबको देखती बोली, "मेरी समझ में, आप लोगों में कोई ऐसे नहीं जिन्होंने दीदी को न देखा हो। दीदी के सम्बन्ध में जो अन्याय हुआ है, केवल राजा होने के कारण जो स्पर्द्धा, जो भाव, जो घृणा अपर साधारण राजपूत के लिए प्रकट की गयी है, वह आप लोगों को मालूम है। यदि वीरसिंह राजा होते, तो दीदी के विवाह के समुद्र-मथन में जो केवल विष निकला वह न निकलता, बल्कि अन्य रत्न ही निकलते हुए देख पड़ते। क्या वीरसिंह सच्चे वीर और एक राजा के सेनापति न थे? क्या यह अपमान हरएक सच्चे वीर का न था—बोलिये आप लोग?"

"था," दो-तीन क्षुब्ध नायकों ने आवाज की।

"दीदी ने कभी राजा और प्रजा, स्वामी और सेवक का विचार नहीं किया, उनकी दृष्टि में वीर का ही महत्त्व था, उन्होंने वीर को वरा। सच्चे वीर वीरसिंह से आप लोग परिचित हैं; उनका युद्धकौशल प्रत्यक्ष देख चुके हैं। फिर भी आप लोग क्या बता सकते हैं कि उनका अपराध भी था जिससे उन्हें अपने स्थान लालगढ़ से सदा के लिए विदा लेनी पड़ी?"

"नि:सन्देह उनके साथ अन्याय हुआ है।" इस बार चार-पाँच एक साथ कह उठे, भिन्न-भिन्न शब्दों में एक अर्थ।

"वे वीरसिंह और देवी यमुना आज भी, सम्भव है, छिपे हुए किसी प्रकार जीवन-निर्वाह कर रहे हों। पर क्या वे न सोचते होंगे कि जिन साधारण सरदारों को ऊँचा उठाने के लिए वह आदर्श था, वे और सिर झुकाये उन्हीं राजा कहलाने-वाले पुरुषों की सेवा कर रहे हैं? क्या वे न सोचते होंगे कि उनके भाइयों ने यदि उनका पक्ष लिया होता तो आज वे लोकलोचनों के समक्ष होते? क्या यह सरदारों के लिए लज्जा की बात नहीं?"

सभी सरदार सिर झुकाये बैठे रहे।

"वीरो, तुम राजा के लिए कटकर मर जाते हो, पर अपने लिए सिर भी नहीं उठाते। तुम पर अत्याचार बढ़ते ही जा रहे हैं; पर तुम एक बार भी अपनी सदा-चारिता नहीं प्रदर्शित करते। तुम लोग जानते हो कान्यकुब्जेश्वर को प्रसन्न करने के लिए राजा महेन्द्रपाल ने सेनापति वीरसिंह से अन्याय-व्यवहार किया था। देवी यमुना उन्हें मुक्त कर उनके साथ निरुद्देश हो गयी। वे आज भी हैं। मुझे पता लगा है। यदि तुम मेरा साथ दो तो मैं तुम्हारे पक्ष से लड़ने के लिए तैयार हूँ। दर्पी उद्धत बलवन्त को तुम्हें नीच समझने की घृणा का उचित फल प्राप्त होगा।"

सेनापति से न रहा गया। कहा, "आप ठीक कहती हैं, मैं प्राण रहने तक आपका साथ दूंगा।" नायकों ने भी धर्म-साक्षी कर शपथ की।

'धन्य है, धन्य है!" उच्छ्वसित रत्नावली की आँखों से आनन्द की ज्योति विच्छुरित होने लगी, "तुम सत्य ही क्षत्रिय हो, तुमसे तुम्हारी माताएँ पुलकित, पत्नियाँ हर्षित हैं। देखो," गले से उठाकर हार दिखाती हुई, "यह हार मैंने एक भिक्षुक से खरीदा है; उसने स्वयं विश्वास कर मेरे पास लाकर बेचा। कुछ दिनों बाद वह आयेगा तब तुम्हें और अच्छी तरह मालूम हो जायगा, यों बामा (सेविका) से पूछ सकते हो यह माला लालगढ़ के कुमार ने भिक्षुक को दी, दलमऊ की कुमारी

प्रभावती की माला मे बदली थी। इस समय भी कुमार देव के गले मे प्रभावती वाली माला है। इससे प्रमाणित है कि कुमार देव ने बलपूर्वक विवाह नही किया। पर प्रभावती के भीरु पिता स्वार्थवश प्रभावती का बलवन्त से विवाह करना चाहते थे। कुमार प्रभावती के साथ नाव पर थे जब बलवन्त घायल हुए। आज वह प्रसग अनेक षड्यन्त्रो का दृश्यफल प्रकट कर रहा है। वह तुम्हे मालूम हो—भगे हुए राजा महेन्द्रपाल को एक वर्ष के भीतर खोजकर पकड देनेवाले को निष्कर पाँच गाँव की जागीर और कुमार देव को जीवन भर के लिए देश-बहिष्कार है। देखो, कैसा विवाह है? इसके मूल मे भी बलवन्त हैं।"

सभा के लोग मौन।

"मैं जानना चाहती हूँ, क्या तुम इस तरह की आज्ञाओ को मानकर ही चलना चाहते हो?"

'नही, हमे सहारा न मिल रहा था, हम दिल से बराबर ऐसे कृत्यो को बुरा मानते आये हैं।"

"ठीक है।" रत्नावली शान्त होकर बोली, "आप लोग जाकर विश्राम कीजिए। मैं प्रतिकार करती हूँ, बलवन्त का दुर्ग के भीतर प्रवेश पहरो मे कहकर, रोक दीजिए। आज्ञा मेरी रहेगी।"

सत्य के लिए दृढप्रतिज्ञ, कोई-कोई सच्ची वीरता दिखाकर रत्नावली के लोभी, इस नयी उद्भावना मे लीन, अपने-अपने वासस्थल को गये।

रत्नावली कुछ देर तक बैठी रहकर, स्वस्थ होकर, सस्नेह कुमार को देखती हुई बोली, "आप चिन्ता न कीजियेगा, चाँद देर तक बादलो मे न ढँका रहेगा।"

"आप अकारण मेरे लिए कलह न कीजिए।"

"मैं कलह नही कर रही, कलह दूर कर रही हूँ।"

"फिर भी भाई से बैर होगा।"

"नही, स्वभाव से भाई बैरी था, उसे मित्र बनाऊँगी।"

"नही, मैं कल यहाँ से चला जाऊँगा, मैं समझता हूँ, यमुना देवी की भूमिका आपने मेरे लिए बाँधी।"

"बामा," रत्नावली ने सेविका को आवाज दी, "सब फाटको मे कह आ, कुमार आज्ञा के अनुसार चले जाना चाहते हैं, वे जाने न पायें, जब तक निर्णय न होगा, वे यहाँ बन्दी रहेगे।"

सेविका प्रणाम कर चली गयी।

लौटकर सवाद लायी, एक दूत किसी राजराजेश्वरी का भेजा हुआ कुमार को स्वय पत्र देना चाहता है।

आने की आज्ञा हुई। दूत ने कुमार को पत्र दिया।

खजाना लूटकर प्रभावती ने निश्चय किया, जब तक कुमार के मन मे वह प्रभावती रहेगी, कुमार रत्नावली का प्यार स्वीकृत न करेंगे। यह सोचकर एक चिट्ठी कुमार के नाम लिखी और एक दूसरे सिपाही के हाथ, जो वहाँ का न था, मर्म समझाकर भेज दी। खोलकर कुमार पढने लगे—

श्रीकुमार देवजू को राजराजेश्वरी का यथोचित।

समाचार यह है कि तुम्हारी पत्नी प्रभावती ने मेरा आश्रय ग्रहण किया है जब उसे कही भी रहने का स्थान नही मिला। वह मेरी दासी है। मुझे अब तक तुम्हे सूचित करने का समय नही मिला, कारण मैं बलवन्तसिह का भेजा कान्यकुब्ज को जाता हुआ कर लूटने की चिन्ता मे थी। कर लूटकर निश्चिन्त होकर तुम्हे लिख रही हूँ। मेरी दासी भी शस्त्र चलाने मे पटु है, इसलिए मुझे बहुत पसन्द आयी। सवाद मिला है कि तुम्हारे पिताजी जो तुम्हारे इस विवाह के भ्रमात्मक कारण से बन्दी कर लिये गये थे, सिन्धु नाम की कान्यकुब्जेश्वर की नर्तकी की कृपा और छल से मुक्त हो गये है। उन्हे लेकर नर्तकी अपने बचाव के विचार से अदृश्य हो गयी है, उन्ही के नाम से एक धोबी को फँसाकर। आशा है, तुम प्रसन्न हो, और यदि मेरी दासी को या मुझे कुछ लिखना चाहो तो पत्र-वाहक के हाथ लिखकर भेज सकते हो।

—श्रीमती राजराजेश्वरी

पत्र पढकर कुमार ने रत्नावली को पढने के लिए दिया। कुमार मे एक साथ इतने परिवर्तन आ चुके थे कि इस पत्र का वैसा कुछ प्रभाव उन पर न पडा, अकारण एक दु ख हुआ। रत्नावली पत्र पढकर उसकी ध्वनि मे तमतमा गयी। उसी वक्त अपनी तरफ से एक पत्र लिखा। फिर राजकुमार से उत्तर के लिए पूछा। कुमार ने कहा कि कोई ऐसी आवश्यकता उत्तर देने की क्या है, मैं केवल इतना आपमे अनुरोध करूँगा कि आप महाराज के हाथ अपना पत्र भेजें। देवी प्रभावती से महाराज जबानी मेरा हाल कह देंगे, महाराज प्रभावती के ही पित्रालय मे रहते है।

रत्नावली ने पत्र बन्द कर महाराज को दिया। फिर दासी के कान मे महाराज को पाथेयरूप एक पुरस्कार निश्चय कर देने के लिए कहा।

महाराज विद्या के पढाये हुए थे कि कही छोडकर न जायें। विद्या प्रभावती की खोज मे यहाँ आयी थी। बातचीत से महाराज को मालूम हो गया कि प्रभावती को वहाँ जाना है। जब मनवा आये थे तब कोस भर दूर तक विद्या भी घोडे पर थी। यहाँ आते समय विद्या ने गगापुत्र की हैसियत से मिले घोडो को जो कुछ भी मिले, उसी कीमत पर बेच देने के लिए महाराज को सलाह दी थी, उन्होने ऐसा ही किया था। अब चिट्ठी लेकर चलते समय विद्या की बात सोचकर बोले, "और वह भी साथ है, वह घोडे पर कैसे चढेगी ?"

हँसकर रत्नावली ने कहा, "तो हाथी पर जाइये।"

"अच्छा," सोचते हुए महाराज ने कहा, "हौदा कसवाय देव।" कहकर पत्र लेकर डेरे गये। विद्या बैठी सोच रही थी। महाराज के पैरो की आहट से भी उसे बाह्य-ज्ञान न आया। कन्धा पकडकर हिलाते हुए महाराज ने कहा, "पता लग गया, वहाँ से चिट्ठी आयी है। उसका जवाब ले जा रहे है। हम घोडो पर जाते, फिर याद आया, हमने कहा, और वह जो है। तो कुमारीजी बोली, हाथी मे जाओ। हाथी मे तो नही दोख ? और हे—बडी खराब खबर आयी है। राजा महेन्द्रपाल भगे है, कोई साल भर मे पकड लेगा तो उसको पाँच गाँव की जागीर मिलेगी; और देव कुमार को देश-निकाला दिया गया है। और लालगढ लूटने के लिए महेश्वरसिंह,

प्रभा के पिता, परसो चलेंगे।"

"जाओ, कहो, हाथी पर नही, रथ पर जायँगे। यह गठरी-मुठरी लेकर हाथी पर क्यो वैठेगे ?"

महाराज फिर कहने गये।

उन्तीस

प्रभा एक पेड की छाँह मे वैठी थी। घोडा वँधा हुआ था। घोडे की पीठ ही अव वासस्थल है। पुराना मन्दिर, जीर्ण-प्रासाद या खुला प्रान्तर कुछ क्षण के लिए शयन-भूमि। खाना, पीना, रहना, प्राय घोडे की पीठ पर। इस समय अपने भावी कार्यक्रम की चिन्ता मे तन्मय रहती है—किस उपाय से ग्रामीणो मे शिक्षा का प्रचार होगा, वाहर रहकर भी प्राणो के भीतर पैठने का उत्तम मार्ग तैयार होगा, सर्वसाधारण के हित की किस तरह की धारा प्रखरतर होकर उन्हे शीघ्र वहुत ज्ञान के समुद्र से ले चलकर मिलायेगी, साथ-साथ जनता को इस रीति के ग्रहण मे किसी तरह का सकोच न होगा, वल्कि इससे लोगो मे स्फूर्ति फैलेगी और परस्पर सम्वद्ध होने की सहृदयता दूर-दूर के भिन्न-भिन्न गाँवो और वर्गो के लोगो को वाँधेगी, हर वर्ण की अलग-अलग शिक्षा हर वर्ण के मनुष्य को पूर्णता तक पहुँचायेगी, और जवकि हर शिक्षा अपनी प्रगति मे दूसरी शिक्षाओ का सहारा लेती है, तव हर मनुष्य भी सापेक्ष होकर दूसरे मनुष्य का मूल्य समझेगा, भिन्न वर्ण के प्रति इस प्रकार घृणा का भाव न रह जायगा, सम्वद्ध होकर देश सच्ची शक्ति से प्रवुद्ध होगा, यह सफलता साधारण आनन्द की दात्री नही। इसमे प्रिय का जो रूप है, वही यथार्थ मुक्ति के आनन्द का कारण हो सकता है।

प्रभावती छाँह मे तने के सहारे आधी लेटी हुई इस प्रकार से भविष्य की कल्पना कर रही थी। खजाना लूटकर चतुर्थांश उसने उसी क्षण सिपाहियो मे वाँटा था, एक चतुर्थांश और सिपाही वढाने के लिए लगाने को कहा था, वाकी एक चतुर्थांश रखकर, वहाँ के कई गाँवो के दरिद्रो मे चतुर्थांश धन वँटवा दिया था।

कुछ सिपाही नित्य-कृत्य मे लगे थे। कुछ प्रभावती की रक्षा मे इधर-उधर वैठे खडे थे। चारो ओर नाले, ढाक का वन। कुछ लोग पेड पर चढे बैठे थे। आगे घोडा और पीछे रथ आता हुआ देखकर एक ने पास के दूसरे से कहा। उसने भेजे हुए सिपाही का अन्दाजा लगाया। एक तीसरा उतरकर घोडे पर चढकर वन के किनारे पहुँचा। घोडेवाले सिपाही से तथ्य मालूम हुआ। उसने रथ वही रोक देने के लिए कहा। रथारोही ने महाराज से पैदल चलकर मिलने के लिए निवेदन किया। रथवाहक को प्रतीक्षा मे वही रहने के लिए स्नेहपूर्वक कहा।

विद्या अपना सामान महाराज को लेकर चलने के लिए कहकर उतरी। अश्वारोही दूत भी घोडे से उतर पडा, लगाम थामकर बढा। पीछे-पीछे महाराज, उनके पीछे विद्या चली। कुछ झाडियो की आड रह गयी तो दूत ने महाराज को वही प्रतीक्षा करने के लिए कहा और स्वय प्रभावती के पास चला। प्रभा उठकर वैठ गयी। दूत ने प्रणाम कर पत्र देने की खबर कही और कहा कि कुमार देव ने उसका उत्तर अपने दूत के हाथ भेजा है, दूत के साथ उसकी पत्नी भी है, रथ पर आये हैं, रथ वन के किनारे खडा है, दूत अपनी पत्नी के साथ आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहा है। दूत पत्नी को लेकर आया है, यह एक विचित्र विनोद-सा प्रभावती को मालूम दिया। उसके आज्ञा दी, "अच्छी वात है, दूत की पत्नी को सम्मानपूर्वक आगे करके दूत को ले आओ।"

आगे-आगे विद्या, उसका सामान लिये सकुचाते हुए पीछे-पीछे महाराज चले। भावमयी अपूर्व-सुन्दरी विद्या को प्रभा देखती रह गयी, उसके पीछे महाराज को देखकर हँसी न रोक सकी, कहा, "महाराज, आप निन्नानवे के फेर मे पड गये? एकाएक वडा भारी भार पडा! प्रणाम करती हूँ। अच्छे तो हैं?" कहकर महाराज की धर्मपत्नी को प्रणाम करने को अजलि वाँधी तो उसने हाथ पकडकर छुडा दिया—"मुझे नही,' स्नेह के कण्ठ से कहकर। प्रभावती ने सोचा, शायद महाराज ने कही से भगाया है। महाराज ने ऊँचे स्वर से प्रभावती को आशीर्वाद दिया; फिर सवको वहाँ से हटा देने के लिए कहा। इगित पा लोग इधर-उधर हो गये।

महाराज ने रत्नावली की चिट्ठी निकाली। वडे आग्रह से प्रभा ने हाथ वढाया। महाराज सकुचित होकर वोले, "लेकिन विट्टीरानी, यह चिट्ठी तो रतन ने, राज-राजेसुरी कोई है इहाँ, उनको देने के लिए दी है।"

"तो मुझ पर विश्वास नही तुम्हे?"

"तुमसे ज्यादा विश्वास किस पर होगा हमको? हम कुछ राजराजेसुरी के वसते है, तुम ही लेव।"

"तुम्हे अव रतन के पास लौटकर थोडे जाना है? घवराते क्यो हो? पढकर पहुँचवा दूँगी।"

प्रभावती उतावली से चिट्ठी खोलने लगी। विद्या भाव समझकर पुलकित हो मुस्कुराती रही। एक दृष्टि से प्रभावती पढने लगी—

डाक् राजराजेश्वरी को यथोचित।

कुमारदेव को लिखा तुम्हारा पत्र कुमारी की इच्छा से मैंने पढा। उनका स्वास्थ्य अच्छा नही, इसलिए उचित उत्तर मैं उनकी ओर से लिख रही हूँ। पुन वे तुम्हे उत्तर लिखकर सम्मान दें, ऐसी मर्यादा तुम्हारी नही। मैं भी न लिखती, मेरी दासियो के तुम्हारी-जैसी दासियाँ है। चार वदमाश इकट्ठे करके रास्ता चलता धन लूटकर तुम्हे शक्ति का गर्व है, लज्जा नही। शक्ति के स्पर्द्धाभाव मे देवी यमुना की सहोदरा तुम्हे क्या समझ सकती है, सोच लो। तुम राजराजेश्वरी समझती हो अपने को! मिलने की जगह वतलाओ तो वल की परीक्षा कर ली जाय। देखो फिर मेरे पदत्राण उठाने से पहले परित्राण पाती हो या वाद।

—कुमारी रत्नावली

कई वार प्रभावती ने पत्र पढा। कई वार देव-शब्द को आँखों से लगाया। इच्छा हुई, हृदय से लगाये, पर महाराज और विद्या की लाज वाधक हुई। मन से उसे सहस्र वार हृदय से लगाया। भाव मे भरी हुई देर तक वैठी रही। कुछ समझ मे न आ रहा था कि इसका क्या उपाय किया जाय।

मन के क्षोभ को समझकर विद्या ने प्रिय स्वर से कहा, "देवी, आप चिन्ता न करे। अभी और वहुत-से सवाद आपको सुनने है। इसके वाद कार्य की चिन्ता करनी है। मेरा विचार है, यह सारी धूल सघन कार्य की वर्षा मे दव जायगी। पथ सुखमय होगा।"

विद्या की आवाज ऐसी थी कि प्रभा आकृष्ट हो गयी। यह स्त्री पत्नी-रूप से महाराज से ही नही मिल सकती, विश्वास हो गया।

"आपसे मेरा विशेप परिचय नही, पर मैं एकान्त मे आपसे वाते करना चाहती हूँ, क्योंकि स्त्रियो की भीतरी वातें पुरुप के सामने नही हो सकती (महाराज को सुनाकर कहा), तव तक महाराज वहाँ से आये रथवाले को देखकर आयें कि उसके भोजन-पान का अच्छा प्रवन्ध हुआ या नही और वह कव तक यहाँ से जाना चाहता है।" प्रभा ने कहा। महाराज उठे।

"ठहरो," विद्या महाराज से वोली, फिर उसने प्रभावती की तरफ रुख कर कहा, "उसे इसी वक्त कुछ देकर विदा कर देना ठीक होगा, क्योकि ऐसी परि-स्थिति है। कहकर अपनी एक अँगूठी निकालकर प्रभा को देखती हुई वोली, इसे आप अपनी ही चीज समझें, मैं आपको कष्ट देना नही चाहती, महाराज उसे आपके नाम से पुरस्कृत करके जाने के लिए कह दे, आपको मेरी चीज लेने मे शास्त्रीय आपत्ति न होगी, विश्वास रक्खे।"

"पर मेरे नाम से नही महाराज, कहना कि देवी राजेश्वरी ने पुरस्कार दिया है।"

अँगूठी लेकर महाराज चल दिये। डरे कि पहली रातवाली वात कह न दे, जिसे उन्होने छिपाया था।

विद्या महाराज से मिलने की पहली रात मे लेकर मनवा से चलने तक सभी वाते सुधरे ढग से कहने लगी, जिसमे थोडे समय मे सभी वाते और सारा परिचय आ गया। महाराज से उसे दूत की कही लालगढ लूटनेवाली गुप्त वात भी मालूम हो चुकी थी। उसे भी कहा। सोचा था, महेश्वरसिंह, सम्भव है, प्रभावती का स्नेह माने।

प्रभा चुपचाप सव सुनती रही। इस अद्भुत स्त्री के प्रति उसकी सहानुभूति, सम्मान और अभेद अपनाव पैदा होता रहा, ज्यो-ज्यो वह वातचीत मे आगे वढती गयी।

सारी वातें सुनकर प्रभा ने कहा, "वहन, लालगढ की रक्षा पिता की कृपा पर निर्भर रहने पर नही हो सकती। वे इतने कृपालु व्यक्ति नही। विरोध से हो सकती है। पर मेरे पास जितना धन है, इतने से अतुल्य सैन्य सग्रह किया जा सकता है, पर यह कार्य शीघ्र न होगा। अधिक अर्थ का लोभ देकर सेना एकत्र नही की जा सकती, कारण उतना अर्थ नही, पुन जो अर्थ मेरे पास है, वह दूसरे

अभिप्राय से है। मैं लालगढ की रक्षा के लिए उसका व्यय करूँगी तो मेरे सहकारी अच्छी आलोचना न करेंगे।"

कुछ क्षण विद्या चुप रही। सोचकर कहा, "पहले तो आपको कुमार देव की पत्नी होने का प्रमाण पेश कर राजा महेश्वरसिंह के पहुँचने से पहले पहुँचकर दुर्ग मे अधिकार करना चाहिए। फिर पत्र लिखकर समय की प्रार्थना। अवश्य यह अधिकार राजा महेश्वरसिंह नही रखते। पर इसके बाद युद्ध होने पर भी आपकी विजय होने पर बाद की शका कम रहेगी। क्योकि कान्यकुब्जेश्वर न्याय के फन्दे मे आ जायँगे। रही बात खर्च की, सो वहाँ अधिकार मिलने पर सेना भी मिलेगी, और वह सेना सुशिक्षित होगी, थोडी ही सेना बाहर मे एकत्र करनी पडेगी। सम्भव है, लालगढ के ही लोग धर्म और सत्य का विचार कर आपका साथ दें। नही तो यह लीजिये, इमसे आप राजा महेश्वरसिंह की दस-गुनी सेना एकत्र कर एक साल तक युद्ध कर सकती है। यह किसी का दान नही, मेरे परिश्रम मे अर्जित अर्थ है।" यह कहकर हीरे, मोती और भिन्न-भिन्न रत्नों की पेटिका खोलकर प्रभा के सामने बढा दी।

एक बार पेटिका और एक बार विद्या की ओर दिव्य भक्तिपूर्ण दृष्टि से प्रभा ने देखा।

कुमारी रत्नावली ने कुमार के लिए जो सगठन किया था, विद्या से उसे मालूम हो चुका। किसी तरह दोप की अँधेरी रातवाले दिन कटे तो आकाश पर उसके परिणय के दिन की पूर्ण शशाङ्कच्छवि अकित दिखे—इस बार कुमार और रत्नावली एक साथ बँधकर सदा के लिए सुखी हो। यह लालसा प्रभा के हृदय मे लहराकर रह गयी—दीदी का ऋण इस शोध से भी पूरा न होगा!

प्रभा ने निश्चय कर कहा, "मैं यथाशक्ति आपकी आज्ञा पालन करूँगी।"

"हम मे 'तुम' का ही व्यवहार ठीक होगा। तुम मुझसे उम्र मे छोटी होगी, यमुना देवी बडी।" मुस्कुराकर प्रभा उठकर वन मे एक तरफ गयी।

तीस

धोबी और धोबिन से मिलकर भरसक जल्द लौटने का कौल कर भौजी के साथ रामसिंह विदा हुआ। फैसले की सारी बातें गुप्त रीति से मालूम हो गयी थी। उपाय न रहने पर भी उद्यम करने के विचार से भौजी की सलाह पर चला था। यो रामसिंह विद्या की खोज करना चाहता था। एकान्त मे उसने भौजी से कहा भी था कि उसके बिना उसका जी मसोस रहा है, सुख मे पली थी, अब न जाने कैसे दुख झेलती हो। भौजी ने स्नेह के स्वर मे कहा था कि धैर्य रखना ठीक है जब कि मिलने का वादा बदा जा चुका है, जब पहले-पहल बारिश होती है तब दुनिया भर

के काँटे वढने है, उस समय तैरकर पार करने के वनिस्वत नदी का वहाव देखते रहना ज्यादा अच्छा है कही काँटे मे उलझ गये तो फिर जिन्दगी भर के लिए पार रह ही जाता है—धारा ही घारा जान पडता है। फलतः रामसिह ने भाभी की वश्यता स्वीकार की। सोचा, एक दूसरी अभिज्ञता होगी, इतना नाम सुना है, कुछ काम भी देखूं। चूंकि प्रभावती का पता न था और पता लगाकर लालगढ की रक्षा करते देर हो रही थी, ऐसे ही मनवा जाकर लौटते-लौटते महेश्वरसिह लालगढ दाखिल हुए जा रहे थे, कुछ पेशवन्दी न हो रही थी, इसलिए यमुना ने सीधे लालगढ चलने की सलाह दी। यथासमय तैयार दो घोडे स्वामीजी के डेरे पर मिले, यमुना और रामसिह भक्तिपूर्वक स्वामीजी से विदा लेकर चले।

काफी दूर निकलकर विश्राम के लिए दोनो उतरे। घोडो के दाना-पानी का प्रवन्ध किया। सायिक सेवा के लिए नौकर वुला लिया। स्नान-भोजन कर दोनो ने कुछ काल आराम किया।

एकान्त देखकर रामसिह ने पूछा, "भाभी, हम दो आदमी दस हजार का सामना करेंगे ?"

यमुना सोच रही थी, वोली "क्यो, तुम दो आदमियो ने दस लाख का सामना कैसे किया ?"

"वह तो चाल थी।"

"यही कौन ढाल-तलवार लेकर लडने जा रहा है ?"

"भाभी, तुम कितने आदमियो का सामना कर सकती हो ?"

"अकेली ?"

"हाँ।"

"एक आदमी का।"

वेवकूफ की तरह देखता हुआ रामसिह वोला, "लेकिन तुमने भाई साहव को थोड़े आदमियो की मदद से छुडाया था।"

"वह और वात थी, सूझ भी लड़ाई मे कभी-कभी नकशा वदल देती है।"

"इस मामले मे कुछ सूझा ?"

"हाँ, देखो, वताती हूँ, जाओ थोडा-थोडा रग सव तरह का खरीद लाओ। कूचियाँ भी तीन-चार, कम-से-कम एक।"

भाभी तस्वीर खीचेगी, सोचकर रामसिह वहुत खुश हुआ। यह विद्या वह भी जानता है। वडा आग्रह हुआ कि भाभी का हाथ देखे। मन मे तरह-तरह से सोचता हुआ चला। जहाँ टिके थे, वहाँ से वाजार निकट था। चित्र खीचने का सारा सामान, प्यालियाँ, कूची, रग, पत्र खरीद लिये। फिर यथारीति सव तैयार कर भाभी के सामने रक्खा, और शिष्य की तरह आग्रह से देखने लगा। यमुना ने करुणा मे भरी हुई एक मूर्ति पत्र लिखकर नामाक्षरो के नीचे अकित की। रामसिह देखकर मुग्ध हो गया। आत्म-सम्प्रदान के स्वर से वोला, "भाभी, इस दूसरे पत्र मे भाई साहव की एक तस्वीर खीचकर अपने यथार्थ हस्ताक्षरो से एक पत्र लिखो, मैं सोने मे मढकर वाँह मे वाँधूंगा।" प्रसन्न होकर यमुना रामसिह का आग्रह पूरा करने लगी। ऊपर वहुत जल्द, वडी सफाई से, वीरसिह की वह मूर्ति खीची जो

उसने पहले-पहले देखी थी, फिर प्रणय-पत्र के तौर पर एक भावपूर्ण पत्र लिखकर नीचे 'कुमारी त्रियामा' स्वाक्षर कर दिया। आनन्द से पुलकित होकर रामसिंह नम्र भाव से खड़ा रहा। फिर दोनों हाथों पत्र लेकर मस्तक पर रखकर पूर्ण भक्ति-प्रीति की दृष्टि से देखा किया। वीरसिंह की यह युवक-मूर्ति है, कितना आकर्षण है आँखों में!—कैसी अपराजित ज्योति निकल रही है! भाभी के हस्ताक्षर भी कितने अच्छे! पूरी प्रसन्नता से देखकर यत्नपूर्वक रखकर कहा, "उस पत्र का लक्ष्य मैं समझ गया।"

"हाँ, अब तो तुम्हारे जैसे चतुर के लिए समझ जाना उचित है।"

"खूब लड़ाई है अक्ल आपने।"

यमुना चुप रही, फिर रुककर बोली, "तुम्हारी मौलिकता की नकल की मैंने।"

प्रसन्न होकर रामसिंह बोला, "नहीं, नकल तो पूरी-पूरी नहीं कही जा सकती; पर आपने मुझे समझा जरूर दिया कि इस विद्या में आप मेरी यथार्थ आचार्या हैं, मुझे कुछ सलाह विद्या से मिली थी, आप अकेली पूर्ण हैं।"

"अच्छा तुम क्या समझे? कुछ कहो।"

"मैं समझता हूँ, काम के लिए यहीं रहना ठीक होगा, चलने का परिश्रम व्यर्थ है, और आगे अब मेरा कर्त्तव्य होगा।"

"हाँ, तुम ठीक समझे।"

"मेरा विचार है आप समय लेना चाहती हैं, बिना समय के आप सफल नहीं हो सकतीं।"

"हाँ, ठीक है।"

"परन्तु इसके आगे सफलता निश्चित ही हो, ऐसी बात नहीं, सम्भावना है। यह जरूर है कि इस पत्र की सफलता पर सन्देह नहीं होता।"

"हाँ, तुम उस्ताद हो गये।"

"तो मैं रह जाऊँ, आप जाइए।"

"अगर तुम फँस गये?"

"मैं इस बार नहीं फँस सकता।"

"तुम भूलते हो।"

"समझ में नहीं आता।"

"तुम्हें अपनी पुष्टि के प्रमाण रखने चाहिए।"

"जी हाँ, वहाँ के, अगर बातचीत हो।"

"हाँ।"

"बतलाइए।"

"लिखो।"

रामसिंह लिखने लगा।

"दुर्ग के द्वार से निकलते दाहिनी ओर बस्ती है।"

"जी।"

"पैठते तीन द्वार हैं, फिर दो सेनानिवास, फिर रनवास।"

'जी।''

"दुर्ग के बायी तरफ चोर द्वार है, दाहिनी तरफ तग बगल से रास्ता। दुर्ग की ऊँचाई रनवास के पास प्राय दो सौ हाथ, द्वार के पास भूमि मे प्राय दस हाथ की चढाई पर।"

"जी।"

"सरदारो के नाम, सेनापति विक्रमसिंह, सहायक यदुनाथसिंह, शत्रुघ्नसिंह, बुद्धिबल, ज्ञानसिंह, महीपतिसिंह। रानी की दासियाँ, मुख्य चपला, मालिनी, लवङ्गी, श्यामा, रामा, विमला।"

रामसिंह ने लिख लिया।

यमुना विश्राम का समय समझकर रामसिंह से विदा हुई, छुट्टी मिलते ही मिलने के लिए कहकर।

इकत्तीस

कान्यकुब्ज से राजा महेश्वरसिंह के प्रस्थान करने के दिन प्रभावती लालगढ के उत्तरवाले मैदान मे अपनी सेना अलग-अलग टुकडियो मे बाँटकर एकत्र करने लगी। उसने अपने विश्वस्त अनुचरो मे जिन्हे दक्ष समझा था, एक-एक सेना का नायकत्व उनमे एक-एक को दिया था। जिन गाँवो की उसने सहायता की थी, उनके लोग सवाद पाते ही साथ देने को चल दिये थे। वेतन अधिक मिलने का प्रकाश्य रूप से प्रचार किया गया था · भूखे लोग अपनी तलवार बाँधकर ढाल लेकर सेना मे भर्ती होने को चल पडे थे। इस प्रकार प्रभावती के साथ प्राय. पञ्चदश सहस्र सेना थी। एक-एक फौज उसके एक-एक सरदार के अधीन, दूसरी से कुछ फासला रखकर, चली आ रही थी। देखते-देखते लालगढ के उत्तर समुद्र-सा गरजने लगा। लालगढ पर जो विपत्ति का वज्र कान्यकुब्ज के विचार मे टूटा था, उसका सवाद वहाँ फैल चुका था, सब श्रीहत हो रहे थे। कुमारदेव की माता मुरझाई हुई बैठी थी, वहाँ अभी यह सवाद न पहुँचा था कि लालगढ की जब्ती की भी आज्ञा उसी दिन हुई थी और राजा महेश्वरसिंह कान्यकुब्ज की दस हजार सेना के साथ चढाई करनेवाले है। प्रभावती की सेना को एकत्र होते देख नगर तथा दुर्ग के लोग कुछ समझ न सके कि वह किसकी सेना है और उसके आने का कारण क्या है। भय से लोग विवर्ण हो गये, उन पर पहले ही इतना अधिक दु ख पड चुका था कि लडने के लिए उनका हाथ न उठ रहा था; सेना भी उनके पास इतनी अधिक न थी, सब त्रस्त हो रहे थे, नगर मे चारो ओर आतक छाया हुआ था।

प्रभा एक जगली कुंज मे विद्या के साथ बैठी हुई आगे के कार्यक्रम पर विचार करने लगी।

"जैसा कि पहले मैंने कुमार को सोचकर लिखा था, तदनुकूल तुम यहाँ राजराजेश्वरी का अभिनय करो।" गम्भीर होकर प्रभा ने कहा।

"तो ?"

"तो, सम्भव है, दुर्ग के लोग आसन्न विपत्ति मे उद्धार पाने के लिए तुम्हारी शरण मे आयें, तुम लिखो भी कि इस-उस तरह राजा महेन्द्रपाल और कुमार पर अन्याय किया गया है, प्रभावती ने हमारी शरण ली है— कुमार का पत्र प्रमाण है--अत. हम दुर्ग की रक्षा के लिए आये हैं, राजा महेश्वरसिंह आज चलकर शीघ्र किला लूटने के लिए पहुँचेंगे। हमारी इच्छा है कि तुम लोग निश्चिन्त होकर हमसे सहयोग करो, हम यहाँ से सच्चे प्रमाण राजा महेन्द्रपाल और कुमार के निर्दोष होने पर भेजेंगे, अभी तक कही पैर न जम सकने के कारण प्रभावती अनुकूल कार्य नहीं कर सकी।"

"बुरी नही सलाह।"

"फिर जल्दी करो।"

इन्ही सकेतो पर विद्या ने एक दीर्घ-पत्र कुमारदेव की माता रानी कमला को लिखा और राजराजेश्वरी नाम से साक्षर कर दिया।

पत्र पहुँचाने के लिए महाराज को भेजा, लिख दिया कि ये महाराज शिवस्वरूप दलमऊ के रहनेवाले हैं, प्रभावती के मामले मे बलवन्तसिंह और महेश्वरसिंह से डरकर घर छोडा था। अनेक प्रकार से पत्र मे धैर्य दिया।

महाराज पत्र लेकर चले।

जब यमुना लालगढ की सरहद पर पहुँची, तब उत्तर की तरफ गर्द उटती हुई देखकर शका करने लगी। अनेक प्रकार की बातें मन मे आने-जाने लगी। पहले तो यह सोचा कि राजा महेश्वरसिंह के चलने की तिथि गलत बतलायी गयी। यह भी एक राजनीतिक चाल है। वे सीधे रास्ते न आकर, दूसरे रास्ते से आये। अब रामसिंह बेकार बैठा रहेगा। फिर सोचा, सम्भव है, रत्नावली ने कुमार को सहायता दी हो, वहाँ खबर पहुँची हो। वह कुमार को चाहती है, यह अनुमान यमुना कर चुकी थी। एक टीले के पीछे घोडा खडा किये इसी प्रकार की चिन्ताओ मे पडी थी, जी व्याकुल हो रहा था, वहाँ जाने का एक उपाय सोच रही थी, इसी समय महाराज का घोडा गोल से बाहर निकलकर किले की ओर बढता हुआ देख पडा। साथ-साथ यमुना ने भी घोडा बढाया। कुछ निकट आकर महाराज को पहचाना, धैर्य हुआ, अधिक मात्रा मे आनन्द भी। इस प्रकार महाराज का आना सूचित कर रहा था कि दल मित्र का है, शत्रु का नही। कुछ और तेज घोडा बढाकर यमुना ने महाराज को आवाज दी। नाम लेकर पुकारते हुए आदमी की ओर गौर से महाराज ने देखा। यमुना को पहचानकर घोडा रोक दिया। बडे खुश हुए। अब वे यमुना को सच्चे रूप मे पहचान चुके थे। सम्मान देने के विचार मे घोडे से उतर पडे। यमुना भी अब दासी-रूप मे न रह सकती थी। घोडे पर बैठी हुई लगाम हाथ मे लिये दोनो हाथ जोडकर प्रणाम किया।

मधुर हँसकर महाराज ने कहा, "देवी, आसिरबाद गँवार बराँभन का यहै है कि तुम्हारा सोहाग अचल होय, और हमारे अपराध क्षमा होयँ।" महाराज की

आँखो से आँसू वहने लगे।

यमुना घोडे से उतर पडी। वोली, "ब्रह्मन, इतनी दीनता उठा सकूँ वह शक्ति मुझमे नहीं। आपकी अनन्त मूर्खता इस अलौकिक तत्त्व मे दवी है, मेरे समस्त कृत्य यहाँ परास्त है।

फिरकर महाराज को एक पेड की छाँह मे ले गयी, वहाँ छुटने के वाद से अव तक की समस्त वाते मालूम की। सव सुनकर प्रभावती के भाव-परिवर्तन पर कुछ देर सोचती रही।

"चलो," यमुना ने कहा, "मैं भी तुम्हारे साथ चलती हूँ। फिर तुमसे जरूरी दूसरा काम है। दूसरा उसे नही कर सकता। तुम्हारा घोडा थका होगा। काम हो जाय, फिर यही से दूसरा सुस्ताया घोडा ले लेगे।"

दोनो घोडे पर सवार हो लालगढ के उत्तरवाले फाटक पर पहुँचे। रानी कमला के नाम जरूरी पत्र सुनकर सिपाही ने अपने सरदार को खवर दी। वह आया और पत्र लेकर रनवास भेजवा दिया। यमुना ने सरदार कर्णसिंह को वुला देने के लिए कहा। कहा कि कहना कुमारदेव का जवानी हाल है। कर्णसिंह तत्काल आया। यमुना को देखकर देर तक खोया हुआ-सा खडा रहा। फिर होश मे आ पैर छुए। पूछा, "भय्या के क्या समाचार है?"

"अच्छे है," कहकर यमुना एकान्त मे ले गयी, फिर कुछ वाते समझाकर, प्रभावती को वुला लेने के लिए रानीजी से कहने को कहकर जल्द भेज दिया।

वत्तीस

प्रभावती को प्रवेश मिल गया। कर्णसिंह वीरसिंह का सहायक रह चुका था। यमुना को पहचानता था। रानी कमला भी यमुना को देख चुकी थी। यमुना का नाम सुनकर लालगढ के सभी लोग खिल गये। अभी तक ज्ञात न था। अव तो, जानकर कि वह लडने के लिए फौज लेकर आयी है और डाकुओ की रानी किसी राज-राजेश्वरी से उनका मिलने का यही कारण है, लोग फिर से आनन्द मे मत्त हो गये। फिर उन्हे प्रतिकार की आशा होने लगी। कान्यकुब्ज से लूटने के लिए दस सहस्र फौज लेकर आनेवाले महेश्वरसिंह का सामना करने के लिए अव आस्फालन करने लगे। लालगढ के भीतर और वाहर अपूर्व नगरी हर्ष के समुद्र-सी उद्वेल हो उठी। कान्यकुब्ज की सेना निश्चित रूप से परास्त होगी, यह सवका विश्वास हुआ। पाँच हजार सेना लालगढ की थी, नगर के लोग मिलकर पच्चीस हजार से भी अधिक हुए जा रहे थे, राजराजेश्वरी की सेना अकेली, कान्यकुब्जवाली सेना ने ड्योढी थी। प्रभा की सेना को रसद की सुविधा हो गयी। रत्न तोडवाकर उसने भिन्न-भिन्न वणिको से रसद का प्रवन्ध कर दिया। दुर्ग के चारो ओर कायदे

से प्रभा की सेना के पडाव पड गये। भीतर कुछ चुने हुए आदमी गये। महाराज, यमुना, राजराजेश्वरी, प्रभा और कुछ और जन।

प्रभा से पहले-पहल जब यमुना मिली, उसने देखा प्रभा पुलकित होती हुई भी धीर है। पहले का जैसा खुला रूप इस बार नही, जैसे एक निश्चय उसमे बँध चुका है, वह बालिग हो गयी है, इसलिए इस बार शिष्टाचार पहले से अधिक है। यमुना समझ गयी कि इसके अर्थ है, मैं अपने विषय मे वश्यता स्वीकार नही करती। कुछ न बोली। उस पर हुआ कार्य पूरा समझकर चुप रही। खुली विद्या से, जब से उसे पूरी पहचान के बाद की प्रभा की तरह नम्र और भक्तिमयी देखा। देखती रह गयी, प्रदीप-सी शान्त जल रही थी, सारा पाप जल चुका था, मूर्त्ति-मती रागिनी साकार कला बन रही थी। उस पर प्रभावती ने राजराजेश्वरी की तरह सम्वर्द्धित कर सज्जित किया था।

दुर्ग मे रानी कमला के पदो मे प्रभा ने भूमिष्ठ प्रणाम किया। अश्रु-पुलकित रानी मुख चूमकर, "दुख बहुत मिला ?" कहकर अपनी विवशता सोचकर सिसक-सिसककर रोने लगी। विनीत स्वर से प्रभा को ही धैर्य देना पडा। अनेक प्रकार से उसने सासुजी को सान्त्वना दी। ऐसे स्थलो पर धैर्य रखने की शिक्षा आप लोगो से मुझे मिली है, मैं उसका उपयोग करती हुई शान्ति पाती हूँ और अब पूर्ण विश्वास हो गया है कि मैं स्वय महाराजाधिराज जयचन्द को न्याय के पथ पर आने को विवश करूँगी, विनीत भाव से सासुजी को समझाया। रानी आश्वस्त हुई। रनवास मे खुशी के फव्वारे फूटने लगे।

रात्रि के समय, बहू के आने की खुशी मे, रानी ने प्रतिष्ठित राजपुरुषो, ब्राह्मणो, कलाविदो तथा धनिको को देवियो सहित आमन्त्रित किया। नगरी की प्रसिद्ध नर्तकियो को भी आमन्त्रण मिला। आतिथ्य-सत्कार का वृहत् समारोह होने लगा। बहू देखने का नगर भर मे निमन्त्रण फिर गया। देवियाँ उपहार, निछावर आदि ले-लेकर बहू का मुख देखने के लिए चली। दुख और चिन्ता के बाद यह आनन्द महानन्द मे परिणत हो गया।

प्रभा रानी के पास थी। विद्या और यमुना अलग-अलग प्रकोष्ठो मे। यमुना चिन्ताशील, प्रभा की माता रानी पद्मावती को पत्र लिख रही थी। भावो को कई बार मनोयोगपूर्वक देखा। फिर महाराज को देखती हुई बोली, "आज यहाँ बडे जोर-शोर का गाना है, अगर आज ही काम पर भेजे तो आपको कुछ बुरा लगेगा, और रात को, मुमकिन है, आपको रास्ता न मिले और आप डरें भी, लेकिन यह समझ लीजियेगा कि रानी पद्मावती का पत्र है, आपके सिवा दूसरा नही जा सकता और कल दोपहर तक पत्र उन्हे मिल जाना चाहिए, अगर आप गाना सुनते रहे रात भर तो आप समझियेगा।"

"सवारी पर तो जाना है," महाराज ने जल्दी मे कहा।

"सवारी पर और मेहनत पडती है। सुना है, आपकी बीबी साहबा भी रानी कमलाजी की खुशी मे राजराजेश्वरी के नाम से कुछ गाने और नाच भेट करनेवाली है।" कहकर यमुना महाराज को देखती हुई मुस्कुरायी।

"हमे नही मालूम," उडी निगाह से देखते हुए महाराज ने कहा।

"अब आपको कैसे मालूम होगा ? अब आपकी बीबी थोडे ही है ! —अरे महाराजिन अब तो राजराजेश्वरी है। जाइये पूछिये।"

"हे कुमारीजी, जान पडता है, राजराजेश्वरी कोई है नही ! —हमे तो न उहाँ देख पडी, न इहाँ, बस नामै नाम है।" महाराज जिज्ञासा की दृष्टि से देखते रहे।

"नाम बडे, दरशन थोडे, क्यो महाराज ?" यमुना मुस्कुरायी।

महाराज ने भी नीचे-ऊपर के दाँत निकाल दिये। फिर चिट्ठी लेकर अँगोछे मे लपेटकर कमर मे बाँधकर विद्या के कमरे मे गये। दरवाजा बन्द करके उसके पलँग पर बैठ गये, और बडे विश्वस्त स्वर से कहा, "एक बडा सशय मन मे है।"

"कह डालो झटपट," कहकर मजे की एक चपत मारी महाराज के गाल मे, "अँह, उड गया, मच्छर काट रहा था।"

महाराज का सशय दूर हो गया। सचेत होकर गाल एक बार सुहलाकर बोले, "यह राजराजेश्वरी कौन है ?"

"एँ ! अन्धे हो ?"

महाराज घबरा गये, बोले, "हम तो—"

"तुम तो एक सच्चे बेवकूफ हो। कह दिया, मैं तुम्हे प्यार करती हूँ। पर यह मैंने कब कहा कि मैं विद्या हूँ, राजराजेश्वरी नही ?"

महाराज कुछ खुश होकर कुछ अहमक बनकर बैठे देखते रहे। विद्या महाराज की हथेली अपनी हथेली मे लेकर स्वर मे नारी-हृदय की सारी चचलता भरती हुई बोली, "अच्छा, तुम इतने दिन मे तो मेरे साथ हो, कहो, कुछ समझ पाये कि मैं कौन हूँ !"

निश्छल कण्ठ से महाराज ने कहा, "समझे तो कुछ नही !"

"तो राजराजेश्वरी को ही क्या समझोगे जिसे कभी नही देखा !"

महाराज को फिर चक्कर-सा आने लगा।

मुस्कुराकर देखती हुई महाराज की एक उँगली दबाकर बोली, "देखो, तुम्हारी कुमारीजी, प्रभावती मेरी चेली है, इतना समझे या नही !"

"हाँ, इतना तो अब समझ मे आ गया।"

"तो तुम क्या समझते हो कि तुम्हारी कुमारीजी किसी नाचनेवाली की चेली होती ?"

"हम कुछ नही समझते।"

"तभी तो मैं तुम्हे प्यार करती हूँ, कोई दूसरा मर्द होता, तो मन्त्र पढकर फूँक देती तो दुनिया के उस पार उडकर गिरता।"

महाराज ताज्जुब की निगाह से देखने लगे।

"मेरी उम्र क्या समझते हो ? तुमने सोचा होगा, इसकी उम्र बीस साल की होगी, मुझसे छोटी है, इसलिए बुजुर्गाने की शेखी मे रहते हो; मेरी उम्र पाँच सौ पचहत्तर साल की है; मेरे छनाती के छनाती तुमसे बुड्ढे है। सौ साल तक मैं बगाले मे रही, सारा जादू वहाँ का सीखा, उसी के बल से सदा जवान रहती हूँ।"

महाराज को शिथिल देखकर बोली, "पर तुम घबराओ मत। तुम ब्राह्मण हो। मैं ब्राह्मण को मानती हूँ, नही तो मेरी विद्या भ्रष्ट हो जाय, एक बार सिर्फ

चलेगी जैसे तुमको उडाना चाहूँ तो उडा दूँगी, पर फिर वह विद्या अपने घर चली जायगी। तुम आराम करो, मैं आती हूँ, आज मेरा नाच है, देखकर बतलाना कैसा लगा।"

"हम नाच न देखेंगे, हमको काम है, सोवेंगे। पिछली रात उठकर जाना है।"

आँखें ऊपर को उठाकर, भौंहे टेढी कर, कुछ सोचती हुई-सी, जरा देर बाद बोली, "हाँ ठीक है समझ गयी," कहकर चादर ओढकर बाहर निकली।

यमुना पलँग पर पडी हुई विचार मे मग्न थी, तरह-तरह के भावी चित्र बना-बिगाड रही थी, इसी समय मधुर आवाज आयी—"दीदी!"

"आओ।"

धीरे पदक्षेप से विद्या भीतर गयी और दोनो हाथो से पलँग पर यमुना के पदपद्म ग्रहण कर माथा रखकर प्रणाम किया।

"रार्मासह के लिए चिन्ता तो नही ?" छोटी बहन को देखती हुई जैसे, यमुना ने प्रश्न किया।

विद्या समझ गयी। पुलकित होकर बडी उतावली से पूछा, "क्या छूट गये ? —कैसे हैं, दीदी ?"

यमुना उठकर बैठ गयी और बाँह पकडकर पलँग पर बैठा लिया, "खूब, तुम भी एक ही मिली, अच्छे हैं रार्मासह धोबी, मैं उनकी भौजी बनी थी, विचार मे ऐसे ही छोड दिये गये, साथ आये है, काम से राह पर गये, दो-एक दिन मे आ जायेंगे। बिचारे ब्राह्मण को धोखे-ही-धोखे मे रक्खा।"

लाज से नत होकर विद्या बोली, "कुछ हो, ब्राह्मण की सरलता अन्यत्र नही मिल सकती।" फिर देर तक पहले दिन वाली बातें कहती रही। यमुना मिलाती गयी, महाराज ने लौटकर झूठ बयान किया था। दोबारा महाराज से मिलने की बातें और रामसिंह के पास से वीरसिंह की तस्वीर ले के हाल साद्यन्त कहे और दाहिनी बाँह खोलकर वीरसिंह की वह तस्वीर दिखायी। यमुना ने हाथ जोडकर प्रणाम किया। फिर, "तुममे खूब पता लगाया, मैं रार्मासह से सारा वृत्तान्त सुन चुकी हूँ, तुम यथार्थ देवी हो, तुमने उर्वशी, देवी दुर्गा, सरस्वती और लक्ष्मी, सबके गुण वर्त्तमान है," कहकर सम्वर्द्धित किया।

"दीदी, प्रभावती के स्वागत मे आज मैंने महफिल मे उतरने का सवाद भेजा है। आपमे उनकी प्रसन्नता के हाल पाकर मैं अपने को सँभाल नही सकती, इतना आनन्द है। प्रार्थना है, उस वक्त आप वहाँ अवश्य रहे, मुझे उत्साह मिलेगा, और यह भी कहे कि मैं किस तरह उतरूँ, वाद्य का भी अच्छा प्रबन्ध होना चाहिए, यह आप ही कर सकती है।" विद्या कहकर नतदृष्टि रह गयी।

यमुना हँसी। सरल स्वर से बोली, "बहन, वहाँ प्रभावती का स्वागत हो रहा है। महफिल मे उसका स्थान भी वैसा ही रहेगा। वह युवराज की परिणीता प्रथम स्त्री है, भविष्य मे रानी होगी। मैं यहाँ के सेनापति की पत्नी हूँ। मुझे राज-कन्या समझती हुई भी रानी कमला सेनापति तथा सरदारो की महिलाओ मे ही स्थान देंगी, नही तो बनता नही, मैं भी इस प्रथा को व्यवहारोचित मानती हूँ, और मुझे उनमे बैठने का अपमान-ज्ञान नही, पर प्रभा मुझे देखकर अपने आसन पर न

रहेगी, इसलिए मैं जाना नही चाहती, सिर्फ जेवनार मे जाऊँगी, और अलग तुम्हे बगल मे बैठाकर भोजन के बाद चली आऊँगी। मुझे स्थिति की पर्यालोचना से समय भी नही। हाँ, तुम्हारे लिए जहाँ तक अच्छा होगा, बाजे का प्रबन्ध करा दूँगी, क्यो, उदास क्यो हो।"

"प्रभा आपको छोडकर महफिल मे बैठेगी नही। जेवनार मे भी नही। मैं उसमे पूछ लूँ। आप अभी तक उनके सेनापति की मन्त्री है ? तीन-पाँच करें तो लूट मचवा दूँ। मेरा नाम सुन चुकी है सब।"

यमुना खिलखिला दी—' हाँ, हाँ, लूट लेना तुम्हारे लिए कौन बडी बात है ? बहुत खरा दाँव, चलता अस्त्र है। क्या कटाक्ष खेलता हे आँखो पर ! हाँ, कुछ न पहनकर, केवल साडी मे, सिर्फ नूपुर बाँधकर प्रदर्शन करो; रहना भी तो राज-राजेश्वरी की तरह होगा।"

"मैंने भी यही सोचा था दीदी। आपने मन की बात छीन ली।"

इसी समय रानी कमला की दासी आयी। प्रणाम कर यमुना से बोली, "युवरानीजी आने की आज्ञा चाहती है।"

"ले आओ।"

रानी को सजायी, पूर्ववत् आभरण-भारा प्रभा मन्द-गुंजित-पद आयी और नत होकर प्रणाम किया। यमुना ने ठोडी स्पर्श कर स्नेह सूचित किया, और पलँग पर बैठी देखती-देखती सजल हो गयी, आर्द्र कण्ठ से कहा, "आज अकेली हो ?"

प्रभा की भी आँखें छलछला आयी।

नत मुख निश्चला बैठी हुई अपने को सँभालकर बोली, "दीदी, चलो जेवनार के लिए बुलाने आयी हूँ। पहले-पहल देवता-पूजन करूँगी, अकेली नही कर सकती। महिलाएँ आ गयी हैं। मेरा आना उन्हे अस्वाभाविक-सा लगा। आलोचनाएँ भी बहुत अच्छी नही। मैं राजराजेश्वरी की आश्रिता हूँ, यह मेरी हीनता बहुत आँखो मे मर्यादा ला रही है। और जेवनार मे मैं तो इन्हे अलग न करूँगी, पर शायद क्षत्राणियाँ पहले से मुझे अलग किये बैठी है—अलग ही बैठेंगी।"

"हूँ !" यमुना अत्यन्त गम्भीर होकर द्वार की ओर देखती रही।

विद्या सकुचित होकर जैसे अपने मे समा गयी। प्रभा एक बार बादल से बाहर निकल आयी।

विद्या को देखती हुई बोली, "मैं समझती हूँ, राजराजेश्वरी का यही वेश ठीक होगा," चिबुक पकडकर, "शोभने, महत्ता सदा क्षुद्रताओ को अपने भीतर रखती है, तभी वह महत्ता है, चलो, प्रभावती तुम्हारे कारण यहाँ आने मे सफल हुई है, चौहान होकर तुम वहाँ इन्ही से श्रेष्ठत्व प्राप्त करो। देखा जाय, क्या होता है।" आगे-आगे निराभरणा प्रियप्रवाहिका यमुना, मध्य मे विद्युल्लता विद्या, पीछे नीलाञ्चला साक्षात् प्रभा रनवास को चली।

देवी यमुना को देखने के साथ ही समवेत समस्त क्षत्राणियाँ रानी कमला के साथ-साथ किसी अज्ञात प्रेरणा से जैसे उठकर खडी हो गयी। रानी ने हाथ पकड-कर अपने सर्वोच्च आसन पर बिठाना चाहा। पर संयत स्वल्प सम्मान रानी के प्रति प्रदर्शित कर यमुना ने कहा, "यह आप ही के योग्य है। हमारे साथ चूँकि

चौहान-महिला देवी राजराजेश्वरी वर्त्तमान है, इसलिए हमे उन्ही का उचित सम्मान करना चाहिए : वे अपनी अभिन्नहृदया सखी देवी प्रभावती के साथ इस आसन पर बैठें।" एक-एक हाथ दोनो का पकडकर दो कदम बढकर यमुना ने छोड दिया। दोनो आज्ञा मानकर चुपचाप जाकर बैठ गयी। वही एक दूसरे श्रेष्ठ आसन पर रानी को बैठाल सरदारो की महिलाओ के साधारण देवियो मे जाकर यमुना ने हँसकर आसन ग्रहण किया। क्षणमात्र मे सभा की भावना बदल गयी। एकटक सब एक बार प्रभा और एक बार राजराजेश्वरी को देख रही थी। क्या शान्ति और क्या तेजस्विता है प्रभा के रूप मे! उधर क्या भगिमा, क्या कला है राजराजेश्वरी की मुखकान्ति मे।

पश्चात् एक-एक कर सब महिलाएँ प्रभा से मिली, उपहार दिये, रानी मधुर स्वल्प शब्दो मे सबका परिचय देती रही। इसके बाद देव-पूजन-विधि पूरी करने को आयी। ब्राह्मण-देवियाँ प्रदर्शिका हुईं। यमुना ने कहा, "यहाँ देवी राजराजेश्वरी देवी प्रभावती के कुल-देवता का पहले पूजन कर राजवश को लगे अज्ञात अपराधो की क्षमा-प्रार्थना करेंगी, इसके बाद देवी प्रभावती उनके प्रीत्यर्थ यथारीति पूजन कर कुल-प्रवेश करेंगी।"

ऐसा ही किया गया। विद्या ने अन्त करण से देवता से प्रार्थना की, वे राजा महेन्द्रपाल के अपराधो को क्षमा कर दें।

पूजन के पश्चात् जेवनार मे विद्या का वही आसन रहा। वह अज्ञातकुल-शील-वाली नही, चौहान-जाया होकर प्रभावती के दक्षिण रही, वाम पार्श्व मे यमुना स्वय बैठी। वहाँ प्रभावती यमुना की आज्ञा को मानकर चल रही थी, इसीलिए शान्ति-भग करने की इच्छा उठने पर भी दबा गयी। बाहर समागत पुरुषो का आदर-स्वागत, भोजन-पान चल रहा था, कुलीन ब्राह्मणो के द्वारा उच्च कर्मचारी-गण करा रहे थे। सार्वजनिक सभा मे प्रभावती के आने की सब लोग उतावली लिए जल्द-जल्द प्राथमिक अङ्ग पूरे कर रहे थे।

राजराजेश्वरी के साथ आये हुए लोग, जो दुर्ग के बाहर पडाव डाले पडे थे, वे सब व्यूह-रचना के अनुसार वही रहने के लिए आदिष्ट थे, उनके सरदार भी वही थे, उन्हे ऐसी ही आज्ञा थी, समझा दिया गया था कि दुर्ग मे राजराजेश्वरी के सम्मान मे आनन्द मनाया जा रहा है, वहाँ के लोग उसमे शरीक होगे, विजय करके लौटने पर उनके लिए वहाँ इनसे भी अच्छा प्रदर्शन किया जायगा।

यमुना ने पुराने अच्छे कलाविदो के नाम लेकर उन्हे आने के लिए बुलाया। मालूम हुआ कि वे सब आमन्त्रित होकर पहले से आये हुए प्रतीक्षा कर रहे है।

पुरुषो की सभा यथाविधि बैठा दी गयी। यमुना के निर्देशानुसार महिलाओ को लेकर दासियाँ यथास्थान बैठा आयी। फिर प्रभा को लेकर रानी चली; साथ-साथ यमुना और विद्या। पहले के विचारानुसार आसन बडा रखवाया गया था। बीच मे प्रभा को आगे कर रानी कमला बैठी, दाहिने राजराजेश्वरी, बाये यमुना। दोनो ओर के निरलकृत सौन्दर्य के बीच आभरणो से जगमगाती प्रभा क्या शोभा दे रही है! —लोगो की दृष्टि बँध रही थी।

दासियाँ आज्ञा की प्रतीक्षा मे पीछे खडी थी। एक को बुलाकर यमुना ने कहा,

"देवी राजराजेश्वरी के महाराज को देखो, सो रहे हो तो जगा दो, भोजन कराकर यहाँ व्रह्म-मण्डली मे बैठा दो। मेरा नाम लेकर कहना कि नाच देखने के लिए जल्द बुलाया है।"

नृत्य-गीत शुरू हो गया। अपूर्वा की अपूर्वा वीर-वनिताएँ पूरी सजकर आयी थी। युवरानी के स्वागतार्थ सबके हृदय मे स्नेह उमड रहा था, फिर जब अपूर्वा और लालगढ पर विपत्ति के बादल छाये हुए थे, वे तेज हवा जैसी दूर के बहती हुई वादलो को उडा देने के लिए आयी है। आज उनकी प्रसन्नता से प्राप्ति भी अन्य दिनो की अपेक्षा अधिक होगी। वे पूर्ण सम्पन्न है, इतना वैभव, इतनी शक्ति लालगढ नही दर्शित कर सका।

अगरु की सुगन्ध से सभा-मण्डप सुवासित हो रहा था। प्राचीन प्रथानुसार रग-मच पर नर्तकियाँ जगमगा रही थी। वीणा और मुरज मिल चुके थे। रानी ने सङ्गीत के श्रीगणेश के लिए आज्ञा दी। प्रवीणा सुन्दरी उठी। कोमल कोयल-कण्ठ से, अपना ही विरचित स्वागत-गीत गाया। निष्कम्प दृष्टि से देखती हुई, प्रभा ने इगित से बुलाकर पुरस्कृत किया। इस प्रकार मुरला, मजरी आदि कई बार नारियो के नृत्य-गीत हुए। सभास्थ लोगो को पूरी तृप्ति हुई। विद्या स्थिर बैठी हुई तोल रही थी। यमुना रह-रहकर विद्या के व्यक्त मनोभावो को देख लेती थी। इसी समय उत्तर के द्वार से एक सन्तरी ने आकर सवाद दिया, "देवी यमुना से मिलने के लिए उनका अश्वारोही दूत आया हुआ है।" वडी उत्कण्ठा से देवी यमुना ने दूत को आने के लिए कहा, फिर स्वय सभा से उठकर गयी। प्रभावती और विद्या की पलको पर विचार की रेखा खिच गयी। नृत्य-गीत चलता रहा।

यमुना रामसिह को अपने कक्ष मे ले गयी। घोडा दूसरे सेवक के सुपुर्द कर दिया। रामसिह का आना ही सफलता सूचित कर रहा था। पर समझकर भी यमुना उतावली न रख सकी। स्नेहार्द्र कण्ठ से पूछा, "क्यो सफल हुए ?"

फिर चरणधूलि लेकर गर्वित मस्तक उठाकर रामसिह बोला, "हाँ, भाभी-जी।"

"कैसा हुआ ?"

"मुझे और उल्टा कान्यकुब्ज की ओर चलना पडा। मत्त चाल से आ रहे थे हमारे अनुमान तक नही पहुँचे। पहुँचकर मैंने पत्र दिया। रानी पद्मावती की मूर्त्ति देखकर ही सूख गये। पत्र पढकर मारे घवराहट के सज्ञा-शून्य हो गये। मुझसे पूछा, महेन्द्रपाल के साथ कितने आदमी होगे ? मैंने कहा, सप्त सहस्र, अब दुर्ग टूटता ही है, न जाने क्यो, आधे सिपाही आपके आने के बाद मे धीरे-धीरे निकल गये, मैं गगा की ओर वाले जीने मे उतरकर नाव से होकर गाँव गया, वहाँ से घोडा लेकर आया, रानी वेहाल है, कहा है, मृत्यु से पहले एक बार दर्शन कर लूँ, बस इतनी ही कामना है।"

यमुना हँसी—"फिर ?"

"फिर सारा क्रम वदल दिया। मुझसे वोले, हम जल्द दलमऊ आते है। जाओ सवाद दो, चिन्ता न करें, महेन्द्रपाल के दिन अब समाप्त समझे। मारे घवराहट के पत्र नही लिख सके। मैंने कहा, अभी उडता हूँ। कहकर अपना रास्ता लिया।"

पूरी मुसकान हँसकर यमुना ने कहा, "यहाँ का हाल तो मालूम हो गया होगा ?"

"हाँ, वाजार मे सुना। चारो ओर से पडाव देखकर एक राह-चलते से पूछा। मालूम हुआ, राजराजेश्वरी की सहायता आयी है, अपने आदमी है। यह राज-राजेश्वरी कौन है ?"

"तुम्हारी श्रीमतीजी।"

"अच्छा ?"

"क्यो, सन्देह हो रहा है ?"

"नही, मैंने कहा, सब ओर अधिकार रखती है।"

"प्रभावती ने उन्हे राजराजेश्वरी वनाया है।"

सक्षेप मे यमुना ने सारा हाल कहा, फिर कहा, "अपना हाल किसी से कहना मत, विद्या से भी नही, अभी किसी को नही मालूम।" फिर सस्नेह भोजन कराकर सभा मे चलने के लिए पूछा। रामसिह तैयार हो गया। सवको देखने की प्रवल उत्सुकता हुई। राजराजेश्वरी के रूप मे विद्या गायेगी, नृत्य दिखलायेगी, ये उनकी सफलता मे और आनन्दवर्द्धक हुए। उसे लेकर यमुना फिर सभा मे आयी और एक उत्तम स्थान पर उसे आसीन करा अपने आसन पर वैठ गयी।

यमुना ने इस तरह रामसिह को ले जाकर वैठाया था कि विद्या को न मालूम हो। दूत के नाम से विद्या समझी भी नही कि रामसिह है। यमुना के आते ही प्रभावती से राजराजेश्वरी ने उतरने के लिए कहा। प्रभा ने यमुना की आज्ञा ली। यमुना पूर्ण प्रसन्न थी, कहा, "अवश्य, इनका प्रदर्शन अवश्य रखूंगी। अपनी रुचि के अनुसार गाना नही सुना, वहुत दिन हो गये।" प्रभावती ने सासुजी से कहा कि सभा मे योग्यजन से यह कहला दें कि अब देवी राजराजेश्वरी इस आनन्द मे अपना नृत्य-गीत दर्शित करेंगी, उनका परिचय इतना यथेष्ट है कि दुर्ग की रक्षा के लिए आयी हुई यह समस्त सेना उन्ही की है। देवी कमला ने अपने पुरोहितजी को वुला-कर समझा देने के लिए कह दिया। सभा मे उन्होने घोषणा कर दी।

सुनकर उसी सादे वेश मे विद्या उठी, जैसे शुभ्र वस्त्रधारिणी साक्षात् सरस्वती नृत्य-सगीत की मूर्ति मे भक्तो को तृप्त करने के लिए जा रही हो। गति-गति खिल रही थी। लोग उस सयत चपला को देख रहे थे, रूप की मोहिनी महिमा से वँधे हुए। प्रशसा के शब्द भी इधर-उधर से उठ रहे थे,—हम लोगो पर देवीजी की वडी कृपा हुई, ऐसी ही दृष्टि सदा रहे, हमारी नम्र प्रार्थना है। यमुना ने प्राचीन वाद्यकारो के नाम कहकर मञ्च पर ले जाने के लिए दासियो को भेज दिया। महाराज ताज्जुव मे आकर राजराजेश्वरी को देख रहे थे। रामसिह अपनाव की पूरी स्वतन्त्रता से खिला हुआ साधना के वाद जैसे सिद्धि को देख रहा हो।

वादको ने वाद्य लिये। वीणावादक से विद्या ने कहा, विष्णुताल के बोल वजाइये, सामयिक जो रागिनी पसन्द करें उसमे भरकर। वीणा मे बोल वजने लगे, मृदङ्ग सङ्गति कर चला, विद्या ने नूपुर वँधवा लिये। यमुना मुस्कुरा रही थी, देख-कर दृष्टि से प्रोत्साहन दिया, प्रभा स्तब्ध थी। ताल-ताल पर, भावना मे भरी हुई विद्या विष्णु की सृष्टि-रक्षा के भाव को गति, इङ्गित और भङ्गिमाओ से स्पष्ट

करती हुई रागिनी की मूर्ति बन रही। बडी तालों पर नृत्य सहज काम नही। समझदार दङ्ग थे। यमुना कलावती की मर्मज्ञता पर तुष्ट। समा बँध गया। रामसिंह नृत्य-गीत का इतना समझदार न था, धोबी बन गया। रानी मन्त्रमुग्ध-सी रह गयी। विष्णुताल पर नृत्य समाप्त कर, विद्या ने रुद्रताल पर वैसे ही दूसरे राग मे बजाने के लिए कहा जो रुद्ररूप को व्यजित करे। कुशल वृद्ध वीणावादक बजाने लगे। रुद्र का प्रलयकर रूप ध्यान मे लाकर विद्या ताण्डव-नृत्य करने लगी। एक-एक गहन अभिव्यक्ति उच्छ्वसित सागर-तरङ्ग-सी उठने लगी। विनाश का निर्मम भाव प्रति स्थिति भग से व्यक्त हो चला, जैसे सत्य-सत्य नटराज तारो से बँधकर प्रकट हो गये। मुहु स्पन्दित हृदय यमुना उठकर खडी हो गयी। आज पहले-पहल यमुना की दृष्टि मे आश्चर्य मुद्रित हुआ। उसके राजराजेश्वरी होने मे जो शका महाराज को थी, वह दूर हो गयी, इतना ही वे समझे।

नृत्य समाप्त कर, कुछ क्षण विश्राम करने के लिए विद्या बैठी। स्तुति शब्द से सभा गूँजने लगी। यमुना ने हार्दिक धन्यवाद देकर कहला भेजा कि अधिक परिश्रम की आवश्यकता नही, लास्य का एक अच्छा उदाहरण देकर नृत्य समाप्त कर देना ठीक होगा, गीत दो-एक स्वल्प वाद को नृत्य सम्बद्ध हो जायें। दूसरी दासी के हाथ प्रशसा मे पान भेजे। विद्या को लास्य के लिए ताम्बूल रक्ताधरा होने की जरूरत थी; कुछ थक भी गयी थी। पान से गला सिच रहा था। यमुना की मर्मज्ञता पर बहुत प्रसन्न हुई।

स्वस्थ होकर, तीन ताल की चीजें बजाने के लिए कहकर उठी। सौन्दर्य की भावना मे रँगकर स्वप्न की ज्योतिर्मयी प्रेयसी बनी हुई तारक-तरल दृष्टि से सभा को एक बार देखा। मुख, भौंह, आँख, हाथ, पैर की प्रतिगति बदलकर सुन्दर बन गयी, पार्थिव आकर्षणो मे सवश्रेष्ठ उठते पैर के साथ मालूम हो रहा था, साकार सुरभि समीर पर चल रही है। देह किरण से हँसती। एक-एक आवर्त मे सारी सभा निछावर हो रही थी। क्या तैयारी, क्या ड्योढ, क्या तेहरी, क्या छल, पलकें बँध गयी। लास्य समाप्त कर विद्या ने यमुना की आज्ञा के अनुसार नृत्य के बँधे वैसे ही तीन तालो मे भिन्न-भिन्न रागिनियो के गीत गाये, और अपार प्रशसा पर चरण रखती हुई, वैसे ही बँधे नूपुरो से अपने आसन पर आकर बैठी। गहरी पहचान की मधुर मुस्कान से प्रभावती ने सम्वर्धित किया, सेविका नूपुर खोलकर दे आयी।

औरो के गाने होने लगे। कुछ देर बाद यमुना विद्या को लेकर चली गयी। कर्त्तव्य-वश प्रभावती बैठी रही। विद्या से रामसिंह के आने का हाल कहकर कक्ष मे प्रतीक्षा करने के लिए कहा, और समझा दिया कि महाराज की द्विविधा मधुरता से दूर कर देना अच्छा होगा, फिर महाराज को बुला देने के लिए कहकर अपने कक्ष मे चली गयी।

महाराज सीधे विद्या के अर्थात् अपने कमरे मे गये। प्रदीप जल रहा था। उसके प्रकाश को मन्द करती हुई अपने नृत्य के छन्द की तरह विद्या बैठी थी। सम्मान की दृष्टि से महाराज ने देखा। विद्या उठी। अपनी स्वाभाविक चाल से महाराज के पास जा पैरो पर सिर रखा, कहा, "महाराज ब्राह्मण तो दया की मूर्ति होते है, आप मुझे क्षमा कीजिए।"

"क्या हुआ ?" महाराज आश्चर्य मे भरकर बोले।

"मैंने तुमसे छल किया है, पर उस समय वही उपाय था।"

"क्या छल ?"

"मैं व्याही हुई हूँ, शत्रुओ के हाथ से मुक्ति पाने के लिए तुम्हारा सहारा लिया था।"

महाराज ने सम्मान की दृष्टि से देखा, फिर सिर झुकाये हुए यमुना के कक्ष मे चले गये।

तैंतीस

राजा महेश्वरसिंह दलमऊ पहुँचने के लिए रवाना हुए। उन्होने सरदारो को रानी पद्मावती की पत्रिका दिखलायी, कहा कि सती रानी बराबर अपने हाथ से अपना चित्र खीचकर उन्हे पत्र लिखती थी, सामयिक मनोभाव सामने मुकुर रखकर खीचे चित्र मे पत्र की शब्दावली के साथ मिला देती थी, यह पत्र किसी दूसरे का लिखा हुआ नही, नीच महेन्द्रपाल को पकडकर जल्द लालगढ लूटेंगे, इस प्रकार एक-दो काज होगे, महेन्द्रपाल को महाराजाधिराज के सामने पकड ले जाने पर जो निष्कर भूमि पुरस्कार-स्वरूप मिलेगी, वह सरदारो मे बराबर बाँट देंगे, अगर महेन्द्रपाल भग गया तो भी उसे यह पता नही लगा होगा कि हम लालगढ के लिए रवाना हुए है, वह यही समझेगा कि सवाद पाकर हम दलमऊ के लिए ही कान्यकुब्ज मे चले है, इसलिए वह लालगढ के कीमती सामान उठा न ले जायगा, जो कुछ उसे लेना रहा होगा, वह ले चुका होगा। इतना समझाने पर भी सरदारो ने आज्ञा के खिलाफ सलाह न दी। उन्होने कहा कि राजाज्ञा को शिरोधार्य न करने पर अपराध पुरस्कार से गुरुतर होगा। पर राजा महेश्वर को अपनी लगी बुझानी थी। उन्होने और भी कहा कि कहेंगे कि लालगढ मे ही महेन्द्रपाल को कैद किया है, पर फिर भी सरदारो की ताल न हुई। आखिर महेन्द्रसिंह ने विशेषाधिकार का प्रयोग किया। सरदार और सेना विवश होकर साथ चली। रास्ते भर किसी तरह धैर्य रहा, पर ज्यो-ज्यो नजदीक होते गये और महेश्वरसिंह अधिक सतर्क करते गये और क्रमश किले तक कही कुछ न मिला, त्यो-त्यो सरदार और सेना के तेवर बदले। प्रकट कुछ न कहा, पर आपस मे सलाह कर सरदारो ने उसी वक्त दो अश्वारोही महेश्वरसिंह के कर्त्तव्य के सवाद देने के लिए कान्यकुब्ज भेज दिये। महेश्वरसिंह को इसका पता न हुआ, वे लज्जित होकर सरदारो से कुछ देर के लिए विदा होकर दुर्ग के भीतर गये।

महाराज शिवस्वरूप रानी को पत्र देकर लौट आये थे। रानी बैठी विचार कर रही थी कि दासी ने महाराज के आने की खबर दी। रानी उठकर खिन्न स्वागत कर पति को कक्ष मे ले गयी। राजा महेश्वरसिंह आग हो रहे थे। नाराज

वैठते हुए पत्र वढाते हुए कहा, "यह क्या लिखा है ?"

"यह ?" आश्चर्य से पत्र लेती हुई, "यह मैंने नही लिखा !" पढकर, "यह क्या रहस्य है ?"

"तुमने नही लिखा ?"

"न, यहाँ ऐसी कोई वात हुई है ? मैं क्यो लिखने लगी ?"

"अव निस्तार नही !" राजा महेश्वरसिंह मस्तक पर हाथ रखकर अर्द्धशयान हो गये ।

"क्यो ?" शका और आवेग से उच्छ्वसित होकर रानी ने प्रश्न किया ।

राजा महेश्वरसिंह उतरे गले से सारा हाल सक्षेप मे कहने लगे ।

"तो यह प्रभा का किया छल होगा । एक पत्र मेरे पास आया है । देखो ।" रानी ने वह पत्र निकालकर राजा को दिया । लिखा था—

रानी प्रभावती को मणिपुर की राजकुमारी त्रियामा का यथोचित ।

देवी,

आप मेरी मातृतुल्या है । मैं ही आपके वहाँ दासी यमुना के रूप मे रह चुकी हूँ । मेरे अपर समाचार जो मेरे राजकुमारी-जीवन से विवाह के अन्त तक है, आपको विदित है । इसलिए मेरा दासी वनकर रहने का अर्थ आपको सव अनायास ज्ञात हो जायगा । मैं प्रभा की दासी होकर भी उसे छोटी वहन समझती थी, मुझे न जानती हुई भी प्रभा मेरे आदर्श मे ढल रही थी और एक दिन पूरी-पूरी ढल गयी । मैं वरावर उसके साथ थी । राजकुमार देव को सच्चे हृदय से उसने वरण किया । इसके वाद की घटना आपको मालूम है । फिर कान्यकुब्ज तक मैं उसके साथ रही । रास्ते मे मेरे वडे भाई वलवन्त को उसी ने घायल किया । जहाँ पिता स्वय विरोधी थे, वहाँ न्याय की आशा उसने छोड दी । अव राजराजेश्वरी नाम की एक प्रवल पराक्रमवाली स्त्री मे उसका सखी-भाव स्थापित हो गया है । कान्यकुब्जेश्वर का कर लूटकर इस समय लालगढ दुर्ग पर वह अधिकार किये हुए है । यदि उसके पिता अपने अपराध के लिए उसमे तीन दिन के भीतर क्षमा-प्रार्थना न करेंगे तो वह दलमऊ दुर्ग को लूटने के लिए चौथे दिन यहाँ से प्रस्थान करेगी । उसके साथ अभी केवल पच्चीस सहस्र शिक्षित सेना है, लूटा हुआ तथा लालगढ का कोष भी । उसकी वश्यता स्वीकार करने पर उसके पिता को कान्यकुब्जेश्वर का भय न रहेगा, कारण वह कान्यकुब्जेश्वर को सत्यमार्ग पर आने पर वाध्य करेगी । इस समय मणिपुर भी एक प्रकार उसी के अधिकार मे है । वलवन्त वहाँ प्रवेश नही पा सकते । मेरे नाम से मेरी छोटी वहन रत्नावली ने सिपाहियो को उभाडकर अपनी तरफ कर लिया है, निरपराध राजकुमार को कान्यकुब्ज के षड्यन्त्र से निर्वासन-दण्ड मिला, यह अन्याय रत्नावली के लिए असह्य हुआ, उसने राजकुमार को रोक रक्खा ।"

नमिता कन्या

'त्रियामा'

पढकर महेश्वरसिंह स्तब्ध रह गये । अत्यन्त भय हुआ था, अव वचने का अकुर उगा हुआ देख पडा । पत्नी से बोले, "वडी भूल हुई ।"

"किसलिए ?"

"इसलिए कि सत्य छोडकर असत्य-पक्ष ग्रहण किया। अपनी कन्या, उसके सुख का विचार न किया !"

रानी रोने लगी।

कुछ देर तक दोनो मौन रहे। एक दासी ने आकर कहा कि सरदार किसुनसिंह मिलना चाहते है।

सरदार किसुनसिंह कान्यकुब्ज से आये थे। राजा महेश्वरसिंह ने रानी से आने का सक्षिप्त वृत्तान्त कहा फिर जोश मे आकर बोले, "अपने ही हाथो अपनी कन्या का भविष्य बिगाडा है, अब उन्ही मे क्षमा प्रार्थना भी करूँगा।"

रानी पद्मावती की सजल आँखो के भीतर से मर्मभरी बिजली झलक आयी। बोली, "अवश्य कीजिए। गिरे पिता को उठानेवाली पुत्री क्षमा करने के लिए ही तो आती है ?"

राजा महेश्वरसिंह बाहर आये। सरदार क्रुद्ध खडा था। उसे देखकर महेश्वरसिंह बोले, "अच्छा हुआ कि हम लोग यहाँ चले आये, वहाँ राजराजेश्वरी की पचविंश सहस्र सेना पडाव डाले हुए है। दुर्ग पर भी उसी का अधिकार है। कान्यकुब्ज का कोप उसी ने लूटा है। बात दूसरी तरह सत्य हुई। व्यर्थ सैन्यक्षय होता। तुम लोग कान्यकब्ज लौट जाओ। मै महाराजाधिराज को सूचित करता हूँ।"

सरदार लौट गया।

महेश्वरसिंह पत्र लिखने बैठे।

चौंतीस

कान्यकुब्ज मे एक ही सप्ताह के भीतर खलबली मच गयी। मनवा से कुमारी रत्नावली के पत्र के साथ प्रमाण मे भेजा हुआ वह भिक्षुक आया, जिससे कुमारी प्रभावती के साथ कुमारदेव के विवाह का प्रमाण पेश हुआ। राजा महेन्द्रपाल और कुमारदेव की निर्दोषिता बतलायी गयी, और सबसे आवश्यक अश सुधार के लिए महाराज के पास यह आया कि इच्छा के न रहते हुए भी मनवा की कुमारी रत्नावली को राजा बलवन्तसिह को प्रश्रय देने के कारण महाराजाधिराज का विरोध भी स्वीकृत होगा यदि उन्होने समुचित न्याय न किया।

इसके बाद लालगढ लूटने के लिए जानेवाली सेना का वापस जाना एक दूसरी उलझन का कारण हुआ। इससे कुमारदेव और राजा महेन्द्रपाल पर हुआ सन्देह अधिक अंश मे घट गया। राजा महेश्वरसिंह का धोखा खाना और राजराजेश्वरी नाम की किसी डाकुओ की नायिका का राज-कर लूटना, पश्चात् प्रभावती को आश्रय देकर लालगढ पर अधिकार करना ज्ञात हुआ।

फिर राजा महेन्द्रपाल का पत्र देवी त्रियामा के पत्र के साथ जो उन्होने रानी पद्मावती को लिखा था, महाराजाधिराज को प्राप्त हुआ। इससे सन्देह पूर्णमात्रा मे दूर हो गया। बल्कि समस्या उलझनदार हो गयी। इन तीन प्रधान सरदारो के परस्पर मिलने की शका खडी हो गयी। इन्हे दवाने के उद्योग मे राजसूय के अनुष्ठान को पहले दवाना होता था। पुन. केवल वलवन्तसिह को लेकर कान्यकुब्जेश्वर न रह सकते थे। वलवन्त का अन्याय भी प्रत्यक्ष हो रहा था।

इसी समय लालगढ मे राजराजेश्वरी का पत्र प्राप्त हुआ। उससे परिस्थिति और परिष्कृत हो गयी। लिखा था, कान्यकुब्ज की गिरती व्यवस्था को देखकर प्रजा के कष्ट निवारणार्थ राजराजेश्वरी ने उस शक्ति के विरुद्ध सिर उठाया। उसी ने दलमऊ से भेजे हुए राजा वलवन्तसिह और राजा महेश्वरसिह के पत्र पकडे, फिर उसने नर्तकी निन्दु को मिलाकर छिगुनियाँ धोवी को फँसाया, ये पत्र राजा महेन्द्रपाल पर जाली आक्षेप लिये हुए थे, भीतरी उद्देश्य महेन्द्रपाल और कुमारदेव को देवी त्रियामा के मामले मे भ्रम-धारणा के कारण नीचा दिखाना था। देवी त्रियामा, यमुना नाम से प्रसिद्ध वलवन्तसिह की वहन विपत्ति की मारी इधर-उधर भटकती हुई, यमुना नाम से, दलमऊ दुर्गाधिपति के यहाँ दासी के रूप मे रहती थी। इस विवाह की वे साक्षी है। नाव पर अपनी इच्छा से कुमारी प्रभावती देवी त्रियामा की सहायता से कुमार देव को ले गयी थी। उसी रात उनका वहाँ, गगा-तट पर, विवाह हुआ था। फिर पिता को वलवन्त के साथ आते हुए देखकर वे गगा मे कूद गयी थी। देवी त्रियामा भी उनकी रक्षा के लिए कूदी। राजा महेश्वरसिह स्वार्थवश विवाहित वलवन्त से अपनी कन्या का विवाह कर रहे थे, यह कुमारी प्रभावती को स्वीकृत न था। नाव की सज्जा देखकर आरोहियो के नाम मालूम कर वलवन्त समझ गये, विवाह हो गया, इसी पर उन्हे क्रोध आया और कुमारदेव को उन्होने घायल किया, और लालगढ के सम्बन्ध मे जाल फैलाया। पति के मिलने के उद्देश्य मे मनवा जाती हुई प्रभावती ने शिकायत के लिए कान्यकुब्ज जल्द आते हुए वलवन्त को घायल कर पति के घायल करने का वदला लिया। वलवन्त केवल षड्यन्त्र की जड को दृढ करने के लिए कान्यकुब्ज को चले थे, अन्यथा साथ कर लेकर जाते। इसका एक कारण और है। मनवा से उन्होने कान्यकुब्जेश्वर को प्रसन्न करने के लिए ही कर भेजा था, उसके साथ एक पत्र भी उन्होने भेजा था, जिसमे अपना पक्ष समर्थन किया था। वह पत्र वाहक से छिनवा लिया गया। वह भी साथ जाता है। प्रभावती को निराश्रय जानकर राजराजेश्वरी ने पक्ष लिया। कान्यकुब्ज की सारी खवरें उसे मालूम होती रहती हैं। सवाद पाकर उसने कर लूटने के पश्चात लालगढ दुर्ग पर अधिकार किया और कान्यकुब्जेश्वर की सेना को धोखे से दलमऊ भेजने को वाध्य किया। अव राजा महेन्द्रपाल और कुमारदेव की दण्डाज्ञा यदि न वदली, उन्हे उनके अधिकार न दिये गये, तो वह कान्यकुब्जेश्वर की शक्ति का सामना भी करेगी। राजेश्वर की व्यवस्था ठीक रही तो वह दुर्ग का अधिकार कान्यकुब्जेश्वर के अधीन राजा महेन्द्रपाल के लिए छोडकर अरण्य की ही रानी रहना स्वीकार करेगी।

ऐसी स्थिति के सुधार के लिए कान्यकुब्जेश्वर की इच्छा मे उनके मन्त्रियो ने

पहलीवाली आज्ञाओं को वापस लेने की ही सलाह दी। कल्याण इसी में था। नहीं तो अनुष्ठान बिगड रहा था। आज्ञा हुई, राजा महेन्द्रपाल की निर्दोषता के प्रमाण मिलने के कारण उन्हें मुक्ति के साथ उनके समस्त अधिकार दिये गये, कुमारदेव भी यथाक्रम पिता के उत्तराधिकारी हुए, वे कुमारी प्रभावती के मनोनीत पति हैं, सप्ताह-काल में ही पिता-पुत्र कान्यकुब्ज में उपस्थित होकर अपने उच्च आसनों को अलकृत करें, राजा बलवन्तसिंह दो वर्ष तक मनवा-दुर्ग में प्रवेश न कर सकेंगे, कुमारी रत्नावली की योग्यता से कान्यकुब्जेश्वर को प्रीति हुई, वे दो वर्ष तक कार्य-सचालन कर अपनी योग्यता का प्रमाण दें, राजा महेश्वरसिंह वास्तव में निर्दोष हैं, वे पूर्ववत् अपने अधिकारों के साथ कान्यकुब्ज में उपस्थित हों।

भीतर-भीतर कान्यकुब्जेश्वर राजराजेश्वरी पर उसकी स्पर्द्धा के कारण जलकर रह गये। घोषणा प्रचारित हो गयी। छिपे हुए राजा महेन्द्रपाल खुलकर कान्यकुब्ज पहुँचे। वहाँ सब हाल मालूम कर कान्यकुब्जेश्वर ने राजराजेश्वरी को पकडा देने की प्रतिज्ञा की।

कुमारदेव समस्त समाचार मालूम कर सीधे लालगढ पहुँचे, उस समय वहाँ से सारा ठाट उखड चुका था, केवल महाराज शिवस्वरूप मिले, कहा कि उन्हें दलमऊ जाने की आज्ञा हुई है, और जो कुछ उन्होंने कहा, वह कुमार की समझ में आकर भी न आया। फिर माता के पास गये, वहाँ का हुआ जो हाल उन्हें मालूम था, कहा, बहू की प्रशसा की, कहा कि कह गयी, बहुत जल्द तुम्हारी बहू मिलेगी।

पैंतीस

सारी परिस्थिति सुधर गयी, दिवस के बाद की शान्त सन्ध्या की गौरी उदास स्वरों से यमुना के प्राणों में बजने लगी, जैसे कर्मों के भार से श्रान्त हो चिर-विश्राम चाहती है, आज तक जिस सफलता से होकर आयी, वह साधन के भीतर उसे क्षुब्ध किये हुए थी, उसका वह फल उसके सुखभोग के योग्य नहीं, वह उससे भी दूर किसी अदृश्य, अस्पृश्य, अज्ञात तत्त्व में, लोक-लोचनों में अन्धकार द्वारा ढँके हुए दिन की तरह छिप जाना चाहती है. यह चिर-विदा ही उसकी दृष्टि में शान्ति के रूप से है।

प्रभावती में दीदी के प्रति अचल श्रद्धा रहती हुई भी भेद का अकुर उग चला था, वह कुछ मधुर था, कुछ तीव्र। इसीलिए लालगढ की लूटवाली परिस्थिति का जिक्र दूसरे दिन उसने दीदी से किया तो, पर रक्षा के लिए स्वयं तैयार रहने का प्रदर्शन कर कोई उपाय न पूछा, उसने अन्य उपाय की चिन्ता भी नहीं की। दुर्बल पिता को लडकर परास्त करने की ही सोची थी। यमुना इस भाव-परिवर्त्तन

को समझकर मुस्कराती रही कि प्रभा अब अपने साफल्य का चित्र आप तैयार कर लेती है। अपेक्षित समय मे जब कान्यकुब्ज की सेना न आयी, दो दिन और हो गये, तब उकताकर दीदी से प्रभा परामर्श करने गयी। यमुना ने वहका दिया। महाराज के हाथ भेजी गयी चिट्ठी का हाल पूछने पर वहका दिया, कहा कि बेचारा ब्राह्मण मारा-मारा फिरना है, वह निर्दोष है, उसे घर रहने की आज्ञा हो जाय और सताया न जाय, इस भाव का एक पत्र उसने देवी पद्मावनी को लिखा है, साथ अपना परिचय भी और यह कि प्रभा ने स्वेच्छया कुमारदेव को अपना पति निर्वाचित किया है, इसकी वह साक्षी है, चिट्ठी देकर महाराज को लौट आने के लिए कह दिया है, आज्ञा आ जाने पर जायेगे।

इसी ममय राजराजेश्वरी के नाम राजा महेश्वरसिंह का पत्र आया। वे उसके साथ है, उनकी एकमात्र सुशील कन्या की बाँह गहकर उसने सदा के लिए पिता को बाँध लिया है, पहले उसके विवाह के सम्बन्ध मे जो भ्रम उन्हे था, वह अब दूर हो गया, वे लालगढ लूटने के लिए जा रहे थे, राह से इस गलती का जो प्रमाण उन्हे मिला, इसके लिए वे कृतज्ञ है, अब कन्या के और उसके पक्ष मे यदि कान्य-कुब्जेश्वर की कृपा छोडनी पडे तो यह भी उन्हे स्वीकृत है, वे अपने कृत्यो की उसमे और पुत्री मे क्षमा चाहते हे, कान्यकुब्ज की सेना वापस गयी।

पत्र ऐमा था कि उसमे न तो यमुना के पत्र का उल्लेख था, न लालगढ आते हुए दलमऊ लौट जाने का खुला कारण। प्रभावती इसका भीतरी भेद न समझ पायी। उसने दीदी को पत्र दिखाकर कहा कि अब कान्यकुब्जेश्वर को दबाकर पत्र लिखना चाहिए, मनवा अपनी तरफ है, दलमऊ भी आ गया, परिस्थिति ऐसी है कि कान्यकुब्जेश्वर विरोध न करेगे, सत्य विचार के लिए वाध्य होगे। यमुना ने कहा, हाँ, ठीक है, लिखो। विनीत दृष्टि से प्रभा ने निवेदन किया कि शब्दावली यमुना कहती जाय, वह लिख ले। यमुना ने वैसा ही किया।

न्याय प्रकट हो जाने पर रामसिंह को यमुना ने राजा महेश्वरसिंह को फेरने-वाली घटना सिन्धु मे कहकर बोझ हल्का कर लेने की आज्ञा दी। इस तरह प्रभा-वती को भी रहस्य मालूम हुआ। लज्जित होकर एक बार फिर दीदी से उसने क्षमा-प्रार्थना की और दीदी मे सीखने के लिए बहुत कुछ है कहकर वश्यता प्रकट की।

न्याय-फल प्रचारित हो जाने पर प्रभा ने यथेष्ट धन देकर महाराज को विदा किया। साथ के सिपाहियो को भी दूना पुरस्कार दिया और धीरे-धीरे हट जाने की आज्ञा दी। पहले के चुने हुए सिपाही रह गये। विद्या को लेकर जाने के लिए रामसिंह से भी कहा, पर उसने प्रभा के उद्देश्य पर ही जीवन व्यतीत करने की इच्छा जाहिर की, कहा कि राजराजेश्वरी को अब विद्या या सिन्धु के रूप मे उतारना वह उसका अपमान समझता है, वह जिम जीवन को अपनी पूजा के योग्य मानता है, यह राजराजेश्वरी का वही जीवन है, इसी की छाँह मे वह शीतल रहेगा। प्रभा ने रामसिंह को राजराजेश्वरी की सेना का सेनापति बनाया। फिर विश्रृंखल होकर, एक-एक, दो-दो करके, मब सकेत-स्थल के लिए रवाना हो गये। प्रभा ने सासजी के चरण स्पर्श कर उनकी बहू बहुत जल्द मिलेगी, कहकर विदा

ली और दीदी के साथ नैमिषारण्य आयी।

यहाँ दीदी को कई बार गुरु से बातें करते हुए सुना। जिनकी कभी-कभी प्रशंसा सुनी थी, उन्हें प्रत्यक्ष देखा। उनकी पुष्ट देह की शान्त दृष्टि के सामने अपने आप प्रभा का मन नत हो गया। बातों में भक्ति ने प्रगाढ़ भाव धारण किया। गुरु की कृपा योग्य शिष्य-शिष्या पर क्या रूप धारण करती है, दीदी से अनेक प्रमाण वह प्राप्त कर चुकी है। उसे सबसे अधिक आश्चर्य उस दिन हुआ, जब यमुना ने गुरु से शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करने की आज्ञा माँगी और गुरु के यह कहने पर कि संचित क्षात्रतेज को धारण करने की आवश्यकता है, इसलिए राजकुमार को भिक्षालब्ध भोजन उचित न होगा—ऐसे वह गुरु के आश्रम में रह सकती है, उसने कहा था कि मेरी सखी स्वामिनी प्रभा के कुछ अलंकार गंगातट पर गाड़े हुए हैं उनसे पति के साथ उसके अन्तिम दिन बिना भिक्षाभ्रमण के कट जायेंगे। सुधार न चल सका, कहकर गुरु हँसे, फिर कहा, ज्ञान के कोष में कितना है, उसका पूरा पता नहीं चलता, इसलिए अपनी सोची हुई कुछ क्षण के लिए पूरी हुई देख पड़ने पर भी वह अपूर्ण रह जाती है, उसका रूप ज्ञान में ही कुछ देख पड़ता है, अच्छा है, यहाँ से एक दूसरा अनुभव होगा कि स्थान से भी सब स्थानों में सुधार किस प्रकार होता है, और एक सुधार कभी-कभी कितने सहस्राब्दियों की अपेक्षा में रहता है।

नत हो प्रभा ने मन्त्र के लिए प्रार्थना की। तीन दिन तक निष्ठापूर्वक रहने के बाद आने की गुरु ने आज्ञा दी।

समय पूरा कर प्रभा गयी। गुरु ने कहा, तुम्हारे लिए मन्त्र की आवश्यकता क्या? तुम तो स्वयं उत्तीर्ण हो, तुम्हारा उद्देश्य सफल है, तुम्हारी विशुद्धता अपनाने के लिए पण्डिता त्रियामा तपस्या करे, देवी, इसी रूप में मैं मिलूँ!

प्रभा मन्त्रमुग्ध मौन मिलनी ध्वनित निःस्पन्द खड़ी रही। गुरु की आँखों से अविरल अश्रुधारा बह चली। वह क्या देख रहे थे, न समझी। उनकी वह दर्शन-मुद्रा हृदय में अंकित हो गयी। मन नयी स्फूर्ति से उमड़ आया।

छत्तीस

दिन का तीसरा पहर है। गोमती धीरे-धीरे बह रही है। सामने वन की हरियाली दूर तक फैली हुई और जगह-जगह झाड़, छोटे-बड़े पेड़, ढाक और जंगली वृक्षों का वन। चिड़ियाँ एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त को पार करती हुई। मधुर-मधुर हवा संसार के स्थावर और जंगम सभी को हृदय से लगाकर शान्त करती थी। सूर्य की स्वर्गीय किरणें सुनहली दृष्टि से विश्व के प्रतिचित्र को देखती हुई। गोमती के किनारे एक टीले पर यमुना और प्रभावती बैठी हुई मन्द स्वर से वार्त्तालाप कर रही हैं, आँखों की चितवन जैसे किसी की प्रतीक्षा के रहस्य में चंचल है। वीरसिंह

जिस मुहूर्त्त तक बैठने के लिए कह गये है, वह पार हो चुका है। डरे हुए पशु कभी-कभी उधर से निकल जाते है।

"वह आ रहे है!" यमुना सजग होकर बोली और तीर-कमान सँभालने लगी।

प्रभावती ने भी कन्धे से कमान उतार ली, तीर जोडा। सवारो को देखती रही।

सवार एक बगल से निकले। उनके सामने शिकार था—एक चीता दोनो घोडे पर। चीता सामने के गुल्म की ओर भगता हुआ। टीले की बगल से इसी समय सवारो ने तीर मारे। साथ ही दो तीर और छूटे, और सवारो के तीरो की बीच डाँडी पर लगे। वार कट गये। चीते ने घूमकर एक बार देखा और झाडी के भीतर हो रहा। सवारो की तेज निगाह यमुना और प्रभावती पर पडी।

सवार नजदीक थे, टीले के पास घोडे बढाये। बिल्कुल सामने आ गये। यमुना और प्रभावती बैठी रही। टीले पर बैठी हुई सवारो से कुछ ऊँचे पर थी। यह निश्चय कर लिया कि ये महाराज पृथ्वीराज और महाराजकुमारी सयोगिता हैं।

संयोगिता की भौंहे तनी हुई। पृथ्वी भी गर्व की दृष्टि से देख रहे थे। यमुना और प्रभा की चितवन शान्त, जैसे कोई घटना नही घटी।

"तीर क्यो काटे?" हीन समझनेवाली निगाह से देखती हुई सयोगिता ने पूछा।

यमुना ने प्रभा को मौका दिया। उसके कुछ क्षण के मौन ने प्रभावती को समझा दिया कि उत्तर उसी को देना है। सोचकर प्रभावती बोली, "इसीलिए कि यह ऋषिभूमि है, यहाँ लोग भक्ति की भावना से आते है।"

"हमे तुम्हारी शिक्षा की जरूरत नही, तुम्हे मालूम हो।" और तेज गले से कहा।

"तुम्हारा या किसी का भ्रम-शोधन कर देना यहाँ हर एक का काम है।" बैठी हुई वैसी ही निर्भयता मे प्रभावती ने कहा।

"तुम्हे मालूम है—मैं कौन हूँ।" कहती हुई सयोगिता अपमानित होने के भाव से क्षुब्ध हो गयी।

"यह तो तुम्ही को मालूम न होगा, तुम्हारी किसी भी उपाधि को ऋषिभूमि के लोग उपाधिमात्र समझेंगे।" और शान्त होकर प्रभा बोली।

"तो फिर उपाधि का प्रयत्न किया जाय?" प्रखर दृष्टि से देखती हुई सयोगिता बोली।

"क्यो कसर रहे? तभी तुम्हे भी मालूम होगा।" हँसकर प्रभावती ने उत्तर दिया। यमुना स्थिर खडी देखती रही।

"तकरार अच्छी नही, इनके भाव मे क्रोध नही।" पृथ्वी ने सयोगिता से कहा।

सयोगिता ने व्यक्तित्व और प्रतिभा समझी। बातचीत करने के विचार से घोडे से उतर पडी। पृथ्वी भी उतरे। दोनो टीले पर चढने लगे। घोडे यथास्थान

खडे रहे। पास आने पर दोनों ने उठकर बैठाला। फिर पूर्ववत् बैठ गयी।

"यह वन मेरा है, और तुम मेरी ही जगह मुझसे छेड कर रही हो।" कुछ सयत होकर सयोगिता बोली, "तुम स्त्री हो नही तो।"

"नही तो आज ही तुम्हारा हरण होता," कहकर प्रभा मुस्करायी।

"यानी ? ' सयोगिता खडी हो गयी।

और सब भी खडे हो गये।—"यानी मैं तुम्हारे लिए क्षत्रियत्व का पूरा परिचय देती।"

"तुम जानते हो—मैं कौन हूँ ?"

"सम्भव, पर तुम भी जानती हो ?"

"नही, कौन हो तुम ?"

"राजराजेश्वरी।"

"डाकू ?"

"नही, महाराजाधिराज कहलानेवाले राठौरपति का कर लूटनेवाली, उनसे स्पर्धा रखनेवाली, तुम्हे मालूम हो कि तुम्हारी सारी मर्यादा इस समय मेरे हाथ मे है।" पृथ्वीराज का तलवार के कब्जे मे हाथ गया कि तुरन्त यमुना बोली, "बहुत विचार कर, चौहानपति !—यह सिरमागढ नही है कि एक मलखान को आप बहुतो ने घेरा है, दिल्ली पहुँचना दूभर हो जायगा। आपके साथी नही आ रहे। हमारे तो बहुत निकट हैं। इंगित पर टूटेंगे। विहार के विचार मे आपने अपने सिपाहियो का इधर आना रोक दिया है,—कुछ सरदारो ने गुप्तरूप कहकर। और मैं अकेली भी आपकी स्पर्धा से नही डरती। पर मानती हूँ कि आप वीर हैं। वीर की मर्यादा नष्ट न कीजियेगा।"

पृथ्वी की मुट्ठी कब्जे मे ढीली पड गयी। यदि पृथ्वी बन्दी हो गये तो सारी बात बिगड जायेगी, सोचकर सयोगिता घबरायी। प्रभा से बोली, "मैंने त्रुटि की। मुझे अपनी स्थिति के भाव ने धोखा दिया। मैं क्षमा चाहती हूँ।"

"किसके लिए ?" हँसकर प्रभा बोली, "कुमारी, तीर कटवाने के अपराध के लिए या पृथ्वीराज के साथ विहार करने की त्रुटि के लिए ?"

सयोगिता लज्जा से नत हो गयी, बोली, "हमारी श्रेष्ठता सेना के कारण है, यो एक व्यक्ति एक ही व्यक्ति के बराबर है। मैंने शिकार को तीर मारा, जिस तरह शिकार मेरा लक्ष्य था, उसी तरह मेरा तीर दूसरे का लक्ष्य हो सकता है।"

"और सूक्ष्म," पृथ्वीराज बोले।

"और बाण-विद्या-विशारद चौहानपति को इस प्रकार अपना लक्ष्य-वेध सिद्ध कर दिखाना भी किसी के लिए अनुचित नही कहा जा सकता।" प्रभावती बोली।

पृथ्वीराज को प्रसन्नता हुई। सयोगिता भी सम्मान-प्राप्ति से सकोचरहित हो गयी, बोली, "मैंने 'तुम' का प्रयोग अपनी श्रेष्ठता पर विचार कर किया था, यह भी मेरा भ्रम था, प्रसग भी वैसा ही पड गया। अब मैं सत्य-सत्य सखी-भाव से 'तुम' कहूँगी। तुम 'डाकू' हो, यह न जाने क्यो अच्छा नही लगता।"

"राजराजेश्वरी डाकू नही। साधारण मनुष्यो पर समान भाव रखनेवाली,

उनके हित की चिन्ता करनेवाली केवल एक वीरांगना है।" शिष्ट स्वर में प्रभा ने कहा।

"मैं हृदय से कहती हूँ, मैं भी साधारण कुमारियों की तरह एक कुमारी हूँ, और अनेक आपत्तियों में फँसी हुई।"

"मैं जानती हूँ।" प्रभा बोली।

"मैं चाहती हूँ, तुम्हारी एक सखी के प्रति सहानुभूति हो और तुम उसकी रक्षा करो।"

संयोगिता के स्वर में एक सत्य-सत्य दुर्बलता बज रही थी। प्रभा यद्यपि बहु-विवाहवाले भाव से घृणा करती थी, फिर भी यहाँ सत्य प्रेम की मर्यादा उसके हृदय में प्रतिष्ठित हो गयी। इस भाव का विरोध वह न कर सकी। क्यों पृथ्वीराज के प्रति उसका प्रेम हुआ, यह भाव दूर हो गया, बल्कि प्रेम के प्रति उसकी सहानुभूति पैदा हुई। बोली "बहन, मैं सब प्रकार तुम्हारे साथ हूँ।"

"मुझे तुम्हारी और (यमुना की तरफ देखकर) इसकी अत्यन्त आवश्यकता है, और इस प्रकार कि लोग मेरे ही यहाँ चलकर रहें, मेरी अन्तरंग सखी बनकर, मैं महाराज कुमारीवाला व्यवहार आप लोगों से न करूँगी, एक सखी बनकर ही रहूँगी। चौहानपति सब प्रकार समर्थ हैं, परन्तु मैं अपने लिए उनकी शक्ति का ह्रास न देख सकूँगी, और आप लोग जानती हैं, राजरूप से मुझे पति-वरण करना ही होगा। महाराज चौहानपति मेरे लिए मेरी सखियों की सहायता से शृंगार की ही दृष्टि से देखेंगे।"

कुछ क्षण स्तब्धता छायी रही। यमुना ने सोचकर कहा, "बहन, मैं अपने जीवन का निश्चय कर चुकी हूँ, अब यही साधना करती हुई भविष्य पार करना चाहती हूँ।"

संयोगिता की आँखों में यथार्थ ही प्रार्थना अंकित थी; निराश होकर जैसे प्रभा की ओर उसने देखा।

"मैं तुम्हारे साथ हूँ," प्रभा बोली, "तुम्हारे लिए प्राण देते भी मुझे आपत्ति न होगी।" संयोगिता की ठोडी पकडकर ऊपर उठायी। सूर्यास्त की किरणें उस नवीन म्लान मुख पर पड रही थी।

सैंतीस

कई महीने बीत गये। राजा महेन्द्रपाल, जहाँ कहीं भी डाका पडता है, राज-राजेश्वरी को पकडने का धावा करते हैं। जिस तरह कहा गया है कि लडाई के बाद प्रेम और बढ़ता है, उसी प्रकार महेन्द्रपाल, महेश्वरसिंह और बलवन्त की मैत्री उत्तरोत्तर सुदृढ होती जा रही है। कुमारदेव अपूर्वा में भी रहते हैं और

कान्यकुब्ज मे भी, पर सदैव चिन्ताशील। प्रभावती का कोई सवाद उसके वाद नही मिला। कान्यकुब्जेश्वर ने अपने स्वार्थ मे परमार्थ का पाठ पढाकर सवको और दृढ रूप से मिला लिया है। चारो ओर ने कर वसूल किया जा चुका, राजाओ के आमन्त्रण भेजे जा चुके, राजसूय की सारी तैयारियाँ पूरी हो चुकी है। कान्यकुब्ज मे एक दूमरी ही हवा वह रही है। चारो ओर प्रसन्नना-ही-प्रसन्नता देख पडती है।

निर्धारित समय निकट आ गया। वडे-वडे राजाओ के पडाव पडने लगे। समस्त देश के व्यवमायी दूकानें ले-लेकर आ गये और उचित-उचित स्थानो पर लगा दी। सुप्रवन्ध की पहले मे व्यवस्था कर ली गयी थी।

सभा-मण्डप की सूचना वर्णनातीत हुई। हजारो मनुष्यो के वैठने की योजना की गयी थी। वीच मे महाराजाधिराज जयचन्द का सिहासन था, जहाँ से वरमाला लेकर सयोगिता को वर वरण करने के लिए चलना था। समस्त सभा-मण्डल गृह-निर्माण-कला-विशारदो के द्वारा छा दिया गया था, जिसमे जल से भी सभा-समय भय न रहे। सहस्रो स्तम्भ ऊँचे से क्रमश नीचे किये हुए लगे थे। भीतर से सारा मण्डप वसन्ती रग से रँगे वहुमूल्य पट्ट-वस्त्रो से आच्छादित था। वीच-वीच फूल कटे हुए जिसमे चाँदी, सोना, मणि और मोतियो का जडाव। इमी प्रकार खम्भो मे। ऊँची-ऊँची वेदिकाओ पर नरेशो के आसन और भी सुशोभित। प्रवेश के लिए मुख्य चार द्वार। चारो मे वन्दनवार लगे हुए। जलपूर्ण स्वर्ण घट—जिन पर आम्र-पल्लव और यवपात्र—ऊपर घृत-प्रदीप, प्रतिद्वार के दोनो ओर रक्खे हुए। मुख्य द्वार पर पृथ्वीराज की मूर्त्ति द्वारपाल के रूप मे स्थापित।

राजसूय यज्ञ समाप्त हो गया। व्राह्मणो को यथेष्ट दान-दक्षिणादि देकर महाराजाधिराज ने राज्य मे दैवी शान्ति स्थापित की। सरदार तथा अभ्यागत नरेशो को जागीर, उपाधि तथा सम्मान देकर भौतिक शान्ति सुदृढ की। अव सयोगिता के स्वयवर मे सफल होकर चिर-मानसिक शान्ति की स्थापना करने चले। यह शुभ मुहूर्त्त पहले ने निश्चित हो चुका था। आज वह समय आ गया। महाराजकुमारी अपूर्व रूपगुणवाली नवयौवना सयोगिता को पाने की आशा लेकर ही प्राय अन्य मित्र-राष्ट्र के राजा गये थे। यदि केवल राजसूय मे जाना कान्य-कुब्जेश्वर के आमन्त्रण का कारण रहा होता तो अनेक नरेश न गये होते। सज-सजकर अपने दरवारी कवियो और सामन्त सरदारो के साथ सव अपने-अपने आसन पर चलकर विराजमान हुए। वडे आदर से महाराज जयचन्द ने उन्हे वैठाला। सवकी आँखे सयोगिता के आने की प्रतीक्षा कर रही थी।

आज स्वयवर है, पर सयोगिता की आँखो मे आँसू है। एकान्त कक्ष मे सखी से वातें कर रही है।

"वुलावा आ चुका है। जाती हूँ। माताजी, देर हो गयी कह रही है। चलने की सज्जा करनी होगी।"

"जाओ! रोती क्यो हो?" पूरी प्रसन्नता से हँसकर, "मैं विल्कुल तैयार हूँ। तुम्हारे जाने पर कपडे वदलकर ठीक अपनी जगह रहूँगी। डर क्या? सलाह के अनुसार ही काम होगा। महाराज पृथ्वी सभा मे आ गये। तुम्हारी कुछ ही दूर

रक्षा होनी चाहिए। तब तक चौहान-सेना आ जायगी।"

भावपूर्ण दृष्टि से अभिन्न सखी को देखकर, नम्र, परिणताङ्गी सयोगिता माता के पास चली।

महाराजकुमारी का शृगार ऋतुराज के हाथो हुए मधु माधवी के शृगार से भी बढकर है। वह विविध रत्नो की प्रभा के बीच असामान्य सुन्दरी सयोगिता पृथ्वी की किसी सृष्टि से उपमिता न होती हुई ही महाराजकुमारी हुई है। दासियाँ माल्य, चन्दन, अर्घ्य, मोती आदि अलग-अलग थालो मे लेकर सयोगिता को चन्द्र-विन्दु के आकार मे घेरकर ले चली। उस समय कविवर चन्द्र कविता पाठ कर रहे थे।

मन्द-झकृत-पद धीरे-धीरे सयोगिता सभामण्डल मे आयी। कान्यकुब्जेश्वर के वन्दी उसके परिचय मे पद्य पढने लगे। सवको महाराजकुमारी का आगमन सूचित हो गया। राजाओ की टकटकी वँध गयी। संयोगिता पलकें झुकाये हुए दासियो के साथ महाराजाधिराज के सामने आकर खडी हुई। ब्राह्मण-पुरोहितो ने माल्य-प्रदान से पहले सभा के मध्य बैठकर पितृकुल के देवपूजन की विधि पूरी की। पश्चात् यथाक्रम वैठे हुए एक-एक राजा के सामने ले जाकर सिखाये हुए वन्दी उनका परिचय करने लगे। दो-एक श्लोक राजा के अपने भट्टजी भी दसगुनी तारीफ मे सुना देते। इस प्रकार दासियो के साथ सयोगिता उस विशाल सभा-स्थल की परिक्रमा करने लगी।

इसी वीच कान्यकुब्ज के सरदारो मे वैठे हुए कुमारदेव की दृष्टि एक युवक पर गयी। ऐसे युवक से उनकी गहरी पहचान हो चुकी थी। इसी युवक मे उन्हे जीवन की प्रिय प्रभा मिली थी। सवकुछ वैसा ही है। केवल पहनाव कान्यकुब्ज सैनिक का है। आज कमर मे दो तलवारें है। और वह पिथौरा की मूर्त्ति के पास दूसरे सैनिक के पास टहल रहा है। वडा अद्‌भुत लगा। 'यह प्रभा नही हो सकती। प्रभा वहाँ कैसे आयेगी ?' इस प्रकार अनुमान और शका कर, फिर अच्छी तरह आँखें मलकर देखने लगे। उत्सुकता वढती गयी, वैसे ही शका भी वढती रही। फिर भी, उस रूप का सादृश्य मिलता है, इतना क्या कम है ?—एकटक कुमार युवक की गति-भगिमा देखते रहे। उनका स्वयवर देखना न हुआ। एकाएक उठ नही सकते, पूछते भी क्या ? यह वन नही।

देर हो गयी। सयोगिता सभा की प्रदक्षिणा करती उसी द्वार के पास आयी। भाव की दृष्टि से द्वारपाल पृथ्वीपाल की मूर्त्ति को देखती रही। फिर उसी के गले माला डाल दी। सभा मे हाहाकार मच गया। महाराज जयचन्द वडी विनय से राजाओ को समझाने लगे कि सयोगिता अभी वालिका है, जिसके गले मे माला डालना चाहिए, यह ज्ञान उसे नही, इस वार उसे समझाकर जयमाला डलवाता हूँ। यह कहकर उन्होने क्षत्रिय राजाओ को शान्त किया और सयोगिता को वुला-कर मतलव अच्छी तरह समझाकर फिर माला डालने के लिए कहा। सेविकाएँ फिर उसे साथ लेकर प्रदक्षिणा करने लगी। इस वार वह जल्द-जल्द राजाओ को पार करने लगी, और उसी प्रकार द्वार के पास पहुँचकर फिर पृथ्वीराज के गले मे माला डाल दी।

फिर हल्ला मचा। चन्द्र के साथ पृथ्वीराज के होने का सन्देह, जयचन्द को हो चुका था। पर ऐसे सेवक के रूप से चौहान न जायेंगे यह निश्चय भी था। इसीलिए कोई छेड नही की। अब, पृथ्वीराज ने सोचा, यह मौका चूकना सदा के लिए चूकना होगा। इशारे के साथ वहाँ बैठे हुए समस्त सरदार चन्द के पीछे उठे। राजा भी तकरार की ताक मे थे। भर्राकर बाहर निकले। पर पहले ही पृथ्वीराज ने प्रिया की बाँह पकडी। तत्काल उस खडे हुए युवक ने एक तलवार और अपनी ढाल सयोगिता को दे दी और घूमकर पृथ्वी पर होता हुआ वार बचाया। अब तक हजारो की सख्या मे शत्रु एकत्र हो गये थे, चौहान लडते हुए आगे को बढ रहे थे। पृथ्वी का घोडा अभी दूर था। पर वहाँ दूसरो के पास भी सवारी न थी। घमासान के साथ बढते हुए चौहान घोडे के पास आये। पृथ्वी और सयोगिता घोडे पर सवार हो गये। देखते-देखते छिपी चौहान-सेना भी आ गयी। कान्यकुब्ज की सेना लडती हुई उसका पीछा करने लगी। तब तक हजारो जवान कट गये।

देव बराबर युवक को देख रहे थे। जब उसने सयोगिता को ढाल और तलवार दी थी तब उनका सशय और बढा था। खडे रह गये थे। कान्यकुब्ज के सरदार चौहानो के पीछे थे। वे उसी युवक को देखते रहे। बढते चौहान के साथ सयोगिता का दाहना पार्श्व बचाकर लडता-बढता हुआ युवक सभा-स्थल पार कर गया और बाहर पृथ्वी और सयोगिता के घोडो पर चढने तक लडता दिखायी दिया। फिर चारो ओर से उमडी आती हुई सेना की आड मे कुछ देख न पडा। कुमारदेव धीरे-धीरे बढे। कुछ कदम बढने के बाद द्वार के बाहर लाशों-ही-लाशें दिखी। पृथ्वीराज के घोडे पर चढने के कुछ आगे चलकर देखा, प्रभा मूर्च्छित पडी हुई है, उसकी पगडी, जिससे वह युवक बनी हुई थी, गिर गयी है, बाल खुल गये है। कुमार के हृदय मे वज्र-सा टूटा, धडकन बढ गयी। जल्द बढकर देखा, वही एक ओर बलवन्त पडा हुआ है—सदा की नीद सोता हुआ, प्रभावती सख्त घायल, मूर्च्छित; साँस देखी, बहुत क्षीण।

"प्रभा।"

प्रभा ने भूमि पर हाथ हिलाने की चेष्टा की, कुमार नही समझे—वह पैरो की धूल चाहती है। फिर बहुत ही क्षीण स्वर से बोली, "रतन।"

०००

निरुपमा

निरुपमा

मेरे कलकत्ते के काव्य-प्रसून को मिली
प्रिय श्री दयाशकर बाजपेयी की स्नेह-सुषमा को।

—'निराला'

प्रयाग
21 3 36

निवेदन

हिन्दी के उपन्यास-साहित्य को 'निरुपमा' मेरी चौथी भेंट है। आलोचक साहित्यिक जिन महानुभावो ने उठने की कसम खायी है भाषा और भावो के लच्छेदार वर्णन के सम्वन्ध मे, उनके लिए मैं स्वय उतर आया हूँ। उन्हे यदि 'निरुपमा' स्थलविशेष पर भी सौन्दर्य के वोध से निरुत्तर कर सकी तो मैं श्रम सार्थक समझूँगा। पर अगर सिहलवासियो को प्रयाग सुलभ न हुआ, तो मुझे आश्चर्य न होगा। जिन्होने 'अप्सरा' और 'अलका' आदि की तारीफ मे मुझे उपन्यास-साहित्य का आधुनिक प्रतिनिधित्व प्रदान किया है और मूल्य आँकते-आँकते अमूल्यता तक पहुँच गये हैं, उनकी मानसिक उच्चता के सामने कृतज्ञ मैं अत्यधिक सकुचित हूँ; पर 'निरुपमा' के सकुचित होने का कोई कारण नही। मुझे विश्वास है, वह उन्हे निरुपम सौन्दर्य और सस्कृति देकर प्रसन्न कर सकेगी।

मेरे लिए हुए भिन्न दो समाजो के विषय, हिन्दी के अपरिचय के कारण, यद्यपि विष ही होना चाहते थे, फिर भी यथा-साध्य मैंने अमृत वनाने की कोशिश की है। दूसरे उन्नत समाज उपन्यास-लेखक की जो सहायता करते है, वह हिन्दी के समाज से प्राप्त नही। इसलिए काल्पनिक सृष्टि करनी पडती है, जैसे समाज की लेखक आशा करता है और जिसका होना सम्भव भी है। अनभ्यस्त और स्वभाव-सचालितो को वहाँ अस्वाभाविकता मिलती है। पर वह है स्वाभाविक। साथ, प्रचलित छोटे-छोटे चित्र, सहारे के लिए रहते हैं, साधारणो के हक मे उतना ही आता हे। फिर भी, जैसा परिवर्तन है, मुझे विश्वास है, साधारण भी इसे असाधारण कलक न देगे।

—'निराला'

एक

लखनऊ मे शिद्दत की गरमी पड रही है। किरणो की लपलपाती दुवली-पतली अमल्यो नागिनें तरु-लता-गुल्मो की पृथ्वी से लिपटी हुई कण-कण को डस रही है। उन्ही के विष की तीव्र ज्वाला भाप मे उडती हुई, हवा मे लू होकर झुलसा रही है। तमाम दिन वडे-वडे लोग खस-खस की तर टट्टियो के अन्दर वन्द रहकर काम और आराम करते है। इसी समय योरप की मुख्य भाषाओ का समझ भर के लिए अध्ययन कर लण्डन की डी. लिट् उपाधि लेकर लौटा हुआ कुमार, स्थान रहने पर भी योग्यता की अस्वीकृति से उदास, कलकत्ता विश्वविद्यालय से लखनऊ आया हुआ है—यहाँ कोई स्थायी-अस्थायी काम मिल जाय, पर चूंकि किसी चान्सलर, वाइस चान्सलर, प्रिन्सिपल, प्रोफेसर या कलक्टर से उसकी रिश्ते की गिरह नही लगी, इसलिए किसी को उसकी विद्वत्ता का अस्तित्व भी नही मालूम दिया। जाँच करनेवाले ज्यादातर वगाली सज्जन एक राय रहे कि एम ए मे किसी तरह घिसट गया है—थीसिस चोरी की होगी। एक अस्थायी जगह लखनऊ-विश्वविद्यालय मे वावू कामिनी चरण चटर्जी की छुट्टी से हो रही थी, वहाँ वावू यामिनी हरण मुखर्जी आ गये। ये पी-एच डी. ही थे, पर इनकी पूंछ मे वालो का गुच्छा मोटा मिला। कुमार फिर जगह की तलाश मे क्रिश्चियन-कालेज गया, पर वहाँ भी वर्णाश्रम-धर्मवाला सवाल था। देखकर विद्या ने आँखें झुका ली और हमेशा के लिए ऐसे स्थलो का परित्याग कर देने की सलाह दी।

योरप के लौटे हुए कुमार की दृष्टि मे 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' का ही महत्त्व है, इसलिए मन मे हार की प्रतिक्रिया न हुई। कोहनूर होटल की नीचेवाली मजिल मे टिका हुआ है। सामने के कमरो मे दो-तीन वावू और रहते हैं। शायद अलग-अलग दफ्तरो मे नौकर हैं। रात को कमरो से वाहर सडक के किनारे चारपाइयाँ डलवाते हैं। ठण्डी-ठण्डी हवा लगती है, नीद अच्छी आती है।

सव जगह हताश होकर भी कुमार दिल से दृढ रहा। योरप जाते वक्त भी उसे समाज का सामना करना पडा था। लौटकर और करना पडेगा, यह पहले से निश्चय कर चुका था। इसलिए, हेच जरा भी नही खायी, एक तरग उठी और दिल-वहलाव की स्वाभाविक प्रेरणा से गुनगुनाने लगा। गुनगुनाते-गुनगुनाते भावना पैदा हुई, गाने लगा। रात के साढे-नौ का समय होगा। गाना समाप्त हुआ कि सामने के सुन्दर मकान से हारमोनियम का स्वर गूंजता हुआ सुन पडा, फिर किशोरी कण्ठ

का ललित सगीत। तरुणी भाव के मधुर आवेश मे गा रही थी—"तोमारे करियाछि जीवनेर ध्रुवतारा।" कुमार का हौसला अभी पूरा न हुआ था, पुन सगीत का श्रीगणेश उसी ने किया था, इसलिए वह भी गाने लगा। पर गाता क्या, भाव के आवेश मे शब्दो का ध्यान ही जाता रहा। जब एक जगह एक रागिनी गायी जा रही हो, तब दूसरी रागिनी गाना असम्भव भी है, दु खप्रद भी। भाव के आवेश मे कण्ठ उन्ही-उन्ही पदो पर फिरने लगा। एक ही पद के बाद हारमोनियम बन्द हो गया। पर कुमार की गलेबाजी चलती गयी। हारमोनियम क्यो बन्द हो गया, इस तरफ ध्यान देने की उसे फुर्सत भी नही हुई। उसकी तान-मुरकी समाप्त हुई, उधर ग्रामोफोन मे किसी बगाली महिला का काफी ऊँचे स्वरो मे, जहाँ उसके पुरुष-कण्ठ की पहुँच नही हो सकती, टागोर-स्कूल का गाना होने लगा। यह चाल और चालाकी कुमार समझ गया। साथ-साथ यह भी उसके ख्याल मे आया कि इस स्वर से गला मिलाकर गाने की उसे चुनौती दी गयी है। उसने गला एक सप्तक घटा दिया। उससे उसे सहूलियत हुई। वह इतने ही स्वरो पर गाता था। टागोर-स्कूल का ढग भी उसे मालूम था। तमाम किशोरावस्था बगाल मे बीती थी। गाने लगा, बल्कि कहना चाहिए, अगर कण्ठ के कामिनीत्व को छोडकर कमनीयत्व की ओर जाया जाय तो कुमार ने ही बाजी मारी।

एकाएक गाने के मध्य मे रेकार्ड बन्द हो गया। गाडीवाले बरामदे की छत पर एक तरुणी आकर रेलिग पकडकर खडी हो गयी। होटल की ओर देखा। कई चारपाइयाँ पडी थी। कुमार का गाना बन्द हो चुका था। वह तकिये पर सिर रक्खे एक भले आदमी की तरह उसी ओर देख रहा था। तरुणी निश्चय न कर सकी कि उसे चिढानेवाला किस चारपाई पर पडा है। एक बार देखकर "छूंचो,—गोरु,—गाधा—"* कहकर तेजी से फिरकर चली गयी। कुमार समझकर निर्विकार चित्त से करवट बदलकर—"भज गोविंद भज गोविंद भज गोविंद मूढमते"—गाने लगा।

गाने के भीतर गाली की ध्वनि—"छूंचो,—गोरु,—गाधा—" बार-बार गूंजती हुई सुन पडने लगी। कुमार ने गाना बन्द कर दिया। विचार करने लगा। सोचकर हँस पडा। गाली की तरफ ध्यान न गया, क्योकि गाली के साथ-साथ उसकी वजह भी सामने आयी। जहाँ गाली की कठोरता की तरह उसकी वजह मुलायम हो, वहाँ कोई मूर्ख गाली की तरफ ध्यान देगा। वह मूर्ख नही। कोरे 'छूंचो, गोरु, गाधा" मे क्या रक्खा है ?—न इनमे से वह कुछ है। वह उस भाव को सोच रहा है जो गाली देते वक्त जाहिर हुआ था, जिसमे गाली सुनाने की स्पर्द्धा को शालीनता से दबा रखने की शक्ति भी साथ-साथ प्रकट हुई थी, जहाँ भय था कि जिसे सुनाती हूँ उसके सिवा दूसरा तो न सुन लेगा, जिसमे पाप के विरोध मे खडी होने की सरल पुण्य प्रतिभा थी, भले ही वह पाप दूसरो के विचार मे पाप न हो।

* 'छूंचो' का अर्थ है छछुन्दर, मतलब औरतो के पीछे छछुआनेवाला। 'गोरु' अर्थात् गऊ, मूर्खता, निर्बुद्धिता आदि अर्थों पर बँगला मे यह गाली प्रचलित है। 'गाधा'—गधा।

युवती के मनोभावो की सुखस्पर्श उधेड-बुन मे कुमार को बडी देर हो गयी। रात काफी बीत चुकी, पर न पी हुई उस मधु को एक बार पीकर बार-बार पीने की प्यास बढती गयी। आँखे न लगी, उन विरोधी भावो मे प्राणो के पास तक पहुँचनेवाली इतनी शक्ति थी कि वह स्वय उसको धीरे-धीरे प्राणो को आवृत करनेवाली कोमलता से मिलता हुआ परास्त होता गया। जब आँखे लगी, तब वह जैसे उसकी पूर्ण पराजय की ही सूचना हो। तब तक रात के दो-तीन का समय हो चुका होगा। नीद जैसे युवती के पढे जादू का नशा हो।

कुमार की आँखे खुली जब सूरज निकल आया था, मुँह पर धूप पड रही थी। पास के और-और सोनेवाले उठकर चले गये थे। भ्रमण समाप्त कर लौट चुके थे, कुछ देर से जानेवाले लौट रहे थे; रास्ते पर काम से चले लोगो की काफी भीड हो रही थी।

जगने के साथ ही जिस तरफ को मुँह था, आँखे सीधी उसी तरफ आप-ही-आप गयी। जिस कल्पना को लेकर वह सोया था, जगने के साथ ही अपनी मूर्त्ति-मत्ता मे लीन न होने के लिए उसी तरफ वह चली। सामने टेलीग्राफ के पोस्ट को बाँधनेवाले एक तार पर उसी मकान के भीतर से मधु-माधवी की एक लता ऊपर तक चढी हुई प्रभात के वायु से हिल-हिलकर फूलो मे हँस रही थी। उसी की फूली दो शाखाओ के अर्द्धवृत्त के भीतर से देखती हुई दो आँखें कुमार की आँखो से एक हो गयी—उसकी कल्पना जैसे सजीव, परिपूर्ण आकृति प्राप्त कर सामने खडी हो। इस खडे होने के भाव मे भी रात का वही भाव स्पष्ट था। सारी देह लता की आड मे छिपी हुई, मुख लता के दो भुजो के बीच, जैसे छिपने का पूरा ध्यान रखकर खडी हुई हो।

बरामदे पर सुबह-शाम रोज वह वायु-सेवन के लिए, बाहरी दृश्य देखने की इच्छा से, निकलती थी, जरूरत पर यो भी आती थी। कल जिसे गाली दी, मुमकिन आज देख लेने के लिए आयी हो। पहचान थी नही, सोते कुमार को देखा हो, आँखो को अच्छा लगा हो, इसलिए छिपकर देखने लगी हो।

कोई भी कुमार को सुन्दर कहेगा। उसके सोते समय युवती किस भाव से किस दृष्टि से देख रही थी, नही मालूम। पर उसके सोने पर भी उसके ललाट, चिबुक, नाक और मुँदी आयत आँखें विद्या के परिचय से प्रदीप्त रहती हैं। लम्बे बाल कानो को ढककर कपोलो तक आ जाते है। गोरे चेहरे पर केवल साबुन से धुले सुनहले बाल किसी मनुष्य को एक बार देखने के लिए खीच लेगे, मुख और बालो की ऐसी मैत्री है।

कुमार को देखते ही युवती लजा गयी। उसी की प्रकृति ने उसकी चोरी की गवाही दी। आँखें झुक गयी, होठो पर पकड मे आने की सलाज मुस्किराहट फैल गयी। सामने मधु-माधवी की लता हवा मे हिलने लगी। पीछे सूर्य अपने ज्योति-मण्डल मे मुख को लेकर स्पष्टतर करता हुआ चमकता रहा। युवती छिपने के लिए पहले से तैयार थी, पर छिप नही सकी। कुमार अपनी कल्पना को सुन्दर प्रकृति के प्रकाश मे घिरी, प्रत्यक्ष सजीव अपार रूप-राशि के भीतर सलज्ज सहानुभूति देती हुई देर तक देखता रहा—जैसे कल गाली देने के कारण आज वह मूर्तिमती

क्षमा-प्रार्थना वन रही हो, जैसे कल के भीतरवाले भाव आज व्यक्तरूप धारण कर रहे हो।

सुन्दर को सभी आँखें देखती है, अपनी वस्तु को अपना सर्वस्व दे देती है। क्यो देखती हैं, क्यो दे देती है, इसका वही कारण है जो जलाशय की ओर जल के वहाव का। रूप ही दर्शन की सार्थकता है। यहाँ एक रूप ने दूसरे रूप को—आँखो ने सर्वस्व-सुन्दर आँखो को चुपचाप क्या दिया, हृदय ने चुपचाप दोनो ओर से क्या समझा, मौन के इतने वडे महत्त्व को मुखरा भाषा कैसे व्यक्त कर सकती है।

दोनो देख रहे थे, उसी समय एक वालिका आयी। वहन के सामने खडी होकर, रेलिंग पकडे हुए पजो के वल उठकर अजाने मनुष्य को एक वार देखा, फिर दीदी को देखकर दौडती हुई चली गयी।

पकड मे आकर हटते हुए युवती के पैर नही उठ रहे थे। वह रेलिंग पकडे हुए मुंह फेरकर दूसरी ओर देखने लगी—होठो मे मुस्किरा रही थी। कुमार उठकर कमरे के भीतर चला गया।

दो

एक साधारण रूप से अँगरेजी रुचि के अनुसार सजा हुआ कमरा। एक नेवाड का वडा पलँग पडा हुआ। पायो से चार डण्डे लगे हुए। ऊपर जाली की मशहरी वंधी हुई। पलँग पर गद्दे-चदरे आदि विछे हुए। चारो ओर तकिये। वगलवाले दो लम्वे गोल, सिरहाने और पाँयते के कुछ चपटे, कोनो के दो सिरहाना सूचित करते हुए। दो वडे शीशे आमने-सामने लगे। दीवार पर चुनी हुई तस्वीर—परमहस रामकृष्णदेव, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द, लोकमान्य वालगगाधर तिलक, लाला लाजपतराय, श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महात्मा गाधी, प. मदनमोहन मालवीय, वावू चितरजन दास और प मोतीलाल नेहरू आदि की वडे आकार-वाली। इनके नीचे एक-एक वगल, मासिक-पत्रो मे निकली हुई आशा, भावना, कविता, शरत्, वासन्ती, वर्षा आदि की काल्पनिक तस्वीरें। फिर भी तस्वीरो की अधिकता न मालूम देती हुई। लोहे की छडो के वाहर से पूरे दरवाजे के आकार की खिडकियो का आधा ऊपरवाला हिस्सा खुला हुआ, आधा नीचेवाला वन्द। पूरववाली खिडकियो से प्रभात की हल्की धूप आती हुई। एक ओर एक मेज, जिसके दो ओर दो कुर्सियाँ। एक पर वही वालिका वैठी पढ रही है। इसी समय उसकी दीदी कमरे मे आयी और दूसरी कुर्सी पर वैठ गयी। सामने वालिका के रोज के पढने की तालिका रक्खी थी, उठाकर देखने लगी। मन का दृष्टि के साथ सहयोग न था, इसलिए देखकर भी कुछ समझ न सकी। केवल लिखावट पर निगाह दौडकर रह गयी। मस्तिष्क तक विषय का निश्चय न पहुँचा।

तालिका रखकर युवती वहन को हँसती आँखो देखने लगी। फिर पूछा, "अच्छा नीली (वालिका का नाम नीलिमा है) हमारे सामनेवाले वैडमिन्टन ग्राउण्ड की घास दो घोडे दो दिन मे चरें तो एक घोडा कितने दिन मे चरेगा ?"

उच्छ्‌वास से उमडती हुई, उसकी ओर मुँह वढाकर, उसी वक्त वालिका ने उत्तर दिया, "एक दिन मे।"

"चट्ट" से एक चपत पडी। वालिका गाल सहलाती हुई, सजल आँखो एकटक वहन की चढी त्योरियाँ देखने लगी।

इसी समय एक दासी ने आकर कहा, "दादा बुलाते है। यामिनी वावू मोटर लेकर आये है, हवाखोरी को जा रहे हैं।"

युवती दासी की वातें सुन रही थी कि एक ओर से वालिका निकल गयी। सीधे यामिनी वावू के पास पहुँची। यामिनी वावू उसका आदर करते है। उस समय उसका दादा सुरेश वहाँ न था। कपडे वदलने के लिए निरुपमा को बुलाकर, अपने कमरे मे गया हुआ था। वालिका अच्छी तरह जानती है कि यामिनी वावू उसकी दीदी को प्यार करते है, और उसके घरवालो की इच्छा है कि उसकी दीदी का यामिनी वावू से विवाह हो। फिर मन-ही-मन दीदी के प्रति रुष्ट होकर बोली, "वह जो वडे-वडे वालवाला हिन्दुस्तानी है न—उस होटल मे!—आज सुवह गाड़ीवाले वरामदे पर खड़ी दीदी उसे देख रही थी वह भी दीदी को देख रहा था।"

वालिका की वात का असर साँप के जहर से भी यामिनी वावू पर ज्यादा हुआ। प्रेम और ससार की नश्वरता का सच्चा दृश्य उन्हे देख पडने लगा। 'या चिन्तयामि सततम्' आदि अनेक पुण्यश्लोक याद आने लगे! इसी समय वालिका ने कहा, "अभी मुझे पढा रही थी, पूछा, उस वैडमिण्टन ग्राउण्ड की घास दो घोडे दो दिन मे चरे तो एक कितने दिन मे चरेगा ? कितना सीधा सवाल है ? हमारे स्कूल मे जवानी पूछा जाता है। मैंने ठीक जवाव दिया, पर दीदी ने मुझे मार दिया।"

वालिका जीने की तरफ देखकर सभय चुप हो गयी। दासी के साथ निरुपमा धीरे-धीरे उतर रही थी। अचपल-दृष्टि, गौरव की प्रतिमा वालिका व्याकुल हो गयी कि पीछेवाली वात इसने सुन न ली हो। निरुपमा नीचे के वरामदे मे पहुँचकर धीरे-धीरे नीली के पास गयी और उसका हाथ पकडकर वगीचे की ओर देखने लगी। नीली को विश्वास हो चला कि नही सुना। फिर भी धडकन थी, इसलिए इस प्रकार स्नेह का दान पाने पर भी खुलकर कुछ वोल न सकी—उसकी छड़ी की तरह चुपचाप सीधी खडी रही।

यामिनी वावू के वैराग्य-शतक की शक्ति निरुपमा के आने के वाद से क्षीण हो चली। रूप के साथ आँखो का इतना घनिष्ठ सम्वन्ध है। पतग एक दूसरे पतग को जलकर भस्म होते देखता है, पर रह नही सकता। इतना वडा प्रत्यक्ष ज्ञान भी रूप के मोह से उसे वचा नही सकता—वह दीपक को सर्वस्व दे देता है। दीपक अपने ही स्थान पर जलता रहता है।

निरुपमा की दृष्टि मे चाह नही, ऐसा कौन कहेगा ? उसकी दृष्टि से, उसकी

बातें सुनकर सभी उसे प्यार करने लगते है, जो जिस तरह के प्यार का हृदय मे अधिकार रखता है। और वह, वह शमा है जो बाहर की भस्म को ही भस्म करती है। इसलिए वैराग्य-शतक का कृत्रिम भस्म उसके एक ही दृष्टिपात से अपनी स्वर्गीय सत्ता मे मिलित हो गया। यामिनी बाबू उखटकर कुछ क्षण के लिए पहले-से हो गये।

तबीअत अच्छी न रहने के कारण निरुपमा की इच्छा दासी को लौटाल देने की थी, पर भाई के बुलावे का खयाल कर चली गयी। उसके आने के कुछ ही देर मे सुरेश बाबू भी कपडे बदलकर आ गये। मोटर रास्ते के किनारे लगी हुई है। यामिनी बाबू के साथ सुरेश बाबू बहन को बुलाकर आगे-आगे चले। नीली को साथ लेकर पीछे-पीछे निरुपमा चली। नीली के जाने की कोई बात न थी। इधर जब से यामिनी की सुरेश बाबू से घनिष्टता हुई, भाई के कहने से केवल निरुपमा साथ जाती थी, कभी-कभी नीली, यों प्राय' जाने के लिए सदा छलकती रहती थी। सुरेश बाबू डाँट देते थे। कभी-कभी पढने के लिए खुलकर भी कडी जबान कह देते थे। वह लाज से मुरझाकर लौट जाती थी। भाई की आज्ञा पर कुछ कहने का अभ्यास निरुपमा को पहले से न था।

किसी बगीचे के पास मोटर से उतरकर टहलते हुए सुरेश बाबू निरुपमा को अकेली छोड देते थे। यामिनी बाबू को बातचीत की सुविधा हो जाती थी। कुछ देर बाद किसी कुञ्ज से टहलकर सुरेश आते थे। इस प्रकार दोनो का परिचय बढ गया है। दोनो के हृदय निश्चय से बँध चुके है। अँगरेजी पढने पर भी, प्राचीन विचारो की महिलाओ मे रहने के कारण निरुपमा हिन्दू-सस्कारो मे ही ढली है। भाई तथा अपर स्त्रियो का निश्चय ही उसका निश्चय है। पर यामिनी बाबू योरप की हवा खाकर लौटे है, इसलिए इस वैवाहिक प्रसग पर कुछ अधिक स्वतन्त्रता चाहते है। सुरेश अपने बगाली समाज की वर्तमान खुली प्रथा के समर्थक है, पर एकाएक यामिनी बाबू को दी पूरी स्वतन्त्रता के अनभ्यास के कारण निरुपमा को सकोच पहुँच सकता है, इस विचार से धीरे-धीरे रास्ता तय कर रहे है।

नीलिमा का साथ रहना यामिनी बाबू को पहले से पसन्द न था, पर आज सुरेश के मना करने से पहले उसे बुलाकर, ड्राइवर की सीट की बगल मे, अपने पास बैठा लिया। सुरेश बाबू निरुपमा के साथ पीछेवाली सीट पर बैठ ही रहे थे कि होटल के सामने बरामदे पर कुमार खडा हुआ दीख पडा। नीली यामिनी बाबू को कोचकर होटल की तरफ देखने लगी। यामिनी बाबू कुमार को देखकर निरुपमा को देखने लगे। निरू सिर झुकाये बैठी थी।

कुमार देखता रहा। मोटर चल दी। सीधे सिकन्दर बाग गयी। एक जगह सब लोग उतरकर इधर-उधर इच्छानुसार टहलने लगे। यामिनी बाबू नीली के साथ एक कुज की तरफ गये। भ्रम था ही। सोचते हुए नीली से पूछा, "क्या पूछा था निरू ने तुमसे ?"

नीली मुस्किराकर बोली, "आप भूल गये! आप याद नही रख सकते! अच्छा उसमे घोडे हैं, बतलाइये ?"

"हाँ दो घोडे दो दिन मे, तो एक, क्या कहा तुमने ?"

"एक दिन मे," कहकर नीली समझदार की तरह हँसने लगी।

"अच्छा इसलिए मारा तुम्हे !"

आवाज ऐसी थी कि नीली ने सहृदयतासूचक न समझी। एक विपम दृष्टि से यामिनी वावू को देखने लगी।

अव यामिनी वावू को नीली की मैत्री खटकने लगी, नीली के भविष्य पर अनेक प्रकार की शकाएँ उन्होने की। निरू के प्रति जितने विरोधी भाव थे, एक साथ, तेज हवा मे वादलो की तरह कट-छँट गये। प्रेम का आकाश पहले-सा साफ हो गया। निरुपमा की ओर अभियुक्त की तरह धीरे-धीरे वढने लगे। वह एक चम्पा के किनारे खडी फूलो की शोभा देख रही थी। सोच रही थी—'इनकी प्रकृति इनका कैसा विकास करती है! ये कितने कोमल हैं! खुली प्रकृति की सम्पूर्ण कठोरता, उपद्रव और अत्याचार वरदाश्त करते हैं! इनके स्वभाव से मनुष्य क्या सीखता है। केवल सौन्दर्य के भोग के लिए इनके पास आता है?'

तीन

कुमार कमरे मे अन्यमनस्क भाव से एक कुर्सी पर वैठ गया। चिन्ताराशि, फल के छिलके पर खुले रग-जैसे, मुख पर रगीन हो आयी। स्वच्छ हृदय के शीशे पर अपने ही रूप का प्रतिविम्व पडा। इसे ही वह प्यार करता था। अन्यत्र भी यही प्रतिफलित होता था, जहाँ उसकी ज्ञानेन्द्रियो को आनन्द मिलता था। इस तरह प्यार आप अपना आकर्षण पैदा करता था। मनुष्य होकर, पश्चात् विद्वान् वनकर, इसी की रक्षा के लिए वह तत्पर रहा था। हृदय का निष्कलुष तत्त्व जीवन के पथ पर पथिक-जीव के विचलित—स्खलित होने पर मलिनत्व प्राप्त होता, क्रमश उसे पतित कर देता है, यह वह जानता था। पहले स्थूल रूप से समझा था, अव सूक्ष्म रूप से जानता है। पहले यह प्यार शक्ति के रूप मे था जव उसे मनुष्योचित शिक्षा के अर्जन की धुन थी—इसीलिए समाज और घरवालो का विरोध उसने किया था अपनी शिक्षा के समस्त सोपान तय करने के लिए, अव वह अपनी प्रज्ञा मे स्थित है, उसकी पुष्टि मे लगा हुआ, इसीलिए जो ठोकरें मिल रही हैं, उन्हे दूसरो की कमजोरी समझकर वह समर्थ होकर ससार के मुकावले के लिए तैयार हो रहा है। उस पर वहुत वडा उत्तरदायित्व है, वह कुछ भी पूरा नही कर सका, दूसरे अपने स्वार्थ के समक्ष उसे अपरास्त भी परास्त करार देते गये हैं, वह पुन-पुन सँभलता, पैर उठाता वढाता जा रहा है—यही उसके चेहरे पर खिली रगीनी है और भविष्य के कार्यक्रम पर विचार उसकी चिन्ता।

घडी मे टन्-टन् कुछ वजा, आठ हैं, नौ या दस, उसे पता नही, गिना भी नही। एकाएक सामने टेवल पर नजर गयी, देखा, चाय रक्खी हुई है,—ऊपर से

धुआँ नही उठ रहा; प्याले मे हाथ लगाकर देखा, अभी पीने लायक है। उठाकर पीने लगा।

नौकर फिर आया। "बाबू, कल शाम को यह चिट्ठी आयी, मैनेजर साहब देर से आये, इसलिए कल नही भेजी जा सकी।" सामने चिट्ठी रखकर चला गया था।

चाय पीकर कुमार ने चिट्ठी खोली। उसके छोटे भाई की लिखी है। पढने लगा। लिखा है—खर्च नही चलता, माँ के पास भी खर्च नही, गाँववालो की कुछ भी सहानुभूति नही, न्योते नही आते, ऐसी और कुछ बातें।

कुमार ने सडक की ओर चिन्ता की दृष्टि से देखा एक बुढिया पैक करनेवाले बाक्स की चार पहियेवाली गाडी पर एक बुड्ढे को खीचती लिये जा रही थी। आँखे छलछला आयी। धीरे-धीरे आकृति गम्भीर हो गयी। एक निश्चय साथ-साथ आया। टाई, मोजा, पतलून, कोट, जूता जल्द-जल्द पहनकर, जेब देखकर, कैप लेकर बाहर निकला।

चार

सुरेश ने नीली को बुलाकर यामिनी बाबू से कहा, "हम लोग जाते है, जल्द काम है, तुम पैदल निरू को लेकर आओ।" सुरेश मोटर ले गये।

निरुपमा समझकर एक बार लज्जित हो चम्पे के झाड की तरफ देखने लगी, यामिनी बाबू से भाव की आँख बचाने के लिए। यामिनी बाबू दिल से खुश हुए। आज उन्हे पहले-पहल निरू के साथ अकेले टहलने का लम्बा समय मिला है।

बराबर आकर निरू की उँगलियाँ, देखते हुए बोले, "खूबसूरत उँगलियो की चम्पे से उपमा दी जाती है।"

"हूँ" उसी वक्त मुँह फेरकर निरू ने कहा, "देह के रग से भी, पर मुझे बडे चमगादड के पजे-सा लगता है।"

यामिनी बाबू का आधुनिक शृंगार खिल गया। उपमा सोचकर हँसे, मजाक से आया शृगार का पूरा मजा लेकर पूछा, "अच्छा, बँगला मे किसकी कविता तुम्हे अच्छी लगती है—रवि बाबू की ?"

"नही," निरुपमा चलती हुई चम्पे की एक पत्ती खोटकर बोली, "गोपाल भाँड की।"

इस बार यामिनी बाबू को एक धक्का लगा। वे सच्चे कवि-प्रेमी हो रहे थे, निरुपमा हास्यप्रिया; गोपाल भाँड के भाव से उन्हे पराभव मिला; पर फिर भी निर्मल हृदय के निकले व्यग से भीतर-ही-भीतर एक आनन्द का उद्रेक हुआ जो स्त्री-पुरुषवाले भेदात्मक प्रेम को अभेद मैत्री मे बदल देता है। परन्तु यामिनी बाबू प्यासे मनुष्य थे—पानी चाहते थे—स्थूल कर से लेकर पीना, शान्ति नही जो

अपने सूक्ष्म स्पर्श मे तृष्णा को बुझा देती है, बोले, "हम जिस सम्बन्ध से बँधने जा रहे हैं, तुम्हे मालूम हो ही चुका होगा, उस पवित्र सम्बन्ध से मुझे पूर्ण आशा है कि हम सुखी होगे . दिवस और रात्रि के प्रकाश और अन्धकार के प्रवाह मे हमारे जीवन के खुले हुए फूल मुक्त भाव से बहते हुए ससार की परिधि को पार कर जायँगे ।"

निरुपमा को जैसे किसी ने गुदगुदा दिया। देर तक अपने को रोके रही। सँभलकर भी उत्तर न दे सकी। चलती गयी।

मौन को सम्मति-लक्षण समझकर यामिनी बाबू ने कहा, "अब समय अधिक नही और खर्च कुछ अधिक करने का विचार है। एक दफा कानपुर जाना होगा। रेहन की एक सम्पत्ति है। हालाँकि करार की मियाद पूरी हो चुकी है; पर रजिस्ट्री की अभी है, उसका फैसला हो जाय तो रुपये काफी हाथ आ जायँ।"

बिलकुल मौन रहना निरू को अनुचित जान पडा, पूछा, "कैसी सम्पत्ति ?"

निरू बगीचे से बाहर निकली घर चलने के लिए। साथ चलते हुए यामिनी बाबू बोले, "एक हिन्दुस्तानी की है। दो मकान है। बाबा (पिता) ने रेहन रक्खे थे। अब उनके न रहने से सारा भार मुझ पर है। कालेज की छुट्टियो मे एक बार हो आऊँगा ! मुख्तार को समझा दूँगा।"

"मकरूज रुपयो का इन्तजाम कर भी सकता है दूसरी जगह से।" निरू सडक के सीधे देखती हुई बोली। रास्ते से कुछ दूर एक चमन मे खिले अमलतास के रहे-सहे सुन्दर पीले फूलो को प्यार की दृष्टि से देखती हुई चलती गयी।

"अब उतनी गुन्जाइश नही, बाबा ने पहले ही हिसाब लगा लिया था।" मजाक के गले से यामिनी बाबू ने कहा, "मकरूज का भी देहान्त हो गया है। सुना है कि उसका लडका विलायत से डी. लिट् होकर आया है, मैंने देखा नही—उसके बाप को भी नही, मुमकिन—देखा हो, याद नही। मैं जिस जगह पर हूँ, इसके लिए एक डी लिट् ने कोशिश की थी। मुमकिन—वही हो।" यामिनी बाबू कुछ याद कर हँसे।

"आप उससे बडे विद्वान् साबित हुए।" स्वर को चढाव-उतार से रहित कर निरुपमा ने कहा।

यामिनी बाबू लजा गये। फिर सँभलकर बोले, "बात यह कि सिर्फ डी. लिट् होने से ही नही होता, और भी बहुत कुछ होना जरूरी है। मै अँगरेजी-साहित्य का पी-एच. डी. हूँ, पर इतना ही देखकर कोई क्या समझेगा ?"

"अगर पी-एच डी नही !"

"नही, मेरा मतलब यह है, मैं कहता हूँ—'सिर्फ पी-एच. डी. होने से क्या होता है' ?"

"कुछ नही !"

"नही, यानी बडी-से-बडी डिगरी भी आदमी को आदमी नही बना सकती, अगर वह दायरे से बाहर अलग-अलग विषयो का और भी ज्ञान नही प्राप्त करता। फिर एक कल्चर भी तो है ? मुझे डाक्टरी हासिल करने के अलावा और भी बहुत कुछ देखना-भालना पडा है—सभ्य जातियो की रहन-सहन की बातें—कितना

मिला-मिलाया। यह तो मानी हुई बात है कि भारतवर्ष मे बगालियो से बढकर कल्चर अपर प्रोविन्स के लोगो मे नही। हिन्दुस्तानी बेचारे लाख पी-एच. डी., डी.-लिट् हो जाये, कन्धे पर लिट् हो जायँ, कन्धे पर लाठी रखकर चलनेवाली वृत्ति कुछ-न-कुछ रहेगी।"

"यानी देखनेवालो को, हिन्दुस्तानी की पदवी की अपेक्षा कन्धे की लाठी ज्यादा साफ नजर आयी।"

यामिनी बाबू फँसे। तुला उत्तर न सूझा। बोले, "प्रोफेसर बनर्जी, चटर्जी, मुकर्जी सब अपने आदमी तो हैं? बैरिस्टर घोष भी अपने ही हैं। इनकी आवाज मे ताकत है। कुछ तअल्लुकेदार है, बुद्धू, इनकी हाँ-मे-हाँ मिलाया करते हैं। ये जानते हैं और ठीक भी है तुम्हे भी स्वीकार करना होगा, अभी बगालियो का मुकाबिला हिन्दुस्तानी नही कर सकते। एक हिन्दुस्तानी जितना पढकर समझता है, एक बगाली उससे ज्यादा सिर्फ देखकर।"

"मेरा ख्याल है, सिर्फ सुनकर।" निरुपमा कहकर गहरी मनोभूमि मे उतर गयी। यह भाव भी ठीक-ठीक यामिनी बाबू की समझ मे न आया, वे उसी सहृदयता से बोले, "हाँ, यह भी ठीक है, देहात मे बहुत-से बगाली हैं जिन्हे कलकत्ता देखने का अवसर नही मिला, पर सुनकर वे बहुत-सी बातें जानते हैं, उन्हे मौका भी है, जो जितना जानता है, वह उतना सुना भी सकता है, हिन्दुस्तानियो के पास तुलसीदास की रामायण के सिवा सुनाने की चीज है क्या? —इधर एक नौटकी चली है।"

धीरे-धीरे बगीचे से कैसर-बाग तक खुली जगह पार हो गयी। निरुपमा ने बातचीत करना बन्द कर दिया। समझकर यामिनी बाबू भी चुप हो रहे। रास्ता तय होता जा रहा था, पर हृदय चाहता था अभी और साथ हो—और बातचीत हो। प्रेयसी की विमुखता उनके लिए सुमुखता थी, क्योकि वे उसका अनुकूल अर्थ लगाते थे।

इसी समय रास्ते के एक बगल बैठा, कैप-कोटवाला एक चमार देख पडा। यामिनी बाबू बोले, "यह कुछ पढा-लिखा होगा, अगर चमार है तो समझना चाहिए, इसे जगह नही दी ऊँचे वर्णवालो ने, इसलिए कलम छोडकर अपना पेशा इख्तियार किया है। इसे पैसा देना चाहिए। अगर चमार नही, तो भी; क्योकि इसने एक आदर्श सामने रक्खा।" फिर बढते हुए चमार के सामने जाकर खडे हुए। निरुपमा को भी साथ चलना पडा। पर पास पहुँचकर देखकर जरा ठिठुक गयी, "चमार!" मन मे अव्यक्त ध्वनि हुई। कृपा की दृष्टि से देखते हुए उपकार करनेवाले स्वर ने यामिनी बाबू ने कहा, "36 ह्विवेट रोड पर आना घण्टे भर बाद, हम काम देंगे, अभी यही पेशगी देते है," एक इकन्नी फेकते हुए, "तुम कौन हो?"

"इस वक्त तो चमार हूँ," इकन्नी वापस करते हुए कुमार ने कहा, "मैं घण्टे-भर बाद वहाँ आऊँगा, तब काम करके पैसे लूँगा, मैं आपकी कृपा के लिए हृदय से कृतज्ञ हूँ।"

"तो तुम चमार नही हो, अच्छा, वही तुमसे पूछेंगे।" यामिनी बाबू मण्डी

की तरफ मुडे ।

कुमार के पास बहुत-से आदमी आये और आते रहे। भीड लगती बढती रही। लोगो मे उत्सुकता, आनन्द, सहानुभूति फैली। वह बादामी और काली पालिश की दो डिबिया और एक ब्रश लिये बैठा था। कई जोडे पालिश करने को मिले। सबसे एक-ही-एक पैसा उसने लिया। उसकी भलमसाहत का यह दूसरा प्रमाण था। शहर मे सनसनी फैल चली। चमार इधर-उधर जो थे, चौकन्ने हुए, व दो पैसे से कम नही और एक आने तक पालिश करायी लेते थे।

कुछ पहचान के लोग भी रास्ते से होकर गुजरे। 'सस्ता साहित्य समुद्र' के प्रकाशक लाला श्यामनारायण लाल देखकर कह गये, "हम चार रुपये फार्म दे रहे थे मोपासा के अनुवाद के, वह आपको नही मजूर हुआ; आखिर पालिश और ब्रश लेकर बैठे।"

पं रामखेलावनसिंह मुँह बिगाडकर बोले, "सात रुपये घण्टे की पढाई लगवा रहे थे नही भायी, अब चमार बनकर पुरखो को तारो।" फिर फिरकर नही देखा, कितने स्वगत कह गये।

घण्टे-भर बाद कुमार उठा। पास छ आने पैसे आ गये थे। मन प्रसन्न था, ससार मे कोई मार नही सकता, रोटियाँ चल जायेगी। अगर इसी कार्य को महत्त्व देने के लिए अदृष्ट-चक्र से घूमता हुआ बहुभाषाविद् और लण्डन-विश्व-विद्यालय का डी लिट् होकर वह आया है, तो इसे श्रद्धापूर्वक स्वीकार करता है। उसका विद्या-प्राप्तिवाला उद्देश्य सफल है, अर्थ-प्राप्तिवाला यदि इस रूप मे, विद्यावाले को दिखावे के तौर पर लेकर हो रहा है तो हो, वह कटाक्ष नही करता, बल्कि इस कार्य को घृणा करनेवाली ऊँचे वर्ण की दृष्टि से वह घृणा करता है। सम्भव है, शिक्षा वैसा कार्य-सहयोग देकर भारत को सच्चे वर्ण-निर्माण की शिक्षा दे रही हो, सोचकर वह चला।

उसी गाडीवाले बरामदे के नीचे कई और बगाली एकत्र थे। जब वह फाटक से भीतर गया और उसकी ओर कौतुकपूर्ण प्रश्नभरी दृष्टियाँ उठी, वह समझ गया कि इससे पहले उसके सम्बन्ध मे काफी बातचीत हो चुकी है। मोटर की बगल से निकलकर एक पैर बरामदे की सीढी पर चढाकर यामिनी बाबू से काम देने के लिए उसने कहा। तब तक एक बगाली सज्जन ने पूछा, "आप कहाँ रहता है?"

"एक गाँव रामपुर है।"

"रामपुर?" सुरेश बाबू ने पूछा। सामने के दिवानखाने मे निरुपमा थी। दरवाजे के पास आ गयी।

"जी," निगाह नीची किये हुए कुमार ने कहा।

"कौन रामपुर?" सुरेश बाबू ने देखते हुए पूछा।

"जिला उन्नाव मे एक मौजा है।"

"अच्छा।" सुरेश और निरुपमा की हँसती हुई दृष्टि एक साथ मिल गयी, एक ही भाव से जैसे।

"रामपुर मे आप किसके घर के है?" सुरेश बाबू ने पूछा।

"मिश्रो के यहाँ का।"

"आप ब्राह्मण है ?" एक बगाली सज्जन ने पूछा।

"जी।"

प्रसन्न होकर सब बगाली हँसे।

"आपके पूज्य पिताजी का शुभ नाम ?" सुरेश बाबू ने पूछा मन मे निश्चय किये हुए।

"प. गिरिजाशकर मिश्र।"

"आपने—माफ कीजिएगा—कहाँ तक शिक्षा प्राप्त की है ?" एक बगाली सज्जन की ध्वनि मे भाव का आवेश स्पष्ट हो रहा था।

कुमार हँसा प्रश्न की सदाशयता समझकर। सयत स्वर मे कहा, "मैं लण्डन का डी लिट् हूँ।"

निरुपमा बिलकुल सामने आ गयी। ऐसी दृष्टि मे देखने लगी जैसे वहाँ कोई न हो।

"आपका शुभ नाम ?" उस बगाली ने पूछा।

"मुझे कृष्णकुमार कहते है। आप अधिक समय न ले; बडी कृपा होगी अगर मेरा काम मुझे दें।"

यामिनी बाबू गहरे भाव मे डूबे हुए। कितने विषय, कितनी बातें आयी-गयी। यह वही व्यक्ति है। अभी-अभी इसकी चर्चा हो चुकी है।

भाव बदला। निरुपमा को देखा, फिर कुमार को नही समझ सके कि होटल-वाला यही आदमी है। तब अच्छी तरह देखा न था। जेब से एक रुपया निकालकर बढाते हुए अँगरेजी मे बोले, "लो, हम तुमसे जूते पालिश करवाना अपना अपमान समझते है। तुमने बडे साहस का काम किया है। यह हमारी सहायता, हमे आशा है, स्वीकार करोगे।"

कुमार ने उसी तरह उत्तर दिया, "आपको धन्यवाद देता हूँ, मैं इस तरह की सहायता नही चाहता, क्षमा करेगे। आप शिक्षित हैं, आपको शिक्षा देना व्यर्थ है, इतने से आप अच्छी तरह समझ लेगे। अच्छा, आप सब सज्जनो को धन्यवाद।" फिर कृतज्ञ दृष्टि से एक बार निरुपमा को देखकर, धीरे-धीरे फाटक के बाहर आया।

यामिनी बाबू निरू को देखते हुए सुरेश से बोले, "इसी के दो मकान कानपुर मे हमारे रेहन हैं। इसके बाप ने बाबा के पास रक्खे थे, इसके खर्च के लिए शायद, और जो काम रहा हो।"

निरुपमा को दिखाकर सुरेश बोले, "इसकी जमीदारी थी रामपुर सोलहो आने।"

पाँच

नीली मार खाकर जिस तरह निरुपमा से नाराज हुई थी, अनादृत होकर उसी तरह यामिनी वावू से हुई। वह शारीरिक शक्ति मे दीदी या यामिनी वावू से कम है, पर वदला चुकाने की शक्ति मे नही। जिस समय चमारके रूप से कुमार गया था और उसमे उत्तरोत्तर वढते परिचय से लोगो मे आश्चर्य और श्रद्धा वढ रही थी, उस समय विना व्यक्तित्व और विना विशेषता की समझी गयी नीली भी एक वगल खडी हुई सवकुछ देख-सुन रही थी। उसे अपने प्रति होनेवाली अवज्ञा की परवा न थी, कारण, उसने निश्चय कर लिया था कि ऊँचाई, शक्ति और विद्या जैसी कुछ ही वातो मे वह दूसरो से छोटी है,—जव वह उनकी ऊँचाई तक पहुँच जायगी, तव वैसी हो जायगी, यो दूसरो की तरह वह भी सव वाते समझ लेती है। कुमार के चले जाने के वाद देर तक उसके सम्वन्ध मे वातें होती रही, वह सव समझी।

वहाँ कई और वगाली युवक थे। उन लोगो ने कुमार के विद्वान होने पर भी, जूता पालिश करने का पेशा इख्तियार करने की तारीफें की। पहले देर तक वहस हो चुकी थी कि देश गिरा हुआ है, गुलामो की कोई जाति नही, फिर भी जातीय ऊँचाई का अभिमान लोगो की नस-नस मे भरा हुआ है, इसमे मानसिक और चारित्रिक पतन होता है, हम लोगो के एक दूसरे मे न मिल सकने, इस तरह जोरदार न हो पाने का यह मुख्य कारण है। इतने वडे विद्वान् का निस्सकोच भाव से यह कार्य इख्तियार करना महत्त्व रखता है। इससे लोगो की आँखें खुलेंगी, उन्हे ठीक-ठीक मार्ग सूझेगा। यो योरप विद्यार्थी जाते ही रहते है, या तो वहाँ विगड जाते है, या मेम लेकर, नही तो पदवी के साथ काले रग के गोरे होकर आते है, अपनी सस्कृति के पक्के दुशमन वनकर। योरप की चारित्रिक शिक्षा यही है जो इसमे देखने को मिली कि गर्व का नाम नही, अपने काम से काम, हृदय से इस काम को छोटा नही समझता। वडी देर तक सोचते रहकर यामिनी वावू ने कहा—परिस्थिति मजवूर करती है तव वुरे-भले का ज्ञान नही रहता, जो काम सामने आता है, इन्सान इख्तियार करता है, क्योकि पेटवाली मार सवसे वडी मार है। दीवानखाने मे वैठी हुई निरुपमा सुन रही थी। यामिनी वावू के विकृत-स्वर से मुँह वनाकर उठकर ऊपर चली गयी, हृदय से दूसरे युवको की आलोचना का समर्थन करती हुई। नीली वातें भी सुन रही थी और वातें करनेवालो का वोलते वक्त मुँह भी देख रही थी।

कुमार के लिए नीली के भी मन मे सहानुभूति पैदा हुई। उस आलोचना के फलस्वरूप उसने निश्चय कर लिया कि यह अच्छा आदमी है और हर एक शका का समाधान इससे निस्सन्देह होकर किया जा सकता है। कभी-कभी वह होटल जाया करती थी; मैनेजर उसे स्नेह करते थे। दुपहर के भोजन के वाद जव घरवाले आराम करने लगे, होटल चलकर कुमार से स्नेह प्राप्त करने के लिए नीली चचल हो उठी। मिलने की कल्पना से हृदय मे वाल-चापल्य पैदा हुआ, जिससे उसे

एक प्रकार का सुखानुभव होता रहा। इधर-उधर देखकर घर के लोगो की आँख वचा त्वरित-पद होटल आयी। ठीक सामने मैनेजर का कमरा था। एक दृष्टि से मैनेजर को देखा। मैनेजर के मुख पर कुछ ऐसी गम्भीरता थी कि नीली की सस्नेह आलापवाली इच्छा दव गयी। उसे कुछ भय-सा लगने लगा। तव तक होटल का नौकर रामचरण आया और वोला, "वावू, अभी नही तनख्वाह देना चाहते तो दस दिन वाद दीजिए। मैं अपने भाई के पास जाता हूँ, पर कुमार वावू के वासन अव हम नही छू सकते, हमे रोटी पड जायेगी।" कहकर चलने लगा। इसका साफ मतलव नीली समझ गयी। एक कुर्सी पर वैठ गयी और उसी तरह कभी मैनेजर साहव और कभी नौकर का मुँह देखने लगी।

डाँटकर मैनेजर साहव ने रामचरण को वुलाया, फिर ऊपर नारायण वावू और जगदीश वावू को वुला लाने के लिए कहा।

यह होटल नाम मे जितना भडकीला है, भोजन मे उतना सुघर और प्रचुराशय नहीं। नाम के नीचे छोटे अक्षरो मे लिखा हुआ है—'वैष्णव भोजन।' होटल मे जो कहार है वे भोजन से भी वढकर वैष्णव है, यानी आचार-शास्त्र का यथा-नियम पालन करनेवाले। उन्हे तरक्की की भी प्रचुर आशा है, क्योंकि भगवानदीन अहिर अव ठाकुर वन गया है और किसी का छुआ भोजन नही करता। उनके मनोभाव की यहाँ पुष्टि होती है। यहाँ ज्यादातर दफ्तरो के वे वावू रहते है जो सरकार को कलियुग की प्रतिष्ठा वढानेवाली प्रधान शक्ति मानते है और उसकी या उसके रग मे रँगी अन्य आफिसो की नौकरी आर्थिक विवशता के कारण करते है, पर वे हृदय से पूर्ण रूप से प्राचीन सनातन-धर्म के रक्षक है। उनके विचार मे 'यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत' का पूरा चित्र इस समय भारत मे देख पडता है, और श्री भगवान् के अवतार मे अव क्यो देर हो रही है—यह उनकी समझ मे नही आता।

नारायण वावू और जगदीश वावू को रामचरण वुला लाया। इतवार को भी आराम नही मिल रहा, वे नासिका कुचित किये हुए सोचते-से आकर कुर्सी पर वैठ गये।

मैनेजर साहव ने कहा, "तो क्या कुमार वावू को जाने के लिए कह दूँ ?"

"यह हम कैसे कहे ?" नारायण वावू ने कहा, "पर यह जरूर है कि उनके रहने पर हम होटल छोड देंगे।"

जगदीश वावू ने कहा, "यह इंगलिस्तान नही। जैसा देश वैसा भेप। यहाँ तो इस तरह चमारो मे ही रहा जा सकता है। भाई, हमे सोना है, हम तो जाते है।"

"कुमार वावू को वुला ला," मैनेजर साहव ने रामचरण को आज्ञा दी।

कुमार वगल मे था। वातें सुन चुका था पहले की और इस समय की। कहा कि वाकी किराये का विल चुकाकर वह शाम को चला जायगा, इस समय उसे मैनेजर साहव की वात सुनने की फुर्सत नही।

कुमार की आवाज मैनेजर साहव के पास तक पहुँची। नीली खुश होकर उठी। आवाज मे खुश कर देने की वैसे ही लापरवाही थी। भीतर से कमरे मे न जाकर वाहर के वरामदे मे टहलने लगी। वाहर से भी भीतर जाने का दरवाजा है। पर

विना परिचय के जाय कैसे ? मैनेजर से पूछ-ताछ कर कोई सूरत निकालती, पर उसकी जगह न रही। "मैनेजर कैसा आदमी है—इसे अक्ल नही,—होटलवाले गधे है।"

नीली वरामदे मे टहलती रही, कुमार के झरोखे के पास इच्छापूर्वक धीरे-धीरे कि वह टोके, स्नेह करे नव वातचीत हो। उसे कुमार जैसा आदमी पसन्द है। होटलवालो को मालूम नही—कैसे आदमी से प्यार और कैसे से घृणा करनी चाहिए। जब कुमार ने नीली को गिन-गिनकर पैर रखते देखा, तव समझ गया कि सामनेवाले घर की लडकी है। वह उसके घर गया था, इसलिए उसे समझा देना चाहती है कि वह भी आयी हुई है और उसके प्रति उसकी सहानुभूति है।

वगला मे कुमार ने आवाज दी, "क्यो ?"

नीली खुश होकर आगे वढ गयी ! वहाँ से उसका मुँह न देख पडता था। उठकर कुमार ने दरवाजा खोला, देखा। देखकर लजाकर नीली दूसरी तरफ देखने लगी। टोकने से लडकियाँ अक्सर भग जाती हैं। नीली भगी नही। कुमार की इच्छा हुई, उसे बुलाकर वैठाये और उससे वाते करे। इधर दुपहर-भर धर्म और नीति की वहस सुनते-सुनते परेशान हो रहा था। कहा, "एक तस्वीर मेरे पास है। वहुत अच्छी है। आओ तुम्हे दूँ।"

एक दफा सारी देह हिलाकर नीली ने "नही-नही" की, फिर धीरे-धीरे कमरे मे गयी। कुमार वगला वोला। वह साफ वगला वोल सकता है। यह एक नया आविष्कार नीली ने किया, और पहले उसके मन मे जितना सामीप्य कुमार का था, अव और हो गया।

वडे आदर से कुमार ने कुर्सी पर वैठने के लिए कहा, फिर अग्रेजी मैगजीन से एक तस्वीर फाडकर दी। नीली तस्वीर देखती हुई खुश होकर कुमार से वोली, "आप तो हिन्दुस्तानी हैं।" नीली की साफ हिन्दी कुमार को वडी अच्छी लगी।

पूछा, "और तुम ?"

"वगाली।" नीली गम्भीर हो गयी। फिर तस्वीर देखने लगी।

हम हिन्दुस्तानियो से वडे हैं, यह भाव इस जरा-सी लडकी मे भी वद्धमूल है, कुमार ने सोचा, फिर हँसकर पूछा, "तुम कहाँ पैदा हुई ?"

अपना मकान दिखाकर नीली वोली, "वहाँ।"

"तो वह वँगला है ? तव तो तुम भी हिन्दुस्तानी हो।"

नीली ने लजाकर सर हिलाया।

कुमार वगला मे वोला, "हम वगाली है, तुम हिन्दुस्तानी हो।"

नीली वगला मे वोली, "आप हिन्दुस्तानी है। मै जानती हूँ।"

"मेरी जन्मभूमि कलकत्ता है, फिर मैं हिन्दुस्तानी कैसे हूँ ?"

"तुम कहाँ रहते हो ?"

"ढाका।"

कुमार जोर से हँसा और वगला का पूर्ववगवालो पर मजाक वनाया एक पद्य कहा। पद्य वहुत मशहूर है। नीली भी जानती थी चूँकि वह पूर्ववग की थी, इसलिए उसका उत्तर भी उसने रट रक्खा था जो पूर्ववगवालो का वनाया हुआ था

—सुना दिया। फिर वोली, "दीदी कलकत्ते की है।"

कुमार ने नीली के मकान मे जूते पालिश करने के लिए जाकर भी निरुपमा को देखा था। समझ गया, पर उस पर कोई वातचीत न की, कहा, "तुम लोग ढाके के वगाली वनो, इससे तो वेहतर है कि लखनऊ के हिन्दुस्तानी रहो। वगाली हम हैं।"

"हूँ," कुमार के गर्व के स्वर पर अवज्ञापूर्ण ध्वनि करके नीली ने कहा, "आप तो रामपुर मे रहते है। रामपुर दीदी की जमीदारी है।"

कुमार खूव खुलकर हँसा, कहा, "तुम्हारी दीदी तो वहुत वडी जमीदार हैं! तीन घर का गाँव है और कुल नौ खेत वाकी सव ऊसर!"

"और भी तो गाँव है।" नीली कुमार को एकटक देखती हुई वोली।

"तुम्हारी दीदी वहुत वडी जमीदार हैं। शादी हो जायगी तब जमीदारी रक्खी रहेगी, तव तुम जमीदार होगी।"

"नही आप समझे? कहा तो दीदी कलकत्ते की है, हम ढाका के।"

"हाँ हाँ, गलती हो गयी। तुम्हारी दीदी कलकत्ते से यहाँ कैसे आकर जमीदार वन गयी?"

"आपके गाँव के कौन जमीदार है?"

"वे तो रामलोचन वावू हैं।"

"है नही, थे। उनका देहान्त हो गया तीन साल हुए। अव दीदी जमीदार है। काम सव दादा करते हैं।" नीली मन-ही-मन सोच रही थी, दीदी इन्हे प्यार करती है, ये भी दीदी को प्यार करे।

"तो तुम्हारी दीदी की जिससे शादी होगी, वह तो रातोरात मालदार हो जायगा।"

"हाँ," कहकर नीली खिलखिला दी, कहा, "यामिनी वावू से होगी।"

यामिनी वावू का नाम कुमार को याद था। पूछा, "कौन यामिनी वावू?"

"वह जो यूनिवर्सिटी मे अभी लेक्चरर हुए है।"

कुमार चुप हो गया। फिर जल्दी ही स्वस्थ होकर पूछा, "तुम्हारा नाम?"

"श्री नीलिमा देवी।"

कहने के सभ्य ढग पर कुमार हँसा। फिर पूछा, "और हमारे गाँव की जमीदार तुम्हारी दीदी का नाम?"

नीली मुस्किराकर वोली, "श्री निरुपमा देवी।"

कुमार कुछ सोचता हुआ-सा उठा, कमरे के वाहर होटल की घडी लगी हुई थी, देखने के लिए। लौटा तो नीली ने पूछा, "अच्छा, एक ग्राउण्ड की घास दो घोडे दो दिन मे चरते हैं तो एक घोडा कितने दिन मे चरेगा?"

"चार दिन मे। क्यो? मेरा इम्तहान हो रहा है?"

"नही। आप तो आज चले जायेंगे?"

"तुम्हे कैसे मालूम हुआ?"

"आप जव कह रहे थे तव मैं वहाँ वैठी थी। अव कहाँ जायेंगे?"

"कुछ ठीक नही। तुम्हारी दीदी की इतनी जमीदारी है, कही जगह दिला दो।"

नीली उठी और तस्वीर लिये दौडती हुई जैसे कुछ लक्ष्य कर, घर चली गयी।

दीदी के कमरे मे जाकर देखा, वह अँगरेजी का एक उपन्यास पढ रही थी। नीली को अपनी गलती मालूम होते ही दीदी के प्रति हुआ वैमनस्य दूर हो गया। वगल मे वैठकर वोली, "कुमार वावू ने मोची का काम किया है, इसलिए होटल-वाले उन्हे होटल मे नही रख रहे। वह आज कही चले जायेंगे। वडी अच्छी वगला वोलते हैं।"

निरुपमा सचिन्त आँखो से सोचती रही। किताव एक वगल रक्खी रही।

छह

सुरेश के पिता योगेश वावू पचपन पार कर चुके हे। गृहस्थी के झझटो से फुर्सत पा घर रहकर योग-साधन किया करते है। ध्यान सदा सुरेश पर रहता हे कि नव-युवक गृहयुद्ध के दाँवपेच भूलकर सहानुभूति मे कही वहक न जाय। कर्म द्वारा जो सम्पत्ति अर्जित की है, अव ज्ञान द्वारा उसकी वृद्धि मे रहते है। सुरेश पिता का आज्ञाकारी पुत्र हे। यद्यपि उसमे वीसवी सदी की सस्कृति-रूप दुर्वलता है, फिर भी वह पिता की कृपा और अपने कर्तव्य की दिन भर मे कई वार याद करता है। इसका ससार-सुख-फल वह प्रत्यक्ष भी करता जा रहा है और इसी से होनेवाली देवताओ की पूजाएँ।

निरुपमा योगेश वावू की सगी भानजी है। उनके वहनोई, वावू रामलोचन के पिता प्रयाग मे कार्यवश आकर रहे थे। रहनेवाले कलकत्ते के थे। रामलोचन की शिक्षा-दीक्षा प्रयाग मे हुई, फिर लखनऊ मे योगेश वावू की वहन से व्याह। क्रमशः सासारिक सघात मे उभडते हुए रामलोचन वावू युक्तप्रान्त की एक अच्छी स्टेट के मैनेजर हो गये। दीर्घकाल तक इस पद पर रहे और यथेष्ट धन-अर्जन किया। जमीदारी मे रहता हुआ आदमी जमीदारी ही पसन्द करता है। उपार्जित अर्थ का व्यय वावू रामलोचन ने मौजे ख़रीदने मे किया। मुसल्लम रामपुर और अवध के तीन और मौजो मे कुछ-कुछ हिस्सा खरीदा। कुल मिलाकर वारह हजार की निकासी थी। प्रयाग मे पहले से उनका अपना मकान था। लखनऊ मे भी कई अच्छे वँगले वनवाये। सन्तान केवल निरुपमा थी। इधर मैनेजरी से अवसर ग्रहण कर चुके थे। उनकी मृत्यु से एक साल पहले उनकी पत्नी की मृत्यु हो चुकी थी। औरो की तरह उनका भी ससुराल-पक्ष प्रवल था। ससुरालवालो का ही विश्वास करते थे। कभी-कभी कलकत्ता जाया करते थे। उनके भय्याचार वहाँ थे, पर उन पर विश्वास न था। दैवयोग, पत्नी के मरने के छ महीने वाद खुद भी वीमार पडे। छ महीने तक इलाज होता रहा, पर कुछ फल न हुआ। एक दिन निरुपमा को

योगेश के हाथ सौंपकर उन्होने सदा के लिए आँखें मूँद ली। उस समय निरू सोलह साल की थी।

एक शादी की बातचीत पहले निरू की माँ के समय हुई थी, उन्होने सुधार का इतना ही अर्थ समझा था कि कन्या बालपन पार कर जाय तब उसका ब्याह हो जाना चाहिए, पर उसकी मृत्यु से वह शादी रुक गयी, दोष माना गया, फिर निरू के पिता का भी देहान्त हो गया। योगेश बाबू विचारो मे यद्यपि सनातनधर्मी थे, फिर भी निरू के विवाह-विषय मे ब्राह्म-समाजी बन गये। कहा, आजकल बीस साल से पहले का ब्याह, ब्याह मे ही शुमार करने योग्य नही। भीतरी उद्देश उनका और था, जिसका पता उनके अलावा उनकी पत्नी को भी नही लगा। बात यह थी कि रामलोचन की बीमारी मे उन्होने पचास हजार का खर्च तैयार किया था। उनकी मृत्यु के बाद, उनकी जमीदारी तथा मकान-किराये की आमदनी उसी खर्चवाले कर्ज मे ब्याज के साथ काटते जाते थे, वह भी इस त ह कि बीस रुपये महीने के मुख्तारआ'म की जगह सुरेश का मासिक वेतन दो सौ अलग करके, और घर के खर्च और मुआमलो-मुकद्दमो जो तीन के तेरह करते थे, वह अलग। इस रूप मे व्याज निकालकर तीन साल मे सिर्फ दस हजार रुपये असल मे कटे थे। बाकी जिन्स-असबाब निरू के घर से उनके घर पहुँचकर कम अशो मे निरू के रह गये थे। गहने अपनी अस्लियत खो बैठे थे, उनकी जगह उन्ही की तरह हल्के दूसरे बनकर आ गये थे। निरू को यह कुछ मालूम न था। इस सबके सम्बन्ध मे उसे ज्ञान भी बहुत थोडा था। योगेश बाबू के पास इन सबका सच्चा चिट्ठा तैयार था। वे कभी-कभी निरू को सुनाकर कहते थे, "तुम्हारे पिता ने सिर्फ एक जमीदारी पक्की खरीदी है।" निरू हँस देती। व्यग्य और अन्योक्ति का इतना पता उसे न था। उसका आदर यथेष्ट था, वह काफी समझदार हो चुकी थी। जब उसकी माता और पिता स्वर्गवासी हुए, उसे जोरदार धक्का लगा। पर मामा-मामी और वहाँ के भाई-बहनो के स्नेह मे अब वह भूलता जा रहा है। इधर कुछ दिनो से, काफी समझदार होकर वह ऐसा अनुभव कर रही है कि उस गृह के वायुमण्डल मे उसे स्नेह देकर तृप्त कर देनेवाला कुछ भी नही है, वहाँ एक अभाव जैसे सदा ही बना रहता है। जब से विवाह की बात उठी, यामिनी बाबू की आमद-रफ्त बढी, यह अभाव तीव्रता प्राप्त करता गया, जैसे दूर तक विचार करने पर भी सुख का कोई चिह्न स्पष्ट नही देख पडता। वह केवल गुरुजनो, समाज के अदब-कायदो, विरासत मे मिली वहाँ की सस्कृति का अनुसरण करती जा रही थी। क्यो सस्कृति हृदय को सस्कृत नही करती—उसके प्रकाश से आयी दिव्य अनुभूति प्राणो को समुद्भासित नही करती, उसकी समझ मे नही आता। पर उसका अपना कोई भी निश्चय नही। वह जैसे वही की, उन्ही की इच्छा पर निर्भर उन्ही के सुख से सुखी है।

यामिनी बाबू योगेश बाबू की साली की ननद के लडके हैं। बडी छानबीन के बाद उनका पता लगाया गया है। सम्पन्न है, निरू के जैसे नही। कानपुर मे उनके बाबा जज थे, पिता वकील। योगेश बाबू ने इन्हे मुलाहजेदार समझकर निरू के विवाह की बातचीत की थी। यद्यपि कन्या के देखने भर की स्वतन्त्रता बगाल

मे दी जाती है, फिर भी इनके विलायती भाव को ताडकर एक दिन सुरेश से उन्होने इशारे मे यह बातचीत की—परमहस रामकृष्णदेव की तपोभूमि दक्षिणेश्वर आजकल बगालियो के कोर्टशिप की जगह हो रही है—दर्शन का बहाना भर रहता है—और अब उतनी बन्दिश चल भी नही सकती। सुरेश पिता के इगितो का समझदार हो गया था। कवायद शुरू कर दी। योगेश बाबू का मतलब था, निरू सुन्दरी है, यह विलायती बेवकूफ जरूर फँसेगा। जब समझ मे आ जाय कि गिरह लग गयी, तब इसे कर्जवाला मुआमला समझकर निरू से पक्की लिखा-पढी करा ली जाय। इस तरह सामाजिक कलक न लगेगा, और बनाव न बिगड़ा तो लिखा-पढी के बाद भी, इस समय जैसे सुरेश के लिए आमदनी का जरिया रहेगा। रामलोचन का रुपया जमीदारी खरीदने और बँगले बनवाने मे खर्च हुआ, यह साफ है। आमदनी वे घूमने-फिरने और और अनेक मदो मे खर्च कर चुके थे।

योगेश बाबू दुमजिले पर अपने कमरे मे बैठे हुए थे। नौकर ने यामिनी बाबू के आने का सवाद दिया। योगेश बाबू ने बुला लाने की आज्ञा दी।

यामिनी बाबू ने बडे भक्ति-भाव से प्रणाम किया। अभ्यस्त स्नेह के स्वर से योगेश बाबू ने आदर दिया, "आओ, आओ, बेटा, बैठो।" सामने की कुर्सी पर नम्रतापूर्वक यामिनी बाबू बैठ गये। योगेश बाबू पहले की तरह गम्भीर हो रहे।

कुछ देर बाद यामिनी बाबू बोले, "मैं कुछ दिनो के लिए कानपुर जा रहा हूँ।"

"मिलने के लिए ?" स्नेह के स्वर से कहकर मुस्किराकर वृद्ध ने फर्शी की नली सँभाली।

"जी नही।" साग्रह देखते हुए।

"तो ?—गर्मी की छुट्टियो मे यही क्यो न रहो ?—खस की टट्टियो का आराम। मैं इसीलिए पहाड नही जाता—व्यर्थ खर्च !" सर झुकाकर एक बगल देखने लगे।

"जी, यही रहूँगा।" भक्त की दृष्टि से ताकते हुए।

"हाँ, मैंने सुना है, निरू भी यही चाहती है। उसी ने कहा है शायद तुमसे ?" पूरी प्रसन्नता से मुँह देखते हुए।

लजाकर—"जी, और काम है।"

"कहने लायक हो तो कहो।"

"इसीलिए आया हूँ। रुपयो की जल्द आवश्यकता होगी।—एक रेहन की सम्पत्ति है।"

"कानपुर मे ?"

"जी, कोई ले तो रजिस्ट्री बेच दूँगा या करार की मियाद पूरी हो चुकी है, दावा कर दूँगा।"

"कैसी सम्पत्ति है ?" योगेश बाबू अच्छी तरह पल्थी मारकर तनकर बैठे।

यामिनी बाबू ने सारा हाल कहा। फिर यह भी बताया कि उन्होने सुना है, वह रामपुर का रहनेवाला है। कुमार का हाल कहकर नम्रता से मुस्कराये।

"हूँ," योगेश बाबू ने समझ की साँस छोडी। फिर कुछ देर तक यामिनी बाबू

को देखते रहे। फिर अपने स्वभाव के अनुसार स्वस्थ होकर स्नेह के स्वर से बोले, "कहाँ प्रोफेसरी, कहाँ यह जहमत ?" कुछ रुककर, "तुम चाहो तो हम शक्ति भर तुम्हारी सहायता के लिए तैयार है।"

"जी हाँ, मैं तो इसीलिए आया था। बाबा हैं नही। सच्ची सलाह आप ही एक देनेवाले है और सहायक।"

योगेश बाबू हँसे। कहा, "जरा-सी अड़चन है, फिर कहेगे, आखिर निरु की सम्पत्ति तो तुम्हारी ही सम्पत्ति है ? अभी निरु के पास भी रुपया नहीं।" हँसकर, "बुढापे के सहारे के लिए कुछ कमा रखा था। तुम कहो तो सुरेश के नाम वह रजिस्ट्री खरीद ली जाय, या हम निरु को कर्ज दें, तुमसे निरु खरीद ले।"

"मकान मौके के हैं, अगर आप निरु को कर्ज देकर उसी के नाम रजिस्ट्री खरीद लें, तो बड़ी भारी कृपा हो।"

"अच्छा, अच्छा।" वृद्ध उसी प्रसन्नता से यामिनी बाबू को देखते रहे।

एक मिनट बाद प्रणाम कर यामिनी बाबू ने चलने की आज्ञा माँगी।

"अच्छा बेटा, चिन्ता न करना।" कहकर, यामिनी बाबू के मुड़ते वृद्ध ने घूरा।

सात

कमल निरुपमा की मित्र है। फर्स्ट आर्ट तक दोनो साथ थी, निरु ने छोड दिया, वह बी. ए. मे है। पिता ब्राह्म है, उसके भी विचार वैसे ही। बहुत अच्छा गाती है। मिलने आयी है।

"नमस्कार।" कमरे मे बैठते ही हाथ जोडकर कहा।

निरु बैठी थी, उठकर खडी हो गयी, हाथ जोडकर वैसे ही नमस्कार किया। चेहरा उतरा हुआ। सँभलने की कोशिश की; पर बहुत कुछ न सँभली। बैठने के लिए कुर्सी ठीक कर दी, "आओ बैठो" कहकर मुस्करायी, चिन्ता की रेखाएँ फिर भी खुली रह गयी।

कमल सयत होकर बैठ गयी, "भई, इस समय बैठने की इच्छा नही, तैयार हो लो, कुछ टहल आये।"

कमल के स्वर से स्नेह की प्रसन्नता निरु मे जगने लगी। उसे बैठे-बैठे अच्छा न लग रहा था। ग्रीन रूम की अभिनेत्री की तरह अलस बैठी रही, जिसका पार्ट देर मे आनेवाला है और जिसमे उसे अभिरुचि नही। उठकर हाथ-मुँह धोकर साडी बदलने गयी।

कमल स्वभाव से चतुर है। उसका अन्दाजा ठीक लडे, गलत, वह लडाती है। निरु सुन्दरी है, इसलिए उसके पास प्रेमपत्रो की कमी न होगी, उसने सोचा।

इसका आधार था। निरू को प्रेम-पत्र के कारण कालेज छोडना पडा था। राजनीति-शास्त्र के लेक्चरर डा भडककड निरू के बगलवाले मकान मे रहते है, नये-नये विलायत से आये हैं, उन्हे प्रेम के पवित्र सम्बन्ध मे किसी प्रकार की रुकावट मनुष्योचित नही मालूम देती—प्रेम पाप नहीं। उन्होने निरू को देखकर कालेज की छात्रा के ज्ञान मे बढी हुई मानकर, एक चिट्ठी लिखी, जिसमे अपनी सम्मति और विवाह की इच्छा प्रकट की थी। प्रेम के लच्छेदार शब्दो से पत्र सज्जित था। पढकर उत्तर लिखने का ढग निरू की समझ मे नही आया। उसने पत्र मामा के हाथ रक्खा। मामा ने निरू का कालेज जाना बन्द कर दिया। कमल के लिए यह कम मजाक न था। वह निरू की सरलता, दिव्यता पर तुष्ट थी। पर वह यही नही समझी कि मामा ने भडककड के पत्र मे निरू के प्रति व्यक्त हुए उसके प्रेम की अपेक्षा निरू की जमीदारी पर पडी उसकी दृष्टि को ज्यादा साफ देखा था, साथ-साथ यह भी सोचा था कि जो भक्ति मामा के प्रति उसकी है, उसकी रक्षा मामा के लिए पहले आवश्यक है।

कमल उठकर टेब्ल के ड्राअर खोलने लगी। बन्द कर सरहाने के तकिये का तला देखा। अन्दाज ठीक लड़ा। एक पत्र पडा था, निकालकर पढने लगी। नाम और पता देखकर मुस्किराकर, उसी तरह रख दिया और भलेमानस की तरह कुर्सी पर बैठकर प्रतीक्षा करने लगी।

निरू तैयार होकर आयी। "कहाँ चलना है ?" मुस्किराकर पूछा।

"कही नही, गोमती साइड तक, टहल आयें।"

"पर लौटकर गाना गाना होगा।"

"हाँ, हाँ, समय बडा अच्छा है !"

कहकर कमल हँसी। निरू सरल दृष्टि से देखती रही। आईने मे एक बार चेहरा देखकर कमल निरुपमा को लेकर बाहर निकली। देर तक कोई बातचीत नही हुई। सीधी निगाह रास्ता देखती हुई दोनो गोमती की तरफ चली। कैसरबाग पार हो गया, लोगो की भीड घट गयी, इक्के-दुक्के रह गये कभी-कभी आते हुए।

"आजकल तुम्हारे रोमास का क्या हाल है।" खुली हुई कमल ने पूछा।

"कैसा रोमास ?" निरू ने लजाकर मुस्किराकर पूछा।

"वही भडककडवाला।"

"भड, तुम्हे हमसे ज्यादा आजादी है। हमे बहुत वक्त, बहुत वक्त नही—अक्सर, घरवालो की मर्जी पर रहना पडता है।"

"अच्छा, तो इधर का कोई मर्जीवाला रोमास हो तो बतलाओ।"

निरुपमा मुस्किराकर कमल को देखने लगी।

"इसी तरह मुस्किराती देखती रहो यही मैं चाहती हूँ।" निरुपमा को मर्म तक गुदगुदाकर उभाडने के लिए कमल ने कहा, "अगर कोई प्रसग चल रहा है तो उससे तुम सुखी हो, इसके ये मानी हैं, यानी केवल तुम्हारे घरवालो की मर्जी नही।"

कमल की 'यानी' से निरुपमा को हँसी आ गयी; मजाक मे बनाकर पूछा, "अर्थात् ?"

और तेज होकर कमल बोली, "अर्थात् उनने तुम्हारे मामा नही शादी कर रहे।"

निरुपमा समझकर चुप हो गयी। कमल ने बनावटी क्रोध से कहा, "देखो, विवाह मजाक नही, एक जिन्दगी-भर का उत्तरदायित्व है—विना समझे, विना मन मिले"—सोचती हुई बोली—"तुम मेरी सखी हो, मुझसे छिपाना ठीक नही, मैं तुम्हारा उपकार कर सकती हूँ।" कहकर उत्तर की प्रत्याशा से कृत्रिम गम्भीर हो गयी। वह निरुपमा से उसके प्रेम और विवाह की कथा सुनकर सुखी होना चाहती थी और दुख मे साथ देना एक सच्ची सखी की तरह।

निरू को कष्ट होने लगा। वह विवाह मनोनुकूल नही, फिर भी वह कह नही सकती, कुमारवाला प्रसग, जिसका सत्य की प्रीति से आगमन हुआ था, वह किसी तरह नही कह सकती। समझ रही है—खुलकर अपने गौरव, प्रतिष्ठा और मर्यादा से, छाँह मे आनेवाले भरे घडे की तरह सूर्य के बिम्ब से रहित हो जायेगी। रुख न मिलाती हुई, सयत होकर बोली, "भइ हम लोगो की कोई अपनी मर्जी नही होती।"

"पर प्राणो की होती है।"—कमल का मजाक वाला भाव बदल गया। निरुपमा कुछ विचलित हुई, पर सँभल गयी। कमल कहती गयी, "तुम्हारी सस्कृति की छाप, तुम पर गहरी होती जा रही है और इसलिए अपने यहाँ की पर्दा-प्रथावाली देवियो को—जैसे तुम इस प्रसग को पर्दे मे रखना चाहती हो, पर यह अगर प्राणो पर पडता हुआ पर्दा है, तो निश्चय यह सदा के लिए पडा ही रह जायगा।"

"हाँ, यह तो है।" निरुपमा लजाकर बोली।

"यानी ?"

"यानी और क्या ? तुम ठीक कहती हो।" बदल गयी।

"निरू !" कमल स्नेह के आवेश मे आ गयी, "मैंने बाबा से बहुत तरह की बातें तुम्हारे और तुम्हारे मामा के सम्बन्ध मे सुनी हैं, पर तुमसे नही कही।"

निरुपमा जीती। हृदय को दबाकर, सँभली हुई, सखी के हृदय को खोल दिया। स्नेह से हाथ पकडकर कहा, "तो तुमने मुझसे छिपाया—यह स्नेह-व्यवहार न था।"

"हो न हो, पर आज इसीलिए मैं तुमसे मिलने आयी थी। यामिनी बाबू से तुम्हारा विवाह हो रहा है, यह लखनऊ भर के बगाली जानते है। मैंने एक चिट्ठी उनकी तुम्हारे तकिये के नीचे देखी है। पढी भी है। इसलिए जानना चाहती थी कि यह विवाह तुम कर रही हो, या तुम्हारे मामा कर रहे हैं।"

"इसीलिए मैं नही कह पा रही थी, भगवान् ने पुनरुक्ति से बचा लिया। मेरे कहने से पहले सबकुछ तो मालूम ही कर चुकी हो। मेरा जो कहना है, वह मैं कह चुकी हूँ। और, तुम जानती हो, क्लास की लडकियो के नाटक मे प्रेम की बातें सुनकर मैं हँसती थी। भडककड साहब को क्या सूझा, बैठे-बिठाये मेरा पढना बन्द कर दिया !"

कमल खुलकर हँसी, "उसे तो तुम अपना मनोभाव लिखकर भले आदमी की

तरह उत्तर दे सकती थी ! मामा को पत्र दिखाने की क्या बात थी ?"

"अब क्या बताऊँ, मेरी गलती ! उत्तर न भी देती।" निरुपमा शून्य दृष्टि से कुछ देर तक रेजीडेन्सी की ओर देखती रही, फिर कहा, "अच्छा, कौन-सी बाते तुमने अपने बाबा से सुनी हैं ?"

"तुम्हारे मामा पर बाबा विश्वास नही करते। उनका ख्याल है, तुम्हारी जमीदारी पर तुम्हारे मामा की मामूली निगाह नही।"

"पर मामा मेरी जमीदारी ले तो सकते नही।"

"जमीदारी की आमदनी तो ले सकते है। क्या तुम्हे मालूम है, तुम्हारी जमीदारी की कितनी आय है और तुम्हारे बाबा के देहान्त के बाद अब तक कितना रुपया तुम्हारे नाम जमा हुआ ?"

"निकासी वगैरह तो मालूम है, क्योकि बाबा के वक्त इसकी काफी बातचीत सुन चुकी हूँ। मामा काम सँभाले हुए हैं, कुछ कहने-सुनने की उन्होने कोई जरूरत न समझी होगी।" सीधे कहकर निरुपमा विचार मे पड गयी, जैसे यह एक बात ध्यान देने की हो।

अँधेरा अच्छी तरह नही हुआ। दोनो गोमती के किनारे-किनारे छतर-मजिल की सडक की तरफ से लौटी। एक खाली ताँगा आता हुआ देख पडा। निरुपमा ने हाथ उठाया। ताँगा खडा हो गया। "थक गयी हूँ।" कमल से बोली, "जल्द लौट चलें, अभी तुम्हारा गाना सुनना है, फिर जल्द-जल्द भेजवा देना है।"

"जल्द-जल्द भेजवा देना है, क्यो ?" बैठती हुई, कमल ने पूछा, "क्या यामिनी बाबू आनेवाले है ?" बगला मे बोली, ताँगेवाले के न समझने के निश्चय से।

"यामिनी बाबू से मैं घर मे नही, सिकन्दर-बाग मे मिलती हूँ।"

कमल जोर से हँसी। उसके गुप्तदान का फल मिला है। पूछा, "तो तुम खुश हो ?"

"मुझे खुश करने के लिए है, यह तो मानती हो ?"

"नही, सँभलकर खेलना है।"

"दादा मैच मेकर हैं।"

कमल सन्ध्या के पश्चिमाकाश की तरह रँग गयी। पूछा, "कैसे ?"

"मुझे बाग तक साथ ले जाकर छोड देते हैं।"

"फिर ?"

"फिर यामिनी बाबू प्रेम की कविता सुनाते है।"

"क्या कहते है ?"

"भइ, यह सब मुझसे न बनेगा। एक प्रेम का नाटक पढो न, पढ तो पचासो चुकी होगी, पार्ट भी कर चुकी हो।"

"तुम्हे लगता कैसा है ?"

"जैसे वहाँ की तरह-तरह की चिडियो की बोलियाँ सुनी, एक स्वर यामिनी बाबू का भी सुना।"

"तो इन्ही से विवाह का निश्चय है ?"

"सन्देह तो कही भी नही देखती।"
"अपने मन मे ?"
"वहाँ भी नही।"

आठ

निरू ने कमल को स्नेहपूर्वक विदा किया। कमल से वह कुछ खुल गयी, इसके लिए मन मे कुछ लज्जित हुई। पर, कमल उसकी हिताकाक्षिणी है, सोचकर आश्वस्त हुई।—ऐसी छोटी-छोटी वातो पर ध्यान देना ठीक नही, आखिर यह गीत हर वगाली के गले पर है—कैसी वेपर्दगी!—और वह पर्दा करती है। उसके समाज मे वर-पक्षी अच्छी तरह कन्या को देख सकता है, पर कन्या के लिए वह आजादी नही। विवाह जैसे केवल वर का हो रहा है, वर ही हर तरह वरेण्य है। यामिनी वावू उसके मनोनीत नही है, जिससे विवाह करना है। पर उसे मनोनीत कर विवाह करना है। वह यन्त्र की तरह है, स्वेच्छानुसार छेडकर राग मिलाये—यह सस्कृति।

उपाय के लिए सोचा, पर चारो ओर मामा नजर आये। मामा के लिए जैसा कहा जाता है, कमल जैसा कह गयी है, मुमकिन है। सच हो। उसे हृदय मे अस्वस्ति मिलती थी, यह वह मालूम कर चुकी है। यह भी देख चुकी है कि वैषयिक वातचीत, उसकी जमीदारी के सम्वन्ध की, अगर कुछ होती रहती थी और उस समय वहाँ वह जाती थी, तो वन्द हो जाती थी। उसे यह भी नही मालूम कि अव कितना रुपया जमा हुआ। उसे रुपये की भूख नही। जमीदारी थी, वह भी पिता की स्मृति के रूप न मिली होती तो वह न चाहती, और सत्य के मार्ग पर वह मामा और सुरेश दादा को सभी कुछ दे सकती है, पर इस तरह की कलुषित भावना लोगो मे क्यो फैली है?—अव वह स्वार्थ और परार्थ को अच्छी तरह समझने लगी है, उसकी जमीदारी मे, उसी की जवकि वह है, उसी की जहाँ रिआया है, स्वार्थ का वर्ताव प्रवल है या परार्थ का, वह नही जानती। परार्थ का वर्ताव किया जाय, तो अच्छी तरह किया जा सकता है, क्योकि उसका खर्च बहुत थोडा है। कृष्णकुमार का क्या हाल है! उसी की जमीदारी का रहनेवाला है। निरुपमा मे एक भेद पैदा हो गया। समस्त सात्विकता, जिसे असात्विक प्रभाव पडता हुआ आवृत कर रहा था, जैसे एक साथ जगकर केन्द्रीभूत हो विचार मे वदल गयी। उसे मालूम हुआ, घरवालो की आँखो मे जो वह किशोरी थी और अपने को भी वैसी ही समझती थी, वह भ्रम था, वह समय, बहुत समय हुआ, पार हो चुका है। वह राय रखती है।

सुवह उठकर हाथ-मुँह धोकर निरुपमा वैठी थी कि उसकी दासी ने आकर

कहा कि मामा वावू वुलाते हैं ।

निरुपमा उठकर मामा के पास चली । कमरे मे उनकी गद्दी की वगल मे वैठकर नत आँखो से पूछा .

"माँ आ गयी ?" योगेश वावू एक हिसाव देख रहे थे, निगाह उठाकर कहा, "वैठो काम है, अभी कहता हूँ ।" फिर हिसाव देखने लगे ।

निरू चुपचाप वैठ गयी । कुछ देर मे योगेश वावू निवृत्त हो गये । स्नेह की दृष्टि से नत निरू को देखते रहे । फिर कहा, "माँ, अव तक तो तुम्हारे नौकर की तरह तुम्हारा काम करता रहा, पर अव वृद्ध हो गया हूँ । कुछ आराम चाहता हूँ । तुम्हे ममझा दूँ, तुम मालकिन की तरह अपनी आज्ञा धारण करो—आखिर अव वहुत दिन तो हैं नही ।" योगेश वावू निरू को देखकर मुस्किराये ।

इस स्नेह-स्वर मे फर्क नही हो सकता, निरू ने निश्चय किया, लोग यो ही दूसरे को नीचा दिखाने के आदी है । स्नेह से उमडकर नम्र हँसकर मामा को सरल दृष्टि मे—वही जो किशोरी की दृष्टि थी—देखकर, वोली, "आज्ञा कीजिए ।"

वृद्ध फिर हँसे, "तुम्हे देखता हूँ तो रानी की याद आ जाती है ।" रानी निरुपमा की माता का नाम था । "तुम्हे सुखी करके मैं स्वर्ग का भागी हूँगा, मुझे पूरा विश्वास है ।" निरू वैसी ही सरल दृष्टि से देखती रही ।

"आज तक तुमसे नही कहा," वृद्ध गम्भीर हो गये, "जरूरत भी नही थी । अव है । क्योकि सम्पत्ति-विपय मे भी तुम्हे सँभाल देना है ।" नली मुँह मे लगाकर, धीरे-धीरे कई कश खीचे ।

"यामिनी को रुपये की जरूरत है ।"

निरुपमा कुछ सँभलकर, जैसे अच्छी तरह विपय मे प्रवेश करना चाहती है, भाव को और भी तेज दृष्टि से देखने लगी ।

वृद्ध कहते गये, "कभी-कभी हाथ खाली हो जाता है । तुम्हारे पिता वीमार पडे थे, तव पास कुछ न था ।"

निरुपमा को भीतर से जैसे किसी ने हिला दिया । कमल की वात याद आयी ।

वृद्ध धीरे-धीरे सारी कथा कह गये । फिर रुपये लेने के सम्बन्ध मे यामिनी वावू की इच्छा प्रकट की, फिर हँसे, कहा, "तुम्हे यामिनी वावू के लिए कर्ज लेना पड रहा है ।"

निरुपमा के मुख पर विकार न था । अपनी साम्पत्तिक मर्यादा और ऋण की क्षुद्रता समझकर वह चंचल न हुई । केवल इस विपय मे दूसरो की दूरदर्शिता उसे याद आती रही ।

"माँ, तुम्हे समझा देना मेरा काम था, मेरे पास वहुत कुछ तो है नही । इसी पर मेरा वुढापा और तुम्हारे भाई-वहिनो का भविष्य निर्भर है । नही तो तुम्हारे पिता मेरे ऊपर थोडे ही थे ?"

"जी नही, मैं तो सोचती हूँ, दादा के लिए मैं इससे भी कुछ अच्छी व्यवस्था कर दूँ ।"

"यह मैं जानता हूँ, तुम्हारा प्यार सभी को जता देता है, और तुम्हारा दादा तुम्हे फूफू की लडकी थोटे ही समझता है ?"

निरू मुस्किराकर बोली, "रामपुर में बाबा ने डेरे की जगह रहने लायक एक घर बनवाया था।"

"हाँ—वह अब भी है।"

"मेरा विचार है, एक बार कुछ दिन रामपुर रह आऊँ।"

"लेकिन," वृद्ध सोचते हुए बोले, "बडी दिक्कत होगी। गर्मी है। देहात मे तुम्हे अच्छा न लगेगा। वहाँ मिलनेवाली भी कोई नही। अकेली,—फिर हिन्दुस्तानी हमे कुछ नीची निगाह मे देखते है।" हँसकर बोले, "मछली का तो वहाँ अध्याय समाप्त है।"

"बाबा के साथ मैं एक बार हो आयी हूँ। मेरा खूब जी लगता है। देहात की हवा अच्छी होती है और अभी नही, जून मे जाना चाहती हूँ। आमो की फसल होगी।"

"अच्छा," धीमे स्वर से योगेश बाबू बोले, "तुम्हारे दादा साथ जायँगे, और ?"

"और नीली।"

नौ

नीम के नीचे बैठक है। गुरुदीन तीन बिस्वेवाले तिवारी हैं, सीतल पांच बिस्वेवाले पाठक, मन्नी दो बिस्वे के सुकुल, ललई गोद लिये हुए मिसिर—पहले पाँच बिस्वे के पाण्डे, अब दो कट गये हैं, गाँववालो के हिसाब मे, ललई पांच ही जोडते है। सब हल जोतते और श्रद्धापूर्वक धर्म की रक्षा करते हैं। बेनी बाजपेई कानपुर के मिठाईवाले हैं; पर धर्म की रक्षा करते हुए बीसो बिस्वे बचाये हुए हैं, नीम की जड पर बैठे, बाकी इधर-उधर। पानी बरस चुका है, ये खेत जोतकर विश्राम करते हुए सामाजिक बातचीत कर रहे है, पतन से समाज की रक्षा के विचार से। सभी समाज के कर्णधार है। सामाजिक मर्यादा मे बडे, बेनी, सभापति का आसन ग्रहण किये हुए है।

"बाजपेईजी," व्यग्य मे ललई बोले, "किसुन तो आप लोगो मे है ?"

"हम लोगों मे ?" बाजपेई नाराज होकर बोले, "हमारा बीस बिस्वे मे खान-पान—हेत-व्यवहार, किसुन कनवजिया है ?"

"लोग तो कहते हैं ?" गुरुदीन स्वर ऊँचा कर बोले।

मुँह बिगाडकर बेनी ने कहा, "ऐसे बहुत हैं ! सब बने हुए है !"

"अब कितने रह गये, बाजपेईजी ?" सीतल ने हँसकर पूछा।

"अब भी उतने ही है।" मन्नी ने उसी तरह उत्तर दिया।

"अब क्या है! जैसे बने थे वैसे ही धो गये।" बेनी गम्भीर होकर बोले, "अब तो मकुआ पासी उनसे अच्छा है।"

"विलाइत से लौटकर घर नही आये।" गुरुदीन इशारे की दृष्टि से देखकर बोले।

"घरवालो को बचाये रहना चाहते हैं।" धीमे गम्भीर स्वर से सीतल ने कहा।

"लेकिन क्या बचे रहे घरवाले ?" पूरी जानकारी से जैसे मन्नी ने कहा।

बेनी हँसे, मन्नी को देखकर अपनी उच्चता मे गम्भीर हो गये। फिर कहा, "किसी की बुराई नही करनी चाहिए, पापी अपने ही पापो बहेगा।"

"अरे बाजपेईजी," मन्नी पजो के बल उठकर बोले, "कानपुर मे अपनी अम्मा को बुलाकर मिले और घर न आये, तो क्या गाँववाले इतने बेवकूफ है कि नही समझे कि वहाँ अम्मा ने सपूत को चौके मे बुलाकर खिलाया होगा।"

मन्नी को बाजी मारते देखकर गुरुदीन त्योरियाँ चढाकर बोले, "उसी के बाद रामचन्दा कुएँ पर मिला, हमने कहा—यह तेवारियो का कुआँ है, जहाँ बाप ने खोदवाया हो, वहाँ जाव भरो। फिर क्या भरने पाया ?"

सीतल बोले, "लेकिन घरो मे आना-जाना हमने बन्द कराया है। नही तो तुम्हारे साथी अब तक कितने बेधरम हो चुके होते।"

शिष्टता से गम्भीर होकर बेनी ने कहा, "कहना न चाहिए, लेकिन वही कहावत है कि कहता हूँ तो माँ मारी जाती है, नही कहता तो बाप कुत्ता खाता है।"

"कही डालिए अब, बाजपेईजी।" कई कण्ठो ने एक साथ आग्रह किया।

"क्या कहे!" बेनी फिर गम्भीर हो गये।

"तो अब कुछ मिलने-मिलाने की बात थोडे ही रह गयी है कि कहने से कलक दबा रह जायगा ?" ललई ने गले मे जोर देकर कहा।

"भाई, हमने तो देखा नही, लेकिन रामनाथ सुकुल की कही कहते हैं कि किसुन अब लखनऊ मे चमार का काम कर रहे है—जूता पालिश करते हैं।"

मारे घृणा के सब लोग गड गये।

यथार्थ धार्मिक स्वर से बोले, "पाप है और कुछ नही, मति भ्रष्ट हो गयी!"

कुछ देर तक लोगो मे सन्नाटा रहा। कामता दुबे दूसरे हार से घर जाते हुए, लोगो को देखकर मुडे। पास आकर अपने आने की सूचना दी, "किसकी नानी मरी, हो ?"

भिन्न भाव की तरग फैली। ललई कामता के काका लगते थे, कहा, "तेरी।"

"मेरी तो मेरे आने से पहले मर चुकी थी," बाजपेई को देखकर, "पलागो बाजपेईजी।"

खुश होकर, "आओ, दुबे, किसुन की बातें हो रही है।"

"अब क्या, अब तो किसुन के पौ बारह है। राह मे चिट्ठीरसा मिला था। पचास का मनीआर्डर भेजा है।" राम राम करके कामता भी एक बगल बैठ गये।

लोगो मे आश्चर्य का भाव फैल गया। मन्नी बोले, "कलजुग है। बटा कटा मुकाम। राम का नाम लो, खाने को न मिलेगा। दूर मे ठेंगा दिखाओ, सब मजे मे देखेगे।"

गुरुदीन गर्म पडकर बोले, "धिरकार है उसको, जो धर्म छोडकर जिया। गाँव मे रहना मोहाल न कर दिया तो छानवे नही," जनेऊ मे अँगूठा निकालकर —"बजर अमले थे; चार बिगहा मे छ पेड, बेदखल करा दिया। मालिक बोले —स्याबास गुरुदीन, हम खेत भी इनके बेदखल करेंगे, आठ बिगहा लिखाये हैं, बैल एक नही—बटाई देते है। हमने गवाही दी, तीन पुश्त के खेत छूट गये। अब घर घर है।"

"कानपुर मे दो मकान हैं, वे रेहन है, कलकत्ते मे घाटा आया, सारा खेल खतम हो गया। अफसोस, अफसोस गिरिजाशकर कूच कर गये। लडके का मुँह भी न देख पाये।" मन्नी और कहने को दम भरकर रह ही गये। ललई ने रोक लिया, "कहते है, महाजन की एक रजिस्टरी आयी थी, लखनऊ भेज दी गयी।"

"अब कुछ चुकाया थोडे चुकने का है रुपया, घर भर तौल जायँगे!" कामता रुपये के महत्त्व मे डूबे हुए बोले।

गुरुदीन हँसकर बोले, "नाक तक आ गये हैं। लेकिन वाह री औरत; मिजाज वैसा ही है। अपने हार से पानी लाती है। और रमचन्दा वही नहाने भी जाता है।"

"अब काहे का हार!" ललई बोले, "जब तक मालिक खेत नही उठाते तब तक भर लें कुएँ से पानी। फिर?"

"फिर बेटा जूता गाँठे, अम्मा खाल सेहलावे।" बेनीप्रसाद भाववाली दृष्टि से देखते हुए बोले, "क्यो गुरुदीन भाई?"

"यह तो होना ही है! मालिक ने कहा था कि खेत तुमको देंगे, अब की लिखवा लेना पट्टा। माँगते बहुत है।" गुरुदीन ने सरल भाव से कहा।

"अरे भाई, बगाली और पुलिस, ये बाप के नही होते।" कामता ने कहा, "जाडे भर हम कलकत्ते मे बनियाइन बेचते हैं, हमको अच्छी तरह मालूम है। उधार दे दो तो वसूल नही होने का। तगादे जाव तो कानून बताते है।"

"अब धर्म नही रहा।" गुरुदीन ने नाक सिकोडकर जैसे किसी पर घृणा करते हुए कहा।

ललई भाव समझकर जैसे मुस्कराये। मन्नी ने आँख का इशारा किया। बाजपेई ने भी गोलवा मुस्की छोडी।

कामता बोले, "मालिक सब ऐसे ही होते है, पहले कौल करते है, फिर बदल जाते हैं।"

लोगो ने देखा—स्टेशन मे रथ और रब्बा आ रहा है। ललई ने कहा, "हाँ, मालिक के आने की बात थी। अब के अस्ली मालकिन, बिटिया आ रही है।'

सब उठकर धीरे-धीरे उसी तरफ बढे।

रामपुर आते-आते निरुपमा के दिल का क्या हाल था, वह काव्य का विषय है। नीली भी नील आकाश की चिडिया थी, चपल सुख के पख फडकाकर उडती हुई। मुश्किल से एक रात डेरे मे रही। सुबह होते ही गाँव घूमने निकली। निरू ने रोका नही। केवल उसे सजा दिया। कुछ कहा भी नही। नीली को कोई भय नही। वह जानती है, उसकी दीदी वहाँ की जमीदार है। वहाँ की कुल जमीन पर उसकी दीदी का अधिकार है। वहाँ उसकी गति अप्रतिहत, शक्ति अपराजेय है, वह वहाँ के आदमियो को कटाक्ष मात्र से अमीर और गरीब बना सकती है, उस दीदी की वह छोटी वहन है।

लोगो मे वडप्पन का एक प्रभाव पड गया। रात को काफी बातचीत हो चुकी थी। वडे-छोटे प्राय: सभी सुरेश बावू के पास हाजिरी दे आये थे। कुछ से सुरेश ने हली के हल ले आने के लिए कहा था। यद्यपि लोग अपने खेत नही बो पाये थे, फिर भी जमीदार का काम आगे होता है, सोचकर चुप रह गये थे।

नीली जिस गली से निकलती है, सब उसे एक दृष्टि से देखते हैं। उसका पहनावा ऐसा है सबकी आँखो मे ऐश्वर्य का भाव मुद्रित हो जाता है। लडके, लडकियाँ, उसकी उम्र के होने पर भी उससे बोलने का साहस नही करते। वह भी विशेपता की दृष्टि से उन्हे नही देखती। उसका लक्ष्य और है। सामने एक पण्डितजी स्नान कर राम नाम जपते हुए आ रहे थे, नीली को उन पर श्रद्धा नही हुई, उनका मुख और मुद्रा देखकर। पर रामपुर के विषय मे जानकारी प्राप्त करने के लिए उन्हे ही उसने पण्डित समझा। यद्यपि उनके प्रति नही, फिर भी, प्यार से भरे और प्रतिष्ठा से मजे, ललित और ओजस्वी कण्ठ से उसने पूछा, "कुमार बाबू का कौन-सा मकान है?"

"कौन कुमार वावू?" वृद्ध ने एक धक्का खाकर जैसे पूछा।

"कृष्णकुमार बावू, और कौन कुमार बावू!" नीली ने तेज निगाह डाली।

"वह है, वह। जो पक्का मकान है।" कहकर, वृद्ध घृणा से मुँह फेरकर पूर्ववत् श्रद्धापरायण हो राम नाम जपते हुए चले। कुछ याद कर लोटे से चार बूँद पानी मुँह मे डाल लिया।

नीली विना हिचक के भीतर घुस गयी और जूते समेत आँगन मे जाकर खडी हुई, एक प्रौढ, किन्तु आँखो को तृप्ति देनेवाली मूर्ति देखकर उसी तरह बिना रुकावट के पूछा, "यह कुमार वावू का मकान है? कुमार वावू आपके कौन है?"

देवी को वालिका की हिन्दी वडी भली मालूम दी, मुस्किराती बढती वालिका को देखती हुई बोली, "कुमार मेरा वाप है।" वे वगला अच्छा जानती थी। पढी भी थी। वालिका के पास आकर सर पर हाथ फेरकर पूछा, "अब मालूम हुआ?"

नीली लजा गयी। लजाकर भी यह दबनेवाली नही, तुरन्त उत्तर देना उसका पहले का स्वभाव है, बोली, "नही आपके लडके है।"

"आओ, बैठो"—वालिका को सस्नेह पलँग पर बैठालकर कहा, "तुम वडी

अच्छी हिन्दी बोलती हो।"

"मैं स्कूल मे हिन्दी पढती हूँ, कुमार बाबू कहाँ है ?" नीली कुछ हताश हो चली।

"वह तो वही है, तुम उसे नही ले आयी ?"

नीली फिर लजा गयी, बोली, "इधर एक महीने से मैंने उन्हे नही देखा, पहले हमारे सामने के होटल मे रहते थे, होटलवाले ने उन्हे नही रहने दिया।"

कुमार अपना सब हाल लिख चुका था, होटल छोडने का। देवी सावित्री कुछ सकुचित हुई, पर डरी नही। नीली को जलपान कराने के लिए कुछ पकवान घर के बनाये, लेने के लिए गयी। नीली बैठी हुई घर देखती रही।

एक छोटी रकाबी मे रखकर नीली को देते हुए कहा, "थोडा जलपान कर लो।"

स्नेह के स्वर से नम्र होकर, खाने की इच्छा न रहने पर भी, सभ्यता की स्वाभाविक प्रेरणा से नीली ने रकाबी ले ली और निर्विकार चित से खाने लगी। देवी सावित्री ग्लास मे पानी ले आयी।

नीली का हाथ धुलाकर, तौलिया पकडे हुए पोछवाकर, स्नेह से कहा, "कुमार बाबू की तुम्हारी अच्छी जान-पहचान है ? तुम्हे खोजते हुए बडी मिहनत करनी पडी।"

नीली की सरलता उमडी कि कुमार बाबू के पेशे की बात कहे। पर एक अज्ञात दबाव से दब गयी, बोली, "हाँ मेरे सामने रहते थे, मैं भी जानती हूँ, दीदी भी जानती है।" जबान फिसल गयी, सोचकर चुप हो गयी।

"दीदी कौन ?"

"दीदी, दीदी, और कौन," अबकी सँभलकर नीली ने उत्तर दिया।

"रामलोचन बाबू की लडकी ?"

"हाँ," नीली लजाकर बोली।

माँ की दृष्टि मे पुत्र का सासारिक प्रसग, सूक्ष्मतम कारणरूप मे रहने पर भी, कार्यरूप से आ जाता है। कारण, ससार के मार्ग मे माँ आगे चली हुई होती है। जो प्रेम बीजरूप मे रहकर भी नीली की समझ मे आ गया था, वह नीली की ध्वनि मे माँ के हृदय मे भी स्पष्ट हो गया। कुमार उन्ही का कुमार है। वे उसे और अनेक रूपो से जानती हैं। इस निश्चय को विशेष महत्त्व न देकर, हँसकर उन्होने बगला मे नीली से पूछा, "तुम्हारा नाम ?"

मुस्किराकर नीली बोली, "श्री नीलिमा देवी।"

"बडा अच्छा नाम है; हम लोग नीलिमा के भीतर रहते हैं।"

नीली खुश हो गयी।

हँसकर देवी सावित्री ने पूछा, "तुम्हारी दीदी नही आयी ?"

"आयी है।"

"नही, हमारे यहाँ, तुम तो हमारी माँ हो ? हमारा निमन्त्रण उनसे कह देना।"

सम्मति की सूचना मे जैसे, नीली ने गर्दन हिलायी। इसी समय रामचन्द्र बाहर से आया। माँ को देखकर बोला, "हमारे खेत सुरेश बाबू जुतवा रहे हैं।"

"हमारे खेत क्यों है ?" माँ ने कहा, "हमने खरीदे हैं ? उनके खेत है, उन्होने ले लिये।"

"इनका मुँह कुमार वावू के मुँह से मिलता है," नीली वोली।

"हाँ !" सस्नेह देखती हुई सावित्री देवी ने कहा, "यह कुमार वावू का छोटा भाई, रामचन्द्र है।"

नीली चलने के लिए उठकर खडी हुई। माता ने पुत्र मे डेरे तक भेज आने के लिए कहा। रामचन्द्र नीली मे दो ही तीन साल का वडा है। साथ लेकर चला। देखा, कई आदमी घर के इधर-उधर खडे है। देखकर अपने-अपने रास्ते से जैसे चल दिये। रामचन्द्र नीली को डेरे ले आया।

नीली दौडी हुई भीतर गयी और फिर दौडी हुई वाहर आयी, रामचन्द्र कुछ ही कदम घर को चला था, "ऐ रामचन्द्र, यहाँ आओ।"

रामचन्द्र नीली के पास आया। नीली ने भरे प्यार के गले से कहा, "मेरे साथ, आओ, भीतर।"

रामचन्द्र भीतर गया। निरुपमा को देखकर दोनो हाथ जोडकर प्रणाम किया। निरू निष्पलक हो गयी। थोडी देर तक देखती रहकर, उस अविकच मुख-श्री मे एक विकच पूर्ण पुष्ट मुखच्छवि प्रत्यक्ष कर, स्नेह के ललित कण्ठ मे पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है ?"

विनीत स्वर से रामचन्द्र ने कहा, "जी, मुझे रामचन्द्र कहते हैं।" मन से रामचन्द्र ने समझ लिया, यही हमारे गाँव की मालकिन है।

"रामचन्द्र कृपाल भजु मन हरनभवभय दारुणम्," निरुपमा हँसती आँखो देखती हुई वोली, "रामचन्द्र हमारे राजा है। हमारे वडे भाग है जो हमारे यहाँ आये हुए है।" कुर्सी की ओर हाथ से इगित करती हुई वोली, "वैठिये।" लजाया हुआ रामचन्द्र वैठ गया। निरू ने दासी से जलपान लाने के लिए कहा।

निरू की आँख नही हटती। मुख की मधुरता मे अपार तृष्णा वुझ रही है। दासी के हाथ से तश्तरी लेकर वडे प्यार से हाथ पर रखी और शौक करने के लिए कहा। वालक निस्सकोच भाव से खाने लगा।

गाँववालो के असद् हृदय अमानुपिक वर्ताव का प्रभाव वालक पर माँ से अधिक पडा था। जिन्हे वह भक्ति करता था, अपना समझता था, जिनके प्रति ससार के अन्य सभी लोगो से उसका अधिक आकर्षण था, जव वही ससार के सवसे वडे शत्रुओ मे वदल गये, तव वालक एकाएक कवाकर रह गया। मनुष्य-मनुष्य के प्रति इतना वडा वैर कर सकता है, यह कभी उसकी कल्पना मे न आया था। उसके लिए गाँव भर के द्वार वन्द है। कोई उससे प्रीतिपूर्वक नही वोलता। गाँव के कुओ मे उसका पानी भरना वन्द है। नाई, धोवी, कहार कोई अव उसकी प्रजा नहीं, उसका काम नही करते। उसके डाढी-मूँछें नही, वाल है, शहर जाकर वनवाता है। छुट्टियो मे केवल रास्ता और घर; केवल माँ का मुख देखने के लिए आता है। माँ की इच्छा रामपुर रहने की नही, पर लाचारी है; और कही जगह नही। भाई प्रसिद्ध विद्वान् है, पर कही किमी ने जगह नही दी। अव वह···। वालक सोच भी नही सकता कि उसका भाई चमार का काम करता है, और इस कमाई से उसने

रुपये भेजे हैं। केवल भाई के ओहदे की बात, निर्मल पत्र में भी आग के अक्षरों में लिखे हुए जैसे, उन पत्रों और तारों में हैं, वह चुपचाप प्रहार सहता जा रहा है; उसकी माँ का स्नेह उसे शान्त करता है। उसकी माँ, जिसने कभी पानी नहीं भरा, दूर खेत के कुएँ से पानी लाती है। इस प्रकार जीवन में पहले बालक की आत्मशक्ति की सबसे बड़ी शक्ति से स्नेह मिला। सहसा कुमार सोचने लगा, 'क्या मैं मेरा ज्ञान बेदखल कर सकती हूँ? क्या इन्होंने मेरे मेरा शौक देने की परवाह की होगी?—मेरे गेन जुलजान के लिए जाती है?' आप ही आप उसके दूसरे मन ने उत्तर दिया, 'नहीं, यह सब मुरली बाबू का लगाया पेड़ है; वे फिर नहीं कर सकते।'

रामचन्द्र के भोजन कर चुकने के बाद नानी ने हाथ धुला दिये। एक दूसरी कुर्सी पर निरु बैठी थी। नीली कुर्सी का सिरहाना पकड़े हुए खड़ी हुई।

"राजा रामचन्द्र, पढ़ते हो?" निरु ने पूछा।

"जी, हाँ।" लड़के ने सम्मान के स्वर में कहा।

"किस क्लास में हो?"

"जी, एट्थ में।"

"अच्छा! हाँ, राजा रामचन्द्र को इस उम्र में ज्यादा अक्ल होनी ठीक भी है।"

बालक मुस्कराया।

"अच्छा रामचन्द्रजी, तुम्हारे और भाई कहाँ हैं?"

बालक फिर मुस्कराया, बोला, "दादा लखनऊ में हैं।"

"नाम?"

"डॉ० कृष्णकुमार।"

निरु हँसी, "उलट गया, राजा रामचन्द्र के तो छोटे भाई को कृष्णकुमार होना था।" नीली भी हँसी।

बालक लजाकर झुक गया। सब तरह फिर स्नेह से देखती हुई निरु ने पूछा, "आपके छोटे भाई साहब वहाँ क्या करते हैं?"

बालक मर्म की बात कह न सका। निरु ने आँखें मिलाकर हँसना चाहा।

"जानती हूँ।" निरु बोली, "मेरे यहाँ भी आते थे।"

बालक और खिल गया। फिर अपनी ही प्रेरणा से उठकर पास हो गया और हाथ जोड़कर प्रणाम कर बोला, "दीदी, प्रणाम।"

निरु को किसी ने गुदगुदा दिया। उठकर जल्दी से बढ़कर, लड़के को पकड़कर, एक अननुभूत स्वर्गसुख अनुभव करती हुई, लौटकर बोली, "अभी तो आप आये, बातचीत तक भी न पायी कि चलने लगे। बैठिये।" बालक बैठ गया।

"हाँ, तो आपके भाई साहब डॉ० कृष्णकुमार क्या करते हैं?" अबकी गम्भीर होकर पूछा। नीली रामचन्द्र को देखकर मुस्कराती रही।

"मैं नहीं जानता।" कुछ रुखाई से, सिर झुकाये हुए बालक मुस्कराता रहा।

फिर प्रश्न हुआ—"किस विषय के डाक्टर हैं—होमियोपैथी के?"

"अँगरेजी के।" लड़के ने उसी तरह मधुर स्वर से उत्तर दिया।

"अँगरेजी के डाक्टर जो चीर-फाड़ करते हैं?" निरु प्रीति से देखती रही।

"चीर-फाड़ वाले डी. लिट्. होते हैं?" कुछ तीव्र स्वर से लड़के ने कहा। निरु

को तीव्रता मे माधुर्य मिला।

"तो आप इसी तरह के डी लिट्. होगे, क्यो ?" स्वर मे कुमार का ध्यान करती हुई बोली।

"अभी तो मुझे बहुत पढना है।"

प्रसन्न होकर पूछा, "आपका खर्च आपके भाई साहब देते है ?"

"अब लिखा है कि देंगे। अभी तक माँ चलाती थी।"

"आप अपनी अम्मा को माँ कहते है ?"

"जी, कलकत्ते मे हम लोग पैदा हुए थे।"

निरू सोचती रही; फिर पूछा, "तुम्हारी माँ बगला समझती है ?"

"हाँ, वे पढ-लिख भी लेती हैं।"

'दीदी," नीली बोली, "मैं भी वहाँ गयी थी, मुझे हिन्दुस्तानी मिठाई दी। बडी अच्छी बगला बोलती है। मुझसे कहा—तुम अपनी दीदी को नही ले आयी हो, उनसे मेरा निमन्त्रण कहना।" निरुपमा ने न जाने क्या सोचकर पलकें मूंद ली।

कुछ देर बाद पूछा, "कितना खर्च लगता है ?"

"अभी तो 15) मे चल जाता है।"

"आपको 20) महीने के पहले सप्ताह मे मिल जाया करेंगे। फिर बढा दिया जायगा, ज्यो-ज्यो आप बढते जायेंगे।"

"लेकिन दादा," बालक सकुचित होकर न कह सका।

"दादा क्या कहेगे ?" निरू ने डाँट दिया।

खेत से सिपाही खबर लेकर आया—दासी ने कहा, "दादा बुलाते है, खेत बोआया जा रहा है, देखने के लिए।"

"अपनी माँ से मेरा प्रणाम कहना," उठती हुई निरू बोली, "और कहना, मै कल उनके दर्शन करूँगी।"

बालक चलता हुआ अपने खेत के बोआये जाने की बात सोचता रहा।

ग्यारह

जूते पहनकर नीली को लेकर निरुपमा चली। बाहर निकलकर गली के घरो को पार करने लगी तो काम करती हुई किसानो की स्त्रियाँ आकर जमा हो गयी और चारो ओर से घेर लिया। स्नेह से उच्छ्वसित होकर उन्ही मे से एक वृद्धा ने कहा, "हमारी तो भाग फूट गयी, बिटिया रानी, मालिक हमे छोड़कर चले गये। किसानो को लडके से बढकर मानते थे, कभी नजर नही ली, लगान नही बन पडा—खेत मे नही पैदा हुआ तो घर से दिया है, किसी पर दूब की छडी नही उठायी, कभी डाँड नही लिया।"

"चल, हट, राह छोड," सिपाही ने आगे बढकर डाँटा।

"रहने दो," शान्त खडी हुई निरुपमा बोली।

"रत्ती-रत्ती जिउ देने से एक साथ मर जाना अच्छा है।" बुढिया ने आवेश मे आकर कहा। हटाई हुई काई की तरह स्त्रियाँ फिर सिमट आयी।—"यह देखो, यह देखो"—बुढिया एक-एक स्त्री की कोछी की धोती फैलाकर दिखाती हुई—"किसी तरह लाज वचाये है, असाढ का महीना है, अनाज नही रहा, छ-छः रुपये वाले खेत के तीन साल मे अठारह-अठारह रुपये पडने लगे। डेढी का अनाज तुम ही से लें, नजर नियाद ऊपर से। कहाँ तक दे ? खेत न जोतें तो नही बनता, पापी पेट।" कहनेवाली वृद्धा रोने लगी। और-और युवती-प्रौढा किसान नारियाँ भी नीरव अश्रुपात करने लगी। निरू की भी आँखें छलछला आयी। नीली हैरान होकर दोनो ओर देख रही थी। तब तक उन्ही मे से सँभली हुई एक ने कहा, "देखो, रो रही है, अभी ये यह सब क्या जानें।"

रोती हुई बुढिया बोली, "तुम्हरा गुलाम मलिकवा नही रहा।"

"चुप रह बुढिया, बहुत न बढ।" सिपाही ने डाँटा।

"क्यो क्या हुआ ?" सिपाही की तरफ कुटिल भ्रूक्षेप कर रुँधते गले को सँभालकर निरू ने पूछा।

अभय पाते ही उच्छ्वसित होकर रोती हुई आवेग से रुकते कण्ठ की बाधा न मानकर बुढिया कहने लगी, "किसुन कुमार के खेत मलिकवा बँटाई जोते था। तब खेत बेदखल न हुए थे। गाँववाले किसुन से नाराज थे—किसुन विलायत गये थे पढने। मलिकवा से बोले—किसुन के खेत छोड दे; मलिकवा इनकार कर गया। फिर गाँववाले मालिक से मिले। एक दिन डेरे मे मालिक बुलाकर छोडने को कहते रहे कि गाँववालो का साथ दे। मलिकवा कुछ न बोला। फिर अँधेरे मे कुछ जन खेत मे पकडकर अकेला जानकर," बुढिया वही पछाड खाकर गिर पडी।

निरू सन्न हो गयी। सिपाही से पूछा, "फिर क्या हुआ उसका ?"

मुस्किराकर सिपाही बोला, "यह पक्की बदमाश है। मलिकवा को मिरगी आती थी। रात को गडही मे डूब गया था, सुबह को उसकी लाश मिली, थानेदार आये, उन्होने भी यही माना, पर यह शैतान की खाला वहाँ भी आँय-बाँय बकती रही, रात को छाँह देखकर—आ गये, कहकर चिल्लाती है।"

कृषक नारियो ने क्रूर दृष्टि से सिपाही को देखा और बुढिया को आँचल से हवा करने लगी, एक पानी लेने गयी। निरू इस आशा से खडी रही कि वे भी बुढिया के इस प्रसग पर कुछ कहे, पर वे न बोली; केवल कटाक्ष पढकर निरू खडी रही। सिपाही ने चलने को कहते हुए कहा कि देहात के ऐसे मामले है, आगे मालिक से इसका ठीक-ठीक पता चलेगा। बुढिया होश मे आ रही थी।

निरू धीरे-धीरे खेत की ओर चली। सिपाही से पूछा, "मलिकवा बुढिया का लडका था ?"

"जी हाँ।" जैसे कुछ लाना भूल गया सोचकर सिपाही लौटा, "वे बाबू खडे हैं, मेड-मेड जाइये," कहकर।

द्वार पर द्वारिका नाई बैठा था। बुलाकर सिपाही ने कुर्सी ले चलने के लिए

कहा। द्वारिका मुँह विगाडकर उठे और पीछे-पीछे कुर्सी लेकर चले।

कुमार के वेदखल किये वाग के एक आम के नीचे सुरेश कुर्सी पर बैठे थे। निरू धीरे-धीरे मेडो के ऊपर से चलती हुई गयी। आगे-आगे नीली। तब तक सिपाही भी आ गया। खेतो मे द्वारिका कुर्सी लेकर दौडे। वाग की खाई पार करते हुए पैर फिसल जाने पर, गिर पडे। नीली खिलखिलाकर हँसने लगी। कुर्सी का एक पाया टूट गया। सिपाही मारने दौडा, निरू ने रोक दिया। सिपाही सुरेश की ओर देखकर रह गया। सुरेश द्वारिका को घूरते रहे। फिर सिपाही मे कहा, "इसे रखवाकर दूसरी कुर्सी ले आओ।" द्वारिका को लेकर सिपाही फिर लौटा।

गुरुदीन तिवारी, सीतल पाठक, मन्नी सुकुल, ललई मिसिर, कामता दुवे आदि मुख्य सब-के-सब जन जोत रहे थे। सुरेश के गाँव आने पर शिष्टाचार करने गये थे, हली के लिए पकड लिये गये। कुछ और भी किसान थे। जमीदार के खेत पहले वोये जाते है, कायदा है, वुलाने पर लोग चले गये थे। कुर्सी आ गयी। नीरू खडी हुई कभी जनेऊ देखती थी, कभी जनेऊवालो की हल-चलाने की निपुणता। हँस नही रही थी, पर हँसी की हलकी रेखा होठो पर खिची थी। इसी समय खेत के उस तरफ कुएँ के पास एक स्त्री आती हुई देख पडी, स्वस्थ, प्रौढ। घूंघट से केवल ललाट ढँका हुआ। नीली पहचानकर आनन्द से उच्छ्वसित होकर वोली, "कुमार वावू की माँ।"

सुरेश वही थे। "कुमार वावू की·· ।" डॉट के स्वर से कहकर नीली को दवा दिया। निरू ने एक दफा वगल की ओर मुँह कर भाई को देखा। इमी समय जोतते हुए हलवाहे खेत के इस तरफ आये। गुरुदीन के साथ सवने वैल खडे कर दिये और वाग की तरफ चले। और जातिवाले खाई के पास छाँह मे वैठ गये। ब्रह्ममण्डली वाग के भीतर, सुरेश वावू मे पास, आयी।

"मालिक, तीन वाह हो गये। जुवार के लिए अव और भी जुताइयेगा ?" गुरुदीन कृपाकाक्षा की दृष्टि मे देखते हुए वोले।

"रहने दो, वो जाये तो एक वाह करके पाटा दे दो।" सुरेश ने कहा।

"मालिक," सीतल वोले, "गाँव मे पानी नही भरने दिया जाता—अव कौन वेधरम हो ?—यहाँ आती है।"

समझकर भी निरू ने जैसे न समझा हो, "क्या वात है ?" सुरेश से पूछा।

"कुछ नही, यह सव जानकर क्या होगा, जहाँ की जैसी रीति।" उसी तरह वगला मे वोले। निरू चुप हो गयी।

"अगर यह खेत सीर वनाया जायगा तो कुआँ सरकारी होगा। हार मे लोग आते है, दुपहर को लोग प्यासे भी होते हैं, अगर इनका पानी भरना जारी रहा तो लोग क्या वरगद दुह-दुहकर पियेंगे। और किसी कुएँ का पानी नही अच्छा।" गुरुदीन ने कहा।

"न गाँववाले इनके काम के है, न ये गाँववाले के काम के, व्यर्थ दूसरो का सगुन विगाडती हैं।" मन्नी ने कहा।

निरू के हृदय की गति तेज हो गयी। नीली सूखकर जैसे गाँववालो को देखने लगी।

"तुम बातचीत करो, उनका और तो कुछ यहाँ है नही—घर घर है, वे बेचते हो तो ले लें।" सुरेश ने तटस्थ समझदार की तरह कहा।

निरुपमा ने स्फारित आँखो से एक बार सुरेश को देखा, जैसे खासतौर से यह रूप देख लेने, इससे परिचित हो जाने की इच्छा हुई हो। यह वह सुरेश नही, जिसके प्रति उसकी श्रद्धा है।

"बाग यह बजर था ही, सरकार मे आ गया, खेत सरकारी ही थे, अब घर घर है।" सिपाही ने उद्दण्ड स्वर से उसी लकीर पर जबान फेरी और लाठी का गूला एक दफा जोर से दे मारा और सहारा लिया।

यह समस्त सम्प्रदाय निरू की दृष्टि मे छाया-रूप से चक्कर काटने लगा, जैसे स्वार्थ पर चाटुकारिता उसे ग्रस्त करना चाहती है। हृदय के बल और विश्वास के साथ वह उभडी। पर फिर वहाँ की प्रकृति उसे दबाने लगी। उसी समय दृष्टि उस महिला के मुख से जाकर लिपट गयी। वे पानी भर चुकी थी। उबहनी फँदिया रही थीं।

अपना काम कर, चलने से पहले उन्होने फिर निरू को देखा। दूर होने पर भी दोनो की दृष्टि स्पष्ट रूप से एक दूसरी की आँखो मे चुभ गयी। इधर मूर्तिमती नवीन प्रीति थी, उधर ससार की क्रूरता को सहनेवाली करुणा। महिला ने विलम्ब न कर कन्धे पर उबहनी डालकर दोनो घडे एक-एक कर उठा लिये। निरू ने आँखें झुका ली। श्रद्धा मे नत हो जैसे प्रणाम किया।

इसी समय गुरुदीन बोले, "मालिक, कहो तो कह दें, सरकारी कुएँ मे पानी भरने न आया करे, अब कुआँ उसके—"

"अहमक है क्या? अपना काम क्यो नही देखता?" सुरेश ने डाँटा।

निरू प्रसन्न होकर हिली। नीली गोद के सहारे थी। खडी होकर गुरुदीन को देखने लगी।

गुरुदीन गऊ हो गये। बोले, "मालिक, खेत तो तैयार है, अब बोने का हुक्म हो तो काम जारी किया जाय।"

स्नेह-स्वर से सुरेश बोले, "हम जमीदार है तो किसी को उजाडने के लिए नही। जो सरकार के राज्य मे है, वह किसी गाँव मे बसा हुआ हो, उसका पानी नही बन्द कर सकता कोई। वह मुसलमान हो जाय तो उसी कुएँ मे भर सकता है या नही पानी?"

"भरते ही है, मालिक।" मन्नी ने जोर देते हुए कहा और बाग छोडकर खेत की तरफ चला, अपने गमछे की झोली मे बीज लेकर—अरहर, ज्वार, तिल्ली मिले हुए।

यद्यपि बातचीत से सबकुछ निरुपमा की समझ मे आ गया था, फिर भी अब परिस्थिति शान्त हो जाने पर और अच्छी तरह समझ लेने के लिए सुरेश से पूछा, "दादा, यहाँ के खेत बाबा के समय तो सीर मे न थे?"

"नही," सुरेश गम्भीर होकर बोले, "इसका गिरिजाशकर के नाम पट्टा था। वे दो-तीन पुश्त से इसके काश्तकार हैं। इसलिए बहुत कम लगान उन्हे पडता था। वे भी खुद काश्त न करते थे। कलकत्ते मे रहते थे। फिर शहर मे रहने के विचार

से कानपुर में अड्डा जमाया था। उनके न रहने पर, उनकी स्त्री बटाई मे दिया करती थी। पर बटाई के खेत की हैसियत बिगड जाती है। इसलिए हमे बेदखल कराना पडा।"

विषय को समझकर निरू ने पूछा, "यह बाग किसका है ?"

"यह भी गिरिजाशकर का है। पर उनके यहाँ न रहने से इसकी भी हैसियत बाग की नहीं रह गयी। बहुत से पेड सूख गये, नये लगवाये नही गये। अब इसकी बाग की हैसियत नही रही। ऐसी जगह जमीदार की होती है। हमने दावा कर इसे भी अपने कब्जे मे कर लिया है।"

कहकर सुरेश कुर्सी से उठे और खेत की तरफ बढे। इसी समय निरुपमा की दासी घर के कार्यो स निवृत्त होकर स्नान आदि के लिए उसे ले जाने आयी। उठकर नीली को लेकर निरुपमा घर की ओर चली।

बारह

भोजन के पश्चात् आराम करते हुए सुरेश ने नीली को बुलाया। गाँव की हवा मे नीली लहर की तहर मुक्त हो रही थी। लिखने-पढने का कोई दुख न था। भाई के सामने प्रसन्न मुख आकर खडी हुई। सुरेश बगला उपन्यास की किताब बगल मे रखकर प्रसन्नता से देखते हुए बोले, "गाँववाले बडे बदमाश है ?"

नीली के हृदय की बात थी। भाई से सहयोग करने के लिए खुलकर बोली, "हाँ।"

"लेकिन तीन आदमी बडे अच्छे है, रामचन्द्र की माँ, रामचन्द्र और मलिकवा की माँ।" सुरेश गम्भीर होकर बोले।

"हाँ," पूरी प्रसन्नता से नीली ने कहा, "मैं सुबह रामचन्द्र के घर गयी थी, उसकी माँ ने मुझे जलपान कराया।"

"क्या खिलाया ?" सुरेश ने पान निकालकर खाया।

"पीठे, उनके भीतर ओया, मेवा और चीनी थी।"

"उन्होने तेरे लिए बना रक्खे होगे, जब उन्हे मालूम हुआ होगा कि हम लोगो के साथ तू भी आ रही है। पहले से चिट्ठी लिखी थी न हमने सवारी ले आने के लिए ?"

"हाँ दादा," नीली हवा की तरह निर्विरोध बहती हुई जैसे बोली, "रामचन्द्र को फिर मुझे छोड आने के लिए साथ भेजा। और दीदी को कल बुलाया है।"

सुरेश और गम्भीर हो गये, पर चेहरे से मुस्किराते रहे। पूछा, "तू अकेली चली गयी ?"

"हाँ, रास्ते मे एक आदमी नहाकर लौट रहा था, मैं मकान के पास ही थी,

पूछा, उसने बता दिया।"

सुरेश समझ गये कि इसने कृष्णकुमार बाबू का मकान पूछा होगा। पूछा, "तू जब बाहर निकली तब तेरी दीदी थी ?"

"हाँ, आज उन्हीं ने तो कपड़े पहनाये।"

सुरेश समझ गये। वे बहुत पहले से सजग थे। यामिनी बाबू नीली की बातें सुरेश से कह चुके थे। उन्हें अनेक बार निरु का वह मुख, वह दृष्टि याद आ चुकी थी, जो सुरेश के परिचय के समय मकान में उन्होंने देखी थी। शंका हो जाने पर सफेद भी सियाह दिखाता है। फिर निरु ने अपनी तरफ से भी शंका को सत्य-रूप देने के कार्य किये थे। लखनऊ में, कुछ दिनों बाद जब यामिनी बाबू रुपये लेने की तैयारी करके आये और निरु टाल गयी, कहा कि मामा से कर्ज लेते उसे लज्जा लगती है, सुरेश की शंका को सत्य का आभास मिला। कुछ दिनों बाद बहुत समझाकर जब फिर उससे कहा गया और उसने जवाब दिया कि मामा का सहृदय रूप ही उसकी आँखों में है, वहाँ उनका वैषयिक रूप रखकर वह दृष्टि को कलंकित नहीं करना चाहती, तब सुरेश को सत्य की सत्ता कुछ प्रत्यक्ष दिखने लगी। फिर कुछ दिन बाद ज्यादा दबाव पड़ने पर उसने जब नीली से कहला भेजा कि कहो दीदी कहती है अभी समय है, मुमकिन, तब तक यामिनी बाबू के पास रुपये आ जायें, अभी से रुपये लेकर वे खर्च कर डालेंगे तो मुझे फिर कर्ज लेना पड़ेगा, सुरेश सुने हुए कथन का सत्य रूप देखने लगे। निरु के गाँव चलने की बात इस संशय को सत्य में बदलने की आधार-भूमि थी—इसी पर कर्ज न लेने पर हुई, शंका की मूर्ति सत्य के रूप में प्रतिष्ठित हुई। उन्होंने पिता से कहा। अनुभवी पिता ने इसे नयी उम्र की तरंग कहकर, विशेष महत्त्व न देते हुए, ऐसा युवक-युवती मात्र के जीवन में होता है समझाकर, सावधानी से उद्देश की सिद्धि की सलाह दी और निरु का गाँव जाना न रोका। आज दुपहर को खेत से लौटने पर गाँववालों ने जब सुरेश को समझाया कि गाँव में छुटे हुए से मालिकों का मेल है—सुबह छोटी बिट्टी किसुन के घर गयी थी और रामचन्द्र मालिकों के यहाँ आया था, तब सुरेश को सत्य की वह मूर्ति हिलती-डुलती देख पड़ी। पर पिता की सलाह के अनुसार उद्देश की सिद्धि के लिए सावधानी न छोड़ी।

वैसे ही गम्भीर, पर उसमें अधिक स्नेह करके उन्होंने कहा, "तुम लोग दूसरे की खातिर करना नहीं जानती। उन्होंने तेरी खातिर की, पर रामचन्द्र को तुम लोगों ने खदेड़ दिया होगा!"

"नहीं," नीली हँसकर बोली, "लखनऊ से हम लोग जो मिठाई ले आये थे, दीदी ने उसे खाने को दी तो।"

"हाँ," सुरेश ने कहा, "तब तो अच्छा किया। कुछ मीठी बातचीत भी की या गाल फुलाये बैठी ही रही ?"

"दीदी देर तक उससे बातें करती रही, क्या पढ़ते हो, कैसे खर्च चलता है। फिर उसे बीस रुपया महीना खर्च देने के लिए कहा। उसने अपने दादा की आड़ ली, पर सब कह भी न पाया था कि दीदी ने डाँट दिया।"

सुरेश के मुख पर अधीरता स्पष्ट हो आयी। पर जब्त कर गये। पूछा, "और

मलिकवा की माँ क्या कहती थी ?"

"वे सब मलिकवा के मरने की बातें थीं, मैं अच्छी तरह नही समझी।"

इसी समय, पूछने के लिए कि उपन्यास समाप्त हो चुका हो तो ले जाय, निरुपमा कमरे मे आयी।

सुरेश ने स्नेहकण्ठ से कहा, "निरू, तुम्हे शायद पता नही, रामचन्द्र को गाँववाले छोड़े हुए हैं। हमको रहना तो गाँववालो के साथ है।"

"तो क्या गाँववालो की मूर्खता के साथ भी रहना है!" मधुर मन्द स्वर से निरू ने कहा।

"नही, फिर भी अधिक सख्यक लोगो का ख्याल होना जरूरी है जमीदार के लिए। सरकार भी सख्या का विचार रखती है।"

"पर जवरदस्त कमजोर पर हमला न करे, इसका भी ख्याल सरकार रखती है और जमीदार को रखना चाहिए।" निरू सामने की कुर्सी पर वैठकर सरल ओजस्वी स्वर से वोली।

"तुम ठीक कहती हो। पर हम अगर कोई उपकार करें मान लो, तो हमे इसका विचार रखना चाहिए कि गाँव मे जिसका हम उपकार कर रहे हैं, उससे भी गिरी दशावाले है या नही; अगर है तो वह उपकार उपकार न होकर कुछ दिनो मे जमीदार के लिए अपकार सिद्ध हो सकता है।"

चोट खाकर निरू चुप हो गयी। सुरेश की वक्तृता का वेग वढा—"तुम तो जानती नही। जमीदारी दरअस्ल एक पाप है। फूफाजी कर गये है, हम भुगत रहे है। कभी इस पर, कभी उस पर मुकद्दमा लगा रहता है। अधिक आदमियो का गरोह न देखें, तो हमारी गवाही कौन दे! गाँव भर मिल जायँ तो जमीदार जमीदार न रह जाय! सव मिलकर वात-की-वात मे उसे पीट लें। इसलिए वडी समझ से काम लेना पडता है।"

निरू चुप रही। मन मे सुरेश की युक्तियाँ वैठती गयी। सुरेश कहते गये, "अव तुम्हारे आने की खुशी मे यहाँ ब्राह्मणो को भोज देना है, पाँच-छ दिन के अन्दर-अन्दर करने का विचार है। कह दिया है कि वडी अच्छी सगाई है, चूँकि यहाँ से विवाह नही हो रहा, इसलिए इसे तिलक का भोज समझो। वहन, दुनिया वडी टेढी है। गाँववालो को मिलाकर रहना पडता है। अपने से वड़े की वात मानकर चलो तो सारे देवता प्रसन्न होते है! कहा भी है—इस समय याद नही आ रहा।"

"पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवता"—कहकर वडे कष्ट से निरू ने हँसी को दवाया।

सुरेश सस्कृत के किनारे से न गुजरे थे, गम्भीर होकर वोले, "हाँ, यह सव युगो तक तपस्या करके सोचकर ऋषियो ने लिखा है। इसके अनुसार हम चलें, तव न हमे इसका फल मिले?"

निरुपमा कुछ देर साँस तक रोके वैठी रही। सोचा, यह स्नेह का फन्दा है। मन-ही-मन ऊपर उडती हुई, इस पाश को पार कर जाना चाहा, पर सव जगह इससे अपने को वँधी हुई देखा। कुमार को चाहती है, पर वह पहुँच से वाहर है।

समर्थ मन बराबर पहुँच से बाहर की चीज लडकर भी लेना चाहता है, वह मानसिक समर करती है, पर अपनी सस्कृति से आप परास्त हो जाती है। मामा, भाई आदि के प्रति हुए स्नेह और सस्कारो के मायाजाल मे बँधकर नही बढ पाती। कुमार भी हर तरह उसकी पहुँच से बाहर है। अन्त मे पहले की तरह निश्चय बँध गया, एक साँस छोडकर यथार्थ ही कमजोर होकर समझी—मेरे लिए यामिनी ही है, सुबह का कुमार नही।

"बात यह है"—सुरेश बाबू निरू का मतलब दूर तक लगाते हुए बोले, "हम अकारण दूसरे के लिए क्यो सरदर्द लें। अपनी दवा कर लेंगे। ससार ऐसा ही है।"

निरू गम्भीर होकर उठकर चल दी। सुरेश देखते रहे। फिर नीली से कहा, "नील, अपनी दीदी से कह दे कि दादा ने जब सुना कि रामचन्द्र के लिए निरू ने बीस रुपया महीना वजीफा बाँध दिया है तब कहनेवाले से कहा कि जो दान दिया जा चुका है, वह वापस नही लिया जा सकता, अब आगे मे ऐसा न होगा। और कृष्ण की माँ ने बुलाया है तो जाना चाहिए, अहा, बेचारी को गाँववाले कितना सताते हैं, आज कुएँ से पानी भरना भी बन्द करवा रहे थे, तेरे सामने ही डाँटा था न मैंने गुरुदीन को ?"

नीली खुश होकर चली तो बुलाकर पूछा, "पान तो है न काफी ? नही तो आदमी भेजकर बाजार से मँगा लिये जायँ, अभी समय है, आज शायद गाँव की औरतें निरू से मिलने आयेंगी।"

तेरह

शाम चार बजे से निरू को देखने के लिए गाँव की स्त्रियो का आना शुरू हुआ। एक बडे कमरे में दरी और चादर बिछा दी गयी थी, स्त्रियाँ आ-आकर बैठने लगी। सब सर मे पैरो तक भारी भूषणो से लदी, जैसे सास्कृतिक स्वच्छता ने हल्के-पन की जगह, जिसमे हाथ-पैर जल्द उठते है—हृदय मे स्फूर्ति आती है—मन प्रसन्न रहता है, दैन्य के चिह्न स्वरूप भूषणो का भार चढ रहा हो और यह भार का आधिक्य ही प्रसन्नता का कारण बन रहा हो। उचित आसन पर नीली को लिये हुए निरू बैठी थी। समागत देवियो को सम्मान के साथ दासी बैठा रही थी। निरू शान्त भाव से बैठी हुई बैठने के लिए इगित कर देती थी। घण्टे भर मे जगह भर गयी। पान-इलायची आदि सम्मान के विधि-विधान चलते रहे।

उनमे से पुरानी अधिकाश देवियाँ निरू को देख चुकी थी, पहचानती थी। निरू भी पहचानती थी, पर कुछ के मुख याद आये, कुछ के भूल गये थे। वे अपने बडे नथ का छोटा लटकन घुमाकर, मुस्किराकर कहती हुई निरू के सम्बन्ध की विशेष बात याद दिला देती थी; याद आने पर निरू परिचय की प्रसन्नता से

स्फीत हो उठती थी, न आने पर सहज कण्ठ से कह देती थी—मै भूल गयी। उसके समय की लडकियो मे कोई न थी, सब अपनी-अपनी ससुराल मे थी जिन्हे निरू कुछ अच्छी तरह पहचानती थी, सिर्फ रामरानी थी, वह सबसे पहले आयी हुई थी और निरू ने विलकुल पास बैठाला था; रह-रहकर उसके लडके का गाल खोद देती थी स्नेह की दृष्टि से देखती हुई। उसी से उसने पहचान की लडकियो के समाचार मालूम किये। सबकी विशेषता उनके लडको से सूचित हुई। भागभरी सबसे आगे ठहरी। उसके तीन लडके है और सब राम की इच्छा से जीते हुए।

जिस तरह यह प्रसग निरू के लिए मनोरजक था, उसी तरह निरू के उतनी वडी स्त्री रूप मे वदल जाने पर भी विवाह न होना स्त्रियो के लिए। निरू उनके चाँदी के गहने देख-देखकर मन-ही-मन हँस रही थी, वे निरू का पोर-पोर ताड रही थी और सोचकर भी थाह न पा रही थी कि आगे भी निरू को व्याह करने की क्या आवश्यकता हो सकती है। मन-ही-मन उसकी उम्र का हिसाव भी तरह-तरह का लगा, स्त्रियो को यह महीनो तक के निर्णय करने का विषय मिल गया।

साथ-साथ वातचीत भी चल रही थी। पहले निरू के लिए करुण रस का स्रोत वहा। वह जव गयी थी, उसके माँ-वाप साथ थे। इस वार वह अकेली है। उसके भाई जमीदारी सँभाले है। भगवान् की करनी अकथ है। वस क्षण मे चाहे जो करें। फिर गाँव की वातचीत उठी। गाँव की वातचीत का मुख्य विषय कृष्णकुमार का घर था। औरो पर चल नही सकती। क्योकि प्राय वे सब मौजूद थी। निरू का हृदय धडका जव रामलाल की अम्मा ने लम्वी साँस छोडी और रामदीन की काकी ने ललाट पीटकर समझा दिया कि सव यही का लिखा होता है।

वेनी वाजपेई की स्त्री गम्भीर होकर बोली, "सपूत ने पचास रुपये का मनी-आर्डर भेजा है।" फिर दोष की भावना से भ्रू कुचित कर रह गयी।

गुरुदीन की स्त्री ने कहा, "तुम्हारे वाजपेई तो कहते थे कि—"

"भाई हमारे उनको वदनाम न करो"—वेनी की स्त्री आँखे फाड तरेरकर वोली, "फलाने क्यो कहते है, ससार कहता है।"

"ससार कहता होगा, गाँव मे तो उन्होने कहा है।" गुरुदीन की स्त्री विश्वास पर प्रमाण कर जोर देकर वेनी की स्त्री की त्योरियो की परवा न करती हुई वोली।

"तो तुझी से कहा होगा?' स्वर चढाकर भाव मे वँधकर वेनी की वीणा झकृत हुई, "मुझसे कहे, किसी की मजाल है?—मूछे न उखाड ली जायँगी?" गुरुदीन की सरस्वती ने अपने काव्य की एक पक्ति सुनायी।

निरु घवरायी। वात क्या है, अभी तक इसी का फैसला नही हुआ, और और स्त्रियाँ समझदार की तरह वैठी रही। उनके लिए ये सव वातें अभी ध्यान देने योग्य थी ही नही। निरू ने विनयपूर्वक वेनी की स्त्री से पूछा, "क्या वात है?"

"कुछ नही, किसुनकुमार लखनऊ मे जूता गाँठते है खवर फैली है। यह कहती है मेरे उनके लिए कि उनकी फैलायी वात है! जिनके यहाँ हम (क्रिया विशेष का

उल्लेख कर कहा) पानी नही लेते—"

निरू की दृष्टि मे प्रलय की सम्भावना खुल रही थी। घवराकर कहा, "तो इसमे क्या हुआ ?—यह तो सच है। जूता पालिश तो वे करते हैं। मेरे यहाँ भी आये थे।"

"अव बोल," वेनी की स्त्री ने गुरुदीन की स्त्री को ललकारा।

"वोलूँगी तो रोते न वनेगा।"

"भइ, ऐसी वाते न करो।" निरू क्षुब्ध हो उठी।

मातादीन की माँ उम्र मे सवसे वडी थी। कहा, "दोष किसी का नही, अव चुप हो जा। एक गाँव का रहना, आज वैर, कल मेल! जो कुआँ फाँदेगा वह आप गिरेगा।"

"उनकी वात ही अव क्या है, गाँव मे जव जायँ। वे कहते हैं, नीघस हैं, नही तो आज निकल जाते।" ललई की पत्नी वोली। "पहले कलकत्ता रहे, फिर कानपुर। जव रुपया चुका तव गाँव आये। अभी डेढ़ वरस भी तो नही हुआ।" हजारी की अम्मा वोली।

"गाँव मे किसी मे पहले भी मेल न रखती थी।" मन्नी की स्त्री ने कहा।

"परदेश की ठसक थी।" सीतल की श्रीमती वोली।

"अव सव धो गयी। कानपुर के घर, कहते हैं कि विक गये, उन्ही के रुपये से रहती थी किराये के मकान मे।" गुरुदीन की स्त्री ने धार्मिक स्वर मे कहा।

"अव यह घर भी वेचें।" वेनी की स्त्री ने सहयोग किया।

"घर घर है। घर मे तो पशु भी नही रह सकता।" मातादीन की माँ ने नीति कही।

"रामचन्द्र कही कहते थे कि गाँव छोड देगे।" मन्नी की स्त्री ने कहा।

निरू सुनती रही। इन्हे प्रशमित करना और इनकी जान लेना एक ही मानी रखते है, उसने निश्चय किया। चुपचाप वैठी रही। उसके आने के समय रामचन्द्र की माँ न थी, वह समझी। सुरेश ने यद्यपि जाने के लिए कहला भेजा था, फिर भी अव मिलने के लिए जाना उसे आत्म-सम्मान के खिलाफ मालूम देने लगा! वैठी हुई निश्चय करने लगी क्या करे। नीली ने लौटकर भाई से हुई सव वातें वता दी थी। निरू भी समझ चुकी थी। वडी लाज लगने लगी। रामचन्द्र की माँ स्वय मिलने न आयेगी, उसने सोचा कि अगर आना होता तो उसे न वुला भेजती, और वह न जायेगी तो कितना वुरा होगा।

स्त्रियो के चलने का समय हुआ। शाम हो गयी! प्रसन्नमुख निरू उठकर द्वार के पास खडी हुई और चलती हुई देवियो को पान देकर, नमस्कार करके विदा किया।

चौदह

दूसरे दिन निरू ने कई मर्तबे कुमार के घर जाने की इच्छा की, पर उधर चलते पैर ही न उठे। सुरेश के मन मे जो भाव पैदा हो गया है, उससे अधिक लज्जास्पद उसके लिए दूसरा नही। जाते हुए जैसे उसकी सम्पूर्ण शोभा चली जायगी, जिसे लेकर बहन की तरह सर ऊँचा कर वह सुरेश के सामने खडी होती है। निरू अपनी शोभा न छोड सकी। वह उसी की रक्षा के सौर-मण्डल मे तैयार हुई है, उसकी पहले वह शोभा है, फिर और कुछ; उसके साथ उसका अछेद्य सम्बन्ध है। भाई के जाने के लिए कहने मे उसे साफ इन्कार के तार बजते हुए सुन पडे, उन्होने जैसे उसकी इच्छा का विचार कर वैसा कहा हो। जो कुछ भी हो, निरू के दादा है, वह स्नेह मे पली है, स्नेह न तोड सकी।

साथ ही मनुष्यता का भी विचार आया। कुमार की माँ क्या सोचेगी! उन पर जो वर्ताव गाँववाले कर रहे है वह किसी बुद्धिमती द्वारा समर्थन न पा सकेंगे। जमीदार के धर्म का पालन करते हुए उसके दादा ने एक प्रकार कुमार का सर्वस्व हर लिया है, जितने से वे उस गाँव के वाशिन्दा रह सकते, पुन उनके साथ—उनके जैसे सुधरे हुए विद्वान् के साथ विद्याभाव का सहयोग नही किया—एक जमीदार होकर सामाजिक मुआमलो मे उनका वाजू नही बचाया, वल्कि अपना ही स्वार्थ देखा है (जो वास्तव मे निरू का है)। अपने घर तथा समाज की आज्ञा और मर्यादा के अनुसार उसे भी एक प्रकार कुमार के कानपुरवाले मकानो के लिए यामिनी वावू को कर्ज लेकर रुपया देना होगा, मामा छल करने पर भी छल नही कर सकते और यह इतना-सा अर्थ लेकर वह उसका कुछ विगाड नही सकते—यह उनके कार्यों का पुरस्कार भी नही ठहरता, अस्तु इस प्रकार उसे भी विरोध करना होगा, कुमार को वह मदद नही पहुँचा सकती। रामचन्द्र को उसने खर्च देने के लिए कहा है; मुमकिन, अव उसकी माँ खर्च लेना मजूर न करे। सोचती हुई निरू जब-जब आवेश मे आयी, चलने को तैयार हुई, पर दूसरे ही क्षण, लौटने पर उसका कैसा भाव होगा, सोचकर लज्जित हो गयी। जो निरू कभी-कभी इसके कवल से मुक्ति पाने की सोचती थी, वह दूसरा खाली मकान देखकर भी न जा सकी। वह अपनी ही इच्छा से नही जा सकती। लजाकर, मुरझकर, असभ्य व्यवहार के कारण मन मे मरकर रह गयी।

नीली की इच्छा जाने की थी। उसने याद दिलायी और कहा कि दादा ने अन्त मे जाने की राय दी है। पर निरू ने कहा, "जहाँ गाँववाले नही जाते, वहाँ मेरा भी जाना ठीक नही, पहले मुझे मालूम नही था।" इतना कहकर नीली को भी जाने के लिए न कह सकी। नीली ने भी सोचा कि वहाँ उसका जाना ठीक नही। ऐसा सिर्फ अपनी पराधीनता का विचार कर सोचा। मन से वह दीदी का विरोध किये रही। कारण, कुमार वावू की माँ से ज्यादा भली और स्नेहवाली महिला उस गाँव मे कोई है, यह वह न मान सकी।

उस रोज निरू टहलने न निकली, नीली भी कही न गयी। सुरेश वावू पते

पर थे कि निरू क्या करती है। उसके न निकलने से खुश होकर बोले, "आज रामचन्द्र की माँ ने तुम्हे बुलाया था, अच्छा हुआ तुम नही गयी। उनके यहाँ जाने पर दूसरी भी तुम्हे बुलाती और न जाने से अच्छा न होता। जमीदारी करने पर प्रतिष्ठा का विचार रखना पडता है। अभी तुम समझती नही। रामचन्द्र की माँ भी तुम्हारे यहाँ आ सकती है, पर वे आवेगी नही। वे इसका विचार रखती हैं। पर न आयें, तुम बुलाना भी मत, नही तो अपमान होगा अगर वे न आयी। हम सिपाही से कहला भेजेंगे कि रामचन्द्र को आज्ञानुसार 20) महीने भेज देंगे।"

भाई की बात सुनकर निरू ने कुछ न कहा। सुरेश बाहर से गम्भीर और मन से खुश होकर चला गया।

देवी सावित्री ने निरू के लिए अच्छा-अच्छा जलपान, सुबह पाँच बजे उठकर बंगाली पसन्द के अनुसार मुलायम-मुलायम, सूरज खुलते-खुलते बना रक्खा और स्नेह के हृदय और आदर की दृष्टि से प्रतीक्षा करती रही। धीरे-धीरे दस बज गये, ग्यारह बजे, निरू न आयी। नब हताश होकर जलपान रामचन्द्र को देकर पहले एक चिट्ठी लिखी फिर तीसरे पहर भोजन बनाया। रामचन्द्र जलपान कर चिट्ठी डाकखाने छोडने गया।

देवी सावित्री के मन मे अनेक प्रकार के भाव आये। उन्होने निरू को स्नेहवश होकर बुलाया था, वह जमीदार की लडकी या स्वय जमीदार है यह सोचकर नही। पर वह नही आयी। तो क्या रामचन्द्र के लिए उसने कल जो कुछ कहा है, उमे सहायता देने की जो उदारता दिखायी है, वह इसलिए कि रामचन्द्र एक गरीब विद्यार्थी है और वह उस पर दया करनेवाली उसके गाँव की मालकिन ?—क्या इसी दयाभाव के कारण फिर उसके मकान आमन्त्रित होकर जाना उसने उचित नही समझा ? मुमकिन, उसके भाई ने उसे रोका हो अथवा गाँव की हवा देखकर उसके अनुकूल रहना ही उसने युक्तियुक्त समझा हो; पर उन्होने केवल स्नेहवश उसे बुलाया था। वे धीर महिला थी, इधर दुःख का पहाड उन पर टूटा था, धैर्य से वे उसे सँभाले हुई थी, जब तक वह प्राकृतिक नियम से पूर्ववत् हट न जाय। कुमार की इच्छा के अनुसार उसे विलायत भेजने के लिए उन्होने स्वय पति से आग्रह किया था। धन का मोह छोडकर मकान रेहन कर देने के लिए कहा था। फिर परिस्थिति के उत्तरोत्तर बिगडते रहने से लेकर पति के स्वर्गवास तक का वज्रप्रहार धीरतापूर्वक सहन किया था। पुत्र की भविष्य-आशा मे गाँववालो के भी असह्य लाछन नत-मस्तक होकर धारण किये थे। वैसी दीनता मे भी मलिकवा की माँ का भरण-पोषण कर रही थी। कभी पानी नही भरा, पर ऐसे अपमान के साथ गाँव मे बाहर जाकर पानी भर लाना भी उन्होने स्वीकार किया। कुमार की इच्छा पूरी हुई, पर वह स्थितिशील नही हो रहा, इसका असह्य ताप भी उन्होने शान्त होकर धारण किया। रामचन्द्र पर इस परिस्थिति का बुरा प्रभाव न पडे, इसके लिए माँ की तरह उसे पहला ही स्नेह देती रही, उसे बराबर गाँव तथा देश की मनोवृत्ति की समुचित धारणा कराती रही। पर अब उनके लिए बरदाश्त से बाहर हो गया। निरू को उन्होने बुद्धिमती सोचा था और उनकी स्थिति निरू को मालूम होने पर निरू शिक्षित बगाली बालिका होकर भी उनके प्रति सहानुभूति न

रक्खेगी, यह वे नही सोच सकी। यही उनके लिए बरदाश्त से बाहर हुआ। इसी समय मलिकवा की माँ आयी और कहा कि कल बिटिया बाग गयी थी, उसका दु ख सुनकर चली गयी, कुछ न बोली, गाँववाले अब इस उपाय मे लगे हैं कि खेतवाले कुएँ से पानी भरना बन्द करा दें और कल गाँव की औरतें डेरे पर बिटिया से मिलने गयी थी, बरमभोज की खबर है। कुमार की माँ धैर्य से सुनती रही।

पन्द्रह

कई रोज हो गये। निरू बाहर नही निकली। ज्यो-ज्यो निरू अँधेरे मे रहने लगी, सुरेश प्रकाश देखने लगे। अनेक प्रकार के काल्पनिक चित्र, आकाश मे रगीन पख खोलकर उडते हुए पक्षियो की तरह सजीव जान पडने लगे। सुरेश की पहले की शका सत्य के आलोक मे लीन हो गयी।

तीन-चार दिन तक निरू तूफान के समय की नौका-विहारिणी की तरह कूल से बँधी बन्द नाव के भीतर जैसे बैठी रही। वेग कुछ शान्त होने पर, नाव को विहार के उद्देश पर नही,जैसे स्वास्थ्य, शरीर-नियमन, दिन-चर्या आदि के विचार से, कूल-ही-कूल वाहित करने लगी। सुरेश को बुलाकर उसने कहा, चुपचाप बैठे-बैठे मन निष्क्रिय हो रहा है, कुछ अच्छा भी नही लग रहा, किताबें थोडी ले आयी थी, मैं चाहती हूँ,—आप जमीदारी का हिसाब मुझे समझा दे। निरू का रुख इधर हुआ तो सुरेश का मानसिक विकास कृष्णपक्ष के चन्द्रमा की तरह बहीखाते खोलकर एक-एक बात बताकर समझाते समय, एक-एक कला ह्रास पाने लगा। निरू सुरेश की सचाई की परीक्षा न कर रही थी, उस दृष्टि से हिसाब देखने का उसका उद्देश न था, वह केवल अपने मर्ज की दवा कर रही थी उचटते हुए चित्त को एकमुखी करती हुई, पर मरीज सुरेश बाबू उसके प्रश्न से जैसे क्षतस्थान की वेदना का अनुभव करने लगे। मुकद्दमो के खर्च का ब्योरेवार हिसाब नही, कार्य की अधिकता से उन्होने एक ही दो अको मे खर्च लिख दिया है, 15) के दावे मे 45) का खर्च। वौचर नही। आमदनी और खर्च का हिसाब देखकर निरू मन-ही-मन असन्तुष्ट हुई। पिता के समय के बहीखाते मँगवाये। सीर की पैदावार आधी रह गयी थी। लगान बढ गया था। पर फायदा आधा भी नही। रकम-सिवा की आमदनी पाँच आने रह गयी। और जितनी बातो मे मुख्तार की सफाई दिखाने की गुजाइश रहती है, उधर निरु ने ध्यान नही दिया। उसके पिता के समय चोरी की कोई बात न थी। वे स्वय देखते थे और हिसाब साफ रखवाते थे। सुरेश बाबू ने लगान की वृद्धि तो दिखायी, मुकद्दमो मे वृद्धि से अधिक खर्च था। जमीदारी के और बहुत-से हथकण्डे थे जो निरू की समझ मे नही आये। सुरेश कच्ची रसीद देते थे। पन्द्रह के पट्टे पर जबानी पच्चीस तय कर लेते थे। लोगो से बेगार लेकर खर्च का

हिसाव जोडते थे।—वबूलो की विक्री मे आधी रकम साफ कर जाते थे।

इस प्रकार दो-तीन रोज निरू ने खाता देखते हुए पार किये। सुरेश का स्नेहवाला स्वर मन्द पडने पर भी निरू की भक्ति अचल रही। कल ब्रह्मभोज होगा। आज से तैयारियाँ शुरू हो गयी। आटा-घी आदि सुरेश के स्वस्थ क्षणो मे आ चुका था। न्योते फिर चुके थे। लोगो ने सलाह पक्की कर ली थी। एकान्त मे पहले वहुतो ने ओजस्वितापूर्वक विरोध किया था, कहा था, सीधा लेंगे, उनके यहाँ जाकर खाना ठीक नही, वहाँ औरते वेलाने जायँ, यह अपमान की वात है। कुछ लोगो ने कहा, कहा जाय कि गाँववालो की सलाह है कि मालिक कथा सुनें और फिर उसका ब्रह्मभोज किया जाय,—कुछ जन दूसरे गाँवो से भी वुला लिये जायँ। लोगो को वात वहुत पसन्द आयी। उन्होने कहा कि इस तरह दूसरे गाँव-वाले भी हमारे साथ रहेगे तो कहने की कोई वात न रहेगी। फिर सुरेश वावू से ऐसा कहे कौन, यह विचार होता रहा। कहा गया कि मुखिया कहे। पर मुखिया सुरेश वावू के सरस मुख और अपनी मधुर कथा की कल्पना कर मुकर गये, कहा—क्या हमारा ही जी भारू है? तव तक किसी ने कहा—मालिक हमारे गाँव के राजा है, राजा मे भगवान् का अश रहता है, राजा का धन, उनके घर पर भी ग्रहन करने पर ब्राह्मण को दोख न लगेगा। वात लोगो को पसन्द आयी और मुखिया यह सवाद देने के लिए तैयार हो गये। एक ने आपस मे दूसरे को मुखिया की पत्नी सम्वन्ध से याद करते हुए इशारा किया। कडाही पर कौन कौन वैठेगा, निश्चित हो गया, और यथासमय लोग डेरे पर आकर इकट्ठे होने लगे। अगर दो-एक रोज पहले सुरेश वावू से सलाह ली होती तो उन्होने इन्कार कर दिया होता।

धीरे-धीरे, शाम हो जाने पर, प्रवन्ध जोरो पर आया। नीली को गाँव की लडकियो के वीच वडी खुशी है, जैसी जनता के वीच नेता को होती है। विस्तर विछे हुए। चारो ओर वडी-वडी परातो पर माडा हुआ आटा और मैदा रक्खा हुआ। लालटेन और मशाले जलती हुईं, वडे आँगन के वगल गुइल। विछे विस्तर और पत्तलो पर स्त्रियाँ कचौडियाँ वेल-वेलकर फेंक रही हैं। साथ गीत चल रहे हैं। कार्य की महत्ता से शोरगुल वढा हुआ। एक वगल निरू वैठी हुई मन मे अनेक प्रकार की आलोचना-प्रत्यालोचना मे लीन। इसी समय एक युवती ने घूँघट हटा-कर उसकी तरफ देखकर पूछा, "ए गुइयाँ, व्याह के गीत तो नही सुनने की इच्छा?"

"सुनाओ!" मन्द हँसकर देखती हुई निरू वोली।

"तुम्हारा व्याह कव हो रहा है?" चपला सखी ने स्वर मे दूरदर्शिता सूचित की।

"वहुत जल्द।" निरू गम्भीर होकर वोली।

"वडी उतावली होगी?" मर्मज्ञता से देखती हुई।

"रात को नीद नही आती, तारे गिना करती हूँ, कमरे मे घन्नियाँ।" वैसी ही गम्भीरता से निरू ने कहा।

युवती जोर से हँस पडी। उसकी सास कुछ दूर उसके पास ही वैठी गीतो का

नेतृत्व कर रही थी। उसके हँसने के साथ ही गीत बन्द हुआ था, "क्या ही ही ही ही कर रही है, चल बेल जल्दी।" कहकर, निरू को देखकर मुँह फेरकर नये गीत के प्रारम्भ मे स्वर भरा।

वहू ने फिर प्रश्न किया, "तो इतनी बेचैनी क्यो सहती हो? ब्याह कर लिया होता।" चलते गीत के महोच्च स्वर की छाया मे रहकर पूछा।

"इच्छा तो थी, पर अच्छा कोई देख ही नही पडा।" निरू वहू की कचौडी देखती हुई बोली। वह पहले मे अभी तक पूरी न हुई थी। वहू भी रस को छोड़-कर कर्कश कचौडी की चारुता बढाने मे न थी।

पूछा, "तो इन्हे तुम्ही ने पसन्द किया है?"

"हाँ।"

"कहाँ के है?"

"अब तो विलायत के कहना चाहिए।" निरू अपना सेण्टेड रुमाल नाक से लगाकर बोली, जैसे घी की तीव्र सुगन्ध से उकता गयी हो।

वाक्य ने वहू के हृदय को हिला दिया। सँभलकर सूक्ष्मदर्शी आलोचक के स्वर मे पूछा, "कैसे तुमने उन्हे देखा?"

"वे हमारे यहाँ आया करते है, वही खाना खाते है, कभी-कभी भाई साहब के साथ।" निरू जान-बूझकर कह रही थी।

"घर मे काम है। मैं अभी आती हूँ। दूध जल जायगा। दुधहँड उतारकर रख देना है।" कहकर युवती उठी और आपाद-मस्तक ढकी हुई बाहर निकल गयी।

निरू सभ्यता के विचार से बैठी थी। उसके जाने पर मन को कचौडियो का पकना देखने की ओर लगाये। एक साथ मोटी-मोटी कितनी पड और निकल रही थी। निरू निश्चय कर रही थी कि उसका भीतरी भाग कच्चा रहता होगा। इसी समय "हाँ—हाँ—हाँ" की आवाज आयी। दरवाजे के पास बैठी हुई स्त्रियाँ चिल्लायी। स्वर मे समझ भरी हुई।

"क्या है?—क्या है?"—कडाही पर बैठे मर्दो ने आवाज दी, स्वर से विषय की अज्ञता सूचित होती हुई।

"मर गया आकर, देखे हुए था जैसे, चमार कही का!" एक वृद्धा ने बेलना उठाकर कहा, "जाता है या दूँ एक तानकर कनपटी पर?"

प्रकाश काफी था। तब तक औरो ने भी देखा, "इसने तो पैर रोप दिया! हद है। जाता है या दिया जाय परसाद?" कडाहीवाले उठकर बोले।

निरू ने भी देखा। तुरन्त उठकर पास चली। 'छूना मत उसे"—इधर की स्त्रियो ने आतुरता से कहा। निरू को हिन्दू-सस्कारो ने जैसे जकड लिया। ज्यो-की-त्यो खडी रह गयी। पर दृष्टि आगन्तुक से बँधी हुई।

"दीदी।" रामचन्द्र बोला। जसे बडे कष्ट से बोल पाया हो, आँखें छलछलाई हुईं। वह उसी को खोज रहा था। छाये वाष्प की आँखो से दृष्टि रुद्ध हो रही थी, पुन अनेक आदमियो मे आदमी-ही-आदमी देख रहा था, परिचित कोई मुख नहीं। इस समय जो कुछ समझ मे आया वह अवज्ञासूचक स्वर था। बालक गया भी वही तक जाने के लिए था। वह जानता था, आज ब्रह्मभोज है और ऐसे शुभ मुहूर्त्त मे

वहीं तक मेरी गति है, उससे अधिक एक अछूत की नही होती, मैं नाई-कहार की इज्जत भी नही रखता, इसीलिए दूर, दरवाजे पर खडा, जिसके लिए गया था, उसे खोज रहा था। बालक की मुखाकृति और आमन्त्रितो की अवज्ञा से निरु की सहानुभूति उद्वेलित हो उठी। पर पैर न उठे। देह और प्राणो की भेदात्मिकता का स्पष्ट रूप उसके भीतर और बाहर लक्षित हो रहा था।

"क्या है रामचन्द्र!" उसी सहानुभूति के स्वर मे निरु ने पूछा, उनके दर्द की अव्यर्थ दवा हुई। आँखो मे आँसुओ का तार बँध गया। बालक खडा सिसकियाँ भर-भरकर रोने लगा। यह उसके लिए, निर्दोष के लिए कितना बडा अपमान था, वहाँ कोई नही समझा, उसकी प्रकृति रुला-रुलाकर समझा रही थी। भाव-रस की बूंदें कपोलो मे बह-बहकर पृथ्वी पर टपकी। कुछ देर बाद, बरसे हुए मेह के बाद के आकाश की तरह बालक का मन आप हल्का हो गया, जैसे क्रोध और अपमान का आँसुओं द्वारा पूर्णरूप से बदला चुका लिया गया और यह कठोरता का कोमलता मे दिया उत्तर अन्तर्यामी के समझाने के लिए रह गया, भविष्य के विश्व के निर्माण के लिए। निरू प्राणो मे उसके बिल्कुल नजदीक थी, जैसे अपने आँचल से उसके गाल और आँसू पोछ रही हो। सुरेश दूर कुर्सी पर बैठे देखते हुए।

निरू के कोमल भाव के लेप से बालक बिल्कुल शान्त हो गया। मराल-कण्ठ पर झंकृत वीणा-वादिनी के स्वर-सा परिष्कृत हिन्दी मे बोला "दादा ने कहा है।" सुनते ही निरू जैसे नयी चेतना से आप्राण पुलकित हो गयी, सम्पूर्ण एकाग्रता दोनो आँखो से निकलकर बालक की दोनो आँखो पर आशीर्वाद की तरह न्यस्त हुई। बालक कहता गया—"हम आपके बडे कृतज्ञ हैं—दादा ने कहा है—जो आपने बीस रुपये की स्कालरशिप देने की आज्ञा की; पर चूंकि मैं अपने भरण-पोषण भर के लिए उपार्जन कर लेता हूँ, इसलिए आपकी कृपा का फल दूसरे के लिए छोडता हूँ। इस गाँव मे हमारी जो स्थिति है, इससे हम यहाँ रह नही सकते, यह आप समझती होगी। अन्य जिन कारणो मे किसी को गाँव मे रहने का मोह होता, वे हमारे लिए नही रहे। हम आपके कुएँ मे पानी भर भरने के गुनहगार थे, हालाँकि कुआँ हमारा ही खुदाया हुआ है। फिर भी, खेत बेदखल हो जाने के कारण आपकी जमीन पर है, आपका है। आप ज्यादा जनो के लिए हैं, मैं अकेला हूँ। सिर्फ घर है। पर आगे बिना मरम्मत के पुराना होकर, थोडा-बहुत बैठकर, वह भी नियमानुसार आपका होगा। इस तरह यहाँ हमारा कुछ नही। मैं आज ही आया हूँ और घरवाली को लेकर आज ही चला जाऊँगा।" कहकर, प्रणाम कर बालक लौट पडा, फिर उधर नही देखा।

निरु के प्राण जैसे बालक के पीछे लगे हुए उच्च स्वर से पुकारकर कहते गये—'रामचन्द्र लौट आओ, तुम्हारा जो कुछ था, वह सब तुम्हारा ही है। तुम्हारे लिए जैसे स्नेह सगे के लिए, सत्य मनुष्य के लिए, पहले स्थान है।' पर निरू चित्रार्पितवत् खडी रही।

दूध उतारने के बहाने युवती घर गयी। पति वही घर ताक रहे थे। युवती के मन मे सुरासुर-करो की कंपित रज्जु से जो समुद्र मन्थन हो रहा था, उसका निकला हुआ गरल पति को एकान्त मे बुलाकर, महादेव की तरह का समर्थ समझ, अपनी देवता-समाज की रक्षा के लिए सावधानी से पिला दिया।

बिटिया रानी की जिनसे सगाई हो रही है, वे विलायत से लौटे हुए हैं, सुरेश बाबू के साथ बैठकर जेंये हुए, इस तरह अपने साथ इन्हें भी वहा ले गये है। युवती ने बडे ढग से बिटिया रानी से बाते करते हुए यह मतलब की बात निकाल ली। इनके साथ पान-पानीवाला सम्बन्ध रखना ठीक न होगा। ये इस तरह गाँव को भ्रष्ट कर देंगे, सबके साथ बिटिया भी बैठी है। गीले आटे का छुआव है। ऐसा जान बूझकर धर्म लेने के लिए किया गया है कि फिर आगे कहने का मुँह न रहे। बिटिया सिर्फ देखने को उतनी बडी हो गयी है, शऊर बिलकुल नही है। युवती दिल्लगी के पद से दिल्लगी करने लगी तो वे अपने ही मुँह ब्याह की बात कह चली। भगवान की इच्छा थी, नही तो कल किसी का धर्म न रह जाता।

पति मे एकान्त सामीप्य प्राप्त कर फिसफिसाते मधुर विश्वस्त स्वर से युवती ने कहा। महावीर सुनकर भौंएँ कुटिल कर पदक्षेप से कोने मे खडी की तेलवाई लाठी लेकर बाहर निकला। युवती ने मुडकर देखकर कहा, "किसी से लडाई न करना, अभी से कहे देती हूँ।"

"बैठ चुपचाप," गम्भीर स्वर से कहकर धर्म-रक्षा के लिए सन्देशवाहक अग्रदूत की तरह महावीर बाहर निकला, और गाँव के मुखिया के द्वार पर पहुँचकर जोर से लाठी का गूला दे मारा और "मुखिया हो" कहकर ऊँची आवाज लगायी।

मुखिया थे। बाहर निकले। अँधेरे मे मुस्किराकर महावीर से पूछा, "क्या है, इतनी रात कैसे आये ?"

महावीर ने सक्षेप मे हाल कहा। मुखिया महावीर न थे। पुलिस, महाजन और जमीदार के प्रति उनकी समदृष्टि थी। मन मे अपना मतलब गाँठकर महावीर को बढावा देकर गांव के चार भलेमानसो को बुला लेने के लिए कहा। साथ-साथ इस धर्म की रक्षा के उद्देश से आये महावीर को धन्यवाद देना भी न भूले।

जो लोग कडाही मे थे, उन्हे महावीर जानता था, इसलिए न्योतेवाले दूसरे लोगो को बुलाने चला, जिनकी दूसरो पर धाक थी। अत्यन्त आवश्यक समस्या है, कहकर चार-पाँच अच्छे किसान ब्राह्मण एकत्र कर लिये और मुखिया के यहाँ लिवा लाया। मुखिया बैठे हुए तम्बाकू थूक रहे थे। द्वार पर दिया भी मँगवा लिया था। अपने विचार के निष्कर्ष पर भी पहुँच चुके थे और भविष्य मे प्राप्त उनके फल की कल्पना कर रहे थे कि महावीर आदमियो को लिवाकर पहुँचा। बार-बार कहना पड़ेगा, इसी विचार से वहाँ विषय की चर्चा नही सुनायी। नमस्कार-पलागो करके समागत ब्राह्मण चारपाई पर बैठे।

महावीर को मर्म तक देखते हुए जैसे, आये हुए आदमियो के सामने समाचार

कहने के लिए मुखिया ने आज्ञा की। महावीर धर्म के रक्षक श्री रामचन्द्रजी का स्मरण कर कह चला और लोगो को शकित, नकित, त्रस्त, क्षुव्व, उद्वेलित और धर्म की रक्षा के लिए वद्धपरिकर करते हुए कथा समाप्त की।

"क्या राय है ?" मुखिया ने पूछा।

"जैसी पच की राय।" वलई सुकुल वोले।

"हाँ भाई, पच परमेसुर वरावर है।" कालिका मिसिर ने कहा।

"रामअधार गाँव का साथ छोडनेवाले नही।" जोरदार गले से रामअधार पाण्डे ने कहा।

देवीदीन दुवे जनेऊ की कसम खाकर वोले, "सव आदमी सलाह कर लेव, फिर देख लेव देवीदीन आगे ही है, नही तो यह छानवे नही तांत।"

महावीर से न रहा गया। किसी को अस्लियत पर न आते हुए देखकर गर्म पडकर वोला, "भाई सुनो, धर्म पहले है। भगवान धर्म के लिए वनवास को गये और रावण को मारा। हमारे सामने तो वस पूडी ही कचौडी है।"

"अरे तो कौन पहुँचा पेले देता है ?" वलई वोले।

"यह सिडी है।" कालिका मिसिर ने कहा, "जैसे यही भगवान को जानता है। हम स्नान कर रामायण पढे विना पानी नही पीते। सलाह कर लेव, जैसी ताल पडे वैसा किया जाय—क्यो मुखिया ?"

"हाँ भाई," ढीले स्वर मुखिया वोले, "अव हमारा तो समझा-वूझा नही कि कहाँ विवाह हो रहा है। हम तो जानते हैं कि मालिक हैं, वुलाया है, अपनी कडाही है, कुछ दोख नही।"

रामअधार जीभ से ओठ चाटकर वोले, "मुखिया, समझदारी की वात तो यही है, फडफडाना ठीक नही। सव काम सलाह से होना चाहिए।"

"तेरे तो लार टपकती है पूडी देखकर।" महावीर से न रहा गया।

देवीदीन ने कहा, "सव खायेंगे तो तू उपास न करेगा। पाव-भर औरो से ज्यादा खायगा। वहुत वलक मत। पचो की राय से काम होगा। मुखिया पुराने है, इनको आगे-आगे चलने दे।"

"भाई सुनो," मुखिया वोले, "आँख और कान से चार अगुल का फरक है। वस समझ लेव।"

समझ मे किसी के नही आया, पर सव समझदार की तरह सर हिलाने लगे। "तो क्या कहते हो मुखिया ?" वलई ने पूछा।

"भाई सुनो," मुखिया सर झुकाये और आँखें उठाये हुए वोले, "हम तो कह चुके। पाप देखे का है सुने का नही।"

सहमत और असहमत दोनो भाववाले एकाग्र होकर सुनने लगे। कुछ देर तक जवाव न मिलने पर मुखिया ने फिर कहा, "जगन्नाथजी मे सातो जात के लोग एक साथ खाते है। घर लौटकर अपना-अपना धर्म-कर्म करते है।"

अभी लोगो की समझ मे विशेप वात नही आयी। सिर्फ रामअधार को कुछ आशा वँधी और महावीर जगा।

फिर भी किसी को कुछ कहते न देखकर मुखिया वोले, "जव कहो कि रेल मे

मुसलमान, किरस्तान सब रहते है, पानी न पियँगे धर्म चला जायगा, तो इस तरहँ धर्म नही जाता। कहा है, 'आपतकाले मर्जादा नास्ति।' हमारे गाँव के मालिक हैं। कहा है, 'राजा जोगी अगिन जल इनकी उलटी रीति।' न जाने कब क्या कर बैठे। इनसे विग्रह ठीक नही ! फिर हमारे अपन नही। और हमारा सरबस इनके हाथ मे है। काछी, कुर्मी, तमोली, तेली, बरमभोज करते है, सब लोग जाते हो। खाते हो और दच्छिना ले आते हो। तब धर्म कहाँ बह जाता है ? हमारा इनका जितना व्यवहार है, उतना न तोडना चाहिए, क्योंकि हमारा इनका सदा सम्बन्ध-व्यवहार रहेगा। ये जिमीदार है, हम रियाया। फिर जब कडाही हमारी है तब क्या बात है, चाहे जिनके घर ब्याह करते हो ये।"

"ब्याह हो जायगा तो भी खावेंगे सब लोग ?" अकेले विरोध की पूरी शक्ति रखने की दुर्बलता को अस्वीकृत करते हुए महावीर ने पूछा।

"यह तो मूसर है पक्का, न आज समझें, न कल।" सब लोग उठकर मुखिया से पैलगी करके अपने-अपने घर चले। महावीर परास्त होने पर भी मन से पराजय स्वीकार न करता हुआ कन्धे पर लट्ठ रक्खे सोचता हुआ चला।

सबके चले जाने पर मुखिया उठकर डेरे चले सुरेश बाबू से मिलने, यह सोचकर कि आज रात-भर जगमग रहेगी।

महावीर घर आकर पत्नी से बोला, "सब-के-सब चमार हैं री, जायँगे। धरम-धरम करते ही हैं, जी से डरते हैं कि खेत छूट जायँगे।"

सत्रह

रामचन्द्र के चले जाने पर निरू को एक जबरदस्त धक्का लगा। वह उस जगह जाकर अवस्थित हुई, जहाँ उसकी अक्लेद नारी-सत्ता है—समस्त विश्व को नारियो की एक ही चेतन सस्कृति, जो स्वय रीति-नीतियो का सृजन करती है और तदनुकूल चलने की शिक्षा देती है। निरू ने सोचा, रीतियो की जो रगीन साडियाँ समय-समय पर शोभा-वृद्धि के लिए वह पहनती है, वे आत्मिक सौन्दर्य पर पर्दा डाल देती हैं, यहाँ तक कि देह का भी पूरा सौष्ठव उनके कारण स्पष्ट नही होता, पुन चिक के भीतर की महिला की तरह यह दूसरे के मुख की रूपरेखा भी साफ नही देख पाती।

सोचा, जिन सामाजिक रीतियो के कारण कुमार जैसे शिक्षित मनुष्य को पीडा पहुँचती है, उनका समर्थन करके वस्तुत ज्ञान की ओर बढने का उसने विरोध किया हैं, यह रीति के अनुसार धर्म नही, जिसे कही भी सहारा नही मिला, वह समझदार के सहारे की आशा करता है, अगर वहाँ से भी निराश हुआ, तो चाहे जितने भी पुष्ट और अनुकूल तत्त्वो पर वह समझदार अवलम्बित हो, एकाएक

प्रबल भूकम्प से गिरे सुदृढ ऊँचे सौधो की तरह वे तत्त्व नष्ट-भ्रष्ट हो अपनी आदिम सत्ता मे पर्यवसित होते रहते हैं; वह जमीदार है, उसका पहला कर्तव्य पीडित की रक्षा करना है, फिर कुमार देश और काल के अनुसार गुण भी धारण करता है, जो देश और काल की पीडा के मिटानेवाले हैं, ऐसे मनुष्य ने मनुष्यता के मार्ग पर क्या सोचा होगा उसके लिए !

निरू क्षुब्ध हो उठी। कल्पना मे देखने लगी, निस्सहाय एक शिक्षित की दृष्टि गाँव की दृष्टि-दृष्टि से फिर रही है, वडे स्नेह से उनसे सहयोग चाहती हे, उन्हे क्षुद्र सीमा से वँधी रहने का ज्ञान देकर वृहत्तर की तरफ ले चलने के लिए, अपने वडप्पन को भूलकर उन्हे अपने मे मिलाने के लिए, फिर भी चारो ओर से दृष्टियो द्वारा जहर उस पर क्षिप्त होता हुआ, शिक्षित चुपचाप सहन करता हुआ, मन-ही-मन उनके प्रसार की कामना करता हुआ, उन्ही की अवज्ञा के फलस्वरूप हमेशा के लिए अपनी प्रिय पितृभूमि से नतमस्तक हो चलता हुआ। देखा, वह दृष्टि सहानुभूति की आशा से निरू पर भी स्थित हुई थी, उसे समझदार समझा था, पर वह हल्की तुष्ट करनेवाली दृष्टि उसे भी भार मालूम दी—उसने भी उसका तिरस्कार किया, वह उस पर से भी उसी धैर्य के साथ उठ गयी। देखा, उन आँखो मे घृणा नही—केवल एक समझ है। वह दृष्टि की समझ उसके समस्त पर्दे पार कर जहाँ वह अचल रीतियो की गोद मे वैठी हुई उन्ही की तरह दुर्वल हो रही है वहाँ तक पहुँचकर उसे देख चुकी है। वडी ग्लानि हुई। वह इतनी दुर्वल है ! इतनी सहानुभूति करते ही जैसे वही दृष्टि निरू को प्राप्त हो गयी। उसी दृष्टि से उसका तादात्म्य हो गया। वह जीवन के भीतर से क्षिप्रगति से उठने लगी और क्षणमात्र मे वहाँ के समस्त जीवन के ऊपर हो गयी। उसने स्पष्ट अनुभव किया, वह वहाँ के सभी लोगो से ऊपर, वहुत ऊपर है। वहाँ के समस्त मनुष्य एक अन्धकार मे पडे हैं। एक वार देखकर फिर न देख सकी। वहाँ न रह सकी। उस विकृति के प्रति उसे हार्दिक घृणा हुई। धीरे-धीरे अपने कमरे की ओर चली और उसी दृष्टि को लिये हुए, उसी उच्चता के चरण-क्षेप से। वहाँ का जो कुछ भी उसे स्पर्श करने के लिए आता है, यह सव जैसे कलंकित हो, गिरा देनेवाला। वहाँ की आकृति, स्वर, सव जैसे प्रतिक्षण, प्रति इंगित से अपने पतित होने की सूचना दे रहे हो। इन्ही से वह सहयोग किये हुए है और यह कौन-सी सत्ता, कौन-सी चीज है, जिसने स्पर्श मात्र मे मानव और अमानव, स्वर्ग और पृथ्वी का वोध करा दिया ? निरू उसी तरह भावनयना अपने पलँग पर वैठ गयी। एक छोटी मेज पर दीपक जल रहा है।

निरू उसी ऊर्ध्व दृष्टि से देखने लगी, जो जल सरोवर के किनारो से वँधा हुआ सरोवर का जल कहलाता है, न वहता हुआ, वह मुक्त मेघ से मुक्त होकर आया है और तप से वाष्पाकार होता हुआ सरोवर के किनारो को छोडकर ऊपर उठता—मुक्त होता है। सोचा, उसी जल की कुछ वूँदें नदी मे डाल दी जायँ तो वे नदी के जल की व्याख्या प्राप्त करती है, फिर समुद्र से मिलकर समुद्र के जल की, इस तरह, जल की व्याख्या विशेष भले दी जाय, है वह जल सूक्ष्म रूप मे एक ही प्रकार, स्थूल रूप मे कूप, सर, नदी, समुद्र का वनता हुआ, भिन्न रूप, गुण और व्याख्या प्राप्त करनेवाला।

निरू को हृदय का बल प्राप्त हुआ। वह कुमार को चाहती है, उसने दृढ़ कुमारी की तरह सोचा, कुमार ने भी उसे देखा है, वह भी प्यार करता है या नही वह नही जानती, पर दृष्टि से पहले ही दर्शन मे जो कुछ कुमार से उसे मिला है, उसके अतिरिक्त प्यार की दूसरी व्याख्या वह मानने के लिए तैयार नही, अगर होगी भी तो भी वह उस पहली अनुभूति की तरफ होगी—उसी के पाने की इच्छा रक्खेगी। ससार मे भी वह वस्तु, हृदय मे वैसी मधुरता भर देनेवाली, उसे नही मिली। यामिनी उस तत्त्व के मुकाबले एक जड विशेष है। वही विद्वान् उसके मकान मे जूता पालिश करने के लिए गया था। यह कितना बडा आदर्श है। ब्राह्मणत्व का कही नाममात्र के लिए अहकार नही। योरप की शिक्षा का ज्वलन्त उदाहरण। कहाँ विश्वविद्यालय के सम्मान्य पद की प्रतियोगिता, कहाँ सामान्य जूता पालिश करना।—एक ही व्यक्ति इन दोनो कार्यों की समता रखता हुआ। कहाँ यह और कहाँ यामिनी, आत्म-सम्मान-लोलुप—मनुष्य का रूपमात्र रखने-वाला।

'कुमार अविवाहित है, मैं कुमार को चाहती हूँ, भले वह बगाली नही; पर मनुष्य है, कुछ हो या न हो, मैं चाहती हूँ, पहली बात यह है।' सोचती हुई निरू कुछ तनकर बैठी, 'मेरे है कौन! मैं लज्जा करूँ भी क्यो? विवाह मन का है, मेरा मन जिसे नही चाहता, मैं क्यो उससे विवाह करूँ?'

साथ ही निरू को गाली देनेवाली बात याद आयी, सोचा—'वह गाकर चिढानेवाला कुमार ही होगा!' 'कुमार' शब्द के अस्फुट उच्चारण मे वह आत्म-सम्प्रदान कर रही थी, 'कितना चालाक है। मैं जब गयी तब मौन। माँ की जब ऐसी बगला है, तब उसकी क्यो न वैसी होगी।'

'मैं अगर मिलूँ भी तो क्या बुरा है? वे मुझे लडकी समझती है, इसीलिए बुलाया भी। मैं नही जा सकी थी। कमजोरी। यह ठीक नही। लज्जा अनुचित थी। पहले तो पति को बुलाते भी किसी को लज्जा नही लगी, न रुक्मिणी को लगी न सयोगिता को। वह मेरी कमजोरी थी। दादा दादा हैं, बस। मैं उनका अहित तो चाहती नही, फिर उनके सामने मेरी आँखे क्यो झुकें? अपने लिये मैं जैसा उचित समझती हूँ, क्यो नही कर सकती? मुझे उनसे मिलना चाहिए। अभी वे गयी न होगी। अगर मैं बुलाऊँ तो ठीक नही, क्योकि पहले वे बुला चुकी है, जमीदारी का अभिमान सूचित होगा, फिर हम लोग गुनहगार है, अत्याचार इधर से हुआ है, उन्होने सहन किया है।'

निरू ने दासी को बुलाया। आने पर नीली को बुला लाने के लिए कहा। निरू की इच्छा चलते-चलते रामचन्द्र की माँ से मिलने की हुई। रामचन्द्र के आने के बाद, यह मालूम कर कि कुमार बाबू आये हुए हैं, नीली रामचन्द्र के जाने से पहले उसके घर पहुँची और अब तक वहाँ पुरानी पड गयी। जितनी बातें पेट मे थी और कहने लायक उसने समझी, सब कह दी, और जानने लायक जो उसे मालूम दी, सब पूछ ली। कुमार से नीली का ऐसा अकृत्रिम व्यवहार देखकर सावित्री देवी को दुख के समय भी हँसी आ गयी। पुत्र के कार्य-वैचित्र्य से उन्हे प्रसन्नता हुई। नीली से उन्होने भी बहुत-सी बाते की और भोजन कराया।

सावित्री देवी ने नीली से कहा, "तुम्हारी दीदी हमे गरीब जानकर हमारे यहाँ नही आयी—क्यो ?" नीली मुस्किराकर रह गयी। सावित्री देवी उसे उभाडने के लिए फिर बोली, "तुम्ही ने मना कर दिया है, लोग कहते थे।" नीली ने मार्जित गले से प्रतिवाद कर दिया—"मैंने तो उन्हे और चलने के लिए कहा था, यह भी कहा था कि दादा ने तो जाने के लिए कह भी दिया है, पर दीदी फिर न जाने क्यो नही आयी !"

कुमार मुस्किराया। सावित्री देवी इतने मे दूर तक समझ गयी। पर सन्देह न रहे, इस विचार से कहा, "तुम्हारे दादा कौन बडे ज्योतिषी है, जब तुमने बताया तब मालूम हुआ कि तुम्हारी दीदी वहाँ जा रही है।"

"मैंने पहले कब कहा ? दादा ने पूछा तब कहा।" नीली निश्चिन्त हो गयी। देवी सावित्री का अनुमान पूरा उतरा।

इस तरह नीली दरबार जमाये हुए थी, इसी समय निरु की दासी गयी और 'बुलाती हैं' कहकर चुपचाप साथ लेकर बाहर चली आयी। नीली इस बार भी दासी से पहले, हाँफती हुई, बहन के पास पहुँची और पूछा, "दीदी, तुमने बुलाया है ?"

"हाँ, तू गयी कहाँ थी ?"

"कुमार बाबू के यहाँ।" पलँग से बँधा मशहरी बाँधनेवाला लट्ठा पकडे, नाचती हुई जैसे प्रसन्नता से नीली ने कहा।

"लड्डू बँट रहे थे न कुमार बाबू के यहाँ ?" स्नेह के स्वर से निरु ने कहा।

नीली विषम दृष्टि से देखती रही।

हँसकर निरु ने पूछा, "क्या बातें हुई कुमार बाबू से ?"

नीली फिर भी कुछ न बोली।

निरु ने कहा, "मैंने तुझे बुलाया था भेजने के लिए कुमार बाबू के यहाँ, पर तू हो आयी, अब क्या जायगी !"

"जाऊँगी क्यो नही ?" सीधी होकर नीली ने कहा।

"तो पहले बता कि वहाँ क्या बातें हुई ?"

"कुमार बाबू ने कहा—हमारे गाँव के जमीदार की बहन आ गयी।"

"फिर ?"

"फिर कुमार बाबू की माँ ने कहा—गाँव भर को खिला रही है, हमे पूछा भी नही। फिर मलिकवा की माँ गयी और चलने के लिए कहा। कुमार बाबू उसे साथ ले जाने को राजी हो गये। फिर मैंने कुमार बाबू से उनका पता पूछा।"

निरु मन-ही-मन खिल गयी। कहा, "वहाँ भी अड्डा जमाने का विचार है—क्यो ? क्या कहा ?"

"57 नम्बर लाटूश रोड ?"

"फिर ?"

"फिर कुमार बाबू की माँ ने कहा कि इसने मना कर दिया है, इसलिए इसकी बहन नही आयी। मैंने कहा—नही, दीदी तो आ रही थी।"

"दीदी तो आ रही थी ! नानसेन्स।"

"नही, मैंने कहा—दादा से बातें हुई थी, दादा ने बाद को जाने के लिए कहा

भी था, पर—फिर कुमार वाबू की माँ बोली—फिर तुम्हारी दीदी नही आयी—क्यो ?"

निरुपमा लज्जा से वही गड़ गयी, चलने का विचार जाता रहा। नीली का कान पकडा; पर धीरे से खीचकर छोड दिया। मन मे सोचा—'इसने न जाने और क्या-क्या कहा हो,' फिर पूछा, 'फिर क्या हुआ ?"

"फिर मुझे खाना खिलाया। कुमार वावू यहाँ खाना नही खायेंगे। यहाँ का पानी पीना पडेगा, इसलिए। स्टेशन पर खायेगे।"

निरुपमा गम्भीर हो गयी।

दासी खाने के लिए बुलाने आयी। निरू ने कहा, "नीली को ले जा, भोजन महाराज से यही रख जाने के लिए कह दे। कुछ देर बाद खाऊँगी।"

निरू की इच्छा खाने की न थी। पर नीली के सामने न कह सकी।

नीली चली गयी। निरू सोचती रही।

अट्ठारह

रामचन्द्र, मलिकवा की माँ और अपनी माँ को लेकर कुमार लखनऊ चला गया गाँव मे किसी से मिला भी नही। पहले से वह इसी धातु का बना हुआ है। किसी की समझ पर दवाव डाले, उसका ऐसा स्वभाव नही।

जव परीक्षाएँ पास की और एक सुन्दरी कन्या के धनी पिता भावी जामाता की कानपुर की इमारतें और विश्वविद्यालय की सर्वश्रेष्ठ पदवी देखकर उसके पिता के पास आये और कन्या के साथ दान मे यथेष्ट धन देकर उन्हे प्रसन्न करने के लिए कहा—पिता विवाह के पक्ष मे हो गये—माता की आँखो मे अदृश्य वहू का मुख कुछ-कुछ दृश्य हो चला—विवाह के लिए वे ललचा उठी, उसने किसी की समझ पर नासमझी नही की—सीधे विलायत की तरफ देखा। विलायत का नाम सुनकर कन्या के पिता खिचे, वे ऐसे न थे कि जो धन देकर धर्म भी देते।

विलायत से लौटकर, भारत के वृहत्तर समाज पर जो कल्पनाएँ उसने की थी—जाति-निर्माण का जो नक्शा खीचा था—इस पद-दलित धारा पर उसकी सहानुभूति की धारा जिस वेग से वहती थी—जिस सहृदयता से वह शिक्षित-मात्र को देखता था, वे सब, जीविकार्जन के क्षेत्र पर उसके पदार्पण करते ही सकुचित होकर, सूखकर अपने ही सूक्ष्म-तत्त्व मे विलीन हो गयी। पर उसने किसी की समझ पर नासमझी नही की। चुपचाप एक पेशा इख्तियार कर लिया, जहाँ किसी को धोखा खाने की वात न थी। वीच रास्ते पर उसका व्यवसाय लोग स्पष्ट रूप से देख सकते थे।

जव माँ की चिट्ठी मिली कि गाँव मे रहना दुश्वार है, शायद लोग जमीदार

पर दबाव डाल रहे है कि कुएँ मे पानी भरने न दिया जाय, तब ऊँची-ऊँची किताब और ऊँचे-ऊँचे मनुष्यो के व्यवहार की इस जानकारी ने तुच्छ जमीदार और गाँववालो के उस विरोध को उनकी स्थिति के अनुकूल हुआ जानकर उनके खिलाफ एक शब्द नही कहा, चुपचाप गाँववालो को अपने साथ ले आया, यह समझकर कि जूते की पालिश रोटियो का सवाल अच्छी तरह हल कर लेती है। और उसकी माँ जैसी मार्जित है, उनके विचारो को कोबरा की स्याही न लगेगी, रामचन्द्र के अभी अपने विचार कुछ नही, भविष्य मे उनकी अधिक पुष्टि की आशा है। केवल मलिकवा की माँ की चिन्ता हुई कि कही उसकी समझ कुन्द न हो जाय। उसे गाँव मे कष्ट था, विशेष काम कर नही सकती थी, उसका लडका जब पक्ष लिये हुए मरा तब, पक्ष छोडना ठीक नही—इस विचार से माँ बराबर उसे खाने-पीने को देती रही, चलते समय बुलाकर कहकर रोकर उसके आग्रह करने पर साथ लेकर आयी, तब उसकी समझ को धक्का न लगे इस विचार से उसने रामचन्द्र से मजाक मे कहा, "ब्रश और ब्राको की वस्तु का अगर तू निर्देश न करेगा, तो मलिकवा की माँ इस जिन्दगी मे न समझ पायेगी कि मैं क्या करता हूँ।" कहकर, दूसरे दिन, अपने जीविकार्जन के महास्त्र लेकर बाहर निकला।

लखनऊ मे कुमार अब तक काफी प्रसिद्ध हो चुका है। हैट-कोट पहनकर रास्ते पर बैठकर जूता-पालिश करनेवाला मामूली आदमी नहीं, फर्राटे मे अँगरेजी बोलता है, कोई-कोई कहते है विलायत भी गया हुआ है, अँगरेजी खतम किये हुए है, यह देश को शिक्षा देने के लिए ऐसा करता है कि न कोई बडा है न छोटा, यह चर्चा घर-घर है। चमार, जिस रास्ते से वह निकलता है, चौकन्ने होकर देखते है। चमार चार पैसे लेते थे, वह एक पैसा लेता है। बाजार तब से गिर गया है। लोग चमारो को हेय दृष्टि से देखते हैं। छावनी मे कुमार की बडी कद्र है। गोरे बडी प्रीति से उसे काम देते हैं उसकी बातें सुनते है। एक-दूसरे को देखकर मुस्किराते हैं। उसकी इज्जत करते हैं। वह भी योरप की, तरह-तरह की, उन्हे पसन्द आनेवाली बातें सुनाता है। बँगलो मे भी जाया करता है। सभी जगह यथेष्ट आमदनी होती है। उसके सीधे निरभिमान, प्रसन्न और प्रिय स्वभाव को सभी प्यार करते है। कभी-कभी लोग चारो ओर से घेरकर विस्मय, आदर और स्नेह की दृष्टि से देखते रहते है।

आज वह बँगलो की तरफ चला। कमल साधारण घरेलू सुन्दर पहनावे मे सजी फाटक के पास खडी हुई, आकाश भरकर उतरती हुई वर्षा की पीन श्यामच्छवि एकटक देख रही थी। मुख पर काव्य का नैसर्गिक प्रकाश पडा पृथ्वी और स्वर्ग को एक कर रहा था।

कुमार ने देखा। मन मे निश्चय हुआ कि यह विदुषी है। अपने कार्य के लिए आगे बढा। आहट पा कमल ने उसी भाव की दृष्टि से देखा। कुमार ने अँगरेजी मे कहा, "जूते पालिश करता हूँ। आप देखकर खुश होगी। मिहनत बहुत कम लेता हूँ।"

कमल भाव की आँखो से मुस्किराकर सोचने लगी, 'यह चमार है। थोडी-सी अँगरेजी पढ ली है। आजकल के बाबू अँगरेजी सुनकर खुश होकर काम ज्यादा

देते हैं।' हिन्दी मे पूछा, "तुम्हारा नाम ?"

"कृष्णकुमार," नम्रतापूर्वक कुमार ने कहा।

'कृष्णकुमार चमार, सानुप्रास है।' मन मे सोचकर, खुलकर कहा, "बडा अच्छा नाम है। अब तुम लोग भी अच्छे नाम रखने लगे।" सोचती हुई गम्भीर होकर बोली, "यह देश की उन्नति के लक्षण हैं।"

"जी हाँ," सारा मतलब समझकर, मुस्किराते हुए कुमार ने कहा।

"लेकिन तुम मुझसे अँगरेजी क्यो बोले ?"

"मैंने कहा मेम साहब नाराज न हो।"

"मैं मेम साहब नही।"

कुमार कुछ न बोला। कमल ने भाव स्पष्ट कर दिया, "अभी मेरी शादी नही हुई।"

"मुझसे गलती हुई।" क्षमा चाहते हुए जैसे कुमार ने कहा।

कमल लापरवाही से बँगले के सामनेवाले टेनिस ग्राउण्ड की ओर बढी, पीछे-पीछे कुमार।

"तुम अँगरेजी साफ बोलते हो, किसी साहब के यहाँ थे शायद ?"

कुमार को बडा बुरा लगा। पर प्रश्नकर्त्री का अनुमान व्यर्थ नही, सोचकर कहा, "नही, मैंने पढी है।"

इसे स्पर्द्धा समझकर बी ए फाइनल की विद्यार्थिनी कमल ने दबाने के भाव से कुछ तिरछे देखते हुए उँगली जरा ऊपर को उठाकर पूछा, "वह क्या है ?"

काम की तलाश मे आकर परीक्षा देते हुए कुमार को बुरा लगा, जैसे कोई बच्चे से पूछ रहा हो, पुन वह चमार है इसलिए बडी सभी बातें उसके लिए अनावश्यक, अप्रत्याशित-सी हो रही हैं—व्यक्ति होकर वह पद और मर्यादा मे बडा नही, तो बराबर है, पर यह विचार भी नही रहा, नही तो उँगली उठाकर इस तरह प्रश्न करने का क्या अर्थ, सोचकर, यथाभ्यास क्षोभ को दबाकर कहा, "बादल।"

"हाँ इस पर पाँच मिनट जरा अँगरेजी मे बोलो।"

प्रश्नकर्त्री की गम्भीर मुद्रा वैषम्य की दृष्टि से देखता हुआ कुमार बोला, "आये थे हरि भजन को ओटन लगे कपास," हो रहा है।

"नही, मैं तुमसे हरि भजन ही कराना चाहती हूँ, इसलिए कहती हूँ।"

"लेकिन पारिश्रमिक तो कपास ओटने से ही मिलेगा।"

"ऐसी कोई बात नही है।"

"तो इसका तो बहुत ज्यादा पारिश्रमिक होगा।"

"जब तुम पास होगे।"

"तो कितना पारिश्रमिक मिलेगा, अगर मैं पास हुओ मे सबसे आगे रहा।" कुमार ने मुस्कराते हुए कहा।

कमल चौंककर देखने लगी। कहा, "तुम जितनी आशा करते हो, उतना मुझे सन्देह है। पर दो सौ रुपये समझ लो।"

कुमार प्रसन्न हो गया, बोला, "सन्देह ठीक है, पर प्रश्न भी यों ही था है। अच्छा, आपका आदर्श किस कोटि का होगा।"

"अपनी अँगरेजी का आदर्श तुम्हें मालूम होगा तो मुझे समझाने में दिक्कत न होगी, तुम सीधी राहों पर चली हुई।"

"किताब तो मजी हुई था ही है। मैं यह और पूछता हूँ कि आपके विषय पर अँगरेजी में किताबें पढ़ना और उनका अनुवाद सुनाऊँ या हाल ही समझा दूँ। अवश्य आप 'चारुरू' पर वैज्ञानिक ज्ञान का नहीं सुनना चाहतीं।"

कमल को ऐसा कुछ ज्ञान न आ। पूछा, "तुमने कहाँ तक पढ़ी है अँगरेजी?"

"मैं लन्दन-विश्वविद्यालय से डी. लिट्. हूँ अँगरेजी-साहित्य का।" कुमार का गौरव न छिप सका।

कमला चकित हो गयी। नम्र होती हुई बोली, "तो आप यहाँ किस लिए एक बना रहता है?"

"यह स्वाँग नहीं, यह मेरे साथ आपका बात का मतलब है।"

कमल आग में डूबी हुई सी रही। गौरव अपनी इच्छा से भरकर उस युवक की दृष्टि से छिपा का प्रतिरूप प्रत्युत्पन्न किया न गया। जिसके कुमार उसके पास चलकर आया था। नम्र होकर बोली, "मैं बी. ए. क्लास की विद्यार्थिनी हूँ। आइए, मैं आपसे ... हूँ, आप ही ... कीजिए, मुझे कुछ दो घण्टे अँगरेजी पढ़ा जाया कीजिए।" कहकर, उसने दिनेश की ओर ताकती हुई कहा, "अवश्य ठीक है।"

"... मुस्कराहट से ... हो।" [illegible] कुमार ... न कह सका।

"आपकी जाति?"

"कान्यकुब्ज ब्राह्मण।"

कुमार ने प्यार से झुकी हुई ... और बैठने का इशारा कर ... कि कमरे में गयी, और समझ के ... की ... बाहर से आयी, कमला ने कहा— "... कुमार कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं; लन्दन से डी. लिट्., ... ने यह पेशा अख्तियार किया है।" कुमार का मन उदास कर दिया, "जूता पालिश ... है। मैं इन्हें अँगरेजी पढ़ाऊँगी, ... है, सुबह दो घण्टे के लिए, ... "

दिनेश बाबू प्रसिद्ध वकील थे। कमला ... की एकमात्र थी। मनो-विज्ञान के पूरे जानकार। धर्म और समाज सबके ऊपर उनकी स्वार्थी ... प्रतिष्ठित थी। ... किसी तरह निर्णय न कर, सोचा "... इस युवक को प्यार करती है। यदि भविष्य में दोनों ... के लिए ... को छूटा गया है? युवक विद्वान् और सुन्दर है, पुनः ब्राह्मण है। अवश्य इसका सामा-जिक बहिष्कार हुआ होगा। ब्राह्मणसमाज को एक योग्य मनुष्य प्राप्त हो सकता है।" कमल की बातें स्वीकार कर, देर तक कुमार से बातें करते रहे और बहुत प्रसन्न हुए।

उन्नीस

ब्रह्मभोज के दूसरे दिन निरुपमा नीली को लेकर लौट आयी। चित्त मे समाज के विरोध मे जगा हुआ क्षोभ बरावर उसे वहका रहा था, सोच रही थी, प्राणो की मैत्री के लिए समाज की आवश्यकता है, वैषम्य की सृष्टि करे—इसके लिए नही; जो समाज शान्ति नही दे सकता, उसका त्याग करना ही उचित है, और विवाह जो जीवन की ऋजु-कुंचित गति को सहजसाध्य और रसमय करने के लिए है, अगर रत्ती-भर अनुकूल न हुआ—सारी वृत्तियाँ विरोध पर रहीं तो किसी नीति या लोक-रुचि के विचार से करना आत्महत्या तुल्य होगा।

निरू कक्ष मे बैठी थी। विचार के वाद ही उसे वृन्त म्लान होते हुए स्थलपद्म की याद आयी। उसी का चित्र देखती हुई मन मे मुस्किरायी। नारी का रहस्यपूर्ण हृदय सहसा अपार शक्ति चमत्कार से जैसे खुल गया। सान्त्वना मिली। कक्ष के झरोखे खुले थे। वर्षा की आर्द्र वायु वहती हुई। एकाएक दृष्टि उस स्थान पर गयी जहाँ कुमार को सर्वस्वदानवाली दृष्टि से देखा था। एक गर्म साँस सिक्त वायु से मिलकर वह गयी। निर्जन बैठी हुई उसी जगह को देखती रही। कल्पना की कलियो की कितनी प्यालियाँ भरती-ढ्लकती रही। इसी समय दासी आयी। निरू ने नीली को वुला लाने के लिए कहा, खुद उठकर आईने के सामने खडी होकर वाल ठीक कर लिये।

"क्या है दीदी ?" चपल आती हुई नीली ने पूछा।

"चल, टहल आयें।" कहती हुई निरू जूते पहनने लगी।

हाथ पकड, घर से वाहर होकर सडक पर आते ही पूछा, "नीली, कुमार वावू का पता मालूम है ?"

"हाँ," खुश होकर गर्दन टेढी कर नीली ने कहा।

"तू अभी गयी तो नही ?"

नीली हो आयी थी। घर आने के आधे घण्टे वाद पहले पता लगाने गयी थी। लेकिन भीतर नही गयी। सिर्फ मकान पहचानकर चली आयी थी। वोली, "सिर्फ मकान देखने गयी थी।"

निरू सन्तुष्ट होकर चली। नीली के मन मे किसी प्रकार के उद्वेग का कारण न रह गया। हिवेट रोड से, लाटूश रोड और क्रमश कुमार वावू के मकान के पास दीदी को लेकर खडा कर दिया, वोली, "यही है।"

"आवाज दे।" लज्जित स्वर से निरू ने उत्साह दिया।

नीली दरवाजा भडभडाती आवाज देती रही। रामचन्द्र ने आकर दरवाजा खोल दिया, और निरू को देखकर भीतर वुलाये वगैर माँ के पास खवर देने के लिए दौडा गया। भीतर जाने की यह मुमानियत नही वल्कि वडी आवभगत है, यह निरू उसी वक्त समझ गयी और धीरे-धीरे लज्जिता नववधू की तरह पैर रखती वढती रही, तव तक देवी सावित्री आ गयी, और वगला मे आओ-आओ, कहकर, हाथ पकडकर वड़े स्नेह मे भीतर ले चली। नीली आँगन मे पहुँचकर राम-

चन्द्र से आलाप-परिचय करने लगी, रामचन्द्र के गाँव से लखनऊ का जो फर्क है, उसी हिसाब से अपने को श्रेष्ठ नागरिक मानकर पूछा, "लखनऊ कैसा है ?"

रामचन्द्र नीली से दबनेवाला न था। स्वर की पहचान करते उसे दिक्कत न हुई। बोला, "कलकत्ते के मुकाबले कूडाखाना।"

निरू ने देखा, छोटा पर सुघर घर है, हवादार, दोमजिला। इसके गृहस्थ की, साधारण अवस्था होने पर भी कलाप्रियता स्पष्ट है, इसकी प्रत्येक सजावट कहती है। सारी चीजें कायदे मे रक्खी हुई, देशी-विलायती फूलो के गमले बरामदे मे, पलँग, बिस्तर, कपडे साफ।

देखती हुई निरू ने पूछा, "माँ, यह सब आपका सजाया हुआ है ?" शुद्ध हिन्दी मे निरू ने पूछा, सावित्री देवी के साथ दोमजिले के सोनेवाले कमरे मे मकान देखकर जाती हुई।

"नही, माँ, मेरे आने से पहले सजावट के सामान कुमार ने ले रक्खे थे। घर की चीजे ले आकर मैंने सुघरे ढग से लगा दी है।" सावित्री देवी स्नेह से देखती हुई बगला मिले सम्बोधन से हिन्दी मे बोलीं; बिछे पलँग पर हाथ पकडकर निरू को बैठाती हुई, "यह कुमार का पलँग है," कहकर परीक्षा की दृष्टि से देखने लगी। बैठी हुई लज्जित निरू सप्रतिभ हुई कुमारी-कण्ठ से बोली, "अब आपको बडा कष्ट होता है। गाँव मे कितना काम आप करती थी। यहाँ कुछ सुबीता हुआ। पर कुमार बाबू की शादी आप क्यो नही करती ?"

उन्हे अपने समाज मे लडकी मिलना मुश्किल है, इस भाव को दबाकर सावित्री देवी ने कहा, "कुमार होश सँभालकर अपनी ही इच्छा से चल रहा है। उसके विलायत जाने मे उसके पिता की राय न थी। उसे खिन्न देखकर मैंने समझाया। जो कुछ थोडा-सा था भविष्य के अवलम्ब के रूप मे, वह कई साल कुमार के विलायत रहने पर खर्च हो गया। फिर उसके लौटने पर जो मुसीबतें आयी, वे तुम्हे मालूम है। और अब मेरी रुचि का तो रहा नही, जैसा समझेगा, करेगा।"

"लेकिन दुनिया मे दूसरे की रुचि भी देखनी पडती है। अगर किसी को," निरू एकाएक रुक गयी, जैसे उसके बनाते-बनाते विषय स्वयं स्वतन्त्र होकर बिगडा जा रहा हो।

सावित्री देवी ने कहा, "हाँ, माँ, ठीक कहती हो, ससार मे दूसरे की भी रुचि देखनी पडती है। अगर किसी को कुमार प्यार करता होगा, तो उसकी रुचि के अनुसार भी उसे चलना होगा। मेल के यही मानी हैं।"

"अच्छा माँ, कुमार बाबू तो विलायत हो आये है, जरूर यहाँ उनके मन मे मेम का रूप होगा। अगर वे मेम ले आयें या किसी ऐंग्लो इण्डियन लडकी से शादी करे, तो आपको बडी अडचन होगी ?" कहकर निरू मर्म मे छिपी हुई सावित्री देवी को बडी-बडी आँखो से देखती हुई मुस्किरायी।

"अडचन क्यो होगी, माँ ? पुत्र-कन्या का जिस पर स्नेह होता है, उसकी ओर स्वभावत माँ की स्नेह-धारा बहती है, यदि उस धारा के काटने के क्षुद्र कारण न हुए।" सावित्री देवी बाजार से मिठाई, नमकीन मँगाने के पैसे निकालने

चली, फिर वाहर जाकर रामचन्द्र को देकर अस्फुट शब्दो मे जल्द ले आने के लिए कहकर भीतर आयी।

उनके कुर्सी पर बैठने पर निरू ने कहा, "माँ, मैं रामपुर की जमीदार हूँ। फिर भी जमीदारी की तरफ से आप पर जो अत्याचार हुए हैं—आपके वाग और जमीन वेदखल किये गये है—आपको दूसरी तकलीफे पहुँचायी गयी है, इनका ज्ञान मुझे न था। इन सवके लिए आपसे माफी माँगने आयी हूँ, आपने मुझे बुलाया था, फिर भी मैं आपके वहाँ नही जा सकी। दादा का कहना था कि दूसरे भी बुलायेंगे और जाना होगा, न जाना व्यवहार के विरुद्ध होगा।"

मलिकवा की माँ पान लगाकर ले आयी। तश्तरी बगल मे रख दी। निरू ने एक इलायची उठा ली और मलिकवा की माँ को देखकर दुखी होकर--गर्दन झुकाकर सोचने लगी।

"क्षमा क्या है, माँ?" मलिकवा की मृत्यु तथा अपने दु खो की स्मृति से गम्भीर होकर सावित्री देवी ने कहा, "तुम्हारा था, तुम्हारा हुआ। ईश्वर जव स्नेह का धन—वुढापे का सहारा भी माता-पिता से छीन लेता है, तव वैसे साधारण अधिकार के जाने का क्या क्षोभ? मलिकवा की माँ को देखो!"

कुछ देर सहानुभूतिजनक मौन छाया रहा। मलिकवा की माँ खडी थी। आँखो से आँसू झरने लगे। वह वाहर चली गयी।

"माँ, तुम्हे देखकर वह विचार मन मे नही आता कि तुम दूसरे घर की हो। रामचन्द्र के लिए जो स्नेह तुम्हारा वहता है, उसी स्नेह का प्रवाह तुम्हारी दृष्टि से आता हुआ मैं अनुभव करती हूँ। तुम्हारी दृष्टि को मेरे सत्य और असत्य का पता अवश्य लग जायगा। और मैं वडप्पन नही जता रही। यह तुम समझती हो और तुम्हारे सामने सदैव मेरा छुटपन ही तुम्हारा श्रेष्ठ दान-स्नेह प्राप्त करेगा। कुमार वावू की रुचि मे मैं वाधा नही डालती। पर रामचन्द्र की पढाई के लिए हुई मेरी सेवा जो उन्हे मजूर नही हुई, इसके क्या यही मानी नही कि उन्होने मुझे समझाया कि रामचन्द्र पर उन्ही का अधिकार है। खैर, मैं उनके अधिकार पर हस्तक्षेप नही करना चाहती, सिर्फ कहना चाहती हूँ कि मेरा जो अधिकार था, उसका मैंने भी उचित प्रयोग किया है—आपके वाग और खेत ज्यो-के त्यो आपके होगे, जमीदार ने उन पर से अपना कब्जा उठा लिया है। आप कहे तो वाग की हैसियत जो नही रही, ठीक करा दी जाय।"

सावित्री देवी स्नेह से पूर्ण हो मधुर स्वर से वोली, "माँ, तुम्हारी सहानुभूति दूसरे को ठीक नही समझती है, मुझे उसकी पहचान है, पर यह ठीक नही, गाँव मे सभी तुम्हारे हैं, सवके लिए तुम्हारा एक ही भाव होना चाहिए। दूसरे इससे दुखी होगे। कानूनन वह सव तुम्हारा है। मुझे मिलना होता तो कानूनन तुम्ही मुझे मिली होती।" सावित्री देवी ने सीधे विचार से कहा। निरू हृदय की गहनता मे निश्चल थी, स्वल्प लज्जित हो गयी।

अपने को कुमारी-रूप से फिर सँवारकर वोली, "मलिकवा की माँ को तीन वीघे माफी देने का प्रवन्ध मैंने कर दिया है। वह जव तक जियेगी, खायगी, मैं आपसे और कुछ कहना चाहती थी, आपने पहले ही मुझे चोट पहुँचाकर निराश कर दिया।"

"चोट नही, मै कायदे की बात कर रही थी, पर तुम्हे दु ख पहुँचा हो तो मैं कहती हूँ, जैसा तुमने दावा पेश किया है,—रामचन्द्र पर तुम्हारा वैसा ही अधिकार है जैसा कुमार का, तुम्हे जो कुछ देना है रामचन्द्र को दो, मैं उसे लेने के लिए कहूँगी और उसे तुम्हारी दी वस्तु-सम्पत्ति लेते हुए खुशी होगी—मैं जानती हूँ।"

प्रसन्न होकर निरू मुस्किरायी, कहा, "बाग और खेत तो हुए ही रामचन्द्र बाबू के। आपके दो मकान भी कानपुर मे है ?"

"हाँ," कुछ व्याकुल होकर सावित्री देवी ने कहा, "कुमार के पढाई के खर्च मे रेहन किये गये थे।"

"हाँ, महाजन को रुपये की जरूरत है, मैं रुपये देकर रजिस्ट्री खरीद रही हूँ। वे मकान भी रामचन्द्र बाबू को मिलेगे।"

सावित्री देवी सविस्मय मुँह की ओर ताककर रह गयी। इसी समय मलिकवा की माँ कुछ पूछने के लिए सावित्री देवी को बुलाने आयी। उन्होने संयत प्रसन्नता से पूछा, "मलिकवा की अम्मा, इन्हे पहचानती है, गाँव की मालकिन है।"

मलिकवा की माँ ने सर हिलाकर सूचित किया कि पहचानती है।

मुस्किराकर सावित्री देवी ने कहा, "तीन बीघा माफी तुझे इन्होने दी है, माथा टेककर पैरो पड।"

मलिकवा की माँ विक्षिप्त आश्वासन मे हँसकर उसी तरह पैरो पडी। इसी समय बाहर गया हुआ रामचन्द्र आया और दोमजिल के आँगन से माँ को आवाज दी। नीली रामचन्द्र के साथ रह गयी थी।

बीस

कमल भीतर कपडे बदल रही थी, बाहर कुमार प्रतीक्षा करता हुआ। नये-नये सम्बन्ध की घनिष्ठता की डोर कमल के स्नेह-कर मे जो थी, कुमार उससे बँधता जा रहा था—उसने बुलाया था, वह गया हुआ है। यद्यपि कुमार पहले से प्रकृति का पूरा स्वतन्त्र था, फिर भी इधर की परिस्थिति ने उसके लिए लक्ष्य-विशेष नही रक्खा। कमल सजकर बाहर निकली और कहा, "बडा अच्छा मौसम है, है न ?" नीचे-ऊपर देखती हुई।

कुमार ने भी नीचे-ऊपर देखा और कहा, "हाँ, आकाश और पृथ्वी दोनो का पेट भरा हुआ है, इसलिए हँस रहे हैं।"

चलती हुई कमल बोली, "आप लिखे तो सैटायर बहुत अच्छा लिख सकते है, आपको किसके सैटायर पसन्द है—ड्राइडन के ?"

"बहुत है," गम्भीर शिक्षक के कण्ठ से कुमार ने कहा, "आजकल तो ब्यूटी

सैटायर की ही हो रही है। शा की सारी विट सैटायर मे लगी है। तुम्हारी बंगला मे इसके कई अच्छे लेखक है, रविबाबू के सैटायर तो बडे ही साफ उतरते है।"

"आप बगला-साहित्य की भी जानकारी रखते है!" चकित होकर कमल ने पूछा।

"हाँ, मै वही इतना बडा हुआ। शिक्षा भी वही पायी, ग्रेजुएट मैं वही—कलकत्ते का हूँ। बगला मेरी वनाक्यूलर थी। मैंने कुछ अच्छी ही तरह बगला-साहित्य पढा है।" शिष्टाचारपूर्वक मन्दोच्चरित शब्दो मे कहा।

अपनी एक खास कल्पना पर जोर देती हुई उल्लसित होकर कमल ने पूछा, "आप बगला गाते भी होंगे?"

"हाँ," सोचकर खुश करने के अभिप्राय से कुमार ने कहा, "पर गाना तो तुम लोगो का है, यानी स्वर जिन्हे स्वर्गीय दान के तौर पर बारीक मिला हुआ है, पुरुषो का गाना तो— बात यह है कि ईश्वर ने स्त्रियो के कण्ठ मे वीणा बाँधकर उन्हे पृथ्वी पर उतारा है और पुरुषो के गले मे हण्डी।"

"आप शायद कहे—डूब मरने के लिए?" तिर्यक दृष्टि से कुमार को देखती हुई कमल ने चोट की।

"नही, स्त्रियो की तारीफ करने के लिए।" गम्भीर होकर कुमार ने कहा।

कमल लज्जित हो गयी। कुमार ने पूछा, "तुम तो गाती होगी, कमल? मुझे भी अपना गाना सुनाओ एक दिन।"

"अच्छा लौटकर। आज हमारे यहाँ खाना खाइए। आपको खाने मे परहेज जरूर न होगा।"

दोनो बातें करते हुए जा रहे थे। रास्ते मे कुछ बगाली खडे थे। दो-एक कमल को जानते थे। यो उसके पहनावे और चाल-ढाल से जाहिर था कि वह ब्राह्मसमाज की है, बगाली हिन्दू-समाज के थे। कुमार के साथ कमल को देखकर मुस्किराये और आपस मे बाते करने लगे जैसे सुनाकर, "कोई कौम छोडेगी नही ब्राह्मसमाजी छोकड़ियाँ।"

"छ महीने हुए, एक ने रावलपिण्डी के सिक्ख से शादी की।"

"हॉ हाँ, शादी के दूसरे ही दिन, ऐसा मन्त्र फूँका कि उसने बाल-बाल सब कटा दिये और बगाली ढग से धोती पहनकर निकला।"

"अब देखो, काबुल और ईरान पहुँचती है।"

दोनो सुनते हुए निकल गये। कुमार गम्भीर, कमल मुस्किराती हुई। बढकर कमल ने पूछा, "आपकी समझ मे आया कुछ।"

"हाँ, क्योकि मैं काबुली या ईरानी नही हूँ, पर नही समझ मे आता कि ब्राह्म-समाज का यह विश्वप्रेम काबुली और ईरानियो को कैसे समझायेगी तरुणियाँ।"

कमल लज्जित-पग चलती गयी। सोचकर कहा, "यहाँ आपका अनुमान भी काम नही करता। कहते है, कवि लोग कल्पना मे समझ लेते हैं सारी बाते। आप कवि होने की कोशिश कीजिए।"

"तुम समझी नही। मैं कहता हूँ कि कवि होकर मै जैसे समझ गया; पर तरुणियो का मतलब समझनेवाले ये अफगानी और ईरानी भी कवि होते है?"

कमल को जैसे भरपूर किसी ने गुदगुदा दिया। प्रसन्न हँसकर बोली, "आपने थियेटर मे पार्ट भी किया है, जान पडता है। कम-से-कम कालेज मे ड्रामा जरूर खेले होगे।"

'ड्रामा भी खेले और सजीव एक्टिंग भी दिखायी, तुम देख चुकी हो। ईश्वर की कृपा पहले से मुझ पर ऐसी है कि जितने कदम उठाये सब पीछे की ओर शुमार किये गये।"

कमल समझी। हृदय मे दुख की छाप पडते ही बात बदल दी; कहा, "आप ईरानियो की कविता समझने की बात कर रहे थे? आप यह तो जानते है कि पेडो की भाषा और मेघमाला की भाषा भिन्न हैं, पर, पेडो की प्यास, उनका आकर्षण मेघमाला समझती है और आर्द्र होकर उन पर स्नेहसिक्त धारा बरसाती है। मरुभूमि के लिए उसका यह नियम नही।"

"हाँ, मैं समझा, पर यह जरूर कहूँगा कि काबुली-हृदय की प्यास बुझानेवाली कल्पना मे काव्य-रस अधिक है।"

"वे गँवार है। हम लोगो को बनाया करते है। ब्राह्मसमाज का मुकाबला करे, देर है। आज भारत के सर्वश्रेष्ठ पुरुष, हर विषय के सर्वोत्कृष्ट योग्य—"

बीच मे बात काटकर कमला को उत्तेजित जान, कुमार ने कहा, "इसमे क्या शक है। काव्य, विज्ञान, दर्शन, इतिहास, राजनीति यहाँ तक कि सम्पादकत्व मे भी ब्राह्मसमाज सबसे आगे है।" मन मे कहा, 'इसी तरह प्रेम मे भी बढ गया, तो क्या बुरा हुआ?' खुलकर कहा, "यह मेरा घर है।"

कमल बोली, "आपका घर देखूँगी। आपकी माँ है, मिलूँगी। उनमे, आइए।" कहकर जीने से खटाखट चढती हुई गयी। पीछे-पीछे कुमार, दोमजिल पर गयी। निरू जलपान कर बैठी थी। देवी सावित्री, कुमार आ रहा है जानकर बैठी रही। निरू को देखकर एकाएक खुशी से उद्वेलित हो "अच्छा तुम भी हो" कहकर, मन्द-स्मित हाथ जोडकर सावित्री देवी को नमस्कार किया। कुमार के पढाने की खबर सावित्री देवी को मालूम हो चुकी थी। उठकर अपनी कुर्सी पर कमल को बैठाला। कुमार भी आ गया। परिचय करा दिया। पर कुमार के गले मे उसका साधारण स्वर न था। सावित्री देवी ने एक बार निरू को देखा। उसे निष्पलक अपूर्व भाव से कुमार को देखते हुए देखकर रामचन्द्र को आवाज दी। रामचन्द्र नीली के साथ छत पर खेलता हुआ बातें कर रहा था। माँ से दूसरे कमरे से कुर्सी ले आने की आज्ञा सुनकर उतर आया और कुर्सी लेने गया।

कुर्सी पर कुमार को बैठने के लिए कहकर सावित्री देवी पलँग पर निरू के एक बगल बैठ गयी। नीली भी उतर आयी और रामचन्द्र के साथ बाहरवाले बरामदे से देखने लगी।

"माँ, इन्हे ही पढाने के लिए नियुक्त किया गया हूँ। श्री कमल सुषमा चटर्जी इनका नाम है।" आदर के स्वरो मे कुमार ने माँ से कमल को परिचित किया।

कमल की बिलकुल खुली हुई, निस्त्रास, हवा-हवा पर उडती हुई जलभारानत मेघमालावाली प्रकृति के सामने सावित्री देवी एक अज्ञात दबाव से जैसे सकुचित हो गयी। उनके गृहस्थ-जीवन मे वैसी प्रकृति का परिचय न हुआ था। उनकी

परिचित बगाली समाज की महिलाओ का गृह की सीमा मे ही कुशल, क्षिप्र, शिक्षित और उन्नत रूप था। ब्राह्मसमाज का नाम वे सुन चुकी थी, और दूसरी बगाली महिलाओ की तरह शिप्ट भाव से उन्हे ब्रह्मज्ञानी कहती थी। उनके मन मे निरू शिक्षित लडकियो की चरम विकसित रूप थी। विलकुल मेम या मिस का स्वभाव उनकी प्रकृति पर एक अज्ञात दवाव छोडता था। जैसे उनकी सस्कृति की वह रूप-रेखा नारी-स्वभाव के प्रतिकूल मालूम देती हो। अपने मे समायी हुई मधुर क्षीण स्वर से वोली, "मैंने अनुमान कर लिया था।"

क्षणमात्र देर किये विना, जैसे पहले से घनिष्ठ परिचय रहा हो ऐसे स्वर से कमल ने पूछा, "इनसे आपका कैसा परिचय है ?"

"ये मेरी मालकिन हैं।" सावित्री देवी मधुर मुस्किरायी।

इससे कमल की शका निवृत्त न हुई। वैसे ही खुली आवाज मे पूछा, "आपके मकान का किराया वसूल करनेवाली ?" निरू जल उठी। पर वैठी रही। कुमार की माँ को देखती आँखें मुस्किरा दी।

"नही," सावित्री देवी ने कहा, "हमारे गाँव की जमीदार। पहले इनके पिता थे, अव ये है।" कहकर स्नेह से निरू को देखने लगी। कुमारी गाम्भीर्य की स्वर्गीय-महत्ता से निरू मौन थी। रह-रहकर एक विशेष भाव से कुमार को देख लेती थी।

वहुत-सी वातें कुमार के भी मन मे उठी, पर दम साधे वैठा रहा। निरू ज्यो-ज्यो गम्भीर हो रही थी, कुमार चंचल। जव से आया, सम्वर्धना का शव्द नही निकला, सोचकर, त्रुटि से वचने के लिए, वहुत कुछ अपने को सँभालकर, कहा, "वडी कृपा हुई जो यहाँ आने का कष्ट स्वीकार हुआ आपको।" कहकर मन मे सोचा, जैसे त्रुटि हो गयी। निरू कुछ न वोली। सावित्री देवी कमल की अभ्यर्थना के विचार से उठकर दूसरे कमरे की ओर मन मे एक निश्चय से प्रसन्न होकर चली कि कमल ने निरू से कहा, "तुम तो ऐसी मौन हो जैसे ससुराल आयी हो।"

"इन्हे पश्चात्ताप है।" कुमार ने कहा। कमल एकाग्रता से कुमार को देखने लगी। कुमार कहता गया, "एक रात वगैर पहिचाने मुझे 'गोरू' कह दिया था।" कमल खिलखिलाकर हँस दी। कुमार कहता गया, "कुछ चिढ गयी थी, हालाँकि कसूर मेरा न था। जैसा कि मैंने अभी-अभी कहा है, उसी स्वर से गा रहा था। लेहाजा गाने मे एक हक मेरा था। वाद को ये गाने लगी। इनके मधुर स्वर के आगे मुझे अपना स्वर भूल गया। रास्ता भूला राही जैसा मै इनके अगियावैताली स्वर के पीछे-पीछे चला।"

निरू पहले की तरह चुपचाप प्रतिमा-सी वैठी रही। कमल जानती थी कि निरू अच्छा नही गाती। समझी, यह उस पर मजाक है। खुशी से भरी हुई, पूछा, "फिर ?"

"फिर ये अपने सत्य रूप मे प्रकट हुईं और मुझे रास्ता वता दिया।"

इसी समय तश्तरी मे जलपान सजाकर सावित्री देवी आयी और कमल की वगल मे खडी हुई। उनके पूछने मे पहले ही वह ढग देखकर जलपान उसी के लिए लाया गया है समझकर कमल ने कहा, "मैं इस वक्त जलपान नही करूँगी, आप ले

जाइए।" सावित्री देवी लौट गयी। मलिकवा की माँ पान ले आयी। "मैं पान नहीं खाती।" कहकर कमल ने एक इलायची उठा ली, फिर निरू से सस्नेह, उसी सखीभाव से कहा, "हम लोग टहलने निकले हैं, लौटकर मेरे घर चलो, डाक्टर साहब गाना सुनेंगे।" कमल ने स्वर से समझा दिया कि मैं भी गाऊँगी। अगर उस दिन कोई कसर रह गयी हो, तो पूरी कर लेना। पर निरू ने निमन्त्रण स्वीकार न किया। मन में एक अशान्ति एकाएक पैदा हो गयी थी। बहुत सँभल-कर, जैसे कहीं से भी न खुले, कहा, "नहीं कमल, मुझे फुर्सत न होगी।"

नीली एकटक, खड़ी हुई, कमल को देख रही थी। कुमार के लौटने पर निरू का हाल कहने का विचार कर सावित्री देवी कमरे में आयी कि निरू उठी और हाथ जोड़कर प्रणाम किया। कुमार और निरू के सम्बन्ध का स्वल्पमात्र कारण सावित्री देवी को जितना दृढ़ बाँध सकता था, बाँध चुका था; इसलिए निरू के प्रति उनकी वैसी स्नेहधारा उसके दर्शन मात्र से प्रवाहित हो चलती थी। हाथ पकड़कर, "हमें फिर तुम्हें जल्द देखने की प्रतीक्षा रहेगी।" कहकर साथ-साथ नीचे उतरीं। नीली एक दफा कमल को असह्य दृष्टि से घूरकर बहन के साथ हो ली। कमल उस वैषम्य का जैसे कोई कारण न समझ पायी ऐसी दृष्टि से निरू की ओर देखती रही। कुमार चुपचाप बैठा रहा, जैसे वह सब अन्धकार हो, इसके भीतर दृष्टि साफ हो ही नहीं सकती समझ रहा हो।

सावित्री देवी के लौटने पर शिष्टाचार के विचार से कुछ देर तक बैठी साधारण बातचीत कर, रामचन्द्र की ठोढ़ी हिलाकर कुमार को लेकर कमल घर लौटी।

इक्कीस

"नीली" उधर से जाती हुई नीली को योगेश बाबू ने बुलाया।

मार्ग में बाधा पाकर पिता को देखकर नीली टेढ़ी होकर आँखों से स्नेह बरसाने लगी।

"सुन," भावभरे गुप्त मन्त्रणा के स्वर में पिता ने बुलाया। नीली गयी। योगेश बाबू ने पास बुलाया, और हाथ पकड़कर बिलकुल नजदीक बैठा स्नेह-स्वर से कहा, "तू बड़ी बदमाश हो गयी है।" पीठ पर हाथ फेरने लगे। कहा, "कल तुझे खोजा कि बाजार ले जायें, बड़ी मोटर, रेलगाड़ी और फुटबाल खरीद दें, परन्तु तू मिली ही नहीं।" फिर अभ्यस्त आलोचक की दृष्टि से देखते हुए नली मुँह से लगाकर मन्द-मन्द खींचा।

"मैं दीदी के साथ गयी थी।" नीली ने कहा।

"कहाँ?"

"कुमार वावू के घर।"

योगेश वावू का जैसे योग भग हो गया, पर आसन पर सिमटकर नली फिर हाथ मे लेकर वडे स्नेह-स्वर से पूछा, "फिर ?"

नीली ने दानवाली कथा न सुनी थी। वोली, "कुछ नही, फिर कुमार वावू की माँ ने जलपान कराया, इसके वाद कुमार वावू कमल के साथ आये। फिर दीदी चली आयी।"

"फिर कुमार से कुछ कहा था तेरी दीदी ने ?"

"नही, कुमार वावू ने दीदी के लिए कमल से कहा था कि इन्होने एक दिन मुझे 'गोरू' कहा था।"

"ठीक कहा था। वुला तो अपनी दीदी को।" फिर डटकर, दृढ-प्रतिज्ञ होकर नली मुँह मे लगायी।

निरुपमा आयी और सँभलकर एक वगल वैठ गयी। योगेश वावू देखकर हँसे। कहा, "यामिनी कह रहा था, मुझे चिट्ठी का जवाव निरू ने नही दिया।"

"उस चिट्ठी का क्या जवाव था, कुछ मेरी समझ मे नही आया।" निरू सर गडाये नाखून खोटती रही।

योगेश वावू हँसे। "यह तुम्हारे लिए उचित ही हुआ है। घर कौन-सा है! लोग कितनी वातें कह गये। हमने कहा—कुत्ते है कुत्ते, भूकने के सिवा जानते क्या हैं ? निरू किस माँ की लडकी है, यह मैं जानता हूँ।" निरू हृदय से डरी, साहस वाँधती हुई भी कमजोर पडती गयी, मामा की जानकारी पर अनेक प्रकार की भावनाएँ आने-जाने लगी। योगेश वावू आप ही सोचकर हँसे। वोले, "वह हिन्दुस्तानी ! भ्रष्ट कही का ! आवारा ! विलायत मे कितने चमार डाक्टर है। डाक्टर होने से कोई किला नही फतेह कर लिया। समाज मे किस तरह रहना चाहिए, ज्ञान नही। अकेले आकाश पार जायँगे ! भले-भले एम. ए. हो गये थे, भले आदमियो से मिलते, जगह मिल जाती छोटी-मोटी, खाते-पीते मजे मे रहते; नही आसमान-आसमान चलने लगे ! जो कुछ था उड गया। अपने भी पराये हो गये। कोई पानी छूआ नही पीता, यह कोई वुद्धिमत्ता है ? जव समाज मे मिलने की ताकत नही, तव उतना ही वढो जिससे मिले रहो।" योगेश वावू सोचकर जोर से हँसे, "अव मिला भी वैसा ही समाज, वाप चटर्जी, माँ चमारिन। लडकी ?" निरू को स्नेह से देखकर, "निरू हम कहते हैं,—यह ससार है, इसमे सव तरह के जीव हैं। कितने वहते है। दूर से देखना चाहिए; छूना महापाप। देखो अव दोनो कहाँ जाते हैं। वात यह कि जो जैसा होता है, उसे वैसा ही मिलता है। कमल की माँ का हाल तू तो जानती नही, हम जानते है। हमारी तो इच्छा नही थी कि कमल घर आये। पर अव दूसरी हवा है, हम लोग वचकर निकल जायँगे, यह सोचकर हम चुप थे।" कहकर गम्भीर भाव से कश खीचने मे तल्लीन हुए।

निरू के हृदय को चोट पहुँची। कुछ न वोली। कुमार और कमल का सम्वन्ध स्थायी होगी, यह सोचकर सँभलने लगी। पहले उसने गलत सोचा था। मामा का विरोध ठीक नही। और भाग्य की वात जो हिन्दू घराने मे प्रचलित है वह

ठीक है। कुमार मुमकिन है, सही हो, पर कुमार की ओर बढती हुई उसकी मनोवृत्ति ठीक नही। उसके लिए कुमार के स्वर मे वह सुहृदयना नही—कैसा कहा पहचाने वगैर 'गोरू' कहा था! सोचती हुई थकी, स्वर को भक्तिपूर्ण करके पूछा, "मामा, आपने मुझे बुलाया क्यो है?"

"वह वात भूल गयी थी। इस वक्त यामिनी ने आने के लिए कहा है, रुपयो के लिए। पहले कई वार टाल चुकी हो, शायद मजाक मे यामिनी को हैरान करने के लिए—क्यो?"

नौकर ने खबर दी, "यामिनी वावू आये हैं।"—"ले आओ"—कहकर योगेश वावू निरू की ओर देखकर वोले, "वडी उम्र है यामिनी की—मैंने पहले सव ग्रह-नक्षत्र विचरवा लिये थे, मुझे किसी ओर से धोखा दे जाना मजाक नही, मैंने कहा और मव वाद का होगा—पहले देख लिया जाय कि हमारी निरू दीर्घ काल तक सुखी तो रहेगी।" यामिनी वावू के आने की आहट मिलने पर वृद्ध गम्भीर हो गये, निरू ज्यो-की-त्यो शुभ-प्रतिमा सी, निश्चय और अनिश्चय की कल्पना की डोर छोडकर, अपने भाग्य-चक्र को आलोचिका की दृष्टि से देख रही थी। वह जहाँ वैठी थी, वहाँ मे खुला आकाश अपनी असीमता लिये हुए देख पडता था। वह समझ रही थी कि दृष्टि को घेरे मे उतना आनन्द नही, जितना मुक्त आकाश के दर्शन मे है, जैसे दृष्टि आकाश मे अपनी असीमता प्राप्त कर अपने स्वरूप-दर्शन का आनन्द पाती हो। सोच रही थी कि फिर छोटे-छोटे वन्धनो से मनुष्यो की इतनी प्रीति क्यो है।

इसी समय यामिनी वावू आये। आकाश ताकती हुई नलिन-आँखो की नवीन कान्ति को एक मुग्ध दृष्टि से देखकर योगेश वावू को प्रणाम किया। योगेश वावू के आशीर्वाद देने के समय निरू ने आँख फेरी और यामिनी को देखकर उठने को हुई कि योगेश वावू ने कहा, "वैठो, अभी काम है।"

निरू की भावना को प्राकृत कविता मे वदलने के विचार ने यामिनी वावू वोले, "आममान ताकने के दिन अव नही रहे। अव तो वायुयान तैयार हो गये है और लखनऊ के आकाश मे मँडलाया भी करते है, दर्शको के लिए हुए।"

"क्यो निरू, वायुयान पर चढकर आकाश मे ही रह आओ कुछ देर!" योगेश वावू ने हँसकर सम्मति दी।

निरू का भाव दूसरे ममझ गये, पहले सोचकर लजा गयी, फिर लज्जा को अपमान जानकर सिर उठाकर कहा, 'अच्छा तो है एक दिन चला जाय, नीचे से ऊपर ताकने की जरूरत ही न रह जायेगी—आप ईश्वर से दो वाते करके पूरा समझौता कर लीजिए।"

वातें योगेश वावू मे कही थी। दूरदर्शी वृद्ध पहले चौके। पर भाजी को हँसती हुई देखकर मजाक करती समझकर कहा, "यह है कि स्वर्ग मे नन्दनवन, पारिजात, देवदूत और इन्द्र की अप्सराएँ भी है और यमराज भी। तुम लोगो का जाना नन्दन-विहार है और हमारी यमराज से मुलाकात होगी।"

डा यामिनी वृद्ध की साहित्यिकता पर मुस्किराये। वृद्ध ने भाव वदलकर कहा, "रुपये के मामले मे तुम्हारा और इसका टग-आफ-वार जो चला, उसमे

तुम्हारी हार हुई—क्या कहते हो ?"

"जी हाँ, हार तो मेरी हर तरह है।"

"तो तुम स्वय इसमे प्रार्थना करो, जिससे इसे कर्ज लेना मजूर हो। और वह जो कहा था, वह भी हो जाना चाहिए।"

यामिनी बाबू बडे दूरदर्शी थे, रुपये के मामले मे। यह रुपया वृद्ध मजे मे निरु के सर हाथ फेरकर ले रहे है, वे समझते थे, पर बचाने पर सदा के लिए वचित रहना पडता था। निरू की सम्पत्ति तीस-चालीस हजार रुपये के मुकाबले बहुत ज्यादा है। वृद्ध दूसरी जगह निरु का विवाह ठीक कर सकते है, यह सब सोचकर मजूर कर लिया था। कानपुर मे दूसरी जगह उन्हे रुपया मिल सकता था, पर सम्पत्ति के पुन हस्तगत होने की सम्भावना उन्हे इधर प्रेरित कर रही थी। वृद्ध की ओर मुँह करके कहा, "मैं तो हाथ जोडकर हार स्वीकार करता हुआ रुपयो की प्रार्थना करता हूँ।"

एक लम्बी साँस छोडकर निरू ने कहा, "मैं तैयार हूँ। मामाजी जब और जिस तरह देंगे, लेकर दे दूँगी। मैं मामाजी की किसी इच्छा का विरोध नही करती।" जैसे किसी ने निरू का हृदय मसल दिया। पर धैर्य से बैठी रही। अनिच्छा ही ससार की इच्छा है, सोचती रही।

वृद्ध ने सुरेश को बुलाया।

बाईस

दिन का तीसरा पहर है। रामचन्द्र बाहर खेलने गया है। मलिकवा की माँ दुपहर के बरतन मल रही है। उसने अपने कर्त्तव्य का स्वय निश्चय कर लिया है। देहात मे अपनी जाति की रीति के अनुसार वह किसी के यहाँ का चौका-टहल नही कर सकती थी—ब्राह्मणो के यहाँ का भी नही, पर यहाँ यह सोचकर कि अब उसके आगे-पीछे कोई नही और ऐसे उपकारी ब्राह्मणो की सेवा से उसका परलोक सुधरेगा, करने लगी है। उसके लिए और काम भी न था कि क्षण-भर जी लगा रहता, इस तरह उसे आत्मा मे सन्तोष होता कि वह अपनी मिहनत की कमाई खाती है, उसकी निगाह बराबरी लिये घर के लोगो से मिलती है। सावित्री देवी पान लगा रही है। मुख पर एक चिन्ता की रेखा खिची हुई है।

कुमार आराम करके उठा। लोटे का ढक्कन खोलकर गिलास मे पानी ढाला। बरामदे के एक बगल चलकर मुँह धोया, फिर गिलास जगह पर रखकर तौलिये से मुँह पोछने लगा। माँ निविष्ट-चित्त होकर पान लगा रही थी। देखने लगा। देखते-देखते एक अव्यक्त करुणा से ओत-प्रोत हो गया। उसकी सम्पूर्ण स्वतन्त्रता माँ की दी हुई है, उसके मनोभावोकी अनुकूलता माँ ने की है, सब प्रकार तिरस्कृत होकर

भी किसी प्रकार का अभियोग इन्होने नही किया, आज जिस वेदना की छाप यह उनके मुख पर पडी हुई है, उसका निराकरण करे, यह उसका परम धर्म है। वे किसी हार्दिक व्यथा मे खिन्न है, कुमार पलँग पर बैठा हुआ सोचता और देखता रहा। माँ के दु:ख के कारण की अनेक प्रकार मे जाँच करते हुए उसने सोचा, हो-न हो मेरे विवाह की याद कर सामाजिक मर्यादा मे गिर जाने के कारण माँ को खिन्नता है। सामाजिक मर्यादा की कल्पना से उसे हँसी आ गयी—कैसा ढोंग है ! और कोई कष्ट तो माँ को है नही, अब तो पहले की अपेक्षा काफी अच्छे दिन आ गये है। सोचता हुआ, अपने को सयत कर, जैसा उसका स्वभाव था, बोला, "मैं विलायत न गया होता तो अब तक तुम्हे कुछ कामो से छुट्टी मिल गयी होती, माँ।" माँ पुत्र की बातचीत का ढग पहचानती थी, समझकर, चिन्ताशीलता के भीतर से हँसकर बोली, "हाँ।"

"तुम्हे बहुत काम करना पडता है, अभी तक—।"

"हाँ, मदद करनेवाली नही आयी।" कहकर पुत्र को प्रसन्न मुखच्छवि मे देखती हुई सावित्री देवी पान लेकर उठी।

"क्या करूँ, कोई मिलती ही नही, नही तो मैं आज घर मे लाकर बैठा दूँ।"

माँ मारे आनन्द के रँग गयी। पान देकर प्रसन्न कण्ठ मे बोली, "और जो मिलेगी वह मुझसे दूना काम लेगी।" कुमार नही समझ सका कि माता ने कमल पर चोट की। पुत्र के मुख पर छायी अज्ञता को पढकर, मुस्किराकर, माता ने पूछा, "रामलोचन बाबू की लडकी को पहले-पहल तुमने कहाँ देखा था ?"

कुमार कुछ भावुक हो गया। कहा, "वह बड़ी लम्बी कथा है।" वह लम्बी कथा इतने से माता के पास सक्षिप्त हो गयी। उन्होने समझ लिया, निरुपमा और कमल मे कौन कुमार के मन के ज्यादा नजदीक है। बहकाकर कहा, "लम्बी कथा है। रहने दो। तुम्हे अभी कमल के यहाँ भी तो जाना है ?" अपनी प्रसन्नता को हृदय मे छिपाकर माँ ने पुत्र को देखा।

"निरू क्या फिर आयी थी, माँ ?" कुमार ने ओजस्वितापूर्ण आग्रह से पूछा, माँ उतनी ही सहज होकर बोली, "न, फिर तो नही आयी।" कुमार गम्भीरता से कपडे पहन रहा था, इसी समय नीली और रामचन्द्र कमरे मे आये। कुमार को देखते ही मुस्किराकर सावित्री देवी की ओर फिरकर ऊँचे गले से नीली ने कहा, "दीदी का विवाह आज पक्का हो गया है, अगले सप्ताह सोमवार की रात को होगा।"

सुनकर सावित्री देवी जैसे कुछ चौंकी; पर वह दूसरे की समझ मे न आया। कुमार कुछ कह न सका। कपडे पहनकर धीरे पदो से नीचे उतरा। कमरे मे सन्नाटा छाया रहा।

धीरे-धीरे कुमार नीचे उतरा कि दरवाजे पर चिट्ठीरसा मिला। सावित्री देवी के नाम की एक चिट्ठी दी। माँ के नाम किसकी चिट्ठी हो सकती है, सोचता हुआ कुमार ऊपर चढा। हस्ताक्षर पहचाने हुए नही मालूम पड रहे थे।

ऊपर कमरे के द्वार पर आकर माँ से कहा, "आपकी चिट्ठी" कहकर पास खड़ी नीली को बढा देने के लिए दे दी। नीली चिट्ठी हाथ मे लेकर उस पर निगाह

डालते ही खुश होकर चिल्ला उठी, "दीदी की चिट्ठी है," मन-ही-मन उसने निश्चय किया, दीदी यामिनी बाबू से विवाह नही करेगी, कुमार बाबू से करेगी, इसलिए चिट्ठी लिखी है। यामिनी बाबू के प्रति मन से उसका पूरा विद्रोह था। खुलकर कह दिया, "दीदी यामिनी बाबू को चाहती नही, बाबा जबरन विवाह कर रहे है।"

सुनकर खुशी के मारे सावित्री देवी को लिफाफा फाडना भूल गया और आनन्द के लिए बढी, उसी तरह हाथ मे लिफाफा लिये पूछा, "फिर दीदी तुम्हारी किसको चाहती हे ?"

नीली कुमार की ओर देखकर मुस्किराकर आँखे गडाकर रह गयी। मारे लाज के कुमार का मुँह लाल हो गया। माँ के सामने ऐसी बेहयायी उससे कभी नही हुई।

उसे चिट्ठी देकर चला जाना था, वह खड़ा रहा, वह अवश्य चिट्ठी का मजमून जानना चाहता है। वह निरू के हस्ताक्षर भी पहले से पहचानता था, तभी नही गया माँ यही सोचेगी, सोचकर और लज्जित होकर नीचे उतरने के लिए चला। माँ ने लिफाफा फाडा था, चिट्ठी पढी नही थी, मुडते देखकर कहा, "ठहर जाओ जरा।" कुमार खडा हो गया। चिट्ठी पढकर सावित्री देवी ने कुमार को पढने को दी। लिखा है, "माँ, आपके मकान मैने खरीद लिये, विधाता की इच्छा से अगले सोमवार को मेरा विवाह है। विवाह हो जाने पर मैं रामचन्द्र के नाम की लिखा-पढी करूँगी, शायद इधर समय न होगा। आपकी स्नेहप्रार्थिनी—निरू।" कुमार ने पढकर एक नशे मे जैसे, धीरे-धीरे माँ को चिट्ठी बढा दी, फिर धीरे-धीरे नीचे उतर गया। कमरे मे वैसा ही सन्नाटा छा गया। नीली कुछ समझ नही पा रही थी, केवल सन्नाटे का अनुभव कर चुप थी। रामचन्द्र रह-रहकर माँ की ओर देख लेता था।

सावित्री देवी फिर चिट्ठी पढने लगी। एकाएक निगाह एक धब्बे पर गयी। एक अक्षर फैल गया था। 'यह स्याही की बूंद नही' उन्होने निश्चय किया, 'क्योकि अक्षर फीका पडकर फैल रहा है। बरसात के पानी की बूंद नही हो सकती क्योकि इसके पडने की सम्भावना तब है, जब पत्र पोस्ट कर दिया जायेगा, और इधर-उधर लाया-भेजा जायगा या जब चिट्ठीरसा के हाथ मे आयेगा, यो कमरे मे लिखते समय झरोखे के पास बैठने पर बूंद पड सकती है।' नीली पास खडी थी, कुछ आग्रह से पूछा, "तुम्हारी दीदी ने यह चिट्ठी कब लिखी, तुम्हे मालूम है ?"

"न," नीली निगाह से इस प्रश्न पर प्रश्न कर रही थी कि ऐसा क्यो पूछती हो ?

जरा ठहरकर सावित्री देवी ने फिर पूछा, "तुम्हारी दीदी पत्र कहाँ लिखती है ?"

"अपने कमरे मे।"

"झरोखे के किनारे मेज है ?"

"नही, उनकी मेज दीवार के किनारे है।"

"दीवार के किनारे!" सावित्री देवी ने निश्चय किया, 'यह अवश्य आँसू है।

किनारे हाशिये के पास है। दाहिनी आँख का है। बायी का बाहर पडा होगा!' देखते-देखते गम्भीर हो गयी और पत्र पढने लगी अगर कुछ समझने लायक अभी छुट रहा है, सोचकर।

'विधाता की इच्छा से' को कई बार देखा, मनन किया, एक निश्चय के साथ उनकी श्री प्रसन्न हो गयी। नीली से बोली, "माँ, तू मेरी मदद करेगी?"

नीली ने पूरी सहानुभूति से कहा, "हाँ।"

"किसी से कहना मत।"

नीली ने गम्भीर भाव से सर हिलाया।

आश्वस्त होकर सावित्री देवी ने कहा, "अपनी दीदी से कहना, रामचन्द्र की माँ ने तुम्हारा पत्र पढा है, वे जब तक तुमसे न मिलेंगी, जल ग्रहण न करेंगी। कल अवश्य-अवश्य मिलें।"

नीली गम्भीर होकर बोली, "मैं ले आऊँगी।"

तेईस

कमल ढलते दिन के कमल की तरह उदास बैठी है। हाथ मे एक पत्र है, जिसे बार-बार देखती है। रह-रहकर बँगले के सामने सडक की ओर एक ज्ञात आकर्षण से जैसे निगाह फेर लेती है। अभी दिन काफी है, पर प्रतीक्षा करते उसे देर हो गयी। जी ऊब रहा है। एक बार पत्र को फिर पढकर झपट से भीतर गयी और पैड ले आयी। सोचती हुई चिट्ठी लिखने बैठी। क्या लिखे, किस तरह लिखे, कुछ समझ मे नही आ रहा, केवल उत्तेजना बढ रही है। पत्र मे घटना-चक्र ऐसा है, जो हर एक स्त्री-हृदय मे पुरुष के प्रति विरोध भाव उभाड देगा। ऐसी ही ओजस्विनी भाषा मे वह उत्तर लिखने लगी। मुख्य बात यह है कि वह हर तरह पिता मे मदद करने के लिए कहेगी, पर अच्छा यह होगा कि एक बार उसके घरवाले उसके पिता से आकर मिल जायँ और फुर्सत हुई तो इस बीच मे वह पत्र-लेखिका से साक्षात् करेगी। पता लिखकर चिट्ठी लिफाफे मे बन्द कर दी और फिर सडक की ओर देखा। कुमार आ रहा था, देखकर खिल गयी। उठकर कुछ कदम आगे बढकर लिया। कुमार बिलकुल पास आ गया, तो उच्छ्वसित कण्ठ मे बोली, "जनाब यह दो का समय है? चार बजने को पन्द्रह मिनट है, अब कानपुर तो हम लोग चल चुके। चलें भी, तो बस जाना-आना होगा।"

कुमार कुछ ऐसी उधेड-बुन मे था कि उत्तर की नाप-तोलवाली हालत मे परे था। जैसा साधारण भाव आया, कह दिया—"तो न हो होटल मे रह जायेंगे।" कुमार को न कानपुर जाने की आवश्यकता थी, न होटल मे रहने की। कमल का प्रस्ताव था एक साथ जरा टहल आने का, उसने एक तरह कह दिया।

लज्जित होकर मुँह फेरकर कमल एक पूरे जोर की छिपी हँसी हँस ली। तब तक कुमार बढकर उसी कुर्सी पर बैठ गया, भीतर मे बिलकुल दूसरे रूप का भरा हुआ।

कुमार के आज के भाव की ओर कमल दूसरे दिनो से अधिक आकृष्ट हो रही है। आज वह उसकी निगाह मे और पवित्र और परिमार्जित मालूम दे रहा है। आज उमे देखकर उसके हृदय का स्नेह का फौवारा रुकना नही चाहता। आज उसमे न जाने कौन-सा आकर्षण है कि उसके सगमात्र से जैसे वह ऊपर उठती जा रही है और ऐसी जगह पहुँची है, जहाँ जड बन्धन का ज्ञान भी उसे नही रह गया, केवल आनन्द मान रही है।

एकाएक इस आनन्द के भीतर उद्भावना पैदा हुई, कहा, "चलिए एरोड्रोम, आकाश मे उड आया जाय।" घण्टी दी, नौकर से मोटर ले आने के लिए कहा। कुमार निर्विकार भाव से बैठा रहा। कमल ने सोचा—'कानपुर जाना नही हुआ, इसलिए इनका दिल बैठ गया है।'

ड्राइवर ने गाडी सामने लाकर लगा दी। कमल सजी बैठी थी। कुमार से बैठने के लिए कहा। नौकर ने गाडी खोल दी। कुमार सामने ड्राइवर के पास बैठा। कमल लजाकर शिष्या की तरह भीतर बैठी, मन मे एक प्रश्न उठता रहा, ये यहाँ बैठते तो छूत लगने की भी कोई बात थी ? चलते समय नौकर से कागज उठाकर रख देने के लिए कह दिया।

गाडी चल दी। कमल अकेली बैठी रही। ऊपर एरोप्लेन के उडने की घर-घराहट हो रही थी। कुमार कल्पना के नेत्रो से निरू का विवाह देख रहा था। रह-रहकर सुबहवाली सूरत, वह फूली लता के भुजो के भीतर का मुख, वह पीछे का सूर्य-मण्डल, वे एकटक काली-काली बडी बडी आँखे याद आ रही थी। उस दृष्टि का भाव याद आते ही एक अज्ञात दर्द उठता था। जब जूता-पालिश करने के लिए गया था, उस समय जिस तेजी मे वह उसके सामने गयी थी, जिस निरवरोध अपनाव से, उमे देखा था, भीतर से आज उसे पाने के वही भाव कुमार मे उठ रहे है, पर हाय, यहाँ वह निरुपमा कहाँ, यहाँ तो उसकी छाया है !

देखते-देखते एरोड्रोम आ गया। कमल उतर पडी। कुमार का दरवाजा खोल दिया। कुमार फिर भी बैठा सोच रहा है। देखकर कहा, "Sir, sleeping or *thinking* ?" (जनाब, सो रहे हैं या सोच रहे है ?)

कुमार होश मे आ, सँभलकर लज्जित होकर नीचे उतरा। एरोप्लेन अभी आकाश मे उड रहा था। इसके बाद के जानेवाले गर्दन उठाये देख रहे थे। कमल कुमार के पास ही, एक प्रकार सटकर खडी थी, बोली, "काफी भीड होती है, हमे कुछ देर होगी शायद ?"

देखते-देखते एरोप्लेन उतरा। कमल और कुमार की आँखो मे विस्मय था। निरू और यामिनी बाबू उतरकर उसी ओर बढ रहे थे। अभी इन्होने न देखा था। निकट आने पर कुमार के साथ कमल को सरल आँखो से निरू ने देखा और आँखे फेर ली। मुँह फेरने का भाव दोनो के हृदय मे अंकित हो गया। कमल ने कुछ देर ठहरकर, निरू से मिलने की अपनी बढती हुई इच्छा को रोककर, यामिनी बाबू

को देखा, जैसे मनुष्य किसी कीट को देखता है। उसके साथ कुमार की जल्द होनेवाली शादी के भाव को उपेक्षा की दृष्टि से उल्लघन कर जैसे यामिनी वावू ने कुमार को देखा। तव तक विलकुल नजदीक आ गये थे। उपेक्षा के स्वर मे कहा, "अव जूता पालिश करना छूट गया जान पडता है।"

वैसी ही उपेक्षा से कुमार ने कहा, "हाँ, तुम्हे उतनी शिक्षा देनी थी, वह दे चुका।"

"वाकी जितनी रह गयी है, वह मैं पूरी कर दूंगी।" कमल ने कहा।

यामिनी वावू झेंप गये। कुछ मतलव न समझे। तरह-तरह के अर्थ करने लगे मतलव कोई नही समझा, पर निरु खुश हुई, यद्यपि भीतर से अप्रसन्न रही और यामिनी वावू के साथ खुश आकर कुमार को अप्रसन्न करने की न सोची। एक वार ललित दृष्टि से कमल को देखा, जिस लालित्य मे शृगार नही, करुणा थी, वेवसी का वयान था। आज कमल सवकुछ समझी—यदि कुमार के लिए उसके भीतर प्यार न होता, तो कमल को देखकर उस तरह वह आँखें न फेर लेती। अगर यामिनी को चाहती होती तो भी नही। खुलकर पहले कही वात को याद दिलाना चाहा कि मैंने पहले तुमसे पूछा था और मैं अव भी वही हूँ। तुम्हे वहुत वडा भ्रम हुआ है, पर वहाँ खडे इक्के-दुक्के आदमियो की तरफ ध्यान गया, फिर यामिनी वावू के लिए भी सोचा कि कुछ-का-कुछ सोच लेंगे; मुमकिन, दर्द पर हाथ जाय, यह अच्छा नही। सोचकर, कुमार का साथ छोडकर, यामिनी वावू के सग वढती हुई निरुपमा को एक वगल से वुलाया। निरु चलने को हुई, तो यामिनी वावू ने स्नेह से कहकर रोका, "हमे अव जल्द चलना चाहिए, निरू, और भी तो वातें हैं।"

"हाँ, जरा वात सुन लूं।" सलज्ज कहकर निरु कमल की ओर चली। एक साथ होकर दोनो एकान्त की ओर वढती चली।

"निरू!"

नीरू एकाग्र हुई। पर कुछ कह न सकी।

"एक वार और मैने तुमसे पूछा था, पर तुमने उत्तर नही दिया, टाल दिया था। मेरी इच्छा होती है, अव मैं भी टाल जाऊँ और अच्छी तरह तुम्हारा सर्वनाश देख लूं।"

निरू काँप उठी। त्रस्त स्वर से कहा, "मैं समझ नही सकी।"

"तुम जितना समझती थी, मै उतना ही तुमसे पूछ रही थी। अगर उतना ही तुम वता देती, तो आज इतने वडे हास्यास्पद नाटक का तुम्हे पार्ट न अदा करते रहना पडता।"

यह इतनी सहृदय वात थी कि निरू सत्य की जगह से दुर्वल पड गयी, वह छिपा सत्य जाहिर हो गया। उसने कहा, "मैं खुद अपने मर्ज की दवा के लिए चली थी, पर रास्ते मे तुमने वाधा दी।"

"मैंने वाधा दी? कैसी वाधा?"

"तुम कुमार वावू को प्यार करती हो?"

कमल आश्चर्य की दृष्टि से निरु को देखती रही, कहा, "प्यार करती हूँ,

इसका एक ही अर्थ मेरे पास है, उससे विवाह का कोई तअल्लुक है, यह मैं नही जानती, दूसरे अलवत्ते यही अर्थ-सयोग लेते हैं।"

निरू उदास होकर मुरझा गयी, फिर एकाएक अपनी प्रभा से चमक उठी, वोली, "कुमार वावू के वहाँ तुम्हे उनके साथ देखकर मैंने वैसा ही निश्चय किया था, इसीलिए अपने दर्द की दवा से मैंने अपना हाथ खीच लिया, मैं नही चाहती थी कि मैं तुम्हारी प्रतिद्वन्द्विनी वनूँ, नही तो कुमार वावू की माँ का जैसा स्वभाव है, मैं जानती हूँ, वे मुझे अवश्य आश्रय देती, मैंने जान-वूझकर यह जहर पिया है, मुझे भ्रम था ही।"

"वे आश्रय अव भी देंगी, नही, तुमने स्वय अपना आश्रय-स्थल खोज लिया, और यही तुम्हारे योग्य भी है; हृदय से तुमने धोखा नही खाया। इस-जिस मनुष्य के साथ तुम आयी हो, यह, उफ !"

"क्या है ?"

"फिर वताऊँगी। क्या तुम्हारा विवाह ठीक हो गया ?"

"हाँ।" निरू ने डरे हुए गले से कहकर विवाह-तिथि वतायी।

"तो ये तैयारी अवश्य कानपुर से करेंगे और वही से वारात भी लायेंगे ?"

"हाँ।"

"कव-जायेंगे ?"

"कल सुवह।"

"ठीक है। अच्छा, अव यह वताओ कि तुम कुमार वावू को प्यार करती हो या नही ?"

निरू लज्जित होकर देखने लगी।

"वोलो," कमल ने जोर दिया।

"करती हूँ," कुछ वेहयाई से निरू ने कहा।

"आह—ऊह—ओह वाला प्यार ?"

"हाँ।"

कमल खिलखिलाकर हँसी।

तव तक यामिनी वावू ने वगला मे कुछ उद्धत स्वर से, "देर हो रही है"—कहकर निरू को वुलाया।

निरू ने विलकुल स्वतन्त्र दृष्टि से देखा, कमल से कहा, "इसे कह दूँ चला जाय।"

"नही नही, मजा न विगाडो। जव नाटक यहाँ तक हुआ तव पूरा किये वगैर क्यो छोडा जाय।"

"यानी ?"

"और वातें फिर कहूँगी, इस समय तुम निश्चिन्त होकर जाओ, इन्हे अच्छी तरह अव हवा खिलाना।"

निरू अभिवादन कर हँसती हुई चली। कमल कुमार के पास आयी।

चौबीस

नीली प्रतीक्षा मे थी। मोटर के आने की आहट मिली। नीली ने ऊपर से झाँककर देखा। यामिनी बाबू के साथ दीदी को देखकर जल गयी। निरू उतरकर यामिनी बाबू से स्नेह-सम्भाषण कुछ किये बगैर जीने पर चढने लगी। कुछ द्रुत-पद अपने कमरे मे आयी। घरवालो की बेहयाई, स्वार्थपरता आदि सोचकर हृदय से झुलसती हुई। उसके आते ही नीली सामने आकर खडी हो गयी और बडे धीमे और विश्वस्त स्वर से कहा, "दीदी, कुमार बाबू की माँ कहती थी, कि तुम्हारी दीदी का पत्र हमे मिला है, पर जब तक तुम्हारी दीदी हमसे न मिलेगी, हम जल ग्रहण न करेंगी, और मुझे यह बात किसी दूसरे से कहने को मना किया है।"

निरू ने स्नेह की दृष्टि मे बहन को देखा। फिर वैसे ही धीमे स्वर मे कहा, "नीलू, तू अभी मुझे वहाँ ले चल, वे जरूर रात को फिर भोजन न करेंगी।" नीली प्रसन्न होकर उछल पडी। पूछा, "कोई पूछेगा तो क्या कहूँगी ?"

"कहना, दीदी अमीनाबाद कुछ सामान खरीदने गयी थी।" निरू पुन -पुन. पुलकित होने लगी। आनन्द की भी बाढ आती है। बार-बार मन कहने लगा, "अवश्य कोई शुभ सवाद है।" भीतर मे श्रद्धा ने कहा, "ये धर्म की माँ है, इनके स्नेह की तुलना नही हो सकती, ये पत्र से सबकुछ समझ गयी हैं।"

निरू ने अपनी साडी की ओर देखा। घृणा हो गयी। इसका यामिनी के वस्त्रो से स्पर्श हुआ है। इसमे उस गृह मे प्रवेश नही हो सकता। दासी को नहीं बुलाया। नीली से रोज की पहननेवाली सादी साडी ले आने के लिए कहा। स्वय स्नानागार चली गयी। नहाकर कुल कपडे वहीं छोड दिये। वस्त्र बदलकर हाथ जोडकर भगवान को प्रणाम किया और प्रार्थना की कि अब कभी ऐसे दूषित सग मे न फँसना पडे। हृदय मे एक अपूर्व साहस आया। जो साहस लेकर वह कुमार के घर एक दिन गयी थी, वह फिर मिला। अब उसे ससार मे किसी का भय नही। भयवाला पहला-स्वरूप सोचकर उसे हँसी आती है। वह कैसी यन्त्र की तरह बन जाती थी। इसी समय एकाएक दासी सामने आकर खडी हुई—"नहाने के कमरे मे जो कपडे छोड आयी हूँ, ले लेना।" दासी प्रसन्न होकर चली गयी मन मे सोचती हुई कि आज जमाई बाबू के साथ टहलने गयी थी, उसकी खुशी है।

निरू नीली को लेकर बाहर चली। नि सकोच सीधे कुमार के मकान के सामने आकर खडी हुई। नीली ने आवाज दी, दरवाजा ढकेलकर देखा, खुला था; बिजली जल रही थी, निरू नीली को आगे कर भीतर गयी।

सावित्री देवी भोजन पकाकर दाल छौकने के लिए घी गर्म कर रही थी। एक तरफ मलिकवा की माँ बैठी थी। रामचन्द्र भीतर पढ रहा था।

नीली की आवाज मे सावित्री देवी समझ गयी कि अब के नीली अकेली न होगी। तब तक दोनो बिल्कुल पास आ गयी। "चलो, बैठो, मैं अभी आ गयी" कहकर सावित्री देवी घी के नीचे और आँच करने के लिए फूंकने लगी। नीली दीदी को उसी कमरे मे ले गयी। साथ मलिकवा की माँ भी गयी। रामचन्द्र ने

पढते हुए आवाज न सुनी थी। निरू को देखकर खडा हो गया। निरू ने सस्नेह रामचन्द्र की ठोढी पकडकर हिला दी, "पढ रहे है ?" और उसी पलँग पर बैठ गयी।

निरू को जैसा सुन चुकी थी, नीली भी सावित्री देवी को माँ कहकर पुकारती थी। रसोई के पास जाकर कहा, "माँ, दीदी तुम्हे खिलाने के लिए आयी है।"

सावित्री देवी हँसी। कहा, "हाँ, पर यह तो बताओ कि तुम्हारी दीदी आज ही मुझे खिलायेगी या हमेशा ?"

नीली आशय समझ गयी, बिना कुछ कहे जैसे वह हृदय से छोटी हुई जा रही थी, ऐसा सोचकर सप्रतिभ कण्ठ से बोली, "हमेशा।" यह कण्ठ जैसे नीली का नही, किसी सत्य का हो। निरू सुन रही थी, हृदय भर गया, अपने हृदय की शक्ति से हृदय को बाँधने लगी। सावित्री देवी रसोई से बाहर निकली। निरू को देखकर उसकी प्रसन्न मुखछवि से ऐसी प्रसन्न हुई कि जैसे उनकी समस्त साधना आनन्द बनकर भर गयी हो। प्यार से निरु की ठोढी उठाकर बलाएँ ली, पीठ और कन्धे पर हाथ फेरती रही। निरू पालतू चिडिया की तरह बैठी रही। सावित्री देवी एकटक देखती रही। उनके सोचे हुए भावो का कही मे भी विरोध न था।

बगला मे बुलाकर निरू को दूसरे कमरे मे ले गयी। हाथ मे चिट्ठी देखकर निरू ने आँखें झुका ली। बगला मे ही सावित्री देवी ने कहा, "माँ, हृदय का भाव कही इस तरह छिपाया जाता है ? इससे तुम्हे कितना कष्ट हुआ। मैं तो गाँव मे नीली की बातो से ही समझ चुकी थी, फिर तुमसे मिलकर और यही एक जगह तुम्हे और कुमार को देखकर समझी। कहो तो, यह पानी का बूंद है या तुम्हारा आँसू ?"

"आप माँ हैं, आपकी दृष्टि मे भ्रम न था, आपने ठीक देखा और ठीक समझा है।" निरू नत-दृष्टि सरल गम्भीर कण्ठ से बोली।

"तो इस सम्बन्ध मे तो तुम्हे ही अपने सचालन का भार लेना होगा, तभी तुम सफल होगी, मैं तुम्हारी केवल अनुकूलता कर सकती हूँ।" सावित्री देवी बिलकुल माँ की तरह मिलकर बोली।

"मैं ऐसा ही करूँगी। कमल के सम्बन्ध मे मुझे भ्रम न हुआ होता, तो उसी रोज मैं इसका आभास दे गयी होती।"

सावित्री देवी समझकर मुस्किराकर बोली, "फिर भी तुमने बहुत कुछ आभास दिया था। जाओ, कुमार की कुछ किताबे वहाँ है, कोई ले लो और पलँग पर लेटकर आराम से पढो, तब तक मैं कुछ भोजन और बना लूँ, मुँह जुठार जाओ, कुमार भी तब तक आ जायगा, तुम्हे छोड आयेगा, उससे निश्चय भी एक कर लेना।"

सम्मति की सूचना के तौर निरू धीरे-धीरे कमरे के बाहर निकली और उसी तरह पसन्द की एक किताब लेकर देखने लगी। सावित्री देवी ने फिर चूल्हा जलाया।

थोडी देर मे कुमार के साथ कमल भी आयी। कमल को देखते ही प्रसन्न

सावित्री देवी ने कहा, "आज हमारे बड़े भाग्य है।"

"अच्छा!" निरू को देखकर कमल ने कहा, "इसलिए, लेकिन हमारे भी भाग्य क्यो न जगें, माँ ?" बाहर निकलकर कहा। सावित्री देवी अज्ञ दृष्टि से देखने लगी, देखकर बोली, "यानी इनके पीछे हमे भी गर्मागरम भोजन क्यो न मिले ?" सावित्री देवी लजा गयी, कमल कहती गयी, "यद्यपि वहू अपनी अधिक है और उसकी थाली मे घी के अधिक पडने की सम्भावना है।" मकान का सारा वायुमण्डल और हो गया। चारो ओर जैसे तीव्र प्राणो का स्पन्दन हो चला। उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना कमल भीतर गयी और निरू की बगल मे उसी पलँग पर बैठती हुई कुमार से बोली, "आप तो जानते होगे, कहा है 'उपायेन हि यच्छक्य न तच्छक्य पराक्रमै . काक्या कनक सूत्रेण कृष्णसर्पो निपातित'।"

निरू मुस्किराकर बोली, "यानी तुम काकी हो।"

"मैं काकी हूँ, नानी हूँ, काले साँप को कैसा खेलाती हूँ, देखो, बल्कि कहना चाहिए, तुम्हारी इस वैवाहिक विचित्रता मे कैसे फिनिशिंग टच देती हूँ—देखो।"

निरू जानती थी, इससे ज्यादा बाते करने पर जगह-जगह नीचा देखने की यथेष्ट सम्भावना है। इसलिए चुप हो गयी। कुमार अखबार उलट रहा था। मलिकवा की माँ दोमजिले के आँगन पर पान लगा रही थी। कमल कहती गयी, "पी-एच डी. महोदय को Doctor's Phial (डाक्टर की शीशी) न बनायी मैने तो नाम क्या!" फिर नीली की तरफ निगाह गयी। कहा, "उस मकान मे अगर कोई समझदार है तो सिर्फ नीली।" नीली सीधी होकर बैठी। कमल कहती गयी, "दुनिया के गुप्त कार्य जितने ऐसी उम्र मे होते है, उतने किसी उम्र मे नही। इस उम्र के कार्य मे रोचकता काफी रहती है, करनेवाले को भी आनन्द मिलता है, देखनेवालो को भी, और नीली के लिए मुझे पूरा विश्वास है कि इस कार्य मे नीली दक्षता दिखा सकती है—डा. यामिनी को डाक्टर की शीशी बना देगी।" नीली खुश होकर हँसी।

"अच्छा नीली, दबने की कोई बात नही, तेरी दीदी जब कि है, तब विवाह भी जरूर होगा, तू यह बता कि अपनी दीदी के योग्य तू किसे समझती है—यामिनी बाबू को या कुमार बाबू को ?"

"कुमार बाबू को"—इम्तहान देती हुई, जैसे उच्छ्वसित होकर नीली बोली।

"ठीक कहा तूने, मेरी भी यही राय है। अच्छा यह बता कि इस काम मे अगर पूरी मदद की जरूरत तुझी से हो, तो तू पूरी कर सकती है या नही ?"

"कर सकती हूँ।" नीली बिल्कुल तनकर बोली।

"अच्छा, भेद खोलने के लिए अगर तेरे घरवाले तुझे कमरे मे बन्द कर बेंत लगाना शुरू करे, तो तू कितने बेंत सह सकती है ?"

"पचास।"

"शाबाश! तू अवश्य काम कर सकती है।"

फिर निरू से कहा, "निरू, तुम्हे काफी कडा होना होगा। यह राहुग्रास बगैर टेढा पडे दूर न होगा। तुम्हारा सेन रोडवाला बँगला खाली है न ?"

"हाँ, है शायद।"

"तुम्हे इतना भी नही मालूम। वह खाली है। यामिनी बाबू के चले जाने पर उसे सजवा लेना और नीली को लेकर उसी मे आकर रहना, जब विवाह के चार रोज रह जायँ।" कहकर निरू का हाथ पकडकर उठी और जीना पार कर छत पर ले चलने के लिए चली। निरू चली।

छत पर पहुँचकर निरू से कहा, "अब तुम नाबालिग तो नही, सबकुछ समझती हो। तुम्हारे मामा वगैरह कैसे है, इसका तुम्हे परिचय मिल चुका है। और भी अच्छी तरह यह परिचय पा लोगी। जरा इसे भी देखो।" कहकर जेब से आयी हुई चिट्ठी निकालकर दी और दियासलाई जलायी, कहा, "पढो।" निरू पढने लगी। पढकर गुस्से से तमतमा उठी। "हूँ, समझी। तुम जो कुछ भी कहो, मैं करने के लिए तैयार हूँ। मेरी आँखो मे जितना अन्धकार था, सब कटता जा रहा है। मैं अच्छी तरह अब तुम्हारी पहली और अब तक की बातो का मतलब समझ रही हूँ।"

"हाँ, वहाँ जाकर तुम अपने मामा को ऐसा पत्र लिखो, जिसमे बात तो स्पष्ट न हो, पर यह साफ-साफ उन्हे मालूम हो जाय कि तुम उनकी चालबाजियो को जानती हो और तुम्हे उनकी मदद की जरा भी परवाह नही।—मदद तो वही चाहते हैं और चाहेगे, क्योकि वह मदद तुम्हारे पास है और तुम दे सकती हो अगर चाहो। लिख देना कि बँगले मे ऊपर कोई न आ सकेंगे, और जब बुलाओ, विवाह के ठीक पहले तभी वे लोग वहाँ जायँ। भोजन-पान का कुल प्रबन्ध करायें। वर-यात्रियो को खिलायें-पिलायें जो उनका काम है। घर की स्त्रियाँ भी नीचे ही रहेगी। तुम इच्छानुसार नीचे उतरकर उनसे मिल लोगी। इस तरह उन्हे अपनी लघुता के ज्ञान से दुख होने पर भी वे विशेष बुरा न मानेगे, पहले तो यही समझेगे कि यह पाठ यामिनी का पढाया है। साथ-साथ यह भी ख्याल करेंगे कि विवाह हो जाने पर पहलेवाले पराये और बादवाले अपने होते है। निरू कुछ जल्दी कर गयी। यह भी लिख देना कि तुम्हारे बाबा की इच्छा थी कि तुम्हारा हिन्दुस्तानी ढग से विवाह हो, इसलिए तुम उनकी इच्छा पूरी करना चाहती हो। विवाह मे एक योग्य हिन्दुस्तानी पण्डित को तुमने आमन्त्रित कर दिया है। कुछ सन्देह लोगो को हो सकता है, पर जब तुम सशरीर मौजूद हो तब वह केवल सन्देह ही रहेगा, उनमे उसकी जड जम नहीं सकती," फिर निरू से अपने प्लैन की सारी बाते कही। निरू बहुत खुश हुई, "तुममे मौलिक चिन्ताशीलता अवश्य है।" कमल की सम्वर्द्धना की।

भोजन तैयार हो चुका। पत्तले पड गयी। रामचन्द्र ऊपर बुलाने के लिए गया। कमल ने बालक को पकडकर पूछा, "इन्हे तुम क्या कहते हो?"

"दीदी।"

"यह ठीक नही," गम्भीर होकर बोली, "भौजी कहा करो।"

"हाँ तो अभी ब्याह कहाँ हुआ?" रामचन्द्र हँसी न रोक सका।

यामिनी बाबू दूसरे दिन चलते समय निरु से विदा होने गये, तो निरू ने कहा, "मेरी इच्छा है कि मेरा विवाह मामा के घर मे नही, मेरे घर से हो। इस समय सेन रोडवाला मेरा बँगला खाली है। बारात वही आये। आप मामा से कह दीजिएगा कि आपकी भी यही राय है। मैं इधर बहुत मिलना-जुलना नही चाहती। मुझे अच्छा नही लगता। आखिर सबका विवाह होता है, मेरा भी हो रहा है। स्त्रियो के मजाक के तीर ऊपर से सहने पडते हैं। हाँ भोजन, पान, रोशनी, बाजे और नाच-गाने मे खर्च है, वह सब मामा के हाथ रहेगा।" यामिनी बाबू गम्भीर होकर सहमत हुए और विदा होते समय सारी बाते मामा को समझा दी।

उनके चले जाने पर कमल ने बडा काम किया। प्रोफेसर दुबे को समझाया कि जब कि क्रिश्चियन रहने मे अब विशेष आर्थिक फायदेवाली बात नही रह गयी और हिन्दू होने मे एक फायदा नजर आता है तब घर भर फिर हिन्दू क्यो न बन जायँ ? अगर हिन्दुओ मे शुद्ध करने की ताकत नही, तो आर्यसमाजियो मे तो है। आर्यसमाजियो और हिन्दुओ मे उतना फर्क नही, जितना हिन्दू, मुसलमान या क्रिश्चियन, यहूदी मे है। प्रोफेसर दुबे को जितनी तरह के आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक लाभ हो सकते थे, एक-एक कर कमल ने सब समझाये। प्रोफेसर दुबे मान गये। कमल को धन्यवाद दिया। कमल पिता के साथ अच्छे-अच्छे वकील, बैरिस्टर, सरकारी अफसर, यहाँ तक कि शहर कोतवाल से भी मिली और सबको आमन्त्रित किया। फिर छपा निमन्त्रण भेजवाया। यद्यपि निरू अपने बँगले मे रहती थी, फिर भी बँगला विवाह के लिए किराये पर उठाया जा रहा है, ऐसी लिखा-पढी हुई। सब तरफ से कमल ने पूरा-पूरा ध्यान रक्खा और थोडे समय मे पूरी सफलता प्राप्त कर ली।

धीरे-धीरे विवाह का समय निकट हो आया। कमल ने निरू के बँगले मे चौबीसो घण्टे पहरे के लिए आठ गोरखा सिपाही कर लिये। एक पहरा गेट पर लगाया, एक दोमजिले के जीने पर। देखते-देखते विवाहवाली सुहावनी शाम हो आयी। एक साथ बिजली के रगीन बल्ब तरह-तरह के आकार से सजाये जल उठे। जैसे आकाश, सहस्रो पृथ्वी, लतागुल्म, सब विवाह देखने के लिए आमन्त्रित हो। सामने बडा शामियाना तना, चारो ओर कायदे से कुर्सियाँ रखी हुई, एक ओर कीमती मखमली गद्दीदार बडी कुर्सी, चुने हुए आमन्त्रित। एक-एक करके आते हुए सब पूरी अभ्यर्थना के साथ कुर्सियो पर बैठाये जाने लगे। तरह-तरह की खुशबू से हवा मत्त हो उठी। प्रसिद्ध नर्तकी का गाना होता हुआ। रास्ते के एक छोर से दूसरे छोर तक मोटरो का ताँता लग गया। शाम होने के कुछ बाद वर-यात्री भी आ गये। उनके लिए एक ओर की कुर्सियाँ निश्चित की हुई थी। सब बैठे। यामिनी बाबू की अँगरेजी ढग की बगाली सज्जा देखने लायक थी। सभा मे पूरा सन्नाटा था, यद्यपि इधर-उधर तरह-तरह का शोरगुल हो रहा था।

एक दूसरी ओर आमन्त्रितो को समय पर जल्द भोजन करा देने का इन्तजाम

हो रहा था। योगेश बाबू इसी जगह मनोनिवेश किये हुए थे। कतार-की-कतार कुर्सियाँ पड़ी हुई, मेजें सटी हुई। पाचकगण पटुता से प्रस्तुत कि क्षणमात्र में यन्त्र में जैसे काम होने लगे।

नियमानुसार घर की स्त्रियों को विवाह के दिन शाम से कुछ पहले आना था। जो मामा के घर की महिलाएँ थीं, उनके नाम की एक-एक छपी सूचना नीचे एक-एक कमरे में थी। उनके स्वागत का भार कमल पर था। जीने पर पहरा, कोई ऊपर नहीं जा सकती थी। उनके साथ उनकी परिचित आयी हुई सखी रह सकती थी। अन्य महिलाओं के लिए अलग-अलग कमरों में प्रबन्ध था, एक साथ तीन-चार के रहने का; महिलाओं के निमन्त्रण की सूची कमल के हाथ में थी। यह प्रबन्ध देखकर प्राचीनाओं ने सोचा यह नया फैशन है। निरू के समानवालियों ने सोचा, यह यामिनी बाबू की उपज है। नवीनाओं ने सोचा, यह आदर्श है, ऐसा ही होना चाहिए। इसमें औरतों का एक साथ गड्डबड्ड भेडधसान नहीं होता।

नियत समय पर आमन्त्रित महिलाओं के आने पर निरू विवाह के साज से सजी हुई, मस्तक पर चन्दन, मुक्तकेश, रक्तवास आभरणों से झलमलाती हुई, नीली को लिये हुए ऊपर से नीचे उतरी। एक-एक करके वह सबके कमरे में गयी और पूज्य महिलाओं को प्रणाम किया। सबने प्रसन्न दृष्टि से नीचे से ऊपर तक उसे देखा और आशीर्वाद दिया। उसके समानवाली कुछ नाराज हुईं, क्योंकि अपने हाथों उसे सजा नहीं पायीं। एक ने व्यंग्य भी किया—"अगर विवाह हिन्दुस्तानी ढंग से होगा, तो यह बंगला सज्जा फिर किसलिए ?"

"हिन्दुस्तानी ढंग से विवाह होने की बात है, पहनावे की नहीं"—थोड़े में उत्तर देकर निरू निवृत्त हो गयी। फिर वहाँ से दूसरी ओर चली। इस प्रकार सबसे मिलकर नीली के साथ ऊपर चली गयी।

अब रात के दस का समय हुआ। सबको जिवाने का प्रबन्ध होने लगा। इधर हिन्दुस्तानी पण्डितजी बड़ा पग्ग बाँधे एक ओर बनाये हुए मण्डप में आ विराजे, साथ-साथ प्रजाजन और उनके सहायक। कमल मुस्तैदी से उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा करती हुई। महिलाओं को विवाह देखने का आमन्त्रण फिर गया। सब मण्डप में आकर एकत्र होने लगीं। और पण्डितजी का अद्भुत वेश देखकर एक दूसरे को धीरे से धकेल-धकेलकर मुस्किराने लगीं। शिक्षित पण्डितजी की गम्भीरता में फर्क न पड़ा। उन्होंने स्वरचित संस्कृत भाषा में वर और अवगुण्ठनवती वधू को ले आने की आज्ञा की। वर डाक्टर यामिनी बाबू शिष्टतापूर्वक आकर अपने आसन पर विराजमान हुए, यद्यपि उस हिन्दुस्तानी असभ्य वेशवाले पण्डित के प्रति उन्हें हृदय से घृणा थी। कमल अवगुण्ठनवती वधू को लेने के लिए दोमंजिले पर गयी। वधू तैयार थी। आज्ञा के अनुसार उसे लेकर कमल मण्डप में आयी। महिलाएँ आनन्दपूर्वक ऊलू-ध्वनि करने लगीं। पण्डितजी ने कर्मकाण्ड शुरू किया और शिक्षित वर की रुचि का जैसा रूप उनके सामने पहले रक्खा गया था, तदनुसार विवाह को संक्षेप में ही समाप्त किया, एक घण्टे के अन्दर-अन्दर। अब तक आमन्त्रित सज्जन भोजन कर चुके, और शहरवाले मण्डप में आकर विवाह देखकर प्रसन्न होकर हर्षध्वनि कर गये।

विवाह हो गया। कुछ लोकाचार रह गया। यह बगाल की फूल शय्यावाली प्रथा है। कमल वधू को लेकर चली और यामिनी वावू को अनुसरण करने के लिए कहा। महिलाओ से कहा कि कुछ देर बाद अब वे सब ऊपर चलने की कृपा करें। वधू को लेकर कमल ऊपर गयी। पीछे-पीछे यामिनी वावू जा रहे थे। देखा, ऊपर भी एक वेदी है और एक ब्राह्मण आसन पर वैठा हुआ है। ब्राह्मण ने वगला भाषा मे यामिनी वावू से कहा, "यह आपकी मातृवेदिका है, इसे भूमिष्ठ होकर प्रणाम कीजिए।" यामिनी वावू ने इसे भी कर्मकाण्ड की एक धारा समझा और भक्ति-पूर्वक भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। कमल बहू को कमरे मे ले गयी। पीछे से यामिनी वावू भी गये। कोमल सुगन्ध-युक्त फूलो की शय्या पर वहू को वैठा दिया और यामिनी वावू से सुखपूर्वक रात्रियापन के लिए कहकर वाहर निकल द्वार पर साँकल चढा दी।

नीली बाहर थी, महिलाओ को वुला लाने के लिए भेज दिया, आप वही विजली के प्रकाश मे, बीच के हाल के विछे फर्श पर वैठ गयी। सिपाही ने जीने का रास्ता छोड दिया। महिलाओ का दल देखते-देखते एकत्र हो गया।

इसी समय यामिनी वावू ने द्वार भडभडाया। पर वह वन्द था। वे भीतर से चिल्लाये—"मेरे साथ विश्वासघात किया गया है, खोल दो द्वार।"

"चुप रहो मूर्ख"—कमल उत्तेजित होकर बगला मे वोली, "पुलिस के आदमी अभी यहाँ से नही गये, तुम स्वय समझो कि तुम्हारे साथ न्याय हुआ है या अन्याय।"

यामिनी वावू चुप हो गये। महिलाओ मे कोलाहल उठा। सवने —"क्या वात हे, क्या वात है"—कहकर कमल को घेर लिया। कुछ देर तक कमल चुप रही। पर मिस दुवे की अवस्था का विचार कर सवसे कह देना ही उचित समझा। यद्यपि उसने देर तक सागोपाग यह प्रसग महिलाओ को सुनाकर कहा, फिर भी यहाँ सक्षेप मे उसकी समाप्ति की जायगी, तो किसी के लिए समझने की कसर कदापि न रहेगी। कमल ने कहा, "डाक्टर यामिनी को जैसी विलायत की हवा लगी तदनुकूल अपनी जोडी की तलाश वे करने लगे। मिस दुवे मेरे साथ पढती है। वी ए की छात्रा है। कोई गवाँर-गावदी लडकी नही। लखनऊ आकर एक दिन डा यामिनी ने इन्हे कही देख लिया, फिर अनेक दिन इनके यहाँ इनके पिता के पास गये, एक साथ उठे-वैठे। इनके पिता प्रो दुवे किसी कारण से क्रिश्चियन हो गये थे। डा यामिनी पहले उनसे अपने धर्म-परिवर्तन के सम्वन्ध मे सलाह लेते रहे, उनके साथ चर्च भी जाया करते थे। प्रो. दुवे को मालूम हो गया कि डा यामिनी, उनकी कन्या को प्यार करते है। लेकिन फिर भी उन्होने उदारता दिखलायी, उनसे कहा कि आप चाहे सिविल मैरेज कर सकते है! डा यामिनी अविवाहित थे, और चूंकि हर तरह अपना प्यार जता चुके थे—अपना धर्म छोडने को तैयार थे, इसलिए दूसरी तरफ से प्यार पाना कुछ अस्वाभाविक या अनुचित न था। कुमारी दुवे भी इन्हे प्यार करने लगी। क्रिश्चियन समाज मे कुछ अधिक आजादी है ही, दोनो एक साथ आधी रात तक टहलते-फिरते, मिलते-जुलते रहे, विवाह से पहले दोनो का चारित्रिक पतन भी हुआ, जिसका परिणाम सिफलिस-

गनोरिया वावू के रूप से यामिनी वावू मे न होकर गर्भ-रूप से मिम दुवे मे हुआ। यह गर्भ अभी वहुत छोटा है; पर शका के कारण वहुत वढ़ा। कुछ दिनो वाद यामिनी वावू की निरू से विवाह की वातचीत हुई। इधर कुछ अधिक फायदा था, आर्थिक रूप से, नये प्रेम से भी अधिक फायदा हो सकता है या नही, इसका ज्ञान आप लोगो को मुझसे अधिक हो सकता है। खैर, इन्होने उधर जाना वन्द कर दिया। मिस दुवे को घवराहट हुई। उन्होने मुझे एक चिट्ठी लिखी। मैंने वावा से पूछा। फिर उनकी सलाह से काम करती रही। प्रो दुवे को फिर धर्म परिवर्तन की सलाह दी, क्योकि अदालत मे वदनामी होती, खर्च भी होता। प्रो. दुवे ने वैसा ही किया। अव वही दोनो वर और वधू के रूप से उस कमरे मे हैं, जिसके लिए डा यामिनी का कहना है कि उनके साथ धोखा किया गया।"

महिलाएँ प्रसन्न हो गयी। यह वहुत अच्छा हुआ, चारो ओर से सन्तोष-ध्वनि गूंजने लगी।

कमल उत्तेजित थी; पर समय पर अपना मनोभाव दवा गयी, कहा—"आज निरू का भी विवाह यहाँ हुआ है, ऊपर। वह पहले अपने घरवालो की इच्छा से चल रही थी, पर वाद को सव हाल मालूम कर अपनी अनुवर्तिता की। खुद सोच-समझकर योग्य वर चुना। वर लण्डन का डी. लिट् है।"

महिलाओ मे वर और वधुओ को देखने का मधुर गुजन फैल चला। कमल ने निरू के कक्ष का द्वार खोला। निरू और कुमार अलग-अलग दो कुर्सियो पर वैठे थे। एक ओर फूलो की सेज विछी थी। महिलाओ को देखकर निरू उठकर खडी हो गयी। कुमार ने वैठे-ही-वैठे प्रणाम किया। महिलाएँ देखकर प्रसन्न हो गयी।

फिर मिस दुवे के कमरे मे गयी। यामिनी कुर्सी पर वैठे थे। मिस दुवे जिसका नाम सुशीला है, पलँग पर। सुशीला को देखकर महिलाएँ आपस मे कहने लगी—वर का कुछ दिमाग खराव है क्या? सुशीला अप्रसन्न थी, चुपचाप वैठी रही। महिलाएँ चली गयी, अन्त मे कमल ने अग्रेजी मे कहा,—"यामिनी वावू, इस शुभ मूहूर्त के लिए धन्यवाद!"

रुक्ष स्वर से यामिनी वावू ने कहा—"धन्यवाद!"

* * * *

गाँव मे भी खवर फैली। वडा सन्नाटा छाया। लोग वहुत डरे। आखिर मुखिया के दरवाजे वैठक हुई। सवने सलाह ली। मुखिया ने कहा—"पागल हो, राजा से कोई वैर करता है। अव वे दिन नही है। लखनऊ मे कितने विलइतिहा है, उनके हाथ का पानी वन्द है?"

०००